खण्ड : एक

शैक्षिक विकास

इकाई - 1 5
शिक्षा का अर्थ एवं अवधारणा : प्राचीन से वर्तमान तक

इकाई - 2 23
शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था : राज्य तथा केन्द्र की भूमिका

इकाई - 3 45
शिक्षा के संवैधानिक प्रावधान

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	पूर्व निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 के0एस0मिश्र	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 अखिलेश चौबे	पूर्व आचार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो0 विद्या अग्रवाल	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 शैलेश कुमार यादव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई-1,3 एवं 14)
डॉ0 सरोज यादव	असि. प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 2 एवं 10)
डॉ0दिनेश सिंह	असि0 डायरेक्टर/असि0 प्रो0 शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई-4,5 एवं 6)
डॉ0 उपेन्द्र नाथ तिवारी	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 7,8 एवं 9)
डॉ0 मीनू गुप्ता	एसो0प्रो0बी0एड0विभाग,एम0डी0पी0जी0कालेज प्रतापगढ़ (इकाई-11)
डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 12,13 एवं 15)

सम्पादक

प्रो0 विद्या अग्रवाल	शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

परिमापक

प्रो0पी0के0 साहू	शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

समन्वयक

डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रकाशक

डॉ0 राजेश कुमार पाण्डेय	कुलसचिव,उ0प्र0राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN 978-93-83328-01-7

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित – 2024

मुद्रक : सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूसन प्रा0लि0, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई

B.Ed.E-02 : समसामयिक भारत एवं शिक्षा

खण्ड–एक शैक्षिक विकास

इकाई–1 शिक्षा का अर्थ एवं अवधारणा : प्राचीन से वर्तमान तक

इकाई–2 शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था : राज्य तथा केन्द्र की भूमिका

इकाई–3 शिक्षा में संवैधानिक प्रावधान

खण्ड–दो भारतीय शैक्षिक विचारक

इकाई–4 महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्र नाथ टैगोर के शैक्षिक विचार

इकाई–5 महर्षि श्री अरविन्द एवं स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचार

इकाई–6 जे0 कृष्णामूर्ति एवं गिज्जू भाई के शैक्षिक विचार

खण्ड–तीन शिक्षा दर्शन के सम्प्रदाय

इकाई–7 भारतीय दार्शनिक विचार

इकाई–8 आदर्शवाद और प्रकृतिवाद

इकाई–9 यथार्थवाद, प्रयोजनवाद और अस्तित्ववाद

खण्ड–चार शिक्षा के समसामयिक मुद्दे

इकाई–10 सार्वभौमिक, प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा

इकाई–11 उत्तरदायी नागरिकता के लिए शिक्षा

इकाई–12 पर्यावरण संरक्षण हेतु शिक्षा

खण्ड–पाँच शिक्षा में गुणवत्ता

इकाई–13 शिक्षा में गुणवत्ता : अर्थ, संकेतांक तथा उपलब्धि के मानक

इकाई–14 उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण एवं शिक्षा

इकाई–15 माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन

खण्ड – 1 : शैक्षिक विकास

खण्ड परिचय

प्रथम इकाई में शिक्षा पद्धति के विकास और उसके समाप्त होने पर एक विहंगम दृष्टि डाली। साथ ही हमने एक शिक्षा व्यवस्था के आरम्भ होने और उसके निरन्तर विकास का रूप भी देखा। एक सामान्य व्यक्ति के लिए शिक्षा प्राप्त करना एक अत्यन्त उदार और सम्माननीय कार्य है। परन्तु भारत में शिक्षा सभी लोगों को प्राप्त नहीं थी। बल्कि कुछ लोग समझते थे कि शिक्षा प्राप्त करना उनके भाग्य में नहीं है। औपनिवेशिक काल में जो व्यवस्था विकसित हुई वह स्वतंत्रता के बाद भी चलती रहीं। आधुनिक भारतीय शिक्षा की आधारशिला ब्रिटिश काल में रखी गयी। महात्मा गाँधी के द्वारा प्रतिपादित बेसिक शिक्षा निःसन्देह एक विशुद्ध भारतीय प्रयास है। हम अगली इकाई में यह चर्चा करेंगे कि संवैधानिक शासन लागू होने के बाद भारतीय संविधान में शिक्षा को कहाँ स्थान मिला और जो परिवर्तन हुए उससे भारतीयों की बढ़ती हुई शिक्षा की माँग किस सीमा तक पूरी हुई।

द्वितीय इकाई में बताया गया है कि शिक्षा राष्ट्र की प्रगति एवं आर्थिक विकास के साथ–साथ स्वावलम्बन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा भविष्य के लिए महत्वपूर्ण निवेश है। शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था का यही सिद्धान्त है। सन् 1949 में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में शिक्षा की 10+2+3 संरचना को राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति देने का प्रस्ताव रखा। मुदालियर कमीशन, कोठारी कमीशन, राष्ट्रीय शिक्षा आयोग आदि में भी शिक्षा की इस संरचना को स्वीकार करने पर बल दिया गया। वर्तमान में 10+2+3 की इसी संरचना को पूरे देश में अपनाया जा रहा है। इसमें पाँच वर्षों की प्राथमिक शिक्षा, दो वर्षों की माध्यमिक शिक्षा (+2) होगी। तत्पश्चात तीन वर्षों की उच्च शिक्षा होगी। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (National Curriculum Framework) तैयार की गई। शिक्षा के राष्ट्रीयकरण का अर्थ है कि सम्पूर्ण राष्ट्र में एक समान शिक्षा प्रणाली का मान्य होना तथा उस पर सरकार का नियन्त्रण होना है। भारत जैसे प्रजातान्त्रिक एवं धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के लिए शिक्षा का राष्ट्रीयकरण होना आवश्यक है। परन्तु शिक्षा के पूर्ण राष्ट्रीयकरण से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को देखते हुए आंशिक राष्ट्रीयकरण बेहतर उपाय हो सकता है। 1976 के संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची में रखा गया है। शिक्षा के चार क्षेत्रों पर केवल केन्द्र सरकार का ही नियन्त्रण होगा। जबकि अन्य क्षेत्रों में केन्द्र तथा राज्य सरकारों का दायित्व एवं नियन्त्रण होगा।

तृतीय इकाई में शिक्षा से सम्बन्धित शैक्षिक प्रावधानों का वर्णन किया गया। विभिन्न प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि संविधान में शिक्षा को जन सामान्य से जोड़ने का महत्वपूर्ण प्रयास किया गया। शिक्षा को प्रत्येक नागरिकों के कल्याण या विकास का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली साधन स्वीकार किया गया है। सभी लोगों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने के लिए शिक्षा से सम्बन्धित अनेक अधिकारों को स्पष्ट रूप से संविधान में वर्णित किया गया है। परन्तु वास्तविकता उससे काफी दूर है। जो संकल्प संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय लिये थे, उन संकल्पों का व्यवहारिक राजनीति ने जमकर मजाक उड़ाया है अभी तक न ही निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त हो सका है और न ही हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त हो सका है। वर्तमान समय में आवश्यकता यह है कि संविधान सभी की कुल भावनाओं को समझा जाये और उन संकल्पों को पूरा करने की दिशा में प्रयास किया जाए जिससे सभी लोगों को शिक्षा प्राप्त हो सके। अगली इकाई में आप देखेंगे कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा के विकास एवं शिक्षा की आमजनों तक पहुँच हेतु जिन शिक्षा समितियों का गठन किया गया उनका क्या प्रभाव पड़ा।

इकाई– 1 शिक्षा का अर्थ एवं अवधारणा : प्राचीन से वर्तमान तक

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 वैदिक कालीन शिक्षा

1.4 वैदिक कालीन शिक्षा की अवधारणा

1.4.1 पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधि

1.4.2 शिक्षक एवं शिक्षार्थी

1.5 बौद्ध कालीन शिक्षा

1.6 बौद्ध कालीन शिक्षा की अवधारणा

1.6.1 पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधि

1.6.2 शिक्षक एवं शिक्षार्थी

1.7 मुस्लिम कालीन शिक्षा

1.8 मुस्लिम कालीन शिक्षा की अवधारणा

1.8.1 पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधि

1.8.2 शिक्षक एवं शिक्षार्थी

1.9 ब्रिटिश काल में शिक्षा का विकास (1600 ई0 से 1902 ई0 तक)

1.9.1 प्राच्य पाश्चात्य शिक्षा विवाद

1.10 सन् 1902 ई. से सन् 1937 ई. के मध्य ब्रिटिश शासन में शिक्षा का विकास

1.11 सन् 1937 ई. से सन् 1946–47 के प्रान्तीय स्वराज में शिक्षा का विकास

1.11.1 बुनियादी शिक्षा

1.11.2 सार्जेंट रिपोर्ट

1.12 सारांश

1.13 अभ्यास कार्य

1.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में शैक्षिक विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन विभिन्न कालों के शैक्षिक व्यवस्था से सम्बन्धित है। भारत का अतीत सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक कारणों से उतना प्रभावित नहीं हुआ जितना कि आध्यात्मिकता ने उसे

प्रभावित किया। यहाँ की संस्कृति ने विश्व बंधुत्व तथा अति मानवता का स्वप्न देखा है, एवं स्वप्न को साकार किया है। भारत विश्व के क्षेत्र में विश्व गुरू के नाम से संबोधित किया जाता है। भारतीय शैक्षिक व्यवस्था विश्व की प्राचीनतम शैक्षिक व्यवस्था है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में समाहित विभिन्नता एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर भारतीय शिक्षा के इतिहास को मुख्य पाँच कालों में विभाजित करना होगा, जो कि इस प्रकार है–

1. वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था– ईसा पूर्व से छः सौ वर्षों तक
2. बौद्ध कालीन शिक्षा व्यवस्था– छः सौ वर्षों से लेकर 12वीं शताब्दी तक
3. मुस्लिम कालीन शिक्षा व्यवस्था– 12वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी
4. ब्रिटिश कालीन शिक्षा– 19वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी के मध्य तक
5. आधुनिक शिक्षा– स्वतंत्रता के बाद की भारतीय शिक्षा सन् 1947 से अब तक

यद्यपि इस इकाई में शिक्षा के इतिहास से शिक्षा के क्रमशः विकास के अनुक्रम पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। साथ ही साथ इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार कोई सामाजिक व्यवस्था अपनी संस्कृति का प्रभाव शिक्षा के ऊपर छोड़ती है। अर्थात् सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन से शिक्षा भी प्रभावित होती है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के बाद शिक्षार्थी इस योग्य हो जायेंगे कि–

- प्राचीन काल में भारतीय समाज की शिक्षा प्रणाली के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- वैदिक शिक्षा और मुस्लिम शिक्षा के बीच हुए परिवर्तनों का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे,
- प्राचीन भारत और ब्रिटिश काल मे हुए परिवर्तनों का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे,
- मध्यकालीन और ब्रिटिश काल की शिक्षा व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे, तथा
- वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक आधार पर प्रत्येक काल में हुए परिवर्तनों में सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे।

1.3 वैदिक कालीन शिक्षा

प्राचीन काल में सभ्यता व संस्कृति को बनाने तथा इसमें परिवर्तन लाने में राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारकों की अपेक्षा धर्म अधिक प्रभावशाली था। प्राचीन भारत में भारतीय समाज में विचार का केन्द्र बिन्दु धार्मिक व्यवस्था के अनुरूप होती थी। जिसके परिणाम स्वरूप भाषा शिक्षा भी इससे अछूत नहीं थी। धार्मिक व्यवस्था से शिक्षा की नीति निर्धारित होती थी। प्राचीन भारत में मुख्य रूप से तीन

धर्म थे– (1) वैदिक धर्म या हिन्दु धर्म, (2) बौद्ध धर्म तथा (3) जैन धर्म। इन तीनों में शिक्षा के ऊपर मुख्य रूप से वैदिक धर्म एवं बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा।

भारतीय इतिहास में ईसा पूर्व से 600 वर्ष तक के काल को वैदिक काल के नाम से पुकारा जाता है। इस काल में वेदों पर आधारित धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षिक व्यवस्था का काल था। प्राचीन भारतीय शिक्षा का आरम्भ वेदों से माना जाता है। वैदिक काल में धार्मिकता से ही राजनैतिक, धार्मिक व सामाजिक धारायें प्रवाहित हुई। सत्याचरण, प्रेम, अहिंसा आदि पर ही सामाजिक जीवन की नींव रखी गयी थी। वेदकालीन युग में वेदों का ज्ञान प्रत्येक भारतीयों के जीवन में समाहित था। इन्हीं के अनुसार प्रत्येक भारतीय मानव जीवन निर्देशित होता था। वेदों का ज्ञान आज भी भारतीय संस्कृतियों, प्रभावों एवं परम्पराओं में विद्यमान है। वेद को चार भागों में विभक्त किया जाता है।

1. ऋग्वेद
2. सामवेद
3. यजुर्वेद
4. अथर्ववेद

1.4 वैदिक कालीन शिक्षा की अवधारणा

वैदिक काल में शिक्षा के लिए विद्या, ज्ञान प्रबोध तथा विनय आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। प्राचीन काल के ग्रन्थों में अशिक्षित मनुष्य को पशु के समान अर्थात् विद्या विहीन पशु कहा गया है। शिक्षा को प्रकाश का स्त्रोत माना गया है। वैदिक काल की शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं–

1. **व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना–** इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु छात्रों में आत्म–संयम, आत्म–सम्मान, आत्म–विश्वास आदि सद्गुणों का विकास किया जाता था।

2. **चरित्र निर्माण करना–** ब्रह्मचर्य, सदाचार, परोपकार, मानव कल्याण, सत्यव्रत, कर्तव्य पालन आदि संस्कारों को विकसित करके छात्रों में नैतिक चरित्र का निर्माण किया जाता था।

3. **धार्मिकता एवं ईश्वर शक्ति–** वैदिक काल में उसी शिक्षा को सार्थक माना जाता था जो इस संसार से व्यक्ति को मुक्ति दिलाए। ''सा विद्या या विमुक्तये''

4. सामाजिक कुशलता वृद्धि करना भी वैदिक कालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था।

5. **राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रचार–** धर्म एवं संस्कृति का ज्ञान प्रदान करके सांस्कृतिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित किया जाता था।

6. **जीविकोपार्जन के लिए शिक्षा–** प्राचीन गुरूकुलों में पशुपालन, कृषि, प्राकृतिक चिकित्सा, शिल्प व्यवसाय एवं युद्ध कला का प्रशिक्षण दिया जाता था।

1.4.1 पाठ्यचर्चा व शिक्षण विधि

वैदिक काल में वेदों के अध्ययन को प्रमुखता दी जाती थी। इसी कारण पाठ्य विषयों की संख्या अधिक नहीं हो सकी थी। कालान्तर में व्याकरण, गणित, रेखागणित, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, कृषि, युद्ध शिक्षा, न्याय दर्शन, प्राकृतिक चिकित्सा आदि अनेक विषय पढ़ाये जाते थे। शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा था। इस युग में अधिकांश शैक्षिक क्रियायें मौलिक होती थी और लेखन क्रिया को कम से कम अवसर दिया जाता था। यह क्रिया प्रायः संस्कृत ग्रन्थों के लिखने तक ही सीमित रखी जाती थी। इस काल में शंका समाधान, शुद्ध उच्चारण पर बल, प्रश्नोत्तर, वाद विवाद, कंठस्थ विधि आदि शिक्षण विधियों द्वारा शिक्षा दी जाती थी। व्याकरण, ज्योतिष, न्याय तथा आयुर्वेद प्रयोगात्मक कार्य पर बल दिया जाता था।

1.4.2 शिक्षक एवं शिक्षार्थी

वैदिक काल में व्यवसाय का निर्धाण जन्म के आधार पर होने के कारण और न्यूनतम स्तर से आगे की शिक्षा केवल ब्राह्मणों द्वारा प्राप्त करने के कारण मूल रूप से ब्राह्मण वर्ग को ही शिक्षक बनने योग्य समझा जाता था। वैदिक काल में शिक्षक एवं शिक्षार्थी के बीच एक मधुर एवं आत्मीय सम्बन्ध होते थे। शिक्षक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण और वैदिक सामाजिक व्यवस्था में सर्वोपरि वैदिक काल में गुरूकुल किसी सुन्दर प्राकृतिक स्थान पर नदियों के तट पर स्थापित होते थे। गुरूकुल परिवार में शिष्य पारिवारिक सदस्य की भांति रहते थे। वे गुरू की सेवा करना, शिक्षाटन, पशुपालन आदि कार्य करते थे।

वैदिक शिक्षा का प्रारम्भ उपनयन संस्कार के बाद आरम्भ होती थी। विभिन्न वर्णों के बालकों के लिए उपनयन संस्कार की आयु भिन्न–भिन्न होती थी। मनु के अनुसार– ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैदिक छात्रों का उपनयन संस्कार क्रमशः 8, 11 और 12 वर्ष की आयु तक हो जानी चाहिए। उपनयन संस्कार की अधिकतम आयु ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैश्य वर्णों के लिए क्रमशः 16, 20 तथा वर्ष थी। वैदिक काल में शूद्रों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। शिक्षा समाप्त होने के समावर्तन संस्कार होता था। यह संस्कार 25 वर्ष की आयु में होता था।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी

(क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

1. भारत में वेद को कितने भागों में विभक्त किया गया है?

____

____

2. वैदिक काल में अध्यापन का कार्य मुख्य रूप से किस शिक्षण विधि द्वारा किया जाता था?

____

____

3. वैदिक काल की सामाजिक व्यवस्था में गुरू और शिष्य सम्बन्ध कैसे थे?

____

____

1.5 बौद्ध कालीन शिक्षा

वैदिक कालीन शिक्षा में कर्मकाण्ड की प्रबलता, पुरोहितवाद के उदय, शिक्षा पर ब्राह्यणों का एकाधिकार शुद्रों एवं नारी शिक्षा की उपेक्षा, वैदिक धर्म की शुद्ध भावना का लोप एवं धीरे–धीरे अनैतिकता का बोलबाला के फलस्वरूप बौद्ध धर्म का उदय हुआ। आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व महात्मा गौतम बुद्ध (563–483) ने बौद्ध धर्म की स्थापना की। वास्तव में बौद्ध धर्म कोई नया धर्म नहीं है। अपितु हिन्दू धर्म का ही परिवर्तित रूप है। बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार हेतु बौद्ध विहार या मठों की स्थापना हुई। बौद्ध विहार या मठों का एक मात्र कार्य नए बौद्ध भिक्षुओं को दीक्षित करना था। परन्तु धीरे–धीरे इन मठों या विहारों में सभी धर्मों के छात्रों को शिक्षा दी जाने लगी। बौद्ध कालीन शिक्षा व्यवस्था काफी हद तक वेदकालीन शिक्षा व्यवस्था के समान ही थी।

1.6 बौद्धकालीन शिक्षा की अवधारणा

बौद्धकालीन शिक्षा ने निर्वाण प्राप्ति पर सर्वाधिक जोर दिया जो वैदिककालीन शिक्षा के आध्यात्मिक विकास के समान ही था। परन्तु बौद्धकालीन शिक्षा ने नैतिकता के पक्ष को सबल पक्ष मानकर नैतिक पक्ष पर अधिक ध्यान दिया। बौद्धकालीन शिक्षा के मुख्य उद्देश्य निम्नांकित हैं–

1. **शिक्षा के माध्यम से निर्वाण की प्राप्ति–** बौद्ध धर्म का प्रमुख उद्देश्य निर्वाण की प्राप्ति है। महात्मा बुद्ध द्वारा बताऐ गये आष्टांगिक मार्गों का सतत् अभ्यास करने पर निर्वाण प्राप्त हो जाता है।

2. **नैतिक चरित्र निर्माण पर बल–** बौद्ध धर्म में नैतिक चरित्र के निर्माण तथा शील पर अधिक जोर दिया जाता था जिससे छात्रों में कर्तव्य पालन, सत्य वचन, सदाचरण एवं धर्माचरण जैसे अनेक गुणों का विकास हो सके।

3. **बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार करना–** बौद्ध शिक्षा द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार करना भी एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था। बौद्ध भिक्षुओं एवं मठों और विहारों द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार किया जाता था।

4. **व्यक्तित्व का विकास करना**– बौद्ध शिक्षा द्वारा बालकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास किया जाता था जिससे बालक अपने पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह कर सकें।

5. **जीविकोपार्जन के लिए प्रशिक्षण देना–** बौद्ध शिक्षा द्वारा बौद्ध भिक्षुओं को भी जीवन के लिए भी तैयार किया जाता था जिससे वह स्वयं और अपने परिवार का भरण पोषण कर सकें।

6. **राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसारण–** बौद्ध शिक्षा का एक उद्देश्य राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसारण करने का भी था जिससे बालकों को राष्ट्रीय संस्कृति के संरक्षण तथा प्रसारण की शिक्षा दी जाती थी।

1.6.1 शिक्षक एवं शिक्षार्थी

बौद्ध शिक्षा में भी शिक्षक का पद सम्मानित था। शिक्षा देने का कार्य बौद्ध विहार या मठों में बौद्ध भिक्षु किया करते थे। बौद्ध कालीन शिक्षा व्यवस्था में छात्रों और अध्यापकों के बीच मधुर एवं स्नेहपूर्ण सम्बन्ध होता था। शिक्षक अपने विशाल व्यक्तित्व उत्तम चरित्र, संयम, अनुशासन एवं गरिमापूर्ण व्यवहार से छात्रों को प्रभावित करता था बौद्धकाल में शिक्षा का प्रारम्भ 6 से 8 वर्ष की आयु में होता था। शिक्षा प्रारम्भ करने के लिए मठों में छात्रों का प्रवज्जया संस्कार (पब्बज्जया) होता था। **विनयपिटक** के अनुसार इस संस्कार में छात्र अपने सिर के बाल मुंडवाकर नवीन पीले वस्त्र धारण करके मठ के बड़े भिक्षु, जिन्हें उपाध्याय कहते थे, के चरणों में अपना माथा टेककर शरण लेता था अर्थात् बालक 'बुद्धं शरणम् गच्छामि', 'संघं शरणम् गच्छामि' का उपदबोधन करता था प्रवज्जया संस्कार के पश्चात् बालक 'सामनेर' 'श्रमण' और सिद्धविहारिकां कहलाता था परन्तु अस्वस्थ, विकलांग, दण्डित व्यक्तियों तथा राज्य के कर्मचारियों व सैनिकों के लिए प्रवज्जया संस्कार निषेध था। बौद्धकालीन छात्रों (सामनेर) को 'दससिक्खापदानि' अर्थात् दस पद का अनुसरण करना पड़ता था–

1. अहिंसा का पालन करना,
2. शुद्ध आचरण करना,
3. सदैव सत्य बोलना,
4. सत् आहार करना,
5. मादक वस्तुओं का प्रयोग न करना,
6. किसी की निन्दा न करना,
7. सादा और सरल जीवन व्यतीत करना,
8. *नशा इत्यादि तमाम दोषों से दूर रहना,*
9. अपरिग्रह अर्थात् बिना दिये हुए वस्तुओं को न लेना, तथा
10. बहुमूल्य वस्तुओं का दान न लेना।

बौद्ध शिक्षा का अंतिम संस्कार उपसंपदा संस्कार होता था। इस संस्कार के उपरांत सामनेर पूर्णता भिक्षु बन जाता था। उसका गृहस्थ जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता था।

1.6.2 पाठ्यचर्चा व शिक्षण विधि

बौद्धकालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य निर्वाण की प्राप्ति था। इसलिए शिक्षा में बौद्ध के ज्ञान का बोलबाला था। परन्तु पाठ्यक्रम में जीवनोपयोगी शिक्षा का भी समावेश था। बौद्धकालीन शिक्षा दो भागों में विभाजित थी।

1. **प्रारंम्भिक शिक्षा–** जिसमें लिखना, पढ़ना तथा साधारण गणित सिखाया जाता था।

2. **उच्च्व शिक्षा–** जिसमें धर्म, दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद, सैनिक शिक्षा, कला, कौशल, भूतल विद्या, कृषि शिल्प कौशल तथा बौद्ध धर्म से सम्बन्धित विभिन्न ग्रन्थों का व्यापक एवं विस्तृत अध्ययन किया जाता था।

प्रचलित शिक्षण विधियों में मौलिक शिक्षा के साथ–साथ प्रवचन विधि, प्रश्नोत्तर विधि, वाद–विवाद विधि, व्याख्या विधि, कक्षानायकी विधि, सम्मेलन विधि, देशाटन, प्रकृति निरीक्षण तथा निदिध्यासन आदि विधियों का प्रयोग किया जाता था। शिक्षा का माध्यम पाली या प्राकृत भाषा थी। पाली का प्रयोग जनसाधारण अपनी सुविधा के लिए ही करते थे।

बोध प्रश्न– टिप्पणी

(क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

4. बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था में प्रारम्भिक शिक्षा किस प्रकार आयोजित की जाती थी ?

____

____

5. बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था में विद्यालय का स्वरूप कैसा था ?

____

____

1.7 मुस्लिम कालीन शिक्षा

12 वीं शताब्दी से लेकर 18 वीं शताब्दी तक की अवधि को मध्यकाल अथवा मुस्लिम काल कहा जाता है। भारत की सम्पन्नता से आकृष्ट होकर धन दौलत की लूट की नियत से मुसलमान आठवीं शताब्दी में अपने आक्रमण प्रारम्भ कर दिये थे। परन्तु आरम्भ में यह लूट पाट कर अपने देश चले जाते थे जिससे भारतीय शिक्षा पर इनका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु महमूद गजनी (998 ई0–1030 ई0) के आक्रमण के बाद भारतीय शिक्षा प्रणाली की अकल्पनीय क्षति हुई। आरम्भ में मुस्लिम शासकों ने हिन्दूओं की शिक्षा से कोई छेड़छाड़ नहीं की। लेकिन धीरे–धीरे मुस्लिम शासक की अपेक्षा मुस्लिम धार्मिक नेताओं ने इस्लाम के प्रचार एवं प्रसार हेतु अपना

ध्यान युवा वर्ग की ओर लगाया। इसलिए उन्होंने अपने धर्मस्थलों पर मकतब तथा मदरसे खोले।

मुस्लिम शासकों व धार्मिक नेताओं के द्वारा भारत में इस्लामी शिक्षा का प्रसार बढ़ा जिसका सीधा असर हिन्दूधर्म की शिक्षा पर पड़ा। मुस्लिम शासकों ने हिन्दू शिक्षा केन्द्रों को तोड़कर मदरसे, मस्जिद एवं मकबरे का निर्माण कराया। राजकीय भाषा के रूप में फारसी को बढ़ावा दिला गया। सारे प्रशासनिक कार्यों में फारसी में दखल से आम जनमानस पर बुरा प्रभाव पड़ा।

1.8 मुस्लिमकालीन शिक्षा की अवधारणा

पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब के अनुसार, ''माँ बाप द्वारा बच्चों को दी जाने वाली सभी भेटों में उदार शिक्षा की भेंट सर्वोत्तम है। विद्यार्थियों के कलम की स्याही शहीदों के खून से अधिक पवित्र है।''

उपर्युक्त पंक्तियों में अनुशीलन में मुस्लिम सम्प्रदाय के लिए शिक्षा की प्रतिशत महत्ता एवं उपयोगिता का सहजता से अनुमान लगाया जा सकता है। मुस्लिम काल में भारत भूमि में एक पूर्णतया नवीन संस्कृति का प्रचलन हुआ इसलिए इस काल की शिक्षा के उद्देश्य पूर्ववर्ती शिक्षा के उद्देश्य से पूर्णतया भिन्न थे। जो निम्नलिखित है–

1. **इस्लाम धर्म का प्रचार करना**– इस्लाम धर्म के अनुसार प्रत्येक मुसलमान द्वारा इस धर्म का प्रचार प्रसार करना अत्यन्त सबाब (पुण्य का कार्य) माना जाता था।

2. **इस्लामी संस्कृति का प्रसार करना–** इस्लाम धर्म के रीति रिवाज, परम्पराओं, सिद्धान्तों तथा कानूनों को भारतीयों के बीच प्रसारित करना महत्वपूर्ण उद्देश्य था।

3. **मुसलमानों में ज्ञान का प्रसार करना–**मुहम्मद साहब ने ज्ञान को अमृत बताया था और कहा था कि ज्ञान की निजात अर्थात् मुक्ति का साधन है।

4. **मुस्लिम श्रेष्ठता की स्थापना–** मुस्लिम शिक्षा का एक उद्देश्य यह भी था कि हिन्दूओं को मुस्लिम शिक्षा द्वारा प्रभावित करके भारत शासन से सुदृढ़ आधार पर स्थापित किया जाए।

5. **सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति–**मुसलमान पुनर्जन्म में बिल्कुल नहीं तथा परलोक में कम विश्वास करते थे, इसलिए सांसारिक वैधव और ऐश्वर्य प्राप्ति को महत्व देते थे। **6. विशिष्ट नैतिकता का विकास–** इस्लामिक शिक्षा के द्वारा मुसलमानों में उन नैतिक आदर्शों का समावेश किया जाता था जो हिन्दुओं के आदर्शों से पूर्णतया भिन्न थे। **1.8.1 पाठ्यचर्चा और शिक्षण विधि**

मकतबों में बालकों को पढ़ने लिखने और साधारण गणित, अर्जी–नवीसी, अरबी, फारसी और उर्दू की शिक्षा प्रदान की जाती थी। बालकों के लिए उनका समझना महत्वपूर्ण नहीं था। बल्कि उनका शुद्ध उच्चारण करना अनिवार्य था। मदरसों में अरबी, व्याकरण, गद्यसाहित्य, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, कानून, गणित, इतिहास, भूगोल, यूनानी चिकित्सा, कृषि आदि विषय पढ़ाये जाते थे। धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने बालकों को कुरान

हदीस (परम्पराएँ) और फिक का गहन एवं विस्तृत अध्ययन छात्रों से कराया जाता था। शिक्षा का माध्यम, फारसी, अरबी और उर्दू था। मुस्लिम कालीन शिक्षा अधिकांशतः मौखिक प्रदान की जाती थी। इसमें रटने पर बल दिया जाता था। इसके अतिरिक्त व्याख्यान, प्रश्नोत्तर व वाद–विवाद विधियों की सहायता से भी शिक्षण कार्य होता था।

1.8.2 शिक्षक एवं शिक्षार्थी

इस्लामिक शिक्षा व्यवस्था में भी शिक्षकों को सम्मानित पद प्राप्त था। मुल्ला और मौलवी शिक्षा देने का कार्य करते थे। शिक्षकों की शिक्षा भी उच्चकोटि की थी। मुस्लिम शासन में विद्वानों को उच्च स्थान प्राप्त था। अधिकांश मदरसों में छात्रावास की व्यवस्था होती थी। जिससे छात्रों और अध्यापकों में घनिष्ट और मधुर सम्बन्ध बना रहता था।

मुस्लिम शिक्षा का प्रारम्भ बालक **बिस्मिल्लाह रस्म** से करता था। जब बालक 4 वर्ष 4 माह 4 दिन का हो जाता था तो उसे नूतन वस्त्र धारण करवाकर मौलवी साहब के पास ले जाया जाता था। जहाँ मौलवी साहब द्वारा उच्चारित कुरान की आयतों को बालक को दुहराना पड़ता था। जिसके फलस्वरूप इस रस्म की अदायगी हो जाती थी। और बालक की औपचारिक शिक्षा प्रारम्भ हो जाती थी। कभी–कभी बालक द्वारा कुरान की आयतों का उच्चारण न कर पाने की दशा में ''बिस्मिल्लाह'' शब्द कहना ही पर्याप्त माना जाता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी

(क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

6. मुस्लिम कालीन भारत में शिक्षा का पाठ्यक्रम क्या था?

____

____

____

7. मुस्लिम कालीन शिक्षा के उद्देश्य बताइये।

____

____

1.9 ब्रिटिश काल में शिक्षा का विकास (1600 ई. से 1902 ई. तक)

31 दिसम्बर, 1600 ई. को इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ का ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने का आज्ञापत्र मिला। यह कम्पनी मूलतः एक व्यापारिक संस्था थी जो भारत में व्यापार करने आयी थी न कि शासन

करने के लिए। परन्तु परिस्थितिवश ही वह भारत की शासिका बन गयी। इस कम्पनी के साथ कुछ ईसाई मिशनरियों ने धर्म के प्रचार प्रसार के लिए प्रवेश किया। धीरे–धीरे उन्होंने ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार के साथ–साथ अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार–प्रसार का भी मिशन बनाया। फलस्वरूप भारत में ईसाई मिशनरियों के प्रयास से अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना हुई। ब्रिटिश संसद के द्वारा पारित किए गये 1813 के आज्ञापत्र में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत में शिक्षा पर कम से कम एक लाख रूपये प्रति वर्ष व्यय करने का आदेश दिया गया। 1833 के आज्ञापत्र में इस धनराशि में वृद्धि करके ब्रिटिश संसद ने 10 लाख रूपये प्रति वर्ष कर दिया गया।

1835 में लार्ड मैकाले ने पाश्चात्य शिक्षा का समर्थक था उसने भारतीय साहित्य के बारे में लिखा– ''भारत तथा अरबी साहित्य का ज्ञान एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक आलमारी की पुस्तकों से अधिक नहीं है।'' लार्ड मैकाले ने भारत में शिक्षा का उद्देश्य बदलकर अंग्रेजी माध्यम से यूरोपीय साहित्य तथा विज्ञान का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। उसका मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश सरकार और भारतीय जनता के बीच मध्यस्थ करना एवं भारत में भारतीय अंग्रेज पैदा करने का था। मैकाले ने अधोगामी निस्पन्दन सिद्धान्त पर बल देते हुये कहा कि उच्च वर्ग को शिक्षित करने पर समाज के निम्न वर्ग तक शिक्षा स्वतः पहुँच जायेगी।

19 जुलाई, 1854 को 100 अनुच्छेद वाला एक अभिलेख चार्ल्स बुड के घोषणा पत्र के नाम से प्रकाशित हुआ। जिसमें कहा गया कि–''कोई भी अन्य विषय हमारा ध्यान इतना आकर्षित नहीं कर सकता है जितना कि शिक्षा। यह हमारा एक पुनीत कर्तव्य है कि भारत के समस्त नागरिकों को उस नैतिक या भौतिक समृद्धि से युक्त करें जो उपयोगी ज्ञान के सामान्य विस्तारण से फैलती है। तथा जो भारत, इंग्लैण्ड से अपने सम्बन्धों के कारण प्राप्त कर सकता है।''

वुड घोषणा पत्र की प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार थीं– प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा विभाग की स्थापना करना, कलकत्ता, मद्रास और मुम्बई में विश्वविद्यालय की स्थापना की जाय। जन सामान्य के शिक्षा पर बल दिया जाय तथा शिक्षण संस्थाओं को सहायता सरकारी अनुदान दिया जाए, स्त्री शिक्षा रोचक शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु संस्थान खोले जाएं। 1882 में गठित हण्टर आयोग ने अपनी अनुशंसा प्रस्तुत की। इस आयोग के अध्यक्ष सर विलियम हण्टर थे। इसमें 21 सदस्य थे जिनमें 7 भारतीय थे इसलिए इसे भारतीय शिक्षा आयोग भी कहा जाता है। इस आयोग ने प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करने, स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देना, शिक्षण संस्थाओं को आर्थिक अनुदान देने की अनुशंसा की।

1.9.1 प्राच्य पाश्चात्य शिक्षा विवाद

सन् 1813 के आज्ञापत्र की 43वीं धारा ने भारतीय शिक्षा का उत्तरदायित्व कम्पनी पर रखा और उसे उनकी शिक्षा पर प्रतिवर्ष कम से कम एक लाख रूपये की

धनराशि व्यय करने का आदेश दिया। किन्तु 43वीं धारा में इस बात का स्पष्टीकरण नहीं किया गया था कि यह धनराशि किस प्रकार की शिक्षा पर व्यय की जाए– प्राच्य शिक्षा या पाश्चात्य शिक्षा पर? फलस्वरूप इस प्रश्न को लेकर, कम्पनी के कर्मचारियों में शिक्षा स्वरूप के विषय में विवाद उठ खड़ा हुआ। इसी विवाद को ''प्राच्य पाश्चात्य'' शिक्षा विवाद की संज्ञा दी गयी है।

प्राच्यवादी दल में कम्पनी के पुराने और अनुभवी कर्मचारी थे। इसमें सर्वप्रथम स्थान वारेन हेस्टिंग्ज और जानेथन डंकन का था, जिन्होंने 'कलकत्ता मदरसा' और 'बनारस संस्कृत कालेज' की स्थापना करके प्राच्यवादी नीति के पक्ष में अपना मत प्रकट किया। लार्ड मिण्टो भी इसी नीति का पोषक था। प्राच्यवादी शिक्षा के समर्थक भारतीय सभ्यता व संस्कृति से प्रभावित कदापि नहीं थे वरन् उच्च कोटि के कूटनीतिज्ञ थे। उनका विचार था कि भारतीयों को अनेक वर्गों व समूहों में विभाजित कर ही उन पर शासन किया जा सकता है। अतः वे इस देश के निवासियों को अरबी, फारसी और संस्कृत पर आधारित शिक्षा प्रदान करके भारतीयों को विभिन्न धर्मों तथा जातियों पर विभक्त रखना चाहते थे।

पाश्चात्यवादी दल में कम्पनी के कुछ नवयुवक ईसाई पादरी तथा राजा राम मोहन राय जैसे कुछ भारतीय भी सम्मिलित थे। इस दल का न तो कोई संगठित स्वरूप था और न उनका कोई नेता ही था। फिर भी, उन्होंने प्राच्यवादियों की नीति का जमकर विरोध किया। पाश्चात्यवादियों का मत था कि प्राच्य शिक्षा प्रणाली मृतप्राय हो गयी है। उसको पुनर्जीवन प्रदान करना मानव प्रयास से बाहर की निरर्थक विचारों से भरा पड़ा है जो वर्तमान समय में उपयोगी नहीं है। अतः भारतीयों को आधुनिक विश्व से जोड़ने के लिए अंग्रेजी माध्यम से पाश्चात्य ज्ञान और विद्वानों से अवगत कराया जाना अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना उचित होगा कि पाश्चात्यवादियों से भारत में यूरोपीय ज्ञान और विज्ञानों के प्रसार का समर्थन किसी निस्वार्थ भावना से नहीं, वरन् निजी हित की भावना से प्रेरित होकर किया। उन्हें अपने व्यापारिक और प्रशासकीय कार्यों के लिए अंग्रेजी शिक्षित 'बाबू वर्ग' की आवश्यकता थी।

1.10 1902 से 1937 के मध्य ब्रिटिश शासन में शिक्षा का विकास

लार्ड कर्जन ने लार्ड मैकाले की नीति की आलोचना करते हुए शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने के लिए एक अध्ययन किया। लार्ड कर्जन ने शिक्षा के क्षेत्र में शासन की उदासीन नीतियों को परिवर्तित करके शासन को शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय बना दिया। 27 जनवरी, 1902 ई. में सर थॉमस रेले की अध्यक्षता में भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की स्थापना की गयी। भारतीय विश्वविद्यालय आयोग ने भारत

के विभिन्न प्रान्तों का सर्वेक्षण करके विश्वविद्यालयी शिक्षा का गहन अध्ययन कर अपना प्रतिवेदन जून 1902 में प्रस्तुत किया। उस प्रतिवेदन में आयोग ने विश्वविद्यालयों और कालेजों में सुधार करने के निमित्त जिन सुझावों और सिफारिशों को लेखबद्ध किया उनमें से निम्नांकित महत्वपूर्ण है–

1. नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना नहीं की जानी चाहिए। उनकी सीनेट तथा सिंडीकेट का पुनर्गठन किया जाना चाहिए। सिंडीकेट के सदस्यों की संख्या 9 से 13 के बीच होनी चाहिए। सीनेट के सदस्यों की संख्या कम कर देनी चाहिए तथा उनकी अवधि पांच वर्ष होनी चाहिए।
2. वर्तमान विश्वविद्यालयों द्वारा शिक्षण कार्य किया जाना चाहिए।
3. विश्वविद्यालयों और कालेजों के विद्वान अध्यापकों को सीनेट में प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।
4. सम्बद्धता नियमों का कठोरता से पालन किया जाना चाहिए।
5. मैट्रिक परीक्षा का स्तर ऊँचा होना चाहिए तथा इण्टरमीडिएट की कक्षाओं को समाप्त करके स्नातक का पाठ्यक्रम तीन वर्ष का होना चाहिए।
6. प्रत्येक सम्बद्ध कालेज का प्रबन्ध एक संगठित समिति के द्वारा किया जाना चाहिए।
7. स्नातक शिक्षण कार्य, सम्बद्ध कालेजों में और स्नातकोत्तर शिक्षण कार्य विश्वविद्यालय में किया जाना चाहिए।

भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की सिफारिशों के आधार पर सरकार ने 21 मार्च 1904 को भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पारित कर दिया। इस अधिनियम द्वारा भारतीय विश्वविद्यालयों के प्रशासन, अधिकार, कार्य क्षेत्र आदि में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गये।

1. सीनेट के सदस्यों की संख्या को सीमित करके, यह निश्चित कर दिया गया कि उनकी न्यूनतम संख्या 50 एवं अधिकतम संख्या 100 होगी और वे अपने पद पर आजीवन न रहकर सिर्फ 5 वर्ष तक रहेंगे।
2. विश्वविद्यालयों के कार्यक्षेत्र में विस्तार करते हुए परीक्षा संचालन के साथ साथ शिक्षण अधिकार भी प्रदान किये गये।
3. सीनेट में चुने गये सदस्यों की अधिकतम संख्या कलकत्ता, बम्बई व मद्रास विश्वविद्यालयों के लिए 20 निश्चित की गयी तथा अन्य विश्वविद्यालयों के लिए 15 निश्चित की गयी।
4. सिंडीकेटों को कानूनी स्वीकृति प्रदान की गयी और विश्वविद्यालयों के शिक्षकों को उनमें उचित प्रतिनिधित्व दिया गया।
5. विश्वविद्यालयों से मान्यता प्राप्त करने के इच्छुक महाविद्यालयों के लिए नियम कठोर कर दिये गये और सिंडीकेटों को इनका नियमित रूप से निरीक्षण करने का अधिकार दे दिया गया।

6. विश्वविद्यालय सीनेट द्वारा बनाये गये नियमों और संशोधनों व सुधारों को स्वीकृति देने का अधिकार सरकार ने अपने पास रखा। सरकार ने इस सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार सिंडीकेट को दे दिया परन्तु सिंडीकेट द्वारा समय पर नियम न बनाये जाने पर सरकार ने स्वयं नियम बनाने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रख लिया।
7. गर्वनर–जनरल को विश्वविद्यालयों को क्षेत्रीय सीमाओं को निश्चित करने का अधिकार दिया गया।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि लार्ड कर्जन ने अपने अल्प कार्यकाल में भारतीय शिक्षा के सभी अंगों में सुधार करके, उनको सशक्त किया। उसके इस कार्य का गुणगान करते हुए, नूरूल्ला व नायक ने लिखा है– ''जो कार्य, लार्ड कर्जन ने सात वर्ष में किए, उनको करने में किसी अन्य पुरुष को निश्चित रूप से दुगने या तिगुने समय की आवश्यकता पड़ती''। लार्ड कर्जन की बंग भंग नीति के परिणाम स्वरूप स्वदेशी आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन छिड़ गया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा संचालित राष्ट्रीय आन्दोलन का शिक्षा के विकास पर व्यापक प्रभाव पड़ा। भारतीय नेताओं द्वारा भारतीय शिक्षा के विदेशी स्वरूप की आलोचना की गयी और भारतीय संस्कृति पर आधारित शिक्षा व्यवस्था लागू करने की मांग की गयी। एनी बेसेन्ट (1906) ने कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में कहा– ''समस्त देश में राष्ट्रीय शिक्षा का आयोजन किया जाय तो भारत के राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति तथा देश की आवश्यकता की पूर्ति में समर्थ हो सके।''

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने राष्ट्रीय शिक्षा के लिए इन बातों पर तर्क दिया–

1. भारतीयों के नियंत्रण में शिक्षा व्यवस्था लागू हो।
2. मातृभूमि के प्रति प्रेम हो।
3. पश्चिम की दासता का अनुकरण समाप्त हो।
4. पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान का अध्ययन किया जाए।
5. अंग्रेजों के प्रभुत्व की समाप्ति हो।
6. व्यावसायिक शिक्षा का विकास किया जाए।

इस विचारधारा को लेकर देश में राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना होने लगी। आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज आदि ने राष्ट्रीय चरित्र की शिक्षा देने वाले विद्यालय खोलें। इस आन्दोलन ने शान्ति निकेतन, गुरूकुल कांगड़ी, जामिया मिलिया इस्लामिया, गुजरात विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, वीमैन्स यूनिवर्सिटी आदि राष्ट्रीय संस्थाओं को जन्म दिया। गोपाल कृष्ण गोखले ने सन् 1910 से 1911 में केन्द्रीय <u>ध ारा</u> सभा में निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रस्ताव रखा। परन्तु ब्रिटिश सरकार की उदासीनता पर उन्होंने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया। सन् 1911 ई0 में डॉ0 एम0 ई0 सैडलर की अध्यक्षता में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की

नियुक्ति की गयी। जिसमें स्नातक पाठ्यक्रम को तीन वर्षीय बनाने, सीनेट व सिंडीकेट के स्थान पर छोटे आकार की प्रतिनिधि सभा व कार्यकारिणाी परिषद् गठित करने तथा प्रत्येक प्रान्त में माध्यमिक व इण्टरमीडिएट बोर्ड स्थापित करने की सिफारिश की गयी। कला, इन्जीनियरिंग, चिकित्सा, कानून, कृषि, वाणिज्य, शिक्षक प्रशिक्षण आदि विषयों को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में रखने की सिफारिश की गयी। आवासीय विश्वविद्यालय की स्थापना पर बल दिया। सन् 1929 में सर फिलिप हार्टांग की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। हर्टांग समिति ने प्राथमिक शिक्षा को राष्ट्रीय आवश्यकता मानते हुये इसका उत्तरदायित्व शासन पर होने की सिफारिश की। माध्यमिक शिक्षा में बच्चों के अनुत्तीर्ण होने की समस्या पर हर्टांग समिति ने कहा कि प्राथमिक कक्षाओं को उन्नति देनी चाहिए। योग्य विद्यार्थियों को व्यापारिक तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में भेजना चाहिए। इस समिति का कथन था– ''लड़कों को अधिक संख्या में मिडिल स्तर से ही औद्योगिक व्यापारिक दिशा की ओर मोड़ा जाए और उन्हें ऐसी ही संस्थाओं में भेजा जाए।'' अर्थात् माध्यमिक स्तर की शिक्षा के व्यावसायीकरण पर बल दिया। उसने विश्वविद्यालयों में प्रवेश के नियमों को कठोर बनाने की अनुशंसा की। 1936–37 में भारत सरकार ने मेसर्स एबॉट एवं वुड को आमंत्रित किया। इन्होंने अपने प्रतिवेदन में भारत सरकार को सुझाव दिया कि व्यावसायिक एवं औद्योगिक शिक्षा संस्थानों का अधिनियंत्रण स्वत्रंत हो और उसकी सत्ता अन्य परम्परागत विद्यालयों के समान हो। इसके प्रतिवेदन का प्रभाव यह हुआ कि देश में पॉलीटेक्निक संस्थानों का जन्म हुआ। इस प्रतिवेदन में शिशु शिक्षा, नारी शिक्षा, रूचि तथा अभिरूचि के अनुसार शिक्षा पर बल दिया गया।

1.11 सन् 1939 से सन् 1946–47 के प्रान्तीय स्वराज में शिक्षा का विकास

यह शताब्दी औपनिवेशिक शासन का अंतिम काल था। राजनैतिक ढाँचे में परिवर्तन हो रहा है। भारत सरकार अधिनियम 1935 ने द्वैध शासन समाप्त कर प्रान्तीय सरकारों को स्वायत्तता दे दी। ढाँचागत रूकावटें और शिक्षा के वित्तीय प्रबन्ध की कठिनाइयाँ इस अवधि में कम हो गयी। आरम्भ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में निर्वासित प्रान्तीय सरकारों के त्यागपत्र देने और द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होने से ये अपेक्षाएँ पूरी नहीं हो पायी। इस काल में उच्च शिक्षा में काफी विस्तार हुआ। परन्तु माध्यमिक शिक्षा के विस्तार की गति धीमी पड़ गयी। इस विशेषता को स्पष्ट करते हुए नुरूल्ला और नायक ने बताया कि इस समय तक माध्यमिक शिक्षा को केवल चुने हुए व्यक्ति ही प्राप्त करते थे। उसे चुनने का अधिकार आर्थिक था न कि बौद्धिक परन्तु इस काल में प्राथमिक शिक्षा का विस्तार रूक गया।

1.11.1 बुनियादी शिक्षा

2 अक्टूबर, 1937 को गाँधीजी ने 'हरिजन' में एक लेख प्रकाशित किया। यही लेख कालान्तर में बुनियादी शिक्षा योजना का आधार बना। महात्मा गाँधी ने शिक्षा

सम्बन्धी अपने विचारों को निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यक्त किया– ''राष्ट्र के रूप में हम शिक्षा में इतने पिछड़े हुए हैं कि यदि हमने शिक्षा का यह कार्यक्रम धन पर आधारित किया तो हम राष्ट्र के प्रति शिक्षा के कर्तव्य को इस पीढ़ी में एक निश्चित समय में पूर्ण करने की आशा नहीं कर सकते हैं अतः मैनें यह प्रस्ताव करने का साहस किया है कि शिक्षा आत्मनिर्भर होनी चाहिए। शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों के सर्वोत्तम और सर्वांगीण विकास से है। अतः मैं बालक की शिक्षा का प्रारम्भ उसे एक उपयोगी हस्त कौशल सिखाकर और जिस समय से वह अपनी शिक्षा आरम्भ करता है उसी समय से उत्पादन योग्य बनाकर आरम्भ करना चाहता हूँ। यदि राज्य स्कूलों में निर्मित की जाने वाली वस्तुओं को खरीद ले तो प्रत्येक स्कूल को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है।''

उपर्युक्त पंक्तियों के अनुशीलन में वस्तुतः महात्मा गाँधी को बुनियादी शिक्षा की आधारभूत संकल्पनाएं निहित हैं। वर्धा शिक्षा सम्मेलन में विख्यात शिक्षा शास्त्रियों की एक समिति का गठन बेसिक शिक्षा की विस्तृत योजना तैयार करने के लिए किया गया। इस समिति के अध्यक्ष ''जमिया मिलिया दिल्ली'' के तात्कालिक प्राचार्य डॉ0 जाकिर हुसैन थे जिसने अपना पहला प्रतिवेदन दिसम्बर 1937 और दूसरा प्रतिवेदन अप्रैल 1938 में प्रस्तुत किया जिसका प्रमुख प्रस्ताव निम्नलिखित है–

- निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की अवधि सम्पूर्ण राष्ट्र में 7 वर्ष होनी चाहिए।
- शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।
- सम्पूर्ण अवधि में शिक्षा किसी शारीरिक व उत्पादक कार्य पर केन्द्रित होनी चाहिए।
- बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में आधारभूत शिल्प जैसे कताई, बुनाई, काष्ट शिल्प, कृषि, बागवानी, चर्म शिल्प, मातृभाषा, गणित, सामाजिक अध्ययन, सामान्य विज्ञान, कला तथा संगीत को सम्मिलित किया जाए।

यह रूपरेखा प्रान्तीय कांग्रेस सरकारों के लिए नीति निर्धारक बन गयी परन्तु राजनैतिक परिस्थितियों में परिवर्तन और दूसरे विश्व युद्ध के कारण इस दिशा में आगे प्रगति नहीं हुई। भारत सरकार ने 21 जनवरी, सन् 1913 को शिक्षा सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव प्रकाशित करके अपनी शिक्षा नीति को स्पष्टीकरण किया। इस प्रस्ताव में प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च तथा स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किये गये। प्राथमिक स्तर पर निरक्षरता दूर करने, प्राथमिक शिक्षा पर अधिक धन व्यय करने, लेखन–पाठन तथा गणित के साथ–साथ ड्राइंग, गाँव का मानचित्र प्रकृति निरीक्षण तथा शारीरिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित विषय रखे गये। सहायता प्राप्त स्कूलों के स्थान पर स्थानीय निकायों द्वारा विद्यालयों की स्थापना का प्रावधान किया गया। मकतबों तथा पाठशालाओं को उदार सहायता अनुदान देकर अधिकाधिक प्रोत्साहित किया जाये।

1.11.2 सार्जेण्ट रिपोर्ट

1944 में प्रकाशित युद्धोत्तर (द्वितीय विश्वयुद्ध) शिक्षा प्रगति की योजना सार्जेण्ट योजना कहलाती है। इस रिपोर्ट में पूर्व माध्यमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक सभी स्तरों की शिक्षा तथा उनके विभिन्न पहलुओं पर विचार–विमर्श करने के उपरान्त ''सर जॉन सार्जेण्ट'' की अध्यक्षता में सार्जेण्ट योजना प्रस्तुत की गयी। जिसकी मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं–

1. प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दी जानी चाहिये।
2. 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान।
3. हाई स्कूल की शिक्षा दो प्रकार की हो– (1) एकेडेमिक, तथा (2) टेक्निकल।
4. शिशु *महिलाओं में* प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षिकाओं की नियुक्ति आधारभूत शिल्प के माध्यम से शिक्षा दी जाए।
5. विकलांगों के लिए विशिष्ट विद्यालय खोले जाएं।
6. अध्यापकों के लिए अच्छे वेतनमान की सिफारिश।
7. पाठ्यचर्चा का पुर्नसंगठन हो।
8. विश्वविद्यालय में भीड़–भाड़ के अधिकता को प्रभावी ढंग से रोका जाना चाहिए।
9. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की जाय।
10. छात्रों को व्यवसाय का चयन करने में परामर्श देने के लिए जगह–जगह पर सेवा योजनालयों की स्थापना की जाए।
11. राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की स्थापना के लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों में निकट सहयोग हो।
12. विश्वविद्यालयों के प्रवेश नियमों को कठोर बना दिया जाना चाहिए ताकि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले 15 छात्रों में से मात्र 1 छात्र ही विश्वविद्यालय में प्रवेश कर सके।
13. अध्यापकों को प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु संख्या में अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना की जाए।
14. सभी शिक्षकों के लिए अभिनव पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जानी चाहिए।

भारतीय शिक्षा के इतिहास में सार्जेण्ट रिपोर्ट का अपना विशेष स्थान है। इससे पूर्व भारत में आयोगों की नियुक्तियाँ हुई थीं। समितियों का गठन हुआ था, सरकारी प्रस्तावों की घोषणा हुई थी। परन्तु इनमें से एक भी सार्जेण्ट रिपोर्ट के समकक्ष नहीं थी। इस रिपोर्ट में व्यापकता या बुनियादी एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य था, भारतीय शिक्षा का सम्पूर्ण चित्र था और उसके दोषों का निर्भिक वर्णन था।

बोध प्रश्न– टिप्पणी

(क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

8. अधोमुखी निस्पन्दन नीति क्या हैं?

9. सन् 1917 में गठित कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग का अध्यक्ष कौन था?

10. बुनियादी शिक्षा से सम्बन्धित लेख किस पत्रिका में छपा था?

1.12 सारांष

इस इकाई में हमने एक शिक्षा पद्धति के विकास और उसके समाप्त होने पर एक विहंग दृष्टि डाली। साथ ही हमने एक शिक्षा व्यवस्था के आरम्भ होने और उसके निरन्तर विकास का रूप भी देखा। एक सामान्य व्यक्ति के लिए शिक्षा प्राप्त करना एक अत्यन्त उदार और सम्माननीय कार्य है। परन्तु भारत में शिक्षा सभी लोगों को प्राप्त नहीं थी। बल्कि कुछ लोग समझते थे कि शिक्षा प्राप्त करना उनके भाग्य में नहीं है। औपनिवेशिक काल में जो व्यवस्था विकसित हुई वह स्वतंत्रता के बाद भी चलती रही। आधुनिक भारतीय शिक्षा की आधारशिला ब्रिटिश काल में रखी गयी। महात्मा गाँधी के द्वारा प्रतिपादित बेसिक शिक्षा निःसन्देह एक विशुद्ध भारतीय प्रयास है। हम अगली इकाई में यह चर्चा करेंगे कि संवैधानिक शासन लागू होने के बाद भारतीय संविधान में शिक्षा को कहाँ स्थान मिला और जो परिवर्तन हुए उसने भारतीयों की बढ़ती हुई शिक्षा की मांग किस सीमा तक पूरी हुई।

1.13 अभ्यास कार्य

1. मुस्लिम कालीन शिक्षा ने वैदिक कालीन शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित किया?
2. भारत जैसे देश में अंग्रेजी शिक्षा से क्या संभावित परिणाम हो सकते हैं? ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर बताइये।
3. किसी देश की शिक्षा का ढाँचा वहाँ की राजनैतिक व्यवस्था के साथ किस प्रकार घनिष्ठता से जुड़ा होता है? भारतीय स्थिति को ध्यान में

4. 1937 ई. में प्रान्तीय स्वराज ने ब्रिटिश शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित किया?

1.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) ऋग्वेद
   (2) सामवेद
   (3) यजुर्वेद
   (4) अथर्ववेद
2. वाद विवाद विधि
3. वैदिक काल में गुरू और शिष्य के सम्बन्ध मधुर एवं आत्मीय होते थे। वैदिक सामाजिक व्यवस्था में गुरू को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था।
4. बौद्धकाल में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध दानवीर शासकों, स्थानीय जनता के सहयोग एवं अभिभावकों के सहयोग से होता था।
5. बौद्धकाल में विद्यालय का स्वरूप बौद्ध विहार या मठों में परिवर्तित हो गया था।
6. मकतबों में बालकों को साधारण गणित, अर्जी–नवीसी, अरबी, फारसी और उर्दू की शिक्षा प्रदान की जाती थी।
7. इस्लाम धर्म का प्रचार करना, मुसलमानों में ज्ञान का प्रसार करना, मुस्लिम श्रेष्ठता को स्थापित करना, सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति और विशिष्ट नैतिकता का विकास।
8. लार्ड मैकाले के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था केवल उच्च वर्ग के चुने हुए व्यक्तियों के लिए की जाए, जहाँ से वह स्वतः ही धीरे–धीरे छन कर निम्न वर्ग तक पहुँच जायेगी।
9. डॉ0 एम0 ई0 सैडलर
10. हरिजन।

1.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्निहोत्री रवीन्द्र : भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्यायें, रिसर्च पब्लिकेशन्स इन सोशल साइंसेज, दिल्ली।
2. गुप्ता, एस0 पी0 तथा अलका गुप्ता (2005): भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. गुप्ता, एस0 पी0 तथा अलका गुप्ता (2007): भारतीय शिक्षा का तानाबाना, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
4. चौबे, सरयू प्रसाद (1975): भारत में शिक्षा का विकास, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद।

इकाई—02 : शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था : राज्य तथा केन्द्र की भूमिका

संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2.04 शिक्षा का राष्ट्रीयकरण

2.05 शिक्षा के राष्ट्रीयकरण से सम्बन्धित समस्याएँ तथा आंशिक राष्ट्रीयकरण

2.06 भारत में शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था

2.7 शिक्षा व्यवस्था एवं नियन्त्रण में केन्द्र की भूमिकाएँ

2.8 शिक्षा व्यवस्था एवं नियन्त्रण में राज्य सरकारों की भूमिकाएँ

2.09 सारांश

2.10 अभ्यास प्रश्न

2.11 चर्चा के बिन्दु

2.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

शिक्षा व्यक्ति की एक मूलभूत आवश्यकता बन चुकी है। किसी व्यक्ति को समाज में सामान्य रूप से कार्य करने के लिए आवश्यक गुणों के विकास में शिक्षा प्रमुख भूमिका निभाती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य के चरित्र में उसकी प्रारम्भिक अवस्था में भी कई परिवर्तन होते हैं। मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा प्राथमिक रूप से आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य के मस्तिष्क को स्वतन्त्रता एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्राप्त होता है जो हमारे संविधान में निहित धर्म निरपेक्षता, समाजवाद, लोकतन्त्र आदि के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक है। शिक्षा राष्ट्र के आर्थिक विकास में भी सहायक है।

यह राष्ट्र के स्वावलम्बन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा भविष्य के लिए एक महत्वपूर्ण निवेश हैं शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था का यही प्रमुख सिद्धान्त है। प्रस्तुत इकाई में हम भारत में शिक्षा के राष्ट्रीय व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देखेंगे। शिक्षा के राष्ट्रीयकरण तथा उससे सम्बन्धित समस्याओं के बारे में जानेंगे। शिक्षा के आंशिक राष्ट्रीयकरण की चर्चा करेंगे। भारत में शिक्षा के विभिन्न स्तरों को जानेंगे तथा शिक्षा व्यवस्था एवं नियन्त्रण में केन्द्र व राज्य सरकार की भूमिकाओं के बारे में जानेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में बता सकेंगे।
- शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकताओं के बारे मे बता सकेंगे।
- शिक्षा के राष्ट्रीयकरण से उत्पन्न समस्याओं के बारे में चर्चा कर सकेंगे।
- भारत में शिक्षा के विभिन्न स्तरों के बारे में बता सकेंगे।
- शिक्षा व्यवस्था एवं नियन्त्रण में केन्द्र व राज्य सरकारों की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे।

2.3 शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ब्रिटिश काल में विदेशी सरकार अपने लाभ के लिए केवल उच्च वर्ग एवं अपने अधीनस्थ कार्य करने वालों को शिक्षित करने में रूचि लेती थी। उस समय शैक्षिक प्रशासन पूरी तरह से केन्द्रीकृत थी, शैक्षिक नीतियों का निर्धारण, संगठन तथा प्रशासन आदि केन्द्र के द्वारा ही निर्देशित होते थे। राज्य सरकारें इनकी नीतियों का पालन करते थे। सर्वप्रथम 1901 में डायरेक्टर जनरल ऑफ एजुकेशन का पद प्रारम्भ हुआ। 1910 में शिक्षा विभाग स्थापित किया गया। सन् 1921 में सरकार द्वारा शिक्षा का हस्तान्तरण प्रदेश को कर दिया गया। इस प्रकार केन्द्र सरकार शिक्षा की जिम्मेदारी कुछ मन्त्रियों को सौंपकर तटस्थ हो गई।

स्वन्त्रता प्राप्ति से पूर्व छोटे–बड़े स्तर पर राष्ट्रीय शिक्षा के प्रयास किए जाते रहे हैं। सन् 1910 में गोपाल कृष्ण गोखले ने यह प्रस्ताव रखा कि राष्ट्रीय शिक्षा को पूरे राष्ट्र मे निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाकर किया जा सकता है। सन् 1918 में राष्ट्रीय शिक्षा के विकास के लिए महात्मा गाँधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन किया गया। सन् 1937 से राजकीय स्वायत्तता के कारण प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रमों का प्रसार होने लगा। अक्टूबर 1937 में वर्धा के शैक्षिक राष्ट्रीय आन्दोलन में सात वर्ष के लिए प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य करने पर बल दिया गया, यह भी सुझाव दिया गया कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षण मातृभाषा में किया जाना चाहिए तथा शिक्षा का उद्देश्य स्वावलम्बन होना चाहिए। महात्मा गाँधी ने बेसिक शिक्षा प्रणाली का भी सूत्रपात किया।

सन् 1947 में शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय (Ministry of Education and Scientific Research) स्थापित किया गया। सन् 1948 में अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें सार्जेट योजना द्वारा प्रस्तावित कार्यक्रम को

स्वीकार कर लिया गया जिसके अन्तर्गत पूरे राष्ट्र में चालीस वर्षों के अन्दर ही निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को प्राप्त करने का लक्ष्य था।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1953) के प्रतिवेदन के उपरान्त ही केन्द्र सरकार ने विद्यालयी शिक्षा के सुधार पर ध्यान दिया, केन्द्र ने राज्यों के सहयोग से कार्य किया। माध्यमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए केन्द्रीय शिक्षा संस्थान (Central Institute of Education) की स्थापना के साथ कई अन्य संस्थानों की भी स्थापना हुई जैसे– अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् (All India Council for Secondary Education), शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन संस्थान (Institute of Educational and Vocational Guidance, 1954), केन्द्रीय पाठ्य–पुस्तक अनुसंधान केन्द्र (Central Bureau of Text-book Research, 1954) आदि। इन सभी संगठनों को एक साथ मिलाकर सन् 1961 में राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) की स्थापना हुई।

पंचवर्षीय योजनाओं को प्रारम्भ किये जाने के परिणामस्वरूप शैक्षिक नीतियों में परिवर्तन हुआ, प्राथमिक शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा के लिए विशेष अनुदान दिए गए। इन अनुदानों पर नियन्त्रण के साथ–साथ केन्द्र सरकार ने राज्यों में शिक्षा का पर्यवेक्षण शुरू किया। केन्द्र द्वारा शैक्षिक नीतियों का विस्तार किया गया। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय का पुनर्गठन किया गया। सलाहकार परिषदों (Advisory Council) की सहायता द्वारा मंत्रालय कार्य करता था। सलाहकार परिषद् तकनीकि सलाह, वित्तीय व्यवस्था, समन्वयन तथा सहयोग से राज्यों की सहायता करता रहा। बाद में इन कार्यों को शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा देखा जाने लगा। वर्तमान समय में शिक्षा के केन्द्रीय मंत्रालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय नाम दिया गया।

सन् 1949 में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में शिक्षा की 10 + 2 + 3 संरचना को राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति देने का प्रस्ताव रखा। मुदालियर कमीशन ने सार्जेन्ट रिपोर्ट की 8 + 3 + 3 संरचना को स्वीकृति दे दी। सन् 1966 में कोठारी आयोग (1966) ने सम्पूर्ण देश में समान रूप से 10 + 2 + 3 शैक्षिक संरचना को लागू करने का प्रस्ताव रखा। शिक्षा आयोग की संस्तुतियों को ध्यान में रखकर 1988 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई तथा इस बात पर बल दिया गया कि राष्ट्र के प्रत्येक हिस्से में एक समान शैक्षिक संरचना लाने के लिए 10 + 2 + 3 संरचना को स्वीकार करना आवश्यक होगा।

शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था को सुचारू ढंग से चलाने के लिए शिक्षा के एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम (The National Curriculum of Education) का निर्माण किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने भी देश के सभी विद्यालयों के लिए एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम निर्माण करने की घोषणा की। NCERT ने राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों द्वारा प्रस्तावित परिवर्तनों के सम्बन्ध में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए 1975 एवं

1988 में एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा की घोषणा की। सन् 2000 में पुनः एक नए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (National Curriculum fram work-2000) तैयार की गई।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिये।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से करें।

प्र0 1– बेसिक शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात किसके द्वारा किया गया?

____

____

____

प्र0 2– राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा–2000 किसके द्वारा तैयार की गई?

____

____

____

2.04 शिक्षा का राष्ट्रीयकरण (Nationalization of Education)

भारत में समाजवाद के उदय के साथ राष्ट्रीयकरण का प्रारम्भ हुआ, विभिन्न क्षेत्रों जैसे– आर्थिक क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, बैंक, बीमा, विद्युत उत्पादन आदि का राष्ट्रीयकरण किया। इन क्षेत्रों में राष्ट्रीयकरण का अर्थ है कि देश के उद्योग धन्धों, बैंकों, व्यापार, संसाधनों, कार्यक्रमों आदि पर सरकार का नियन्त्रण होगा। शिक्षा के राष्ट्रीयकरण का अर्थ है पूरे राष्ट्र में एक ही शिक्षा प्रणाली का मान्य होना तथा उस पर सरकार का नियन्त्रण होना, पूरे राष्ट्र में एक जैसी शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था तभी हो सकती है जबकि शिक्षा प्रदान करने का अधिकार देश की सरकार का हो।

शिक्षा का राष्ट्रीयकरण होने पर शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों जैसे शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, प्रशासनिक कार्यों, मूल्यांकन, शिक्षा के माध्यम तथा शिक्षा से सम्बन्धित अन्य व्यवस्थाओं की जिम्मेदारी सरकार के पास होती है। राष्ट्र के हित तथा समाज के कल्याण के लिए केन्द्र अथवा राज्य सरकार द्वारा शिक्षा पर नियन्त्रण करना ही शिक्षा का राष्ट्रीयकरण है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता

1. भारत एक प्रजातान्त्रिक देश है। अतः इसे जीवित रखने तथा सफल बनाने के लिए शिक्षा प्रणाली का एक समान होना अत्यन्त आवश्यक है।
2. सम्पूर्ण भारत में शिक्षा प्रणाली की एक समान व्यवस्था न होने के कारण शिक्षा में असमानता बढ़ती जा रही है।

3. देश की एकता व अखण्डता को बनाए रखने के लिए शिक्षा का राष्ट्रीयकरण आवश्यक है।
4. भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में धर्म, जाति तथा भाषा पर आधारित विषमताओं को शिक्षा के राष्ट्रीयकरण द्वारा दूर किया जा सकता है। शिक्षा में विषमता के कारण जातीय, धार्मिक तथा साम्प्रदायिक अलगाव बढ़ता जा रहा है।
5. निजी क्षेत्रों द्वारा शिक्षा का अधिग्रहण होने से देश के आर्थिक विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
6. शिक्षा की एक समान व्यवस्था न होने के कारण स्कूलों तथा कालेजों की स्थापना धर्म, जाति तथा सम्प्रदाय के आधार पर होने लगी है।
7. निजी स्कूल तथा कालेज छात्रों से मनमाना फीस वसूल करते हैं, तथा शिक्षकों का भी शोषण करते हैं।
8. शिक्षा के क्षेत्र में निजी कम्पनियों के हस्तक्षेप के कारण शिक्षा का व्यावसायिकरण तेजी से बढ़ रहा है। इसके कारण शिक्षा मँहगी होती जा रही है।
9. मूल्यांकन प्रक्रिया में असमानता होने के कारण विभिन्न संस्थानों के छात्रों के प्राप्तांकों में विषमता होती है। अतः प्राप्तांको के आधार पर अन्य शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश एवं नौकरी देना आदि वैध नहीं होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रीय तथा सामाजिक हितों की रक्षा के लिए शिक्षा का राष्ट्रीयकरण आवश्यक है, राष्ट्रीय एकता व अखण्डता का अपनाए रखने के लिए शिक्षा का राष्ट्रीयकरण एक अनिवार्य आवश्यकता बन गई है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये स्थान में लिखिये ।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से करें।

प्र0 3– शिक्षा के राष्ट्रीयकरण से क्या तात्पर्य है?

____

____

प्र0 4– भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के लिए शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की क्या आवश्यकता है?

____

____

प्र0 5–शिक्षा के राष्ट्रीयकरण से छात्रों के अभिभावकों एवं शिक्षको को क्या लाभ होगा?

____

____

2.05 शिक्षा के राष्ट्रीयकरण से सम्बन्धित समस्याएँ तथा आंशिक राष्ट्रीयकरण Problems related to the Nationalization of Education and Partial Nationalization)

(क) शिक्षा के राष्ट्रीयकरण से सम्बन्धित समस्याएँ

शिक्षा के राष्ट्रीयकरण से सम्बन्धित समस्याएँ निम्नलिखित हैं–

1. **विद्यालयों के राष्ट्रीयकरण की समस्या–** शिक्षा का राष्ट्रीयकरण होने से सम्पूर्ण राष्ट्र में एक समान शिक्षा की व्यवस्था होगी। विद्यालयों के राष्ट्रीयकरण होने पर केन्द्र या राज्य सरकार का नियन्त्रण व हस्तक्षेप स्कूलों के प्रशासनिक कार्यों एवं आन्तरिक मामलों पर रहेगा। इससे स्कूल के प्रशासन द्वारा शिक्षकों व छात्रों की सुविधानुसार योजनाएँ बनाने व व्यवस्था करने की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाएगी।

2. **राजनैतिक समस्याएँ–** शिक्षा व्यवस्था पर केन्द्र या राज्य सरकार का नियन्त्रण होने पर शिक्षा का राजनीतिकरण हो सकता है। जिस दल की सरकार बनेगी वह शिक्षा के माध्यम से अपने विचारों का प्रचार–प्रसार करने लगेगी। सत्तारूढ़ दल द्वारा बनाई गई कोई शैक्षिक योजना अन्य दल द्वारा सत्ता में आने पर हटा दी जाएगी, इससे शिक्षा व्यवस्था सुचारू रूप से नहीं चल पाएगी।

3. **व्यक्तिगत प्रयासों में कमी–** शिक्षा का राष्ट्रीयकरण होने से शिक्षा के विकास के लिए गैर सरकारी संस्थाओं, मिशनरियों, धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं द्वारा किए जाने वाले प्रयासों में कमी आएगी। परिणामस्वरूप शिक्षा के स्तर में गिरावट आ सकती है।

4. **प्रतिस्पर्धा की समाप्ति–** सरकारी तथा निजी विद्यालयों में शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए प्रतिस्पर्धा चलती रहती है जिससे स्कूलों के क्रियाकलाप उचित ढंग से चलते हैं। शिक्षा का राष्ट्रीयकरण होने से स्कूलों के बीच की प्रतिस्पर्धा कम हो जाएगी जिससे शिक्षा की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

5. **पाठ्यक्रम सम्बन्धी समस्याएँ–** हमारे देश के विभिन्न राज्यों की भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक स्थिति भिन्न–भिन्न है। पाठ्यक्रम बनाते समय विभिन्न भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है। शिक्षा का राष्ट्रीयकरण होने पर पाठ्यक्रम एक समान होगा जिससे स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम नहीं हो सकेगा।

इस प्रकार हमने देखा कि शिक्षा का राष्ट्रीयकरण होने से कई लाभों के साथ–साथ कुछ समस्याएँ भी हैं। शिक्षा के पूर्ण राष्ट्रीयकरण से विभिन्न शैक्षिक समस्याओं का अन्त नहीं हो सकता है। इसके लिए कोई बीच का रास्ता अपनाना बेहतर होगा। इस दृष्टि से शिक्षा का आंशिक या सीमित राष्ट्रीयकरण शैक्षिक समस्याओं को कम करने में लाभकारी हो सकता है।

(ख) शिक्षा के आंशिक राष्ट्रीयकरण के उपाय

शिक्षा के आंशिक राष्ट्रीयकरण में निम्न उपाय किए जा सकते हैं–

1. निजी स्कूलों तथा कालेजों के कुछ मामलों जैसे छात्रों की फीस, छात्रों के प्रवेश, शिक्षकों की भर्ती तथा वेतन आदि पर सरकार का नियन्त्रण हो, इससे निजी स्कूल व कालेज मनमानी नहीं कर सकेंगे तथा शिक्षकों व छात्रों का शोषण नहीं होगा।
2. शिक्षकों को सेवा सम्बन्धी सुरक्षा (Job Security) तथा उपयुक्त वेतन देने का प्रावधान किया गया।
3. शिक्षकों के अधिकारों की रक्षा के लिए अधिनियम बनाए जाने चाहिए।
4. सरकारी तथा गैर–सरकारी स्कूलों तथा कालेजों के शिक्षकों को समान सुविधाएँ मिलनी चाहिए।
5. शिक्षा सम्बन्धी व्ययों का भुगतान राज्य सरकार के कोष द्वारा नियमित रूप से किया जाय।

इस प्रकार शिक्षा के आंशिक राष्ट्रीयकरण से स्कूलों तथा कालेजों पर सरकारी नियन्त्रण होगा तथा विभिन्न गैर–सरकारी संस्थाएँ भी शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने में अपना बहुमूल्य योगदान दे सकती है। शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि होने से राष्ट्र के विकास का मार्ग प्रशस्त होगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिये ।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से करें।

प्र06–विद्यालयों के राष्ट्रीयकरण से क्या समस्या है?

____

प्र07–शिक्षा के राष्ट्रीयकरण से पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्या समस्याएँ आएगी?

____

प्र08–शिक्षा के पूर्ण राष्ट्रीयकरण से उत्पन्न समस्याओं से बचाव के लिए क्या विकल्प अपनाया जा सकता है?

____

2.6 भारत में शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था (National system of Education in India)

शिक्षा विकास की वह प्रक्रिया है जो जीवन पर्यन्त चलती रहती है तथा जिससे मनुष्य अपने आपको आवश्यकतानुसार धीरे–धीरे भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बना लेता है। आज के बादलते हुए सामाजिक, आर्थिक परिवेश में शिक्षा की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। शिक्षा ही व्यक्ति को राष्ट्र की प्रगति में योगदान देने के योग्य बनाती है। प्रगतिशील समाज तथा राष्ट्र के निर्माण के लिए शिक्षा की एक राष्ट्रीय व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था से तात्पर्य यह है कि एक विशेष स्तर तक प्रत्येक छात्र चाहे वह किसी भी स्थान, जाति, धर्म, लिंग तथा विश्वास का हो, समान वर्ग की शिक्षा प्राप्त करें, भारतीय संविधान उन मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है जिन पर राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था की कल्पना की जाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में "समान स्कूल व्यवस्था" (Common School System) के बारे में राय दी गई।

10 + 2 + 3 की नई संरचना को पूरे देश में अपनाया जा रहा है। 10 वर्षो की प्राथमिक शिक्षा को तोड़कर एक बेसिक व्यवस्था को अपनाया गया है जिसमें 5 वर्षों की प्राथमिक शिक्षा, 3 वर्षों की उच्च प्राथमिक शिक्षा तथा 2 वर्षों की माध्यमिक शिक्षा है। इसके उपरान्त 2 वर्षों की उच्च माध्यमिक शिक्षा (+ 2) की व्यवस्था है। तत्पश्चात् तीन वर्षो की उच्च शिक्षा की व्यवस्था है। यही 10 + 2 + 3 की संरचना है। राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में केन्द्रीय प्रश ा ासनिक तन्त्र (Central Administrative System in National System of Education), मानव संसाधन विकास मंत्रालय (Ministry of Human Resource Development) के अन्तगर्त निम्नलिखित प्रश ा ासकीय तन्त्र सम्मिलित हैं–

1. **शिक्षामंत्री (Education Minister)**– संसद के किसी भी सदन में चुने हुए व्यक्ति को शिक्षा मन्त्री बनाया जाता है। प्रधानमंत्री द्वारा शिक्षामंत्री का चुनाव किया जाता है तथा नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। वह मंत्रालय का अध्यक्ष होता है तथा संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। शिक्षा मंत्री की सहायता के लिए एक राज्य मंत्री एवं दो उप–मंत्री होते है। नीतियों के निर्धारण में वह शिक्षा सचिव एवं इन मंत्रियों की सलाह लेता है। विभिन्न सलाहकार परिषदों से सलाह करके निर्णय लेता है।श ाैक्षिक अनुदान वितरण भी शिक्षा मंत्री द्वारा बजट के ढाँचे के अनुसार किया जाता है।

2. **शिक्षा सचिव (The Education Secretary)**– शिक्षा मंत्रालय का प्रशासनिक अध्यक्ष शिक्षा सचिव होता है। इसका कार्य मंत्रालय की विभिन्न क्रियाओं तथा प्रभागों का निरीक्षण एवं नियन्त्रण करना है। शिक्षा सचिव की सहायता के लिए दो संयुक्त

सचिव, तीन शिक्षा सलाहाकार और तीन निर्देशक होते हैं। मंत्रालय के विभिन्न कार्यों की जिम्मेदारी इन्हीं प्रशासनिक अधिकारियों पर होती है।

3. **शिक्षा सलाहकार (The Education Advisor)**– शिक्षा सलाहकार मंत्रालय के विभिन्न विभागों का प्रभारी होता है। ये अपने विभागों के कार्यों का समन्वयन करते है तथा सलाहकार परिषदों के साथ भी मिलकर कार्य करते है। शिक्षा सलाहकारों का प्रमुख कार्य शिक्षा सचिव के माध्यम से शिक्षा मंत्री को सलाह देना है। इस कार्य में वे उप–सचिव (Deputy Secretary), सहायक सचिव (Assistant Secretary) तथा अवर सचिव (Under Secretary) की सहायता लेते हैं।

4. **केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् (The Central Advisory Board of Education: CBA)**– इसकी स्थापना 1920 में हुई थी। सन् 1923 में इसे समाप्त कर दिया गया। सन् 1935 में इसका पुनर्गठन हुआ। इसका मुख्य कार्य राज्य सरकारों को शैक्षिक सलाह देना है। केन्द्र सरकार या राज्य सरकारों द्वारा इस परिषद् के पास भेजे गए प्रश्नों पर सुझाव देती है। इसके अतिरिक्त देश के शैक्षिक विकास से सम्बन्धित सूचनाओं को प्राप्त करना, सुझाव देना, प्राप्त सूचनाओं का परीक्षण एवं मूल्यांकन करना भी इसके कार्य है। यह परिषद भारत सरकार तथा राज्य सरकारों को संस्तुतियाँ भी प्रदान करती है।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् के अध्यक्ष केन्द्रीय शिक्षा मंत्री होते है। राज्य के सभी मंत्री तथा केन्द्र में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा उपमंत्री (Deputy Minister of Education) भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में होते हैं। प्रत्येक राज्य क शिक्षा मंत्री एवं प्रत्येक संधीय राज्यों से एक प्रतिनिधि राज्य सरकारों के प्रतिनिधि के रूप में होते हैं।

5. **केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् (Central Board of Secondary Education)**– यह परिषद् केन्द्रीय स्तर पर उच्च माध्यमिक परीक्षा तथा उच्च माध्यमिक तकनीकि परीक्षा कराता है। संधीय राज्यां में मैट्रिकुलेशन तथा हायर सेकेण्डरी परीक्षाएँ भी कराता है। परीक्षा सुधार तथा सम्बद्ध विद्यालयों के शिक्षकों के लिए अभिविन्यास पाठ्यक्रम (Orientation Course) कराना भी इसकी जिम्मेदारी है। यह माध्यमिक शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने, पाठ्यक्रम, पाठ्य–पुस्तकों, शिक्षण–विधि और मूल्यांकन के सुधार में भी महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

6. **राष्ट्रीय शैक्षण्कि अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (National Council of Eudcational Research and Training- NCERT)**– 1961 में इसकी स्थापना हुई। एन0सी0ई0आर0टी0 ने विद्यालयी शिक्षा में सुधार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए है। पाठ्यक्रम निर्धारण एवं सुधार, पाठ्य–पुस्तकों, शिक्षण सामग्री आदि के निर्माण

तथा परीक्षा सुधार आदि में इसकी प्रभावी भूमिका रही है। शैक्षिक अनुसंधान के क्षेत्र में भी इसकी भूमिका उल्लेखनीय है। इसके द्वारा अनुसंधान के परिणामों को संगठित करके प्रकाशित किया जाता है तथा अनुसंधानकर्त्ताओं को शिक्षण प्रदान करना भी इसका कार्य है। विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में नीतियों एवं कार्यक्रमों के निर्माण एवं क्रियान्वयन में मानव संसाधन विकास मंत्रालय की सहायता भी करता है। केन्द्रीय मंत्रालय, राज्य के शैक्षिक विभागों तथा विश्वविद्यालयों के साथ सम्पर्क बनाए रखता है। शिक्षकों की सेवाकालीन एवं सेवापूर्व प्रशिक्षणों की व्यवस्था करता है। उन्नत शैक्षिक तकनीकी का प्रसार करता है। एन0सी0ई0आर0टी0 के निम्न विभाग एवं इकाईयाँ है–

- पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक शिक्षा विभाग
- अध्यापक शिक्षा विभाग
- शैक्षिक मनोविज्ञान एवं आधार विभाग
- विज्ञान शिक्षा विभाग
- पाठ्य–पुस्तक विभाग
- शिक्षण–सामग्री विभाग
- शैक्षिक सर्वेक्षण एवं आँकड़ों के विश्लेषण की इकाई
- प्रकाशन इकाई
- पुस्तकालय तथा सूचना सेवाएँ

7. **विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grant Commission UGC)**– वर्ष 1953 में राधाकृष्णन् आयोग की संस्तुतियों के आधार पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना हुई। इसका प्रमुख कार्य विश्वविद्यालयों को शैक्षिक अनुदान प्रदान करने के सम्बन्ध में संस्तुतियाँ प्रदान करना है। यह विश्वविद्यालयों को निधि का आबंटन तथा संवितरण (allocation and disbursement) करता है। यू0जी0सी0 में भारत सरकार द्वारा नियुक्त नौ सदस्य होते हैं जिसमें विश्वविद्यालयों के कुलपति, भारत सरकार के प्रतिनिधि, प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री तथा उच्च शैक्षणिक व्यक्ति होते हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कार्य–

- उच्च अध्ययन केन्द्रों की स्थापना करना
- विश्वविद्यालयी शिक्षा के स्तर को उन्नत बनाना एवं समन्वित करना।
- विश्वविद्यायलों तथा महाविद्यालयों को अनुदान का आबंटन तथा संवितरण करना।
- विश्वविद्यायलों में अध्यापक, परीक्षा तथा अनुसंधन के स्तर को निर्धारित करना।

- महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए विभिन्न उपायों के सम्बन्ध में संस्तुति देना तथा क्रियान्वयन सम्बन्धी सुझाव देना।
- नए विश्वविद्यालयों की स्थापना तथा पुराने विश्वविद्यालयों के विस्तार के सम्बन्ध में सुझाव देना।
- एकेडमिक स्टाफ कॉलेजों की स्थापना करना,
- विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के अध्यापकों के वेतन व सेवा शर्तों में सुधार लाना।

राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में सुधार सम्बन्धी सुझाव

भारत की राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना से सम्बन्धित है, जिसमें मूलभूत पाठ्यक्रम के साथ–साथ अन्य कार्य भी सम्मिलित है तथा इसमें पर्याप्त लचीलापन है। राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के लिए पाठ्यक्रम में भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की गतिविधियाँ, संवैधानिक जिम्मेदारियाँ तथा राष्ट्रीय एकता की भावना से सम्बन्धित विषयवस्तु का होना अनिवार्य है। विभिन्न प्रकार के मूल्यों जैसे लोकतान्त्रिक भावना पर्यावरण संरक्षण, समानता, सांस्कृतिक धरोहरों की सुरक्षा भावना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास आदि से सम्बन्धित तथ्य भी सम्मिलित है।

शिक्षा से सम्बन्धित सभी योजनाएँ परम्परागत मूल्यों एवं धर्म निरपेक्ष सिद्धान्तों पर आधारित होती हैं। भारत में शिक्षा के द्वारा सदैव ही शान्ति, अन्य देशों के साथ बेहतर सम्बन्ध तथा एकता पर बल दिया जाता है। भारत की पुरानी परम्परा इस वैश्विक अवधारणा को मजबूत करने का मुख्य कारक हैं। भारतीय शिक्षा के द्वारा नई पीढ़ी को वैश्विक सहयोग एवं शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन प्राप्त होता है। प्रत्येक राज्य को अधिकाधिक लाभप्रद रूप में शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए, विद्यालयी स्तर पर भी इसे लागू किया जाना चाहिए। इनमें भिन्नताएँ हो सकती हैं परन्तु विद्यालयी स्तर पर भी इसे दृष्टिगत होना चाहिए, राज्यों द्वारा प्रतिस्पर्धात्मक संरचना वाली शिक्षा को अपनाना होगा जिससे शिक्षा की गुणक्ता में सुधार हो सके।

शिक्षा की प्रत्येक अवस्था मे अधिगम के निम्नतम स्तर की प्राप्ति पर भी बल देना होगा। छात्रों में देश के भिन्न–भिन्न स्थानों पर रहने वाले लोगों के सामाजिक संरचना एवं सस्कृति को समझने की क्षमता उत्पन्न करने के लिए विशेष गतिविधियाँ अपनानी होगी। भाषा सम्बन्धी जुड़ाव को विकसित करने के लिए अच्छी पुस्तको का अन्य भाषाओं में अनुवाद तथा बहुभाषी शब्द कोष आदि का निर्माण प्रभावी होगा। उच्च तथा तकनीकी शिक्षा में प्रवेश के लिए सभी क्षेत्रों तथा राज्यों के छात्रों को समान अवसर प्रदान करके अन्तर क्षेत्रीय गतिशीलता को बढ़ाया जा सकता है।

शोध (अनुसंधान) के क्षेत्रों, विभिन्न संस्थानों के मध्य सुदृढ़ नेटवर्क व्यवस्था उत्पन्न करने के लिए विज्ञान तथा तकनीकी आदि के क्षेत्रों में विशेष साधनों को अपनाना होगा। बिना किसी भेदभाव के सभी पाठ्यकमों को समान महत्व देना होगा। पाठ्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए उसमें समय–समय पर परिवर्तन होते रहना चाहिए। विभिन्न सूचनाएँ भी अद्यतन होनी चाहिए।

सर्व शिक्षा अभियान, प्रौढ़ शिक्षा तथा भिन्नताओं को कम करने के लिए बनाई जाने वाली योजनाओं के कुशल व प्रभावी क्रियान्वयन की जिम्मेदारी सम्पूर्ण राष्ट्र को लेनी होगी। राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था द्वारा ऑल इण्डिया काउन्सिल फॉर टेक्नीकल एजुकेशन, इण्डियन काउन्सिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च तथा इण्डियन मेडिकल काउन्सिल आदि को रूपरेखा प्राप्त होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिये ।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से करें।

प्र0 9– सर्वप्रथम ''समान स्कूल व्यवस्था'' के बारे में किस राष्ट्रीय नीति द्वारा राय दी गई?

____

____

____

प्र0 10– शिक्षा की 10 + 2 + 3 संरचना से क्या तात्पर्य है?

____

____

____

प्र0 11–शिक्षा के द्वारा अन्र्त क्षेत्रीय गतिशीलता को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है?

____

____

____

2.7 शिक्षा व्यवस्था एवं नियन्त्रण में केन्द्र सरकार की भूमिकाएँ (Role of Central Government in Organization and Control of Education)

1976 के संविधान संशोधन के उपरान्त शिक्षा को समवर्ती सूची मे लाना एक महत्वपूर्ण कदम था अतः केन्द्र तथा राज्य के मध्य शिक्षा के क्षेत्र में लेन–देन की नीतियाँ आवश्यक हो गई। शिक्षा सम्बन्धी कुछ व्यवस्थाऍ व नियन्त्रण केन्द्र सरकार के हाथ में है तथा अन्य नियन्त्रण व व्यवस्थाऍ समवर्ती सूची में रखी गई हैं जिसके नियन्त्रण व व्यवस्थापन की जिम्मदारी केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार दोनों के पास है। केन्द्र सरकार के स्कूल नियन्त्रण वाले चार क्षेत्र निम्न हैं जिनमें राज्य सरकारों का कोई नियन्त्रण नहीं होगा –

- अन्य देशों के साथ शैक्षिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध।
- विचारों तथा सूचनाओं का संग्रहण एवं प्रसारण।
- केन्द्र तथा राज्य सरकारों के शैक्षिक गतिविधियों के मध्य समन्वय स्थापित करना।
- संघ शासित प्रदेशों में शिक्षा।

इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों को समवर्ती सूची (Concurrent list) में रखा गया है, जिसमें सभी राज्य सरकारों को स्वयं पहल करके एवं केन्द्र सरकार के एजेन्ट के रूप में दोनों प्रकार से शैक्षिक कार्यक्रमों में भागीदारी निभानी होगी। ये प्रमुख क्षेत्र निम्न है–

- वैज्ञानिक शोध
- तकनीकी शिक्षा।
- हिन्दी की उन्नति तथा विकास।
- राष्ट्रीय कला के साथ–साथ राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण तथा विकास।
- प्राचीन भारतीय संस्कृति को सामान्य रूप से बढ़ावा देना तथा संस्कृत के अध्ययन को विशेष रूप से बढ़ावा देना।
- विकलांगों की शिक्षा।
- शैक्षिक अनुसंधान की प्रगति एवं समन्वयन।
- अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक रूचियों का विशेष रूप से जिम्मेदारी उठाना।
- समाज के कमजोर वर्ग जैसे– अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोगों के शिक्षा की जिम्मेदारियाँ।
- भावात्मक एकता एवं अखण्डता को बढ़ाने वाले विशिष्ट एवं उपयुक्त कार्यक्रमों के द्वारा राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने की जिम्मेदारियाँ।

- छात्रों की प्रतिभा को बढ़ाने के उद्देश्य से छात्रवृत्ति प्रदान करना विशेषतः विश्वविद्यालयी स्तर पर इसकी व्यवस्था करना।
- नवीनतम् व्यावसायिक एवं तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान करना।
- शिक्षा के केन्द्रीय संस्थानों या एजेन्सियों की देख रेख करना।
- 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों की निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करना।

उपरोक्त क्षेत्रों मे से जिनका सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय पहचान से जुड़ा हुआ है, उन मामलों की समस्त जिम्मेदारी भारत सरकार की होती है। योजना आयोग की नई योजनाएँ जिसे अपनाया जा रहा है। उसके अनुसार शिक्षा सम्बन्धी मामलों में निर्णय लेने का अधिकार अधिकांशतः राज्य सरकारों के स्थान पर केन्द्र सरकारों की होगी। राष्ट्रीय लक्ष्यों, प्रमुखताओ का निर्धारण, विकास के विभिन्न सेक्टरों के संसाधनों का बॅटवारा प्रत्येक राज्य को केन्द्र सरकार द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं आदि से सम्बन्धित निर्णय योजना आयोगा द्वारा लिए जाते हैं।

संविधान के अनुच्छेद–246 की सातवीं अनुसूची में शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र और राज्यों के मध्य सम्बन्धों का विवरण है। संविधान के अनुसार केन्द्रीय सूची में शिक्षा से सम्बन्धित निम्न प्रविष्टियाँ हैं–

सूची I- केन्द्रीय सूची (List I- Union List)

प्रविष्टि 63 (Entry- 63)- इसके अंतगर्त संसद द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित की गई संस्थाएँ एवं विश्वविद्यालय आते हैं;

प्रविष्टि 64 (Entry- 64)- इसके अंतगर्त संसद द्वारा कानून के माध्यम से राष्ट्रीय महत्व की घोषित की गई वैज्ञानिक एवं तकनीकि संस्थाएँ आती है जो केन्द्र सरकार द्वारा पूरी तरह या आंशि ा क रूप से वित्त प्राप्त करती है।

प्रविष्टि 65 (Entry- 65)- इसके अंतगर्त वे केन्द्रीय अभिकरण एवं संस्थाएँ आती है जो व्यावसायिक एवं तकनीकि प्रशिक्षण प्रदान करती हैं या जो विशेष अध्ययन या शोध के लिए हों,

प्रविष्टि 66 (Entry- 66)- उच्च शिक्षा या शोध संस्थानों तथा वैज्ञानिक व तकनीकि संस्थानों में समन्वय एवं स्तर का निर्धारण सम्मिलित है।

अनुच्छेद 344 (Article- 344)

1. केन्द्र के शासकीय उपयोग के लिए हिन्दी भाषा।
2. केन्द्र के सभी या कुछ शासकीय उद्देश्यों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर रोक।

3. अनुच्छेद 348 में वर्णित सभी या किसी उद्देश्य के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली भाषाएँ।
4. संस्तुति देते समय आयोग भारत के औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक विकास कार्यों तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों के हितों का सम्मान करेगा।

अनुच्छेद 351 (Article- 351)

हिन्दी भाषा की उन्नति करना केन्द्र का कार्य होगा। हिन्दी का विकास इस प्रकार हो कि यह भारत की भिन्न–भिन्न संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। अन्य भाषाओं विशेषकर संस्कृत भाषा से शब्द लेकर हिन्दी का संवर्धन कर सके। आठवीं अनुसूची में वर्णित भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त इसके उद्भव, रूप, शैलियों और अभिव्यक्ति आदि में बिना हस्तक्षेप किए आत्मसात हो सके। शिक्षा में केन्द्रीय सरकार की भूमिका नेतृत्व प्रदान करने, शिक्षा के विस्तार और सुधार में राज्यों तथा गैर–सरकारी संस्थाओं की सहायता करने, उच्च शिक्षा, अनुसंधान, वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा के स्तर को बनाए रखने, संघीय भू–भागों में शिक्षा का प्रशासन, विस्तार और सुधार करने आदि तक सीमित है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा देखे जाने वाले विशेष महत्व के क्षेत्र निम्न हैं–

- विद्यालयी शिक्षा
- तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा
- शारीरिक शिक्षा
- उच्च शिक्षा
- शैक्षिक अनुसंधान
- भाषाएँ
- यूनेस्कों के साथ सम्बन्ध
- छात्रवृत्तियाँ
- विनिमय कार्यक्रम (Exchange Programme)
- संग्रहालय तथा पुस्तकालय
- पुरातत्व विज्ञान
- सांस्कृतिक मामले
- समाज शिक्षा
- युवा कल्याण

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिये।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से करें।

प्र012– संविधान में शिक्षा के किस सूची में रखा गया है?

____

____

____

.प्र013– शिक्षा के दो ऐसे क्षेत्रों के नाम बताइए जिसमें केवल केन्द्र सरकार का ही नियन्त्रण हो?

____

____

____

प्र014–समवर्ती सूची वाले शिक्षा के कोई दो क्षेत्र बताइए?

____

____

____

2.8 शिक्षा व्यवस्था एवं नियन्त्रण में राज्य सरकारों की भूमिकाएँ (Role of State Governments in Organization and Control of Education)

प्रारम्भ में राज्य सरकारों द्वारा जन–अनुदेशन के निदेशकों तथा निरीक्षकों (Directors and supervisors of Public instruction) की नियुक्ति होती थी, उनका कार्य विद्यालयों को मान्यता प्रदान करने, निरीक्षण करने तथा अनुदान की संस्तुति तक सीमित था। 1921 में मान्टफोर्ड सुधार के साथ ही शिक्षा राज्य सरकारों को हस्तान्तरित कर दी गई। इसके उपरान्त भारतीय संविधान द्वारा कुछ केन्द्रीय विश्वविद्यालयों जैसे– दिल्ली विश्वविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय आदि केन्द्रीय सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त विज्ञान और तकनीकी संस्थाएँ, व्यावसायिक शिक्षा संस्थाएँ, वैज्ञानिक अनुसंधान आदि केन्द्र के अधिकार क्षेत्र में रखी गई। अन्य सभी स्तरों पर शिक्षा का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों दे दिया गया। संविधान के 45 वे अनुच्छेद में राज्यों को यह निर्देश है कि संविधान के लागू होने के प चात 10 वर्ष अवधि में सभी बच्चों को उनके चौदह वर्ष की आयु के होने तक निः शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने की व्यवस्था करें। विभिन्न केन्द्रीय परिषदों तथा समितियों में राज्यों के प्रतिनिधि भी होते हैं।

राज्य का शैक्षिक प्रशासन (Educational Administration of State)

राज्य के शैक्षिक प्रशासन में शिक्षा विभाग आता है जिसका अध्यक्ष शिक्षा मंत्री होता है। उसकी नियुक्ति मुख्यमंत्री द्वारा की जाती है तथा वह विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है। शिक्षा मंत्री की सहायता के लिए शिक्षा सचिव एवं शिक्षा निदेशक होते है।

शिक्षा विभाग– शिक्षा विभाग के अधिकार क्षेत्र में निम्न कार्य सम्मिलित हैं– 1.

शैक्षिक नीतियों, नियमावली आदि का निर्माण एवं स्तर निर्धारण

2. सरकार द्वारा प्रस्तावित विद्यालयों तथा महाविद्यालयों को चलाना
3. निजी शैक्षिक संस्थाओं पर नियन्त्रण रखना
4. विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में शैक्षिक कार्यों का निरीक्षण एवं मूल्यांकन
5. राज्यों के शैक्षिक कार्यक्रमों का समन्वयन करना
6. परामर्श एवं सूचनाओं का आदान–प्रदान करना
7. शैक्षिक नियोजन एवं शोध के लिए नेतृत्व प्रदान करना।

शिक्षा निदेशालय (The Directorate of Education)–

शिक्षा निदेशालय का कार्य शैक्षिक नीतियों का क्रियान्वयन करना होता है। इसके प्रमुख कार्य निम्न हैं–

1. राज्य की शैक्षिक संस्थाओं का निरीक्षण, पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण रखना
2. शैक्षिक नीतियों से सम्बन्धित प्रस्तावों को सचिव के समक्ष रखना
3. विभिन्न शैक्षिक नीतियों को क्रियान्वित करना
4. शैक्षिक दशाओं एवं आवश्यकताओं से सरकार को अवगत कराना
5. सरकारी अनुदान के शैक्षिक संस्थाओं में वितरण करना
6. शैक्षिक संस्थाओं एवं सचिवालय को पराम र्ा देना

शिक्षा निदेशक (The Director of Education)

शिक्षा निदेशालय का प्रमुख अधिकारी शिक्षा निदेशक होता है। सम्पूर्ण राज्य के शैक्षिक प्रशासन की जिम्मेदारी उसके हाथ में होती है। उसकी सहायता के लिए अनेक उपनिदेशक एवं सहायक निदेशक होते हैं। शिक्षा निदेशक के कार्य होते हैं–

1. शिक्षा से सम्बन्धित सरकारी अधिकारियों, निरीक्षकों, सरकारी संस्थाओं के शिक्षकों आदि के कार्यों का पर्यवेक्षण (Supervision) करना।
2. राज्य के विश्वविद्यालयों, स्थानीय संस्थाओं आदि के लिए अनुदान का निर्धारण एंव वितरण
3. माध्यमिक शिक्षा के राज्य परिषद् के अध्यक्ष के रूप में कार्य करना

4. राज्य के विश्वविद्यालयों के कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य के रूप में कार्य करना
5. सम्पूर्ण राज्य की शिक्षा का प्रशासन देखना
6. शैक्षिक नीतियों एवं प्रस्तावों को तैयार करना तथा शिक्षा मंत्री की अनुमति के लिए सचिव के सामने रखना।

शिक्षा सचिव (Education Secretary)

शैक्षिक नीतियों के निर्माण का कार्य शिक्षा सचिव करता है। वह शिक्षा मंत्री तथा निदेशक के मध्य की कड़ी के रूप में कार्य करता है। वह सरकार की तरफ से विभिन्न शैक्षिक नीतियों के सम्बन्ध में आज्ञा भी ज्ञापित करता है।

निरीक्षक (Inspector)

जिला निरीक्षकों या जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा राज्य के विद्यालयों का निरीक्षण किया जाता है। सरकारी विद्यालयों में प्रधानाचार्यों के कार्यों का निरीक्षक द्वारा पर्यवेक्षण किया जाता है। विद्यालय के प्रधानाचार्य प्रशासन एवं अनुशासन के लिए निरीक्षक के प्रति जवाबदेह होते हैं। गैर–सरकारी विद्यालयों में निरीक्षक का कार्य केवल अनुदान का निर्धारण एवं उसकी संस्तुति करना है।

स्थानीय निकाय (Local Bodies)

1883 में लार्ड रिपन द्वारा स्थानीय स्व–शासन एक्ट (Local Self Government Act) पारित किया गया। इसके उपरान्त प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेदारी स्थानीय निकायों को दे दी गई। शहरी क्षेत्रों में नगरपालिका तथा ग्रामीण क्षेत्रों में जिला परिषदों को प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित कार्य देखने का दायित्व सौंपा गया। स्थानीय निकायों के निम्न कार्य हैं–

1. शिक्षा से सम्बन्धित पंचवर्षीय योजनाओं का क्रियान्वयन
2. अपने क्षेत्र के प्राथमिक शिक्षा का संगठन तथा प्रबन्धन करना। कुछ राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश में नगरपालिकाएँ माध्यमिक विद्यालय भी चलाती हैं
3. प्राथमिक शिक्षा के विकास का प्रयास करना
4. नए प्राथमिक विद्यालय खोलना
5. प्राथमिक विद्यालयों को भौतिक संसाधन उपलब्ध कराना
6. राज्य सरकार के विशेष निर्देशों एवं निर्धारित नियमों को लागू करना
7. शैक्षिक सर्वेक्षण करना तथा उसका रिकार्ड रखना
8. चयन समिति द्वारा विद्यालय के स्टॉफ की नियुक्ति करना

9. नगर–पालिकाओं और जिला–परिषदों में चयनित सदस्यों की एक विद्यालय परिषद् (School Board) होती है। ये समितियाँ अपने क्षेत्रों में शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान करने तथा उनकी देख–रेख का कार्य सम्भालती हैं।
10. बजट का निर्धारण नगर पालिका या जिला परिषदों द्वारा किया जाता है।
11. कुछ बड़ी नगर–पालिकाएँ जैसे– उत्तर प्रदेश, मुम्बई आदि अपने स्वयं के शिक्षा अधिकारियों एवं निरीक्षक स्टाफ की नियुक्ति करते हैं। जो प्राथमिक विद्यालयों का निरीक्षण करते हैं।

पिछली इकाई में दिए गए समवर्ती सूची वाले क्षेत्रों में केन्द्र सरकार व राज्य सरकार दोनों की भूमिकाएँ होती हैं। इनमें राज्य सरकारें केन्द्र सरकार के एजेन्ट के रूप में कार्य करती हैं।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी– (क) अपना उत्तर नीचे दिये स्थान में लिखिये ।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से करें।

प्र015– राज्य की शैक्षिक नीतियों एवं नियमों का निर्धारण जिसके द्वारा किया जाता है?

____

____

____

प्र016– शैक्षिक नीतियों के क्रियान्वयन का निरीक्षण किसके द्वारा किया जाता है?

____

____

प्र017– शिक्षा मंत्री तथा शिक्षा निदेशक के बीच की कड़ी के रूप में कौन कार्य करता है?

____

____

____

प्र018– सरकारी विद्यालयों में प्रधानाचार्य के कार्यों का पर्यवेक्षण किसके द्वारा किया जाता है?

____

____

____

2.9 सारांश

शिक्षा राष्ट्र की प्रगति एवं आर्थिक विकास के साथ–साथ स्वावलम्बन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा भविष्य के लिए महत्वपूर्ण निवेश है। शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था का यही सिद्धान्त है। सन् 1949 में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में शिक्षा की 10 + 2 + 3 संरचना को राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति देने का प्रस्ताव रखा। मुदालियर कमीशन, कोठारी कमीशन, राष्ट्रीय शिक्षा आयोग आदि में भी शिक्षा की इस संरचना को स्वीकार करने पर बल दिया गया। वर्तमान में 10 + 2 + 3 की इसी संरचना को पूरे देश में अपनाया जा रहा है। इसमें पाँच वर्षों की प्राथमिक शिक्षा, तीन वर्षों की उच्च प्राथमिक शिक्षा, दो वर्षो की माध्यमिक शिक्षा (10 वर्ष) तथा दो वर्षो की उच्च माध्यमिक शिक्षा (+ 2) होगी। तत्पश्चात् तीन वर्षों की उच्च शिक्षा होगी। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (National Curriculum framework) तैयार की गई। शिक्षा के राष्ट्रीयकरण का अर्थ है कि सम्पूर्ण राष्ट्र में एक समान शिक्षा प्रणाली का मान्य होना तथा उस पर सरकार का नियन्त्रण होना है। भारत जैसे प्रजातान्त्रिक एवं धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के लिए शिक्षा का राष्ट्रीयकरण होना आवश्यक है, परन्तु शिक्षा के पूर्ण राष्ट्रीयकरण से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को देखते हुए आंशिक राष्ट्रीयकरण बेहतर उपाय हो सकता है। 1976 के संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची में रखा गया है। शिक्षा के चार क्षेत्रों पर केवल केन्द्र सरकार का ही नियन्त्रण होगा जबकि अन्य क्षेत्रों में केन्द्र तथा राज्य सरकारों का दायित्व एवं नियन्त्रण होगा।

2.10 अभ्यास प्रश्न

1. शिक्षा के राष्ट्रीय व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की क्या आवश्यकता है?
3. भारत में शिक्षा के राष्ट्रीयकरण से उत्पन्न समस्याओं का वर्णन कीजिए।
4. शिक्षा के आंशिक राष्ट्रीयकरण से क्या तात्पर्य है?
5. भारत की राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
6. भारत में शिक्षा की व्यवस्था एवं नियन्त्रण में राज्य एवं केन्द्र सरकार की भूमिकाओं का वर्णन कीजिए।
7. समवर्ती सूची में निहित शिक्षा के कोई दस क्षेत्र बताइए।

2.11 चर्चा के बिन्दु

1. छात्राध्यापक आपस में भारत की राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के गुण–दोषों की चर्चा करेंगे।

2. छात्राध्यापक आपस में शिक्षा के क्षेत्र में राज्य व केन्द्र सरकार की भूमिकाओं को बढ़ाने या घटाने से सम्बन्धित चर्चा करेंगे।

2.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. बेसिक शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात महात्मा गाँधी किया गया।
2. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा 2000 एन सी ई आर टी द्वारा तैयार की गई।
3. शिक्षा के राष्ट्रीयकरण का अर्थ है पूरे राष्ट्र में एक ही शिक्षा प्रणाली का मान्य होना तथा उस पर सरकार का नियन्त्रण होना है।
4. भारत जैसे धर्म निरपेक्ष राष्ट्र में धर्म जाति तथा सम्प्रदाय पर आधारित विषमताओं को शिक्षा के राष्ट्रीयकरण द्वारा दूर किया जा सकता है।
5. शिक्षा के राष्ट्रीकरण होने से निजी विद्यालयों तथा महाविद्यालयों द्वारा छात्रों के अभिभावकों से मनमाने फीस की वसूली तथा शिक्षकों पर हो रहे शोषण पर रोक लगेगी।
6. विद्यालयों के राष्ट्रीयकरण से केन्द्र व राज्य सरकार का नियन्त्रण विद्यालयों के प्रशासनिक कार्यों एवं आन्तरिक मामलों में रहेगा जिससे उनकी स्वतन्त्रता बाधित होगी।
7. शिक्षा के राष्ट्रीयकरण से पाठ्यक्रम स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं हो सकेगा।
8. शिक्षा के पूर्ण राष्ट्रीयकरण से उत्पन्न समस्याओं से बचने के लिए आंशिक या सीमित राष्ट्रीयकरण का विकल्प अपनाया जा सकता है।
9. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 द्वारा सर्वप्रथम समान स्कूल व्यवस्था की राय दी गई।
10. शिक्षा की $10+2+3$ संरचना में 5 वर्षों की प्राथमिक शिक्षा, 3 वर्षों की उच्च प्राथमिक शिक्षा, 2 वर्षों की माध्यमिक शिक्षा (10 वर्ष) होगी, इसके उपरान्त 2 वर्षों की उच्च माध्यमिक शिक्षा एवं तीन वर्षों की उच्च शिक्षा होगी।
11. उच्च तथा तकनीकी शिक्षा में प्रवेश के लिए सभी क्षेत्रों तथा राज्यों के छात्रों को समान अवसर प्रदान कर अन्तर क्षेत्रीय गतिशीलता को बढ़ाया जा सकता है।
12. संविधान में शिक्षा को समवर्ती सूची में रखा गया है।
13. शिक्षा के दो क्षेत्र जिसमें केवल केन्द्र सरकार का ही नियन्त्रण है, निम्न है–
    (i) अन्य देशों के साथ शैक्षिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध।

(ii) संघ शासित प्रदेशों में शिक्षा।

14. समवर्ती सूची वाले दो क्षेत्र निम्न हैं–

(i) वैज्ञानिक शोध

(ii) तकनीकी शिक्षा

15. राज्य की शैक्षिक नीतियों एवं नियमों का निर्धारण शिक्षा विभाग द्वारा किया जाता है।

16. शैक्षिक नीतियों के क्रियान्वयन का निरीक्षण शिक्षा निदेशालय द्वारा किया जाता है।

17. शिक्षा मंत्री तथा शिक्षा निदेशक के बीच की कड़ी के रूप में शिक्षा सचिव कार्य करता है।

18. सरकारी विद्यालयों में प्रधानाचार्य के कार्यों का पर्यवेक्षण निरीक्षक (Inspector) या जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा किया जाता है।

2.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- **अग्रवाल, जे0 सी0 (2009) :** शैक्षिक प्रौद्योगिकी तथा प्रबन्धन के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- **भटनागर, आर0 पी0 एवं अग्रवाल, विद्या (2005) :** शैक्षिक प्रशासन, लायल बुक डिपो, मेरठ।
- **आभा (2008) :** शिक्षा के सिद्धान्त व समाज, आलोक प्रकाशन, लखनऊ।
- **उपाध्याय, प्रतिभा (2013) :** भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- **ओड, एल0 के0 (2008) :** शैक्षिक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- **मंगल, एस0 के0 (2012) :** इशेन्शियल्स ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, पी0एच0आई0 लर्निंग0, प्रा0 लि0, नई दिल्ली।
- **शर्मा, आर0 ए0 (2003) :** शिक्षण तकनीकी, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
- **सिंह, योगेश कुमार (2007) :** शैक्षिक तकनीकी, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

इकाई– 3 शिक्षा के संवैधानिक प्रावधान

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भारतीय संविधान की विशेषताएँ

- 3.3.1 संविधान का विस्तृत आकार
- 3.3.2 संविधान की प्रस्तावना
- 3.3.3 संसदीय तथा अध्यक्षीय प्रणाली
- 3.3.4 संसदीय सर्वोच्चता और न्यायिक सर्वोच्चता का समन्वय
- 3.3.5 स्वतंत्र न्यायपालिका
- 3.3.6 एकल नागरिकता एवं सार्वजनिक मताधिकार
- 3.3.7 मूल अधिकार
- 3.3.8 राज्य की नीति के निदेशक तत्व
- 3.3.9 मूल कर्तव्य

3.4 भारतीय संविधान और शिक्षा

- 3.4.1 पूर्व प्राथमिक शिक्षा
- 3.4.2 निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा
- 3.4.3 अल्पसंख्यकों की शिक्षा
- 3.4.4 अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं दुर्बल वर्गों की शिक्षा
- 3.4.5 धार्मिक शिक्षा की स्वतंत्रता
- 3.4.6 स्त्रियों तथा पिछड़े वर्गों की शिक्षा
- 3.4.7 हिन्दी भाषा का विकास तथा मातृभाषा में शिक्षा
- 3.4.8 शैक्षिक अवसरों की समानता
- 3.4.9 कृषि शिक्षा

3.5 केन्द्रीय सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची में सम्मिलित शैक्षिक अधिकार

3.6 केन्द्र सरकार के शैक्षिक उत्तरदायित्व

3.7 राज्य सरकार के शैक्षिक उत्तरदायित्व

3.8 सारांश

3.9 अभ्यास कार्य

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

सन् 1947 में भारत को अंग्रेजी शासन में स्वतंत्रता मिली परन्तु प्रशासन का साम्राज्यवादी ढाँचा तो सन् 1937 से ही टूटना आरम्भ हो गया था जब निर्वाचित सरकारों को प्रान्तीय स्वराज की स्वतंत्रता दी गयी। सन् 1937 से सन् 1939 के बीच की सीमित अवधि में निर्वाचित सरकारों ने शिक्षा के क्षेत्र में अनेक दूरगामी निर्णय लिये। महात्मा गाँधी के बुनियादी प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी विचारों को डॉ0 जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में शिक्षाविद्ों ने विस्तार एवं गहनपूर्वक अध्ययन किया फलस्वरूप 'बुनियादी शिक्षा' या 'नई तालीम' के सम्प्रत्यय का जन्म हुआ और स्वतंत्र भारत बुनियादी शिक्षा (नई तालीम) के विचार ही शिक्षा के पुनर्गठन के आधार बनें। 26 जनवरी, 1956 को भारत की जनता ने अपना संविधान स्वयं को निष्ठापूर्वक अर्पित किया। इस संविधान में वयस्क मताधिकार, स्वतंत्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय पर विशेष बल दिया गया है। इसी उद्देश्यों की पूर्ति हेतु संविधान में शैक्षिक विकास के लिए कतिपय प्रावधान किये गये। शिक्षा के संवैधानिक प्रावधान पर चर्चा करते समय संविधान में वर्णित शैक्षिक प्रावधानों पर ध्यान केन्द्रित करेंगे और इस इकाई के निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद शिक्षार्थी इस योग्य हो जायेंगे कि–

- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय सरकार द्वारा शिक्षा के विकास के लिए किए गये शैक्षिक प्रयासों को बता सकेंगे,
- भारतीय संविधान की मूल भावना का विश्लेषण कर सकेंगे,
- भारतीय संविधान में वर्णित शैक्षिक प्रावधानों की व्याख्या कर सकेंगे, तथा
- भारतीय शिक्षा के विकास में राज्य की भूमिका को व्यक्त कर सकेंगे।

3.3 भारतीय संविधान

भारतीय संविधान के निर्माण के पूर्व और निर्माण के समय की घटनाओं का अभी और विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि हमारा संविधान किसी अल्पकालिक क्रान्ति का परिणाम नहीं है। यह लगभग सौ वर्षों अर्थात् सन् 1857 से सन् 1947 तक के दीर्घकालीन प्रयासों का परिणाम है। स्वतंत्रता के लिए समर्पित अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं के सामूहिक प्रयत्नों का फलन हमारा संविधान है।

भारत का संविधान अनेक दृष्टियों से एक अनूठा संविधान है। इसकी अनेक विशेषताएं है। जो विश्व के अन्य संविधानों से अलग उसकी पहचान बनाती है। भारतीय संविधान की कुछ विशेषताएं निम्नवत् ढंग से प्रस्तुत की जा सकती है–

3.3.1 संविधान का विस्तृत आकार

भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषता उसका विशाल आकार है। इसकी तुलना में दूसरे संविधान छोटी सी पुस्तिका दिखायी पड़ते है। अमरीकी संविधान में 5000 से कम शब्द है। कनाडा का जो संविधान 1982 में बना उसकी शब्द संख्या 6500 से भी कम है। हमारा संविधान अब तक किसी भी देश में बना सबसे लम्बा संविधान है। संविधान सभा की अंतिम बैठक 24 जनवरी, 1950 ई0 को हुईं तथा इसी दिन सदस्यों द्वारा संविधान पर अंतिम रूप से हस्ताक्षर किया गया। इसी दिन संविधान सभा द्वारा डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद को भारतीय गणतंत्र का प्रथम राष्ट्रपति चुना गया। भारत के मूल संविधान में 395 अनुच्छेद, 22 भाग और 8 अनुसूचियाँ थी। इसके निर्माण पर कुल 6.4 करोड़ रूपये खर्च हुए थे। सन् 2004 में हुए 100वें संविधान संशोधन के उपरान्त संविधान में 448 अनुच्छेद, 26 भाग एवं 12 अनुसूचियाँ है। भारतीय संविधान की विशालता के कारण ही कुछ लोगों ने इसे वकीलों का स्वर्ग भी कहा है।

3.3.2 संविधान की प्रस्तावना

किसी भी देश के संविधान की उद्देशिका से आशा की जाती है कि जिन मूलभूत मूल्यों तथा दर्शन पर संविधान आधारित हो, तथा जिन लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास करने के लिए संविधान निर्माताओं ने राजव्यवस्था को निर्देश दिया हो, उनका समावेश हो। भारतीय संविधान की उद्देशिका में कहा गया है–

हम भारत के लोग

भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न

पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रातमक गणराज्य बनाने के लिए

तथा

उनके समस्त नागरिकों को, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए, तथा उन सब में, व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत दो हजार छ विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

इस उद्देशिका का 1976 में संशोधन किया गया। पहले पैरा में दो शब्द समाजवादी और पंथनिरपेक्ष अंतःस्थापित किए गए। छठे पैरा में अखण्डता शब्द जोड़े

गये। भारतीय संविधान में उत्कृष्ट प्रस्तावना है जिसमें जनता की भावना और आकांक्षाएं सूक्ष्म रूप में समाविष्ट है। विभिन्न संकल्पनाओं तथा शब्दों से पता चलता है कि उद्देशिका के उदान्त और गरिमामय शब्द भारत के समूचे संविधान के सारांश, दर्शन, आदर्शों और उसकी आत्मा का निरूपण करते हैं। **अर्नेस्ट वार्कर** ने उद्देशिका की प्रशंसा में यह कहा है–

''जब मैं उसे पढ़ता हूँ तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी इस पुस्तक में जो तर्क दिये गये हैं उन्हें उद्देशि का संक्षिप्त और सारभूत रूप में प्रस्तुत करती है। –मैं उसे उद्धृत करना चाहता हूँ। क्योंकि मुझे गर्व है कि भारत के लोग अपना स्वतंत्र जीवन प्रारम्भ करते समय उस राजनीतिक परम्परा के सिद्धान्तों को मान्यता दे रहे हैं जिन्हें हम पश्चिम कहते हैं किन्तु जो पश्चिम तक ही सीमित नहीं है।''

3.3.3 संसदीय तथा अध्यक्षीय प्रणाली

भारतीय संविधान में संसदीय प्रणाली की व्यवस्था है। ब्रिटिश संविधान का अनुकरण करते हुए भारतीय संविधान में संघ और राज्य दोनों स्तरों पर संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। इस प्रणाली में वास्तविक कार्यपालिका शक्ति जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों में निहित हैं, जिसे मंत्रिपरिषद कहते हैं। मंत्रिपरिषद का प्रधान प्रधानमंत्री होता है। मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। भारतीय संसदीय प्रणाली में भारतीय गणराज्य का अध्यक्ष राष्ट्रपति होता है। भारतीय संविधान के अनुसार समस्त कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति के हाथों में निहित होती है। किन्तु वह उसका प्रयोग मंत्रिपरिषद की सलाह पर करता है। राष्ट्रपति कार्यपालिका का नाम मात्र अध्यक्ष होता है। वह तीनों संनाओं का कमांडर होता है।

3.3.4 संसदीय सर्वोच्चता और न्यायिक सर्वोच्चता का समन्वय

भारतीय संविधान में संसदीय सर्वोच्चता और न्यायपलिका की सर्वोच्चता के बीच एक अद्भुत मिश्रण है। भारतीय संसद न तो इंग्लैण्ड की संसद की तरह सर्वोच है और न ही यहाँ वह न्यायपालिका की तरह असीमित शक्ति प्राप्त हैं। भारतीय संसद और उच्चतम न्यायालय दोनों अपने अपने क्षेत्रों में सर्वोच्च है। उच्चतम न्यायालय संसद द्वारा पारित किसी कानून को संविधान का उल्लंधन बताकर संसद के अधिकार से बाहर, अवैध और अमान्य घोषित कर सकता है। संसद कतिपय प्रतिबन्ध के रहते हुए संविधान के अधिकांश भागों मे संशोधन कर सकती है।

3.3.5 स्वतंत्र न्यायपालिका

भारतीय संविधान में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग एवं स्वतंत्र रखा गया है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए न्यायधीशों की नियुक्ति, वेतन, भत्ता तथा

पद से हटाये जानें के सम्बन्ध में संविधान में स्पष्ट प्रावधान किए गयें हैं जिस कारण उन पर दबाव नहीं डाला जा सकता है।

3.3.6 एकल नागरिकता एवं सार्वजनिक मताधिकार

भारतीय संविधान में दो राजतंत्र है, किन्तु नागरिकता इकहरी है। ये दो राजतंत्र है– संघ और राज्य, किन्तु राज्य की कोई नागरिकता नहीं है केवल भारत की नागरिकता है। अमेरिका के संविधान में दोहरी नागरिकता है। अमेरिक की नागरिकता और राज्य की नागरिकता। भारत में प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार है वह चाहें जहाँ निवास करें। भारत में संसदीय प्रणाली की व्यवस्था है। जिसमें देश का प्रशासन जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। अतः भारत वे प्रत्येक व्यस्क नागरिक को मत देने का अधिकार है। संविधान के प्रवर्तन के समय मतदान का अधिकार केवल उन्हें था, जो 21 वर्ष की आयु पूरी कर लेते थे, लेकिन संविधान के 61वें संशोधन (1988) के द्वारा मतदान की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गयी।

3.3.7 मूल अधिकार–

भारतीय संविधान के भाग–3 तथा अनुच्छेद 12 से 35 तक में मूल अधिकारों की घोषणा की गयी है। मूल अधिकारों को छः शीर्षों में विभाजित किया गया है। (मूलतः सात शीर्ष थे– सम्पत्ति के अधिकार को 44 वें संविधान संशोधन द्वारा हटा दिया गया।)

1. समता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से अनुच्छेद 18 तक)
2. स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 से अनुच्छेद 22 तक)
3. शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 से अनुच्छेद 24 तक)
4. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से अनुच्छेद 28 तक)
5. संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 29 से अनुच्छेद 30 तक)
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों को परिभाषित नहीं किया गया है तथापि मूल अधिकार के आधारभूत अधिकार माने जाते है जो व्यक्तियों के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अपरिहार्य होते हैं। परन्तु मौलिक अधिकार निरपेक्ष नहीं है। अर्थात् ये असीमित और अप्रतिबन्धित अधिकार नहीं है। बल्कि आवश्यकतानुसार इन अधिकारों पर जनहित को ध्यान में रखकर सरकार द्वारा निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं। वस्तुतः संविधान में मूल अधिकारों के घोषणा के साथ–साथ विभिन्न परिस्थितियों में उन पर निर्बन्ध लगाये जाने की व्यवस्था भी की गयी है। जिससे

व्यक्ति के व्यक्तिगत एवं सामाजिक हितों में परस्पर सामंजस्य बना रहे। न्याय तथा व्यक्ति की गरिमा और कल्याण की प्राप्ति है जिनका पालन करना राज्यों का कर्तव्य है। परन्तु ये नीति निदेशक तत्व नागरिकों को कोई विधिक अधिकार प्रदान नहीं करते हैं। वास्तव मे ये केवल ऐसे नैतिक आदर्श निरूपित करते है। जिनका अनुसरण निष्ठा के साथ करने की राज्य से अपेक्षा की जाती है। इसकी प्रेरणा मुख्यतः आयरलैण्ड के संविधान से मिलती है। ग्लेनविन आस्टिन ने निदेशक तत्व के सिद्धान्त को 'राज्य की आत्मा' कहा है। यहाँ कहना उचित होगा कि अब तक सभी राज्य सरकारों ने अपने कर्तव्य की उपेक्षा की है।

3.3.8 राज्य की नीति के निदेशक तत्व

भारतीय संविधान के भाग – 4 में (अनुच्छेद 36 से 51 तक) नीति निदेशक तत्वों का प्रावधान किया गया है। राज्य की नीति निदेशक तत्व का उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय तथा व्यक्ति की गरिमा और कल्याण की प्राप्ति है जिनका पालन करना राज्यों का कर्तव्य है । परन्तु ये नीति निदेशक तत्व नागरिकों को कोई विशेष अधिकार प्रदान नहीं करते हैं। वास्तव में ये केवल ऐसे नैतिक आदर्श निरूपित करते हैं। जिनका अनुसरण निष्ठा के साथ करने की राज्य में अपेक्षा की जाती है। इसकी प्रेरणा मुख्यतः आयरलैण्ड के संविधान से मिली है। ग्लेनविन आस्टिन ने निदेशक तत्व के सिद्धान्त को राज्य की आत्मा कहा है। यहॉ पर यह कहना भी उचित होगा कि अभी तक राज्यों ने अपने कर्तव्य की उपेक्षा की है।

3.3.9 मूल कर्तव्य

मूल कर्तव्य मूलतः अंगीकृत संविधान के भाग नहीं थे। भारतीय संविधान में 42 वें संविधान संशोधन द्वारा 1976 ई0 में मूल कर्तव्य अनुच्छेद 51 (क) शीर्षक से एक नया भाग सम्मिलित किया गया। विश्व के प्रमुख प्रजातन्त्रों में इस प्रकार की कर्तव्य सारणी नहीं है। उदाहरण के लिए अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में ऐसी कोई कर्तव्यों की सूची नहीं है। भारतीय संविधान में भारत के नागरिकों के लिए दस मूल कर्तव्यों की एक संहिता निर्धारित की गयी है। 86 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2005 में मूल कर्तव्य में यह जोड़ा गया कि 6–14 वर्ष के बालकों के माता पिता और संरक्षकों का यह कर्तव्य होगा कि वह उन्हें शिक्षा का अवसर प्रदान करें। इस प्रकार मूल कर्तव्यों की संख्या 11 हो गयी है। परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि नागरिकों के मूल कर्तव्यों की संहिता को हमने अभी तक वह महत्व नहीं दिया है जो उसे मिलना चाहिए।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

1. भारतीय संविधान में समाजवादी शब्द किस वर्ष जोड़ा गया?

2. भारतीय संविधान की संसदीय प्रणाली में मंत्रिपरिषद् किसके प्रति उत्तरदायी होता है?

3. भारतीय संविधान में कुल कितने अनुच्छेद, भाग एवं अनुसूचियाँ हैं?

.4. भारतीय संविधान में किस संविधान संसोधन द्वारा एक नया मूल कर्तव्य जोड़ा गया?

3.4 भारतीय संविधान और शिक्षा

भारत का संविधान एक सर्वाधिक व्यापक दस्तावेज हैं वह अनेक दृष्टियों से अनूठा है। इसे किसी खास सांचे ढांचे में फिट नहीं किया जा सकता। यह अनन्य तथा नम्य, परिसंघीय तथा एकात्मक और अध्यक्षीय तथा संसदीय रूपों का मिश्रण है। इसमें प्रयास किया गया है कि एक ओर व्यक्तियों के मूल अधिकारों और दूसरी आरे जनता के सामाजिक, आर्थिक हितों तथा राज्य की सुरक्षा के बीच संतुलन बना रहे। इसके अलावा यह संसदीय प्रभुत्व तथा न्यायिक सर्वोच्चता के सिद्धान्तों के बीच एक मध्य मार्ग प्रस्तुत करता है। भारतीय संविधान में शिक्षा के सम्बन्ध में किये गये विभिन्न संकल्पों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है–

3.4.1 पूर्व प्राथमिक शिक्षा

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में निःशुल्क एवं प्राथमिक शिक्षा का दायित्व राज्य सरकार को सौंपा गया था। अनुच्छेद 45 में कहा गया है– ''राज्य इस संविधान के प्रारम्भ में दस वर्ष की कालावधि के भीतर सब बच्चों को चौदह वर्ष की अवस्था समाप्ति तक निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।'' परन्तु वर्ष 2002 में हुए 86वें संविधान संशोधन में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा से प्रतिस्थापित करते हुए इस मात्र छः वर्ष की आयु के बालक बालिकाओं तक सीमित कर दिया। संविधान संशोधन के बाद अनुच्छेद 45 में कहा गया है कि ''राज्य सभी बच्चों को उनकी आयु छः वर्ष होने तक शैशवपूर्व परिचर्चा तथा शिक्षा की व्यवस्था का प्रयास करेगा।''

3.4.2 निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा

2002 में हुए 86 वें संविधान संशोधन द्वारा निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को जीवन के मूल अधिकार अनुच्छेद 21 (क) के अंतगर्त 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को राज्य द्वारा शिक्षा का प्रावधान किया जायेगा। इससे पूर्व भारत के अनुच्छेद 45 में की गयी उस व्यवस्था को परिवर्तित किया गया जिसमें संविधान लागू होने के 10 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को राज्य द्वारा द्वारा अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने की बात कही गयी थी। 86वें संशोधन के द्वारा ही संविधान के मूल कर्तव्य में अनुच्छेद 51(क) के अंतगर्त माता–पिता अथवा अभिभावक को अपने 6 से 14 वर्ष के बच्चे को शिक्षा के अवसर प्रदान करने का प्रावधान किया गया। अब माता–पिता या संरक्षक को 06 से 14 वर्ष के बच्चों की शिक्षा के अवसर उपलब्ध करना संवैधानिक कर्तव्य है।

3.4.3 अल्पसंख्यकों की शिक्षा

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 30(1) में कहा गया है कि धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और उनके प्रबंध का अधिकार होगा। अनुच्छेद 30(2) में यह उपबंध किया गया है कि कोई भी राज्य सरकार अनुदान अथवा सहायता प्रदान करते समय अल्पसंख्यकों के द्वारा स्थापित शैक्षिक संस्थाओं से भेद–भाव नहीं करेगी। इस प्रकार भारतीय संविधान अल्पसंख्यकों के शैक्षिक हितों की रक्षा करता है। अनुच्छेद 30 पूर्णतया अल्पसंख्यकों के अधिकार से सम्बद्ध है।

3.4.4 अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व दुर्बल वर्गों की शिक्षा

संविधान में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व दुर्बल वर्गों की शिक्षा हेतु विशेष उपबन्ध किये गये। अनुच्छेद 46 में कहा गया है कि ''राज्य जनता के दुर्बल वर्गों,

विशेषकर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा तथा सामाजिक अन्याय और हर प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।''

संविधान में वर्णित इस अनुच्छेद से समाज के दलित, शोषित व कमजोर वर्गों को शिक्षा में पर्याप्त अवसर उपलब्ध होते हैं, जिससे उनके शैक्षिक, सामाजिक व आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त हो सकें।

3.4.5 धार्मिक शिक्षा की स्वतंत्रता

भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है। भारत में अनेक धर्म हैं और उनके अनुयायियों की संख्या भी पर्याप्त है। अतः संविधान में अनुच्छेद 25–28 के अंतगर्त सभी व्यक्तियों को धर्म में विश्वास करने, धार्मिक कार्य करने व उनका प्रचार–प्रसार करने का अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 28 (1, 2 व 3) यह प्रावधान करता है कि ''जो विद्यालय पूरी तरह से सरकारी राजकोष से चलाये जाते हैं, उनमें किसी भी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। और जो विद्यालय सरकार से आंशिक वित्तीय सहायता प्राप्त करते हैं अथवा जो राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त हैं, उनमें विद्यार्थी या उसके संरक्षक की स्वीकृति के बिना दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा।'' इस कथन से स्पष्ट है कि भारत में प्रत्येक नागरिक को धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। भारत विभिन्न धर्मों, भाषाओं तथा संस्कृतियों का देश है। अतः संविधान में अल्पसंख्यक वर्गों की भाषा, लिपि और संस्कृति की सुरक्षा की व्यवस्था की गयी है।

3.4.6 स्त्रियों तथा पिछड़े वर्गों की शिक्षा

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 खण्ड 3 में राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए विशेष प्रावधान करने की शक्ति प्रदान करता है। प्रथम संवैधानिक संशोधन द्वारा 15 में खण्ड–4 जोड़ा गया इसमें ''राज्य को महिलाओं तथा सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जातियों के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार दिया गया।'' यहाँ तक की सरकारी सेवाओं में आरक्षण का प्रावधान अनुच्छेद 15 (4) के आधार पर ही किया गया। इससे स्पष्ट है कि महिलाओं तथा पिछड़े वर्गों की शिक्षा के लिए विशेष व्यवस्था करने के लिए संविधान की दृष्टि से राज्य पूर्ण स्वतंत्र है।

3.4.7 हिन्दी भाषा का विकास तथा मातृभाषा में शिक्षा

भारतीय संविधान में हिन्दी भाषा के विकास तथा प्रचार–प्रसार के लिए अनुच्छेद 351 में कहा गया है ''संध का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का

प्रसार एवं वृद्धि करे, उसका विकास करें ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ तक आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतया अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।''

सातवें संविधान संशोधन 1956 द्वारा प्राथमिक स्तर पर शिक्षा प्रदान हेतु प्रान्तीय भाषाओं के महत्व को स्वीकार करते हुए अनुच्छेद 350 (क) में कहा गया है कि ''प्रत्येक राज्य तथा राज्य के भीतर स्थानीय प्राधिकारी भाषायी अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति को यह शक्ति दी गयी है कि यह निमित्त राज्य को उचित निर्देश दे।'' इस प्रकार हिन्दी भाषा के प्रसार संवर्धन तथा इसको भारत के नागरिकों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने का संवैधानिक उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार तथा भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए उनकी भाषा में प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध करान राज्य का उत्तरदायित्व स्वीकार किया गया। निःसन्देह शिक्षा प्रदान करने का सर्वोत्तम माध्यम बच्चों की मातृभाषा ही हो सकती है।

3.4.8 शैक्षिक अवसरों की समानता

भारतीय लोकतंत्र की मूल भाषा का सम्मान करते हुए संविधान के अनुच्छेद 29 (2) में धर्म, जाति, मूलवंश एवं भाषा आदि की परवाह किये बिना शैक्षिक अधिकारों में समानता सुनिश्चित की गयी है। अनुच्छेद 29 (2) में कहा गया है कि ''राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी आधार पर वंचित नहीं किया जायेगा।'' अर्थात् किसी नागरिक के विरूद्ध राज्य द्वारा वित्तपोषित या सहायता प्राप्त किसी शिक्षण संस्थान में प्रवेश के विषय में धर्म, मूलवंश, जाति या भाषा के आधार पर विभेद नहीं किया जा जा सकता। यह एक बड़ा व्यापक उपबंध है। जिसका आशय न केवल धार्मिक अल्पसंख्यकों को संरक्षण प्रदान करना है बल्कि स्थानीय या भाषायी अल्पसंख्यकों को भी। जैसे ही किसी भी आधार पर विभेद किया जाता है वैसे ही यह उपबन्ध आकृष्ट हो जाता है। भारतीय लोकतन्त्र में सभी नागरिकों के शिक्षा के क्षेत्र में समानता बनाये रखने के लिए इस उपबन्ध को संविधान में स्थान दिया गया।

3.4.9 कृषि शिक्षा

अनुच्छेद 48 के अनुसार यदि राज्य चाहे तथा यदि यह उत्तरदायित्व स्वीकार करने में सक्षम हो तो वह वैज्ञानिक दृष्टि से कृषि, पशुपालन का संगठन करने, नस्लों का संरक्षण व सुधार करने हेतु उचित शिक्षा की व्यवस्था कर सकता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

5. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने की बात कही गयी है?

6. महिलाओं की शिक्षा हेतु भारतीय संविधान में क्या प्रावधान हैं?

7. शैक्षिक अवसरों की समानता सुनिश्चित करने हेतु उपबन्ध में किये गये प्रावधान का उल्लेख कीजिए?

3.5 केन्द्रीय सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची में सम्मिलित शैक्षिक अधिकार

भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची में तीन सूचियाँ हैं अर्थात संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची जिनमें क्रमशः 97, 66 तथा 47 मदें है। अनुच्छेद 246 में व्यवस्था है कि संघ सूची या केन्द्रीय सूची में दिये गये मदों के बारे में संसद या केन्द्रीय सरकार कानून बना सकती है। राज्य सूची की मदों के बारे में राज्य सरकार अथवा विधान मंडल कानून बना सकती है। समवर्ती सूची मदों के बारे में संसद या राज्यों के विधानमंडल दोनों ही कानून बना सकते हैं। यदि समवर्ती सूची में सम्मिलित विषय पर संसद तथा राज्यों के विधानमंडलों द्वारा बनाई गयी विधियों में से कोई असंतुष्ट हो तो संघ की विधियाँ प्रभावी होगी। वहाँ राज्य की विधि उस विसंगति की मात्रा तक अप्रभावी होगी। केन्द्रीय सूची में राष्ट्रीय महत्व के, राज्य सूची में स्थानीय महत्व के तथा समवर्ती सूची में मिले जुले विषय रखे गये। इन तीनों सूचियों में शिक्षा से सम्बिन्धित मदों को भी सम्मिलित किया गया है।

(क) केन्द्रीय सूची में सम्मिलित शैक्षिक विषय–

भारतीय संविधान में केन्द्रीय सूची में 13, 62, 63, 65, 66 व 67 विषय सम्मिलित है–

विषय 13– अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संस्थाओं और अन्य निकायों में भाग लेना तथा उनमें लिए गये निर्णयों का कार्यान्वयन।

विषय 62– इस संविधान के लागू होने पर राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, राष्ट्रीय स्तर के स्मारक आदि संस्थाएं जो भारत सरकार द्वारा पूर्णतः या आशिंक वित्त पोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की ऐसी ही संस्थाएं।

विषय 63– इस संविधान के लागू होने पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा संसद से विधि द्वारा घोषित राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य संस्था।

विषय 64– भारत सरकार से पूर्णतः या अंशतः रूप से पोषित तथा संसद द्वारा उसके द्वारा बनायी विधि के अंतगर्त घोषित राष्ट्रीय महत्व के वैज्ञानिक तथा तकनीकी संस्थान।

विषय 65– पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण सहित वृत्तिक, व्यावसायिक व तकनीकी प्रशिक्षण अथवा विशेष अध्ययन व गवेषण की उन्नित अथवा अपराध के अनुसंधान या रोकथाम में वैज्ञानिक या तकनीकी सहायता करने वाली केन्द्रीय संस्थाएं।

विषय 66– उच्चतर शिक्षा या अनुसंधान की संस्थाओं में वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों में वैज्ञानिक या तकनीकी संस्थानों में एकरूपता लाना और मानकों का निर्धारण।

विषय 67– संसद द्वारा अथवा उसके द्वारा बनायी गयी विधि के अंतर्गत राष्ट्रीय महत्व के घोषित प्राचीन व ऐतिहासिक स्मारक तथा अभिलेख एवं पुरातत्व स्थल व अवशेष।

(ख) राज्य सूची में सम्मिलित शैक्षिक विषय–

राज्य सूची में 66 विषय हैं जिसमें 11 व 12 विषय शिक्षा से सम्बन्धित है। परन्तु सन् 1977 में 42वें संविधान संशोधन के द्वारा विषय 11 को राज्य सूची से हटाकर समवर्ती सूची के 25वें विषय के रूप में राज्य द्वारा नियंत्रित या वित्तीय सहायता प्राप्त पुस्तकालयों, संग्रहालय व अन्य समान संस्थाओं को रखा गया है। इसमें संसद द्वारा कानून बनाकर अथवा कानून के तहत राष्ट्रीय महत्व की संस्था के रूप में घोषित चीजों के अलावा प्राचीन या ऐतिहासिक इमारतों व अभिलेखों का वर्णन है।

(ग) समवर्ती सूची में सम्मिलित शैक्षिक विषय

समवर्ती सूची में 47 विषय सम्मिलित हैं जिस पर केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारें कानून बना सकती है। समवर्ती सूची में प्रविष्टि 20 एवं प्रविष्टि 25 दो विषय

सम्बन्धित हैं। इनमें से 20वीं प्रविष्टि आर्थिक व सामाजिक नियोजन तथा 25वीं प्रविष्टि में व्यावसायिक व तकनीकी श्रमिक प्रशिक्षण को सम्मिलित किया गया है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

8. भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची को कितने सूचियों में बाँटा गया है?

____

____

____

9. केन्द्रीय सूची में कुल कितने शैक्षिक विषय सम्मिलित किये गये हैं?

____

____

____

10. किस संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची में शामिल किया गया?

____

____

______________________________----

3.6 केन्द्र सरकार के शैक्षिक उत्तरदायित्व

उपर्युक्त अनुभागों में आपको शिक्षा के सम्बन्ध में संवैधानिक उपबंधों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई है। अब नीचे, केन्द्र सरकार के शैक्षिक दायित्वों के विषय में अध्ययन करेंगे। केन्द्र सरकार के निम्नलिखित शैक्षिक दायित्व हैं–

1. संविधान द्वारा निर्देशित 14 वर्ष की अवस्था तक के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराना।
2. अन्तर्राष्ट्रीय भिन्नताओं में कमी के विशेष संदर्भ में शैक्षिक अवसरों को समान बनाना और समाज के कमजोर वर्गों का उन्नयन करना।
3. जरूरतमंद और सुयोग्य विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियों का प्रावधान करना।
4. सभी राज्यों में माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण को बढ़ावा देना।

5. विद्यालयी स्तर पर शिक्षा के स्तर में सुधार करना।
6. अध्यापकों के स्तर में सुधार और अध्यापक प्रशिक्षण का कार्यक्रमों का आयोजन करना।
7. गैर औपचारिक शिक्षा कार्यक्रम की व्यवस्था करना और उसे सुगम बनाना।
8. देश के सभी भागों में मुक्त विद्यालय कार्यक्रम की व्यवस्था करना और सुगम बनाना।
9. देश में शैक्षिक अनुसंधान को प्रोत्साहन एवं अनुदान देना।
10. विशेष शिक्षा कार्यक्रमों को बढ़ावा देना और उसकी व्यवस्था करना।
11. संघ शासित क्षेत्रों और केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों में सीधे ही विद्यालयी शिक्षा का प्रबन्ध करना।
12. शिक्षा के विकास के लिए राज्यों, स्थानीय निकायों और गैर–सरकारी संगठनों को सहायता प्रदान करना।

3.7 राज्य सरकार के शैक्षिक उत्तरदायित्व

शिक्षा राज्य सरकारों के सीधे नियंत्रण में है। केन्द्र द्वारा योजना की रूपरेखा और तैयार की गयी नीतियों को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकारें अपनी आवश्यकताओं और स्थितियों से सम्बन्धित शैक्षिक योजनाएं बनाती है राज्य सरकारों के निम्नलिखित दायित्व हैं–

1. शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना और अनुरक्षण।
2. विद्यालयों की स्थपना के लिए मान्यता प्रदान करना।
3. निजी निकायों द्वारा प्रबंधित विद्यालयों को अनुदान देना।
4. विभिन्न प्रकार की विद्यालयी शिक्षा के लिए कानून पारित करना।
5. खण्ड स्तर पर जिला शिक्षा अधिकारियों और पर्यवेक्षकों के द्वारा विद्यालयों का पर्यवेक्षण।
6. विद्यालयों में अध्यापकों की नियुक्ति।
7. पाठ्य–विवरण निर्धारण और पुस्तकों की आपूर्ति।
8. परीक्षाओं के संचालन के लिए विद्यालय बोर्डों की स्थापना करना।
9. गरीब और पिछड़े विद्यार्थियों को विशेष सहायता प्रदान करना।
10. अध्यापकों और पर्यवेक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था करना।

11. अनुशासनहीन अध्यापकों और विद्यालयों के विरूद्ध कार्यवाही प्रारम्भ करना।
12. विद्यालयों के बारे में केन्द्र को जानकारी देना।
13. शैक्षणिक और प्रशिक्षणार्थ बनायी गयी संस्थाओं के माध्यम से विद्यालयों को शैक्षिक और प्रशिक्षण में सहायता प्रदान करना।
14. शिक्षा में अनुसंधान और विकास को बढ़ावा देना।

3.8 सारांश

इस इकाई में शिक्षा से सम्बन्धित शैक्षिक प्रावधानों का वर्णन किया गया। विभिन्न प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि संविधान में शिक्षा को जन सामान्य से जोड़ने का महत्वपूर्ण प्रयास किया गया। शिक्षा को प्रत्येक नागरिकों के कल्याण या विकास का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली साधन स्वीकार किया गया है। सभी लोगों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने के लिए शिक्षा से सम्बन्धित अनेक अधिकारों को स्पष्ट रूप से संविधान में वर्णित किया गया है। परन्तु वास्तविकता उससे काफी दूर हैं। जो संकल्प संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय लिये थे, उन संकल्पों का व्यवहारिक राजनीति ने जमकर मजाक उड़ाया है अभी तक न ही निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त हो सका है और न ही हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा का दर्जा प्राप्त हो सका है। वर्तमान समय में आवश्यकता यह है कि संविधान सभी की कुल भावनाओं को समझा जाये और उन संकल्पों को पूरा करने की दिशा में प्रयास किया जाए जिससे सभी लोगों को शिक्षा प्राप्त हो सके। अगली इकाई में आप देखेगें कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा के विकास एवं शिक्षा की आम जनों तक पहुँच हेतु जिन शिक्षा समितियों का गठन किया गया उनका क्या प्रभाव पड़ा।

3.9 अभ्यास कार्य

1. भारतीय संविधान में वर्णित निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के संकल्प पर अपने विचार लिखिए।
2. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अल्पसंख्यक समुदायों की शिक्षा के लिए संवैधानिक उपबंधों का पुनरीक्षण कीजिए।
3. भारत के संविधान के अनुसार शिक्षा में केन्द्र व राज्य सरकारों की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
4. शैक्षिक अवसरों की समानता पर टिप्पणी लिखिए।

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1976
2. संसद
3. 395 अनुच्छेद, 22 भाग और 8 अनुसूचियॉ हैं।
4. 86वें संविधान संशोधन द्वारा
5. अनुच्छेद 21 (क)
6. महिलाओं की शिक्षा के लिये संवैधानिक प्रावधान अनुंच्छेद 15(4) में है
7. संविधान के अनुच्छेद 29(2) में धर्म, जाति, मूलवंश, भाषा व जन्मस्थान आदि की परवाह किये बिना शैक्षिक अवसरों में समानता सुनिश्चित की गयी है।
8. तीन सूचियों में बांटा गया है – संघ, राज्य एवं समवर्ती सूची
9. केन्द्रीय सूची में 13, 62, 63, 64, 65, 66 व 67 विषय सम्मिलित हैं।
10. 42वें संविधान संशोधन द्वारा ।

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, जे0सी0 (1968) : स्वतंत्र भारत में शिक्षा का विकास, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली ।
2. अदावल, एस0 बी0 व इनियाल, एम0 (1975) : भारतीय शिक्षा की समस्यायें एवं प्रवृत्तियॉ, उ0 प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ
3. बसु, दुर्गादास, (1995) : भारत का संविधान : एक परिचय, प्रेन्टिस हाल आफ इण्डिया, नई दिल्ली ।
4. शर्मा, ब्रज किशोर (2005) : भारत का संविधान : एक परिचय, प्रेन्टिस हाल आफ इण्डिया, नई दिल्ली ।
5. गुप्ता, एस0 पी0 तथा अलका गुप्ता (2015) : भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद ।
6. वर्मा, एस0 पी0 : इण्डियन कान्स्टीट्यूशन एण्ड गवर्नमेन्ट ।
7. शुक्ल, पी0 डी0 : एडमिनिस्ट्रेशन आफ एजूकेशन इन इण्डिया।

खण्ड : दो

भारतीय शैक्षिक विचारक

इकाई - 4 65
महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचार

इकाई - 5 87
महर्षि श्री अरविन्द एवं स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचार

इकाई - 6 109
जे0 कृष्णामूर्ति एवं गिज्जू भाई के शैक्षिक विचार

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	पूर्व निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 के0एस0मिश्र	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 अखिलेश चौबे	पूर्व आचार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो0 विद्या अग्रवाल	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 शैलेश कुमार यादव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई-1,3 एवं 14)
डॉ0 सरोज यादव	असि. प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 2 एवं 10)
डॉ0दिनेश सिंह	असि0 डायरेक्टर/असि0 प्रो0 शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई-4,5 एवं 6)
डॉ0 उपेन्द्र नाथ तिवारी	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 7,8 एवं 9)
डॉ0 मीनू गुप्ता	एसो0प्रो0बी0एड0विभाग,एम0डी0पी0जी0कालेज प्रतापगढ़ (इकाई-11)
डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 12,13 एवं 15)

सम्पादक

प्रो0 विद्या अग्रवाल	शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

परिमापक

प्रो0पी0के0 साहू	शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

समन्वयक

डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रकाशक

डॉ0 राजेश कुमार पाण्डेय	कुलसचिव,उ0प्र0राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN 978-93-83328-01-7

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

B.Ed.E-02 : समसामयिक भारत एवं शिक्षा

खण्ड–एक शैक्षिक विकास

इकाई–1 शिक्षा का अर्थ एवं अवधारणा : प्राचीन से वर्तमान तक

इकाई–2 शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था : राज्य तथा केन्द्र की भूमिका

इकाई–3 शिक्षा में संवैधानिक प्रावधान

खण्ड–दो भारतीय शैक्षिक विचारक

इकाई–4 महात्मा गॉधी एवं रवीन्द्र नाथ टैगोर के शैक्षिक विचार

इकाई–5 महर्षि श्री अरविन्द एवं स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचार

इकाई–6 जे0 कृष्णामूर्ति एवं गिज्जू भाई के शैक्षिक विचार

खण्ड–तीन शिक्षा दर्शन के सम्प्रदाय

इकाई–7 भारतीय दार्शनिक विचार

इकाई–8 आदर्शवाद और प्रकृतिवाद

इकाई–9 यथार्थवाद, प्रयोजनवाद और अस्तित्ववाद

खण्ड –चार शिक्षा के समसामयिक मुद्दे

इकाई–10 सार्वभौमिक, प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा

इकाई–11 उत्तरदायी नागरिकता के लिए शिक्षा

इकाई–12 पर्यावरण संरक्षणहेतु शिक्षा

खण्ड –पॉच शिक्षा में गुणवत्ता

इकाई–13 शिक्षा में गुणवत्ता : अर्थ, संकेतांक तथा उपलब्धि के मानक

इकाई–14 उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण एवं शिक्षा

इकाई–15 माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन

खण्ड–दो : भारतीय शैक्षिक विचारक

खण्ड परिचय

प्रस्तुत खण्ड में भारतीय चिन्तकों के शैक्षिक विचारों की चर्चा करेंगे। इस खण्ड के अन्तर्गत हम उन आधुनिक भारतीय चिन्तकों के शैक्षिक विचारों की चर्चा करेंगे जिनके विचार शैक्षिक जगत के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। इस खण्ड में हम आधुनिक भारतीय चिन्तकों महात्मा गॉधी, रवीन्द्र नाथ टैगोर, महर्षि अरविन्द, स्वामी विवेकानन्द, जे. कृष्णमूर्ति एवं गिज्जू भाई के शिक्षा दर्शन का विवेचन करेंगे। क्योंकि इन चिन्तकों का स्पष्ट प्रभाव हमारी आधुनिक शैक्षिक विचारधारा पर पड़ा जो हमारी वर्तमान भारतीय शैक्षिक व्यवस्था के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है। भारतीय चिन्तकों के शैक्षिक विचारों की चर्चा तीन इकाइयों में विभाजित कर करेंगे, जिनका विवरण इस प्रकार है –

इकाई–4 में महात्मा गॉधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के जीवन वृत्त एवं दर्शन के बारे में बताया गया है। महात्मा गॉधी एवं रवीन्द्र नाथ टैगोर के शिक्षा सम्बन्धी विचार के अन्तर्गत शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा की पाठ्यचर्या, शिक्षण विधियॉ, अनुशासन, शिक्षक, शिक्षार्थी, विद्यालय के बारे में बताया गया है। इसी इकाई में महात्मा गॉधी की बेसिक शिक्षा या बुनियादी शिक्षा के बारे में भी चर्चा की गयी है।

इकाई – 5 में महर्षि अरविन्द एवं स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों के बारे में चर्चा की गई है। इस इकाई में महर्षि अरविन्द एवं स्वामी विवेकानन्द के जीवन वृत्त एवं दर्शन के बारे में बताया गया है। इसी इकाई में महर्षि अरविन्द एवं स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचार के अन्तर्गत शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा की पाड्यचर्या, शिक्षण विधियॉ, अनुशासन, शिक्षक शिक्षार्थी, विद्यालय आदि के बारे में विस्तार पूर्वक बताया गया है।

इकाई – 6 में जे. कृष्णमूर्ति एवं गिज्जू भाई के शैक्षिक विचारों के बारे में बताया गया है। इस इकाई में जे. कृष्णमूर्ति एवं गिज्जू भाई के जीवन वृत्त एवं दर्शन के बारे में चर्चा की गयी है। इसी इकाई के अन्तर्गत जे.कृष्णमूर्ति एवं गिज्जू भाई के शिक्षा सम्बन्धी विचार के अन्तर्गत शिक्षा के उद्देश्य शिक्षा की पाठ्यचर्या, शिक्षण विधियॉ, अनुशासन, शिक्षक, शिक्षार्थी, विद्यालय के बारे में विस्तार पूर्वक चर्चा की गयी है।

इकाई–4 : महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगौर के शैक्षिक विचार

संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 महात्मा गाँधी का जीवन वृत्त एवं दर्शन

4.04 महात्मा गाँधी के शिक्षा सम्बन्धी विचार

- 4.4.1 शिक्षा के उद्देश्य
- 4.4.2 शिक्षा की पाठ्यचर्या
- 4.4.3 शिक्षण विधियाँ
- 4.4.4 अनुशासन
- 4.4.5 शिक्षक
- 4.4.6 शिक्षार्थी
- 4.4.7 विद्यालय

4.5 बेसिक शिक्षा या बुनियादी शिक्षा

4.6 महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों की समीक्षा

4.07 रवीन्द्र नाथ टैगौर का जीवन वृत्त एवं दर्शन

4.08 रवीन्द्र नाथ टैगौर के शिक्षा सम्बन्धी विचार

- 4.8.1 शिक्षा के उद्देश्य
- 4.8.2 शिक्षा की पाठ्यचर्या
- 4.8.3 शिक्षण विधियाँ
- 4.8.4 अनुशासन
- 4.8.5 शिक्षक
- 4.8.6 शिक्षार्थी
- 4.8.7 विद्यालय

4.9 रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों की समीक्षा

4.10 सारांश

4.11 अभ्यास प्रश्न

4.12 चर्चा के विन्दु

4.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.01 प्रस्तावना

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का नाम भारतीय गणराज्य के निर्माता के रूप में लिया जाता है। वे एक महान देशभक्त, दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री थे। महात्मा गाँधी ने नई तालीम या बुनियादी शिक्षा (Basic Education) पर बल दिया। इसका प्रमुख उद्देश्य उद्योग–केन्द्रित शिक्षा एवं स्वावलम्बन है।

आधुनिक भारत का निर्माण करने में गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का विशेष उल्लेखनीय योगदान है। उन्होनें भारतीय शिक्षा को अपने विचारों से प्रभावित किया है। टैगोर ने 'विश्वभारती' की स्थापना करके शिक्षा के क्षेत्र में एक नयी विचारधारा को जन्म दिया।

शैक्षिक विचारक की यह चौथी इकाई है। इस इकाई में हम महात्मा गांधी एवं रवीन्द्र नाथ टैगौर के शैक्षिक विचारों के विभिन्न पहलुओं का वर्णन करेंगे। इसके अतिरिक्त महात्मा गांधी तथा रवीन्द्र नाथ टैगौर के जीवन वृत्त का वर्णन करेंगे। इसी खण्ड में इनके दर्शन तथा शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको महात्मा गाँधी तथा रवीन्द्र नाथ टैगौर के शैक्षिक विचारों को समझने में सुविधा होगी।

4.02 उद्देश्य

इस इकाई का अध्यय न करने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि

- महात्मा गाँधी के जीवन–वृत्त को जान सकेंगे।
- महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों को समझ सकेंगे।
- महात्मा गाँधी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का विस्तार से वर्णन कर सकेंगें।
- रवीन्द्र नाथ टैगौर के जीवन–वृत्त को जान सकेंगे।

- रवीन्द्र नाथ टैगौर के शैक्षिक विचारों को समझ सकेंगे।
- रवीन्द्र नाथ टैगौर के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का विस्तार से वर्णन कर सकेंगें।
- भारतीय शिक्षा में इनके योगदानों को जान पायेगें।

4.03 महात्मा गाँधी का जीवन वृत्त एवं दर्शन

महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 में इस समय के गुजरात प्रान्त के पोरबन्दर नामक स्थान पर एक वैष्णव धर्मावलम्बी, सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। इनका पूरा नाम (वास्तविक नाम) मोहनदास करमचन्द गाँधी था। इनके पिता करमचन्द गाँधी पोरबन्दर राज्य के दीवान थे और बड़े धार्मिक एवं सात्विक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। इनकी माता का नाम श्रीमती पुतलीबाई था। ये भी बहुत धार्मिक एवं सात्विक प्रवृत्ति की महिला थी। महात्मा गाँधी पर अपने पारिवारिक वातावरण का बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा।

गाँधी जी को अपने परिवार में वैष्णव धर्म की शिक्षा मिली थी। बचपन में ही गाँधी जी ने मनुस्मृति का एक अनुवाद पढ़ डाला था। गाँधी जी गीता का प्रतिदिन अध्ययन किया करते थे। जब गाँधी जी इंग्लैण्ड गये तो वहाँ पर उन्होंने बाईबिल और लाइफ ऑफ एशिया का अध्ययन किया था तथा श्रीमती एनी बेसेन्ट का सत्संग किया था। इन्हीं के आधार पर इनके धार्मिक एवं दार्शनिक विचार बने। गाँधी जी को भारतीय धार्मिक ग्रंथ 'श्रीमद्भगवत गीता' अत्यंत प्रिय था। इसीलिए गाँधी भगवत गीता को ''**माँ**'' कहते थे।

गाँधी जी का 13 वर्ष की आयु में पोरबन्दर राज्य की कस्तूरबाबाई से विवाह हो गया। सन् 1944 ई0 को इनकी पत्नी कस्तूरबा गाँधी का निधन हो गया। 30 जनवरी 1948 को जब गाँधी जी अपनी प्रार्थना सभा में जा रहे थे तभी नाथूराम गोडसे ने इनकी हत्या कर दी। इस प्रकार 30 जनवरी सन् 1948 ई0 को गाँधी जी का देहावसान हो गया।

गाँधी जी का दर्शन

गाँधी जी ने किसी नये दर्शन का निर्माण नहीं किया बल्कि भारतीय दर्शन की मूलभूत बातों को ही व्यावहारिक रूप दिया। यह व्यावहारिक रूप इनकी अपनी सूझ–बूझ का ही परिचायक है, इसलिये इसे आज गाँधी दर्शन, गाँधीवाद, सर्वोदय दर्शन आदि नामों से पुकारा जाता है। गाँधी जी के सर्वोदय दर्शन के तत्त्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं तर्क मीमांसा और मूल्य तथा आचार मीमांसा अग्रलिखित हैं–

गाँधी सर्वोदय दर्शन की तत्त्व मीमांसा

गाँधी जी गीता को तत्त्व ज्ञान का सर्वोत्तम ग्रंथ मानते थे। गाँधी जी ने कहा कि ईश्वर इस जगत का कर्ता है और प्रकृति इसकी उपादान कारण है। ईश्वर को ये सत्य के रूप में मानते थे। गाँधी जी का विश्वास था कि ईश्वर अपरिवर्तनशील है और नित्य है इसलिये सत्य है तथा प्रकृति परिवर्तनशील है और अनित्य है इसलिये असत्य है। गॉधी जी आत्मा परमात्मा और सत्य इन सभी को उस अनादि एवं अनन्त शक्ति के रूप में स्वीकार करते थे।

मनुष्य को गाँधी जी शरीर, मन और आत्मा का योग मानते थे और कहते थे कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मज्ञान, ईश्वर प्राप्ति और मोक्ष है। गाँधी जी ने मनुष्य जीवन को दो पक्षों में विभाजित किया– एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। उनका मानना था कि ये दोनों पक्ष एक–दूसरे पर आश्रित हैं और एक के विकास के बिना दूसरे का विकास नहीं किया जा सकता। मनुष्य के इन दोनों पक्षों का विकास एक साथ करना आवश्यक मानते थे।

गाँधी सर्वोदय दर्शन ज्ञान एवं तर्क मीमांसा

गाँधी जी ने ज्ञान को दो भागों में विभक्त किया–एक भौतिक ज्ञान और दूसरा आध्यात्मिक ज्ञान। भौतिक ज्ञान में गाँधी जी ने भौतिक जगत एवं मनुष्य जीवन के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पक्षों को रखा है तथा आध्यात्मिक ज्ञान के अन्तर्गत सृष्टि–सृष्टा और आत्मा–परमात्मा सम्बन्धी तत्त्व ज्ञान को रखा है। गाँधी जी के अनुसार मनुष्य को दोनों प्रकार का ज्ञान आवश्यक है। भौतिक जीवन के लिये भौतिक ज्ञान तथा ईश्वर प्राप्ति अथवा मोक्ष के लिये आध्यात्मिक ज्ञान आवश्यक है। गीता को गाँधी जी आध्यात्मिक ज्ञान का श्रेष्ठतम ग्रंथ मानते थे।

गांधी सर्वोदय दर्शन की मूल्य एवं आचार मीमांसा

गांधीजी का मानना था कि सत्य अर्थात ईश्वर प्राप्ति मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य है। आध्यात्मिक मुक्ति के लिए गांधी जी गीता के अनाशक्ति योग को सर्वश्रेष्ठ साधन मानते थे और भौतिक जीवन की सुख–समृद्धि के लिये श्रम, नैतिकता एवं चरित्र के महत्व को स्वीकार करते थे। इन दोनों की प्राप्ति के लिए एकादश व्रत के पालन पर बल देते थे। एकादश व्रत के पालन के सर्वोत्तम साधन सत्य और अहिंसा है। गांधी जी इन्हें ही मानव जीवन के मूल्य मानते थे। अहिंसा से गांधी जी का तात्पर्य समस्त जीवधारियों के प्रति अच्छे विचार से हैं । गांधी जी केवल जीव हत्या को ही हिंसा नहीं मानते थे बल्कि दूसरों के प्रति गलत विचार रखना भी उनके नजरिये से हिंसा थी। अहिंसा को गांधी जी भौतिक एवं आध्यात्मिक पूर्णता के लिए बहुत जरूरी मानते थे।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 1– गाँधी जी किस ग्रन्थ को आध्यात्मिक ज्ञान का श्रेष्ठतम् ग्रन्थ मानते थे?

____

____

____

प्रश्न 2– गाँधी जी ने ज्ञान को किन दों भागों में विभक्त किया?

____

____

____

प्रश्न 3– गाँधी जी के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य क्या है?

....

....

4.04 महात्मा गाँधी के शिक्षा सम्बन्धी विचार

गाँधी जी केवल साक्षरता को शिक्षा नहीं मानते थे। गाँधी जी के शब्दों में–'साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न प्रारम्भ'। यह केवल एक साधन है जिसके द्वारा पुरुष और स्त्रियों को शिक्षित किया जा सकता है। गाँधी जी मनुष्य को शरीर, मन, हृदय और आत्मा का योग मानते थे। इनका मानना था कि शिक्षा द्वारा मनुष्य के शरीर, मन, हृदय और आत्मा का विकास होना चाहिये। गाँधी जी के शब्दों में, ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा के सर्वोत्तम एवं सर्वांगीण विकास से है।''

4.4.1 शिक्षा के उद्देश्य

गाँधी जी के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है। ये पहले शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और राजनैतिक मुक्ति तथा फिर आत्मिक मुक्ति की बात करते थे। इनका मानना था कि जब तक मनुष्य को शारीरिक दुर्बलता, मानसिक तनाव, आर्थिक अभाव और राजनीतिक दासता से मुक्ति नहीं मिलती तब तक वह आध्यात्मिक मुक्ति की प्राप्ति नहीं कर सकता। इसीलिये ये शिक्षा द्वारा मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा का उच्चतम विकास करना चाहते थे।

गाँधी जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का शारीरिक विकास, मानसिक एवं बौद्धिक विकास, वैयष्टिक एवं सामाजिक विकास, सांस्कृतिक विकास, नैतिक एवं चारित्रिक विकास, व्यावसायिक विकास आदि है। गाँधी जी का मानना है कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो नागरिकों में ऐसी क्षमता एवं गुणों का विकास करे जिससे वे अपना जीविकोपार्जन कर सकें।

4.4.2 शिक्षा की पाठ्यचर्या

गाँधी जी देश की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति और वर्ग विहीन समाज के निर्माण के लिये क्रिया प्रधान पाठ्यचर्या के निर्माण पर बल दिया। अपने द्वारा प्रस्तावित बेसिक शिक्षा (कक्षा 1 से कक्षा 8 तक) के लिये गाँधी जी ने पाठ्यचर्या में हस्तकौशल एवं उद्योग को प्रमुख स्थान दिया। गाँधी जी ने पाठ्यचर्या में मातृभाषा, व्यावहारिक गणित, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान, संगीत, चित्रकला, स्वास्थ्य विज्ञान और नैतिक शिक्षा पर बल दिया।

4.4.3 शिक्षण विधि

शिक्षण की प्रक्रिया में गाँधी जी ने मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा तीनों की क्रियाओं को स्थान दिया है। शिक्षण के क्षेत्र में ये सबसे अधिक बल क्रिया पर देते थे। इनके अनुसार करके सीखना और स्वयं के अनुभव द्वारा सीखना ही उत्तम सीखना है। गाँधी जी कथन, व्याख्यान और प्रश्नोत्तर विधि के महत्व को भी स्वीकारते थे। उपनिषद् और वेदान्त द्वारा प्रतिपादित श्रवण, मनन् और निदिध्यासन की विधि में भी गाँधी जी का विश्वास था। सदाचरण की शिक्षा हेतु अनुकरण विधि को गाँधी जी सर्वोत्तम विधि मानते थे। ज्ञान को पूर्ण इकाई के रूप में प्रस्तुत करके उसे किसी क्रिया के माध्यम से विकसित करना इनकी शिक्षण विधि का मुख्य आधार था। जिसे सहसम्बन्ध विधि कहा जाता है। गाँधी जी इन सब शिक्षण विधियों को स्वाभाविक रूप से प्रयोग करने पर बल देते थे।

4.4.4 अनुशासन

गाँधी जी अनुशासन को महत्व देते थे। इनके अनुसार वास्तविक अनुशासन आत्मप्रेरित होता है। अनुशासन के लिये दमनात्मका विधि को गाँधी जी स्वीकार नहीं करते थे। इनके अनुसार सच्चा अनुशासन प्रभावात्मक विधि के माध्यम से किया जा सकता है। गाँधी जी बच्चों को अच्छे प्राकृतिक वातावरण तथा उच्च सामाजिक पर्यावरण में रखने पर बल देते थे। इनको विश्वास था कि इस प्रकार के पर्यावरण में बच्चे अनुकरण द्वारा उच्च आदर्शों तथा उच्च आचरण को सीख सकेंगे। बच्चों को अनुशासन में रखने के लिये शिक्षकों को अपने आत्मबल का प्रयोग करना चाहिये।

4.4.5 शिक्षक

गाँधी जी के अनुसार शिक्षक को समाज का आदर्श व्यक्ति, ज्ञान का पुंज और सत्य आचरण करने वाला होना चाहिये। इनकी दृष्टि से शिक्षण को केवल व्यवसाय के रूप में स्वीकार करने वाला व्यक्ति कभी आदर्श शिक्षक नहीं हो सकता। आदर्श शिक्षक के लिये शिक्षण सेवा कार्य होना चाहिये। उसे बच्चों के पिता, मित्र, सहयोगी और पथ प्रदर्शक अनेक रूपों में कार्य करना होता है इसलिये उसे सहिष्णु, उदारचित्त और धैर्यवान होना चाहिये।

4.4.6 विद्यार्थी

विद्यार्थी शिक्षा की प्रक्रिया का केन्द्र होता है। गाँधी जी के अनुसार शिक्षार्थी को अनुशासित रहना चाहिये और उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। गाँधी जी के अनुसार विद्यार्थी को संयमी के साथ–साथ जिज्ञासु भी होना चाहिये।

4.4.7 विद्यालय

गाँधी जी के अनुसार विद्यालय ऐसी कर्मशालाएँ होनी चाहिये जहॉ शिक्षक सेवा भाव से पूर्ण निष्ठा के साथ शिक्षण कार्य करें और उनके तथा विद्यार्थियों के संयुक्त प्रयास से उनमें इतना उत्पादन कार्य हो कि वे आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो। गाँधी जी विद्यालयों को सामुदायिक केन्द्र बनाने पर भी बल देते थे। इनका कहना था कि विद्यालयों में समुदाय की विभिन्न क्रियाएं होनी चाहिये और समुदाय के लोगों को यहॉ पढ़ने और कार्य करने की सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिये। यहॉ रात्रि पाठशालाएं लगाकर प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था भी की जाये। इस प्रकार गाँधी जी के अनुसार विद्यालयों को समुदाय के विभिन्न क्रिया–कलापों में उनका सहयोग करना चाहिये।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 4– गाँधी जी किस विधि द्वारा सीखने को उत्तम मानते थे?

प्रश्न 5– गाँधी जी विद्यालयों को सामुदायिक केन्द्र की भाँति बनाने पर क्यों बल देते थे?

प्रश्न 6– गाँधी जी के अनुसार वास्तविक अनुशासन कैसा होना चाहिए?

____

____

____

4.05 बेसिक शिक्षा या बुनियादी शिक्षा

तत्कालीन विदेशी शासन काल की शिक्षा प्रणाली से गाँधी जी बड़े दुःखी थे। इस शिक्षा का उद्देश्य सरकारी मशीनों को चलाने के लिए बाबू बनाने का था। तात्कालीक शिक्षा पद्धति के प्रमुख दोष निम्नलिखित थे–

- अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का अभाव
- व्यावहारिक जीवन से दूर
- स्वावलम्बन से दूर
- अपव्यय एवं अवरोधन
- मातृभाषा की उपेक्षा
- मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की उपेक्षा
- श्रम को महत्व नहीं
- भारतीय संस्कृति की उपेक्षा
- सामाजिक भावना एवं नागरिकता की भावना का विकास नही

तात्कालिन शिक्षा प्रणाली में व्याप्त दोषों को दूर करने के लिए गाँधी जी ने शिक्षा में परिवर्तन की आवश्यकता समझी। बेसिक शिक्षा से सम्बन्धित अनेक विचार उनके प्रयोगों पर आधारित है, जो उन्होनें दक्षिण अफ्रीका में किए थे। उन्होनें सन् 1911 ई0 में वहाँ सत्याग्रही परिवार के बच्चों का पढ़ाने के लिए एक छोटा सा स्कूल खोला जहॉ उन्हें मातृभाषा में शिक्षा दी जाती थी। वे पढ़ाई के साथ हाथ के काम भी सीखते थे। सन् 1914 तक यह कार्यक्रम चला। भारत लौटने पर सन् 1915 में गाँधी जी ने साबरमती आश्रम में भी अपने इस प्रयोग को जारी रखा।

इसके उपरान्त सन् 1936 ई0 में हरिजन पत्रिका द्वारा इन्होनें अपने इस विचारों का प्रचार–प्रसार आरम्भ कर दिया। सन् 1938 में कांग्रेसी खेर समिति ने वर्धा योजना में सुधार के निम्न सुझाव दिए–

- वर्धा शिक्षा योजना ग्रामीण क्षेत्रों में भी प्रारम्भ हो।
- छः से चौदह वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों के लिए बेसिक शिक्षा अनिवार्य हो।

- शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।
- हिन्दी की शिक्षा अनिवार्य हो तथा उसकी लिपि देवनागरी एवं अरबी हो।
- वाह्य परीक्षा के स्थान पर केवल आन्तरिक परीक्षा ही हो।

सन् 1938 में ही बेसिक एजूकेशन बोर्ड की स्थापना हुई एवं पुराने विद्यालयों को बेसिक स्कूलों में परिवर्तित कर दिया गया। सन् 1942 से 1945 तक बेसिक शिक्षा में प्रगति हुई।

बुनियादी शिक्षा के आधार भूत सिद्धान्त

- सात वर्ष तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा
- शिक्षा का माध्यम मातृभाषा
- उद्योग केन्द्रित शिक्षा
- शिक्षा स्वावलम्बन पर आधारित हो

बुनियादी शिक्षा की विशेषताएँ

1. बेसिक शिक्षा की सबसे प्रमुख विशेषता यह होती है कि इसमें सम्पूर्ण शिक्षा किसी उद्योग पर आधारित होती है। हाथ के काम के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। जैसे–कातना, बुनना, खेती के काम, मिट्टी, लकड़ी आदि के काम।
2. शिक्षा देने के लिए इसमें सहसम्बन्ध (समवाय) पद्यति का प्रयोग किया जाता है। यह एकीकरण समसम्बन्ध तीन प्रकार से होता है–

   (क) एक विषय के भिन्न–भिन्न भागों का आपस में सम्बन्ध स्थापित करके

   (ख) एक विषय का दूसरे विषय से सम्बन्ध स्थातिपत करके

   (ग) प्रत्येक प्रकार के ज्ञान को जीवन से सम्बन्धित करके
3. बेसिक शिक्षा में छात्र को प्राथमिकता दी जाती है। इससे छात्र की शक्तियों एवं कौशलों का विकास मनोवैज्ञानिक ढंग से किया जाता है।
4. बेसिक शिक्षा में छात्र के सामाजिक गुणों का भी विकास किया जाता है। समस्त विषयों की शिक्षा हाथ से कार्य पर केन्द्रित होती है। इससे छात्रों में सहयोग, सहिष्णुता, आज्ञा–पालन, नेतृत्व क्षमता आदि गुण विकसित होते हैं।
5. बेसिक शिक्षा बालकों में श्रम से प्रेम करने की आदत डालती है।
6. बेसिक शिक्षा सांस्कृतिक विचारधारा की पोशक है। भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में बालकों को शिक्षा प्राप्त होती है।
7. बेसिक शिक्षा द्वारा छात्र किसी उद्योग सम्बन्धी कौशल को सीखकर भावी जीवन में जीवकोपार्जन कर सकता है।
8. बेसिक शिक्षा अहिंसा एवं सत्याग्रह पर अटल रहने की नीति पर बल देता है।

9. बेसिक शिक्षा में छात्रों को देश की सेवा के लिए तन, मन एवं धन से जीवन को अर्पित करने की प्रेरणा दी जाती है।
10. बेसिक शिक्षा में आध्यात्मिकता एवं चारित्रिक दृढ़ता पर भी बल दिया जाता है।
11. इसमें छुआछूत या अश्पृश्यता के विचार को समाप्त करने पर बल दिया जाता है।
12. बेसिक शिक्षा क्रिया–प्रधान शिक्षा पद्यति है। छात्रों को अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त होता है।
13. बेसिक शिक्षा द्वारा बालक को विद्यालय, घर व परिवार में सामंजस्य स्थापित करने में सहायता मिलती है।

बुनियादी शिक्षा का क्रियान्वयन

सन् 1947 में दिल्ली में अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन हुआ जिसमें शिक्षा मंत्री श्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अनिवार्य शिक्षा पर बल दिया। बेसिक शिक्षा के कार्यक्रम के निर्धारण हेतु समिति बनाई गई तथा इस समिति की सिफारिशों को मान लिया गया। सन् 1948 में केन्द्रीय परामर्शदात्री परिषद् ने भारत सरकार को परामर्श देते हुए निम्न बातों की ओर सरकार को बल देने के लिए कहा–

1. नए बेसिक स्कूलों की स्थापना हो।
2. वर्तमान समय में चल रहे प्रारम्भिक स्कूलों को बेसिक स्कूलों में बदलना।
3. बेसिक शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
4. बेसिक स्कूलों के लिए सरल एवं सस्ता तरीका निकले।
5. बेसिक स्कूलों में प्रशिक्षित शिक्षक नियुक्त किए जाए।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में बेसिक शिक्षा के प्रसार के लिए कई योजनाएँ बनाई गई तथा ग्रामीण क्षेत्रों के साथ–साथ शहरी क्षेत्रों में भी बेसिक शिक्षा के विकास पर बल दिया गया। इसके उपरान्त सन् 1955 में बेसिक शिक्षा प्रसार नाम से एक नई योजना प्रारम्भ की गई। इस योजना की प्रमुख विशेषताएँ निम्न थी–

- नए बेसिक स्कूलों की स्थापना
- वर्तमान प्रारम्भिक स्कूलों का बेसिक स्कूलों में परिवर्तन
- प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना
- हस्तकला के शिक्षकों का प्रशिक्षण एवं प्रारम्भिक स्कूलों में हस्तकला के शिक्षण का प्रारम्भ

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में लगभग 48 हजार बेसिक स्कूलों की स्थापना हो गई थी। अखिल भारतीय ऐंग्लो–इण्डियन शिक्षा मण्डल के स्कूलों एवं पब्लिक स्कूलों में भी बेसिक शिक्षा प्रारम्भ हो गई।

बोध प्रश्न

टिप्पणी (क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 7—बेसिक शिक्षा के कोई दो प्रमुख आधारभूत सिद्धान्त बताइए?

____

____

प्रश्न 8—बेसिक शिक्षा में विषयों के सहसम्बन्ध (समवाय) पर क्यों बल दिया जाता है?

____

____

प्रश्न 9—बेसिक शिक्षा बालकों में श्रम के प्रति प्रेम की भावना किस प्रकार उत्पन्न करती है?

____

____

4.6 महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों की समीक्षा

गाँधी जी शिक्षा को मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार मानते थे और मनुष्य की किसी भी प्रकार की भौतिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति के लिये शिक्षा को बहुत आवश्यक मानते थे। गाँधी जी कहते थे कि बच्चे के शारीरिक विकास के लिये माँ का दूध जितना आवश्यक होता है उतना ही उसके मानसिक विकास के लिये शिक्षा। इसीलिये इन्होंने एक निश्चित आयु तक के बच्चों के लिये सामान्य शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य रुप से करने पर बल दिया और उसे निःशुल्क देने की बात की। गाँधी जी का मानना था कि यह शिक्षा विदेशी भाषा अंग्रेजी के माध्यम से नहीं दी जा सकती। बल्कि मातृ भाषा के माध्यम से ही दी जा सकती है। वैसे भी महात्मा गाँधी जी अंग्रेजी को मानसिक दाक्षता बढ़ाने वाली भाषा मानते थे। गाँधी जी शिक्षा के माध्यम से मनुष्य को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे, उसे अपनी रोजी–रोटी कमाने योग्य बनाना चाहते थे। इसीलिये गाँधी जी हस्तकौशलों की शिक्षा पर विशेष बल देते थे। साथ ही

गाँधी जी मनुष्य की अत्मिक उन्नति भी करना चाहते थे। इसलिये गाँधी जी शिक्षा द्वारा मनुष्य को सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पृश्यता निवारण, कायिक श्रम, सर्वधर्म सम्भव एवं विनम्रता जैसे ग्यारह व्रतों को पालन करवाने पर बल देते थे। गाँधी जी अपने इन्हीं विचारों के माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा का स्वरूप निश्चित किया तथा उसे बेसिक शिक्षा का नाम दिया। गाँधी जी के शिक्षा दर्शन की प्रमुख विशेषताएँ निम्न थी–

1. गाँधी जी प्रायोगिक शिक्षा सिद्धान्तों में विश्वास रखते थे। वे पहले शिक्षा सम्बन्धी प्रयोग करते थे फिर उसके आधार पर अपने विचारों को व्यक्त करते थे।
2. गाँधी जी आध्यात्मिक व्यक्ति थे। उनका शिक्षा दर्शन मुख्यतः आदर्शवाद पर आधारित है।
3. गाँधी जी बालक को शिक्षा के केन्द्र में रखते थे। अतः वे बालक को विशेष महत्व देते थे तथा मातृभाषा में प्रारम्भिक शिक्षा देने के पक्षधर थे।
4. वे शिक्षा के द्वारा बालक के सर्वांगीण विकास पर बल देते थे।
5. वे क्राफ्ट केन्द्रित शिक्षा के हिमायती (पक्षधर) थे। वे शिक्षा को उद्योग केन्द्रित बनाना चाहते थे तथा करके सीखने के सिद्धान्त पर बल देते थे। उद्योग केन्द्रित प्रशिक्षण को वे आर्थिक एवं शैक्षिक दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण मानते थे। शिक्षा के व्यावहारिक उपयोग पर वे बल देते थे।
6. वे बालकों को वास्तविक परिस्थितियों के बीच शिक्षा देने के पक्षधर थे जिससे उन्हें यथार्थ का ज्ञान प्राप्त हो सके।
7. शिक्षा के द्वारा वे आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे अर्थात् वे जीवकोपार्जन में सक्षम हो सकें।
8. गाँधी जी के अनुसार विद्यालय कार्य, प्रयोग एवं खोज का केन्द्र होता है। अतः पाठ्यक्रम क्रिया–प्रधान एव अनुभव पर आधारित होना चाहिए। इससे छात्र के अन्दर सीखे हुए ज्ञान का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग करने की क्षमता विकसित होती है।
9. गाँधी जी के अनुसार शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए अर्थात् शिक्षा ऐसी हो जिससे शिक्षक, विद्यालय तथा छात्र सभी अपना–अपना खर्च निकाल सकें।
10. उनका मानना था कि भारत की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था में सुधार शिक्षा की पुर्नसंरचना द्वारा ही सम्भव हो।

बोध प्रश्न

टिप्पणी— (क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 10— गाँधी जी शिक्षा को उद्योग केन्द्रित क्यों बनाना चाहते थे?

____

____

____

प्रश्न 11— गाँधी जी शिक्षा की पुर्नसंरचना क्यों चाहते थे?

____

____

____

4.7 रबीन्द्र नाथ टैगौर का जीवन —वृत्त एवं दर्शन

श्री रबीन्द्र नाथ टैगोर का जन्म कलकत्ता में 6 मई 1861 ई0 को एक समृद्ध परिवार में हुआ था। इनके पिता महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगौर बड़े विद्वान, कलाप्रेमी, महान दार्शनिक तथा ब्रह्म समाज के नेता थे। रबीन्द्र नाथ टैगौर की अधिकांश शिक्षा घर पर ही हुई। सन् 1878 ई0 में ये शिक्षा प्राप्त करने के लिये इंग्लैण्ड गये। परन्तु वहॉ मन न लगने के कारण सन् 1880 ई0 में वापस आ गये। इन्होंने शान्ति निकेतन नामक संस्था की स्थापना की जो आज 'विश्व भारती' के नाम से विख्यात है। सन् 1913 ई0 में इन्हें 'गीतांजली' की रचना पर 'नोबल पुरस्कार' प्राप्त हुआ। महात्मा गाँधी ने इन्हें गुरूदेव की उपाधि दी। सन् 1940 ई0 में आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी ने इन्हें डी0लिट् की उपाधि प्रदान की। सन् 1941 ई0 में इन्होंने शरीर त्याग दिया।

रबीन्द्र नाथ टैगौर का दर्शन

रबीन्द्र नाथ टैगौर एक उच्च कोटि के दार्शनिक थे। उनके व्यक्तित्व में कवि, संगीतकार, उपन्यासकार, कहानीकार, निबन्ध—लेखक, दार्शनिक, शिक्षाशास्त्री, राष्ट्र उन्नायक तथा विश्व बन्धुत्व की भावना का समन्वय था। गुरूदेव उपनिषदीय दर्शन के पोशक थे। उपनिषदीय दर्शन को भी इन्होंने मानवीय दृष्टिकोण से देखा—समझा है। गुरूदेव आत्मा—परमात्मा में विश्वास करते थे। इसलिये कुछ विद्वान इन्हें आदर्शवादी मानते हैं। गुरूदेव इस भौतिक जगत को वास्तविक मानते थे, यथार्थ मानते थे, इसलिये कुछ विद्वान इन्हें यथार्थवादी मानते हैं। गुरूदेव प्रकृति के प्रेमी थे। ये उसे

सरल, शुद्ध और आनन्ददायी मानते थे इसलिये कुछ विद्वान इन्हें प्रयोजनवादी मानते हैं। गुरूदेव पर उपनिषदों का प्रभाव अधिक था और इन्होंने उपनिषदीय दर्शन को ही मानवीय दृष्टिकोण से देखने–समझने का प्रयत्न किया है। उपनिषदों में विवेचित विश्ववोध की भावना का भावना को टैगौर ने आत्मसात् किया। इनका दार्शनिक चिन्तन पूर्णरूपेण भारतीय है। जिसमें सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की भवना निहित है। इसी कारण से इनके दर्शन को विश्वबोध दर्शन भी कहा जाता है। गुरूदेव का मानवतावादी दर्शन समस्त शैक्षिक दर्शन में भी प्रतीत होता है। उन्हें भारतीय प्रकृतिवाद का प्रणेता कहा जा सकता है। उन्होनें मानव कल्याण को सर्वोच्च स्थान दिया। आध्यात्मिक प्रकृतिवाद उनके जीवन–दर्शन में दिखाई देता है। टैगौर जी को प्रकृति में अनन्त की सत्ता का अभास होता है। उन्हें सम्पूर्ण जीव–जगत में वही एक सत्ता दिखाई देती है। इसीलिए मानव मात्र की एकता में उनका अनन्त विश्वास है। वे कृत्रिम सामाजिक परम्पराओं के विरोधी थे। गुरूदेव समन्वयवाद में विश्वास रखते थे। उनके विचारों में भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन के प्रति समन्वय, पुरब एवं पश्चिम के बीच समन्वय आदि दिखाई देता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी (क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्त र दीजि ए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 12–रबीन्द्र नाथ टैगोर को नोबेल पुरस्कार किस रचना के लिए एवं कब प्राप्त हुआ?

____

____

____

प्रश्न 13–गुरुदेव ने किस संस्था की स्थापना की?

____

____

____

4.8 रबीन्द्र नाथ टैगोर के शिक्षा सम्बन्धी विचार

शिक्षा के क्षेत्र में रबीन्द्र नाथ टैगोर के अपने अनुभव थे। गुरूदेव शिक्षा को मनुष्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मानते थे। इनके अनुसार शिक्षा वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य भौतिक प्रगति करता हैं तथा आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त करता है। गुरूदेव के अनुसार, ''वास्तविक शिक्षा वह है जो उपयोगी वस्तुओं

की वास्तविक प्रकृति को जानने और उनके उपयोग करने और उनसे वास्तविक जीवन की रक्षा करने में सहायता करती है। गुरूदेव सृष्टि के कण–कण में ईश्वर को व्याप्त मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य इस आध्यात्मिक एकात्म भाव की अनुभूति करता है। इनकी दृष्टि से यह शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य अथवा कार्य है। इनके अनुसार ''सर्वोच्च शिक्षा वह है जो हमारे जीवन और समस्त सृष्टि के बीच समरसता स्थापित करें।''

टैगौर ने ''शिक्षा' शब्द का प्रयोग व्यापक रूप में किया है। उनके अनुसार, ''सर्वोच्च शिक्षा वह है जो सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है।'' सम्पूर्ण सृष्टि के अन्तर्गत संसार की जड़ और चेतन, सजीव और निर्जीव सभी वस्तुयें आ जाती हैं। शिक्षा का कार्य हमारी समस्त शक्तियों को पूर्ण रूप से विकसित करना है ताकि इन सब वस्तुओं से जीवन का सामंजस्य हो सके। उन्होंने शिक्षा को विकास की प्रक्रिया माना है। शिक्षा द्वारा शक्ति का शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा व्यावसायिक विकास होता है। टैगौर ने प्राचीन भारतीय आदर्श ''सा विद्या या विमुक्तये' का समर्थन किया है। उनके अनुसार शिक्षा केवल जीवन और मरण से मुक्ति प्रदान नहीं करती वरन् आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और मानसिक दक्षता से भी मुक्ति दिलवाती है।

4.8.1 शिक्षा के उद्देश्य

टैगौर जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होना चाहिये। शिक्षा को विकासोन्मुखी होना चाहिये। सर्वांगीण विकास से तात्पर्य बालक के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास, व्यावसायिक विकास आदि से है। शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य बालक के शरीर का स्वस्थ और स्वाभाविक विकास करना है। इसके लिये उन्हें सुखद वातावरण में स्वतन्त्रतापूर्वक खेलने–कूदने एवं व्यायाम का अवसर देना चाहिये। बौद्धिक विकास के अन्तर्गत बालक की विचार, चिन्तन, तर्क, स्मरण, कल्पना आदि शक्तियों को व्यवहार में लाने के लिये प्रेरित करना चाहिये। अनुशासन, आन्तरिक शक्ति, आन्तरिक ज्ञान, धैर्य, शान्ति, ध्यान, साधना आदि से बालकों को परिचित कराना चाहिये ताकि उनका नैतिक और आध्यात्मिक विकास हो सके। इनका मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को आत्मनिर्भर, आदर्श नागरिक बनाना होना चाहिये।

4.8.2 शिक्षा का पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम में उन सभी विषयों का समावेष होना चाहिये जिसके द्वारा शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक, वैयक्तिक तथा सामाजिक विकास हो सके। पाठ्यक्रम जीवन के अनुभवों से जुड़ा होना चाहिये जिससे बालक अनुभवों द्वारा ज्ञान का संचय कर सकें। पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों के साथ–साथ अतिरिक्त क्रियाओं का भी समावेश होना चाहिये। पाठ्यक्रम ऐसा हो जिससे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं

का विकास हो। इस प्रकार टैगौर जी ने पाठ्यक्रम में संस्कृत, लैटिन, जपानी, रूसी, अरबी, फारसी आदि भावाओं के साथ–साथ इतिहास, भूगोल, विज्ञान, प्रकृति अध्ययन, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शन, धर्म, मनोविज्ञान, तकनीकी विषय, संगीत, नृत्य आदि को सम्मिलित करने का सुझाव दिया। इसके अलावा नाटक–अभिनय, भ्रमण, बागवानी, प्रयोगशाला कार्य, चित्रण, खेल–कूद, व्यायाम, धार्मिक क्रियाएं, समाज–सेवा, छात्र–स्वशासन आदि क्रियाओं को भी पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाने पर बल दिया। इस प्रकार टैगोर जी क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम पर बल देते थे।

4.8.3 शिक्षण विधि

टैगोर ने प्रचलित शिक्षा प्रणाली को अप्रभावशाली तथा दोषपूर्ण बताया तथा शिक्षण विधि को जीवन की वास्तविकता से सम्बन्धित करने की आवश्यकता पर बल दिया। इन्होंने अपने समय की पुस्तकीय एवं कथन विधियों का कड़ा विरोध किया और इस बात पर बल दिया कि बच्चों को जो कुछ भी सिखाया जाय उन्हें जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में रखकर, स्वयं करके स्वयं के अनुभवों द्वारा सिखाया जाय। टैगोर जी ने शिक्षण की मौखिक विधि, स्वाध्याय विधि, विश्लेषण एवं संश्लेषण विधि, क्रिया विधि तथा प्रयोग विधि पर अधिक बल दिया। टैगोर जी कहते थे कि मनुष्य को जीवन में अधिक से अधिक सक्रिय होना चाहिये। इससे वह अपने अन्तर्निहित गुणों को व्यक्त करता है और दूर की वस्तुओं को अपने निकट समेटता है। इस प्रकार क्रियाशील बन कर अपनी वास्तविकताओं को प्रकट कर मनुष्य बराबर नई–नई वस्तुओं का अनुभव करता है। इसीलिये इनका विचार है कि क्रिया विधि द्वारा शिक्षा दी जाये। विज्ञान, कला एवं अन्य व्यावहारिक विषयों के लिये प्रयोग विधि को उपयोगी माना है।

4.8.4 अनुशासन

गुरूदेव अनुशासन को महत्व देते थे। अनुशासन को वाह्य व्यवस्था के रूप में नहीं बल्कि आन्तरिक भावना के रूप में स्वीकार करते थे। अनुशासन के लिये दण्ड व्यवस्था का ये विरोध करते थे। इनका मानना था कि दण्ड से छात्र उद्दण्ड होते हैं तथा उनमें विरोध की भावना का विकास होता है। ये आत्मानुशासन की बात करते थे। जिसके लिये ये उच्च सामाजिक पर्यावरण की आवश्यकता पर बल देते थे। ये कहते थे कि यदि विद्यालयों के शिक्षक ज्ञानी एवं चरित्रवान हैं और बच्चों के साथ प्रेम और सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करते हैं तो बच्चे स्वयं अनुशासन का पालन करते हैं। स्वानुशासन के विकास हेतु विद्यालयों में खेल–कूद तथा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन को आवश्यक समझते थे। इनके द्वारा स्थापित विश्व भारती विश्वविद्यालय का पूरा वातावरण संस्कार प्रधान है। वहां के अध्यापक और विद्यार्थी सभी सादा जीवन जीते हैं और सभी पूर्णरूप से अनुशासित रहते हैं।

4.8.5 शिक्षक

टैगौर के अनुसार शिक्षक को ज्ञानी, संयमी और बच्चों के प्रति समर्पित होना चाहिये। इनका मानना था कि विद्यार्थी शिक्षकों के द्वारा दिये जाने वाले ज्ञान की अपेक्षा

उनके मनोभावों और आचरण को शीघ्र ग्रहण करते हैं। इसीलिये अध्यापकों को ज्ञानी, ब्रह्मचारी, चरित्रवान और आदर्श आचरण करने वाला होना चाहिये। बच्चों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखते हुये शिक्षक को शिक्षा देनी चाहिये तथा बालकों के साथ प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिये। शिक्षकों में राष्ट्र प्रेम की भावना होनी चाहिये तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव भी होना चाहिये। क्योंकि ऐसी ही शिक्षक बच्चों में राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता की भवना का विकास कर सकते हैं।

4.8.6 विद्यार्थी

विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला होना चाहिये। ब्रह्मचर्य व्रत में इन्द्रिय निग्रह, मन, वचन व कर्म की शुद्धि तथा सादा एवं प्राकृतिक जीवन का विशेष महत्व है। टैगोर जी कहते थे कि विद्यार्थियों को नित्य प्रातःकाल उठना चाहिये, अपने शरीर की सफाई करनी चाहिये, नियमों एवं आदेशों का पालन करना चाहिये, व्यवहार में विनम्र होना चाहिये, प्रकृति एवं सौन्दर्य का उपासक होना चाहिये और सांसारिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति का इच्छुक होना चाहिये। विद्यार्थियों को स्व प्रेरित होकर तथा गुरू में श्रद्धा रखकर सीखने के लिये आगे बढ़ना चाहिये। इन्हें असभ्य, दोषपूर्ण तथा निन्दनीय आचार–विचार से दूर रहना चाहिये।

4.8.7 विद्यालय

विद्यालय प्राचीन गुरू आश्रमों की भांति नगर के कोलाहल से दूर प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थित होना चाहिये। इनका मानना था कि शान्त वातावरण में ही शिक्षण कार्य अच्छे ढंग से किया जा सकता है। विद्यालय को राष्ट्र का प्रतिनिधि होना चाहिये और इसमें राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति के सही शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। साथ ही साथ अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की भाषा एवं संस्कृतियों की शिक्षा की व्यवस्था भी होनी चाहिये ताकि विद्यार्थी विश्वबोध कर सकें। विश्व भारती विश्वविद्यालय इसका एक उत्तम उदाहरण है।

4.9 रबीन्द्र नाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन का समीक्षा

रबीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा स्थापित विश्वभारती उनके व्यावहारिक शिक्षाशास्त्री होने का परिचय देता है। विश्वभारती की सृजनात्मकता, मानववाद, विश्वबन्धुत्व, कलात्मकता, सौदंर्यबोध, प्राकृतिक जीवन, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आदि आधुनिक शिक्षण संस्थाओं के लिए प्रेरणा स्त्रोत है। गुरूदेव एक उच्च कोटी के शिक्षाशास्त्री थे तथा शिक्षाशास्त्र में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। उनके शिक्षा सम्बन्धी विचार उनके स्वयं के सिद्धान्तों की खोज है। उन्होनें शिक्षा जगत में नवीन प्रयोग किए। वे भारतीय व पाश्चात्य विचारों के समन्वय पर बल देते थे। उनके शैक्षिक विचार उनके स्वयं के अनुभवों पर आधारित थे। उनकी बुद्धि अत्यन्त तीव्र थी तथा वे किसी पदार्थ की मूल प्रकृति एवं उसके वास्तविक स्वरूप का पता लगाने में निपुण थे।

टैगोर जी के शिक्षा दर्शन में प्रकृतिवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है। गुरूदेव ने शिक्षा के सभी स्तरों के सम्बन्ध में अपनी अनुभूतियों से सिद्धान्तों की चर्चा की। वे मानवतावादी थे तथा मानव जाति का उद्धार करना चाहते थे। गुरूदेव बालकों में अन्तर्राष्ट्रीय भावना का उजागर करना चाहते थे तथा अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के बहुत बड़े समर्थक थे। टैगोर जी का देश प्रेम अन्तर्राष्ट्रीय के मार्ग में बाधक नहीं था। वे विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करना चाहते थे।

टैगोर जी के शैक्षिक विचारों के आधार मुख्यतः दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक थे। इसके अतिरिक्त सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ भी उनके शैक्षिक विचारों की आधारशिला थी। उनके अनुसार नवीन वैज्ञानिक अविष्कार भी शिक्षा को प्रभावित करते है। पाठ्यक्रम भी उसी के अनुरूप होना चाहिए।

गुरूदेव मानवतावाद के पक्षधर एक आधुनिक आदर्शवादी थे। वे बालकों को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में थे। वे समाज के लिए उपयोगी शिक्षा देना चाहते थे जिससे समाज को अच्छे नागरिक प्राप्त हो सके। वे भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के पुनरूत्थान के समर्थन में थे क्योंकि वे मानवीय मूल्यों के तिरस्कार से अत्यन्त दुःखी थे। वे शिक्षा के क्षेत्र में राज्य की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते थे। उनका मानना था कि शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण केवल उतना ही होना चाहिए जिससे व्यक्ति का व्यक्तित्व नष्ट न हो जाए। वे एक सीमा तक पाश्चात्य एवं तकनीकी शिक्षा देने के पक्ष में थे। 6 मई, 1922 को शान्ति निकेतन में ही 'विश्वभारती' की स्थापना हुई। जिसके तीन उद्देश्य हमें उनके शैक्षिक विचारों से अवगत कराते हैं–

1. पूरब एवं पश्चिम की भिन्न–भिन्न संस्कृतियों को उनके मौलिक एकता के आधार पर निकट ले आना।
2. पश्चिमी विज्ञान एवं संस्कृति से परिचित होना।
3. ग्रामीण जीवन में सुख समृद्धि लाने के लिए प्रयास करना।
4. पूरब की विद्याओं को केन्द्रीभूत करना।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि रबीन्द्र नाथ टैगोर ने भौतिकवादी प्रकृतिवाद के स्थान पर आध्यात्मिक प्रकृतिवाद के पक्षधर हैं। उनके विचारों में बनावटी सामाजिक परम्पराओं के प्रति एक आक्रोश एवं प्रतिक्रिया दिखाई देती है। उनके शैक्षिक विचारों में कल्पना की रंगीनता है, आदर्श दैवी लोक का स्वप्न है तथा सुन्दर जीवन की झॉकी है। उनके द्वारा बताये गये मानववाद, विश्वबन्धुत्व, सृजनात्मकता, स्वतंत्रता, सौन्दर्यबोध आदि से संबन्धित विचार वर्तमान शिक्षा के लिए की व्यवस्था करने एवं नीति निर्माण के लिए प्रकाश स्तम्भ है जो आदर्श एवं उन्नत भारत के पुनः निर्माण के लिए अत्यंत उपयोगी है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी— (क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 14—टैगोर जी के अनुसार सर्वोच्च शिक्षा क्या है?

प्रश्न 15—टैगोर जी किस प्रकार के पाठ्यक्रम पर बल देते थे?

प्रश्न 16—गुरुदेव के अनुसार शिक्षक को कैसा होना चाहिए?

प्रश्न 17—गुरूदेव के शिक्षा दर्शन के मुख्य आधार क्या थे?

प्रश्न 18—विश्वभारती की स्थापना कब हुई?

4.10 सारांश

गाँधी जी एक जन सेवक महामानव के रूप में उच्च कोटि के दार्शनिक और शिक्षाशास्त्री थे। सत्य, अहिंसा, प्रेम और कर्म ही उनके जीवन दर्शन का आधार था। उन्होंने आजन्म इन्हीं सिद्धान्तों का पालन किया और मानव को संदेश दिया कि इन्हीं सिद्धान्तों पर चलने में उसकी भलाई है। गाँधी जी ने नैतिकता को मानव—जीवन में महत्वपूर्ण स्थान दिया। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। शिक्षा का पाठ्यक्रम बालक के जीवन की समस्याओं से सम्बन्धित होना चाहिये। क्रिया विधि द्वारा सीखने को अधिक उपयुक्त शिक्षण विधि मानते थे। मुक्तयात्मक तथा प्रभावात्मक अनुशासन पर बल देते थे न कि दण्डात्मक और दमनात्मक अनुशासन पर। गाँधी जी के शिक्षा दर्शन पर आदर्शवाद, यथार्थवाद,

प्रकृतिवाद और प्रयोजनवाद सभी का कुछ न कुछ प्रभाव दिखाई पड़ता है लेकिन मूलतः वह आदर्शवादी विचारधारा से अधिक प्रभावित हैं। 'बेसिक शिक्षा योजना' उनकी महत्वपूर्ण देन है।

रबीन्द्र नाथ टैगौर महान भारतीय दार्शनिक और शिक्षाशास्त्री थे। उनके शिक्षा दर्शन का मूल सिद्धान्त प्रत्येक वस्तु के साथ एकल की भावना है। टैगौर प्रकृति के अनन्य उपासक थे। इसीलिये वे बन्द कमरे की अपेक्षा खुले प्राकृतिक वातावरण में शिक्षा देना चाहते थे। टैगौर मानवता में अटूट विश्वास रखते थे। अतः उनके अनुसार शिक्षा का कार्य बालक में मानवता का विकास करना है। टैगौर प्राचीन गुरूकुल प्रणाली में विश्वास रखते हैं। उनकी आस्था ''सादा जीवन उच्च विचार'' तथा ''ब्रह्मचर्य पालन'' के सिद्धान्त में है। शिक्षक के सम्बन्ध में टैगौर का विचार है कि उसे सदा ज्ञान की खोज में लगा रहने वाला तथा अच्छा पथ–प्रदर्शक होना चाहिये। शिक्षा के क्षेत्र में उनका सबसे बड़ा योगदान ''विश्व भारती'' है जिसमें उनके समस्त शैक्षिक विचारों की झलक देखने को मिलती है। टैगौर जी की सबसे महत्वपूर्ण देन उनका समन्वयवाद है। भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन के बीच समन्वय, पूर्व–पश्चिम के बीच समन्वय आदि से संबन्धित विचार वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रासंगिक हैं।

4.11 अभ्यास प्रश्न

1. महात्मा गाँधी जी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
2. गाँधी जी द्वारा बताई गयी शिक्षण विधि की प्रमुख विशेषताओं को बताइए।
3. शिक्षा के क्षेत्र गाँधी जी के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
4. महात्मा गाँधी जी के शिक्षा संबन्धी विचारों का मूल्यांकन कीजिए।
5. बेसिक शिक्षा की प्रमुख विशेषताओं को बताइए।
6. शिक्षा के उद्देश्यों के संदर्भ में रबीन्द्र नाथ टैगोर के विचारों की विवेचना कीजिए।
7. रबीन्द्र नाथ टैगोर के अनुशासन संबन्धी विचारों पर प्रकाश डालिए।
8. रबीन्द्र नाथ टैगोर का भारतीय शिक्षा में योगदान बताइए।
9. टैगोर के मानववादी दृष्टिकोण का उल्लेख कीजिए।

4.12 चर्चा के बिन्दु

1. छात्राध्यापक आपस में बेसिक शिक्षा की वर्तमान समय में प्रासंगिकता पर चर्चा करेगें।
2. छात्राध्यापक आपस में 'विश्वभारती' की शिक्षा व्यवस्था पर चर्चा करेंगें।

4.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. गाँधी जी गीता को आध्यात्मिक ज्ञान का श्रेष्ठतम ग्रन्थ मानते थे।
2. गाँधी जी ने ज्ञान को दो भागों– भौतिक ज्ञान एवं आध्यात्मिक ज्ञान में विभक्त किया।
3. गाँधी जी के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मज्ञान, ईश्वर प्राप्ति एवं मोक्ष है।
4. गाँधी जी करके सीखने एवं अपने अनुभव द्वारा सीखने को उत्तम मानते थे।
5. गाँधी जी विद्यालयों को सामुदायिक केन्द्र की भाँति बनाने पर इसलिए बल देते थे क्योंकि उनका मानना था कि विद्यालयों में विभिन्न क्रियाएं होनी चाहिए एवं समुदाय के लोगों को यहाँ पढ़ने एवं कार्य करने की सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए।
6. गाँधी जी के अनुसार वास्तविक अनुशासन आत्मप्रेरित होनी चाहिए।
7. बेसिक शिक्षा के दो प्रमुख आधारभूत सिद्धान्त है–

   (क) सात वर्षों तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा

   (स) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा
8. बेसिक शिक्षा में विषयों के सहसम्बन्ध पर बल इसलिए दिया जाता है जिससे सभी विषयों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिले।
9. बेसिक शिक्षा में हाथ के काम के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। अतः बालकों में श्रम के प्रति प्रेम का भाव जागृत होता है।
10. गाँधी जी शिक्षा को उद्योग केन्द्रित इसलिए बनाना चाहते थे जिससे भावी जीवन में बालक जीविकोपार्जन के योग्य बन सके।
11. गाँधी जी का मानना था कि भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था में सुधार तभी सम्भव है जब शिक्षा की पुर्नसंरचना हो।
12. रबीन्द्र नाथ टैगोर को नोबेल पुरस्कार उनकी रचना ''गीतांजली'' के लिए वर्ष 1913 में मिला था।
13. गुरूदेव ने विश्व–भारती की स्थापना की थी।
14. टैगोर जी के अनुसार सर्वोच्च शिक्षा वह है जो हमारे जीवन और समस्त दृष्टि के बीच समरसता स्थापित करें।
15. टैगोर जी क्रिया–प्रधान पाठ्यक्रम पर बल देते थे।
16. गुरूदेव के अनुसार शिक्षक को ज्ञानी, संयमी तथा बच्चों के प्रति समर्पित होना चहिए।
17. गुरूदेव की शिक्षा दर्शन के मुख्य आधार दर्शन, मनोविज्ञान, सामाजिक परिस्थितियाँ, राजनैतिक परिस्थितियाँ एवं वैज्ञानिक आविष्कार थे।

18. विश्वभारती की स्थापना वर्ष 1922 में हुई।

4.14 कुछ उप योगी पुस्तकें

- **ओड, ए ल0 के0 (2006),** शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- **गॉधी, ए म0 के0 (1951),** बेसिक एजुकेशन, अहमदाबाद : नवजीवन पब्लिशिंग हाउस।
- **कबीर, हुमायूॅ (1962),** इण्डियन फिलॉसफी आफ एजुकेशन, बाम्बे : आसिया पब्लिशिंग हाउस।
- **चौबे, सरयू प्रसाद एवं चौबे, अखिलेश (2013),** आधुनिक शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।
- **टैगोर, आर0 ए न0 (1951),** साधना, न्यूयार्क : मैकमिलन एण्ड कम्पनी।
- **पटेल, ए म0 ए स 0 (1963),** एजुकेशनल फिलॉसफी आफ महात्मा गॉधी , अहमदाबाद : नवजीवन पब्लिशिंग हाउस।
- **पाण्डेय राम सकल (2009),** विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
- **पाण्डेय राम सकल (2009),** शिक्षा दर्शन, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
- **पाण्डेय राम सकल (2004),** भारतीय शिक्षा दर्शन, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
- **लाल, रमन बिहारी (2003),** शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, मेरठ रस्तोगी पब्लिकेषन्स।
- **शर्मा, आर0 पी0 (1993),** आधुनिक पाश्चात्य दर्शन, पटना : भारती भवन।
- **सिंह, बी0 ए न0 (1994),** पाश्चात्य दर्शन, वाराणसी : स्टूडेन्टस फ्रेण्डस एण्ड कम्पनी।
- **सिंह, रामपाल (2011)** उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षा, आगरा : अग्रवाल प्रकाशन।

इकाई–5 : महर्षि श्री अरविन्द एवं स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचार

संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 महर्षि श्री अरविन्द का जीवन–वृत्त एवं दर्शन

5.04 महर्षि श्री अरविन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचार

5.4.1 शिक्षा के उद्देश्य

5.4.2 शिक्षा की पाठ्यचर्या

5.4.3 शिक्षण विधियाँ

5.4.4 अनुशासन

5.4.5 शिक्षक

5.4.6 शिक्षार्थी

5.4.7 विद्यालय

5.05 महर्षि श्री अरविन्द के शैक्षिक विचारों की समीक्षा

5.06 स्वामी विवेकानन्द का जीवन–वृत्त एवं दर्षन

5.07 स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचार

5.7.1 शिक्षा के उद्देश्य

5.7.2 शिक्षा की पाठ्यचर्या

5.7.3 शिक्षण विधियाँ

5.7.4 अनुशासन

5.7.5 शिक्षक

5.7.6 शिक्षार्थी

5.7.7 विद्यालय

5.08 स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों की समीक्षा

5.09 सारांश

5.10 अभ्यास प्रश्न

5.11 चर्चा के विन्दु

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

महायोगी श्री अरबिन्द वर्तमान युग के उच्च साधक एवं भारतीय ऋषि परम्परा की उज्ज्वल कड़ी है। उनका दर्शन उपनिषदों के दर्शन के समकक्ष है। उनका महान ग्रन्थ ''लाइफ डिवाइन'' विश्व भर में प्रसिद्ध है। उन्होनें समन्वित या एकीकृत शिक्षा (Integral Education) पर बल दिया। वे आध्यात्मिक राष्ट्रवाद (Spritual Nationalism) पर भी बल देते थे। पाण्डिचेरी में श्री अरबिन्द का विश्व प्रसिद्ध आश्रम है जो अब एक विश्वविद्यालय के रूप में है।

हमारे देश के महान आध्यत्मिक विद्वानों में से एक स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय संस्कृति एवं धर्म को विदेशों में भी सम्मान दिलाया। उन्होनें अपने गुरू स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सिद्धान्तों का प्रचार करे के लिए रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। शिक्षा जगत में भी उनका विशेष योगदान है।

भारतीय शैक्षिक विचारकों की यह पाँचवी इकाई है। इस इकाई में श्री अरविन्द तथा स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों के विभिन्न पहलुओं का वर्णन करेगें। इसके अतिरिक्त श्री अरविन्द तथा स्वामी विवेकानन्द के जीवन–वृत्त का वर्णन करेंगें। इसी खण्ड में इनके दर्शन तथा शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण को विस्तार से वर्णन किया गया है। इस इकाई के बाद आपको श्री अरबिन्द तथा स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों को समझने में सुविधा होगी।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्यय न करने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- श्री अरबिन्द के जीवन–वृत्त को जान सकेंगे।
- श्री अरबिन्द के शैक्षिक विचारों को समझ सकेंगे।
- श्री अरबिन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का विस्तार से वर्णन कर सकेंगें।
- स्वामी विवेकानन्द के जीवन–वृत्त को जान सकेंगे।
- स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों को समझ सकेंगे।
- स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का विस्तार से वर्णन कर सकेंगें।
- भारतीय शिक्षा में श्री अरविन्द के योगदानों को जान पायेगें।
- भारतीय शिक्षा में स्वामी विवेकानन्द के योगदानों का जान पायेगें।

5.3 श्री अरविन्द की जीवन –वृत्त एवं दर्शन

श्री अरविन्द का जन्म सन् 1872 ई में 15 अगस्त को कलकत्ता के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। इनके पिता श्री कृष्णधन घोष कलकत्ता के प्रसिद्ध डाक्टर थे और पाश्चात्य संस्कृति के प्रशंसक थे। इनके घर में अंग्रेजी भाषा का उपयोग किया जाता था। यहाँ तक कि नौकर भी अंग्रेजी भाषा बोलते थे। इनके पिता बड़े ही दयालु प्रवृत्ति के थे। श्री अरविन्द का लालन–पालन परिवार में नही हुआ। उनके पिता ने उन्हें 6 वर्ष की आयु में ही इग्लैंड भेज दिया था। उन्होनें इग्लैण्ड में रहते हुए 14 वर्ष की आयु तक पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की। अरविन्द ने ग्रीक व लैटिन भाषा के साथ फ्रेंच, जर्मन तथा इटैलियन आदि यूरोपीय भाषाओं को भी सीखा। सन् 1890 में वे कैम्ब्रिज के किंग्स कॉलेज में भर्ती हुए। वे भारतीय सिविल सर्विस (I.C.S.) की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए एवं ग्यारहवाँ स्थान भी प्राप्त किया। परन्तु उन्हे अंग्रेजी सरकार की दासता स्वीकार नहीं थी। अतः वह घुड़सवारी में सम्मिलित नहीं हुए और स्वयं को भारतीय सिविल सर्विस के लिए अनुपयुक्त कर लिया। इसके उपरान्त 1893 ई0 में वे भारत लौट आए। भारत आने पर तेरह वर्षों तक उन्होनें बड़ौदा के गायकवाड़ नरेश सायाजीराव के यहाँ नौकरी की। उन्होंने संस्कृत व अन्य भाषाओं को भी सीखा। सन् 1905 ई0 में बंग–भंग आन्दोलन के पश्चात् श्री अरविन्द ने नौकरी छोड़ दी एवं पूरी तरह से राजनीति में आ गए। उन्होंने वन्देमातरम्, कर्मयोगिनी एवं धर्म आदि समाचार पत्रों के द्वारा देश में राष्ट्रीयता की भावना जागृत की। उन्होनें स्वराज को भारत का लक्ष्य घोषित किया। कर्मयोगिनी का सम्पादन उन्होनें स्वयं किया।

स्वतंत्रता संग्राम में गरम दल की अगुवाई करते हुए वे कई बार जेल भी गए। अलीपुर जेल में स्वप्न में उन्हें ईश्वरीय आत्मा के दर्शन हुए। अतः सन् 1915 में जेल से छूटते ही उन्होनें राजनैतिक गतिविधियाँ छोड़ दी एवं आध्यात्म से जुड़ गए। आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए वे पाण्डिचेरी चले गए जो उस समय फ्रेन्च का उपनिवेश था। पाण्डिचेरी में उन्होनें एक आश्रम बनाया जो अब भी अरविन्द आश्रम के नाम से प्रसिद्ध है। श्री अरविन्द चालीस वर्षों तक सर्वांग योग की साधना करते रहे। सन् 1950 ई० में इन्होंने अपना शरीर त्याग दिया।

श्री अरविन्द का दर्शन

श्री अरविन्द एक दार्शनिक के रूप में अधिक विख्यात हैं। ये गीता के अनन्य भक्त थे। इन्होनें गीता के कर्म योग एवं ध्यान योग की वैज्ञानिक व्याख्या की है। इनकी दृष्टि से मानव एवं दिव्य शक्ति का संयोग ही योग है। दूसरे शब्दों में योग वह साधन है जिससे मानव दिव्य शक्ति की अनुभूति करता है। श्री अरविन्द मानव

को योग द्वारा आत्मतत्व की अनुभूति कर ब्रह्म में लीन होने का उपदेश नहीं देते थे। बल्कि इसके द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति को अज्ञान से ज्ञान, अंधकार से प्रकाश और मृत्यु से अमृत्व की ओर ले जाना चाहते थे। इसीलिए इनकी विचारधारा को सर्वांग योग दर्शन कहा जाता है। श्री अरबिन्द के अनुसार इस श्रृष्टि का कर्ता ईश्वर है। आत्मा को अरविन्द ने गीता के पुरुष रूप में स्वीकार किया है। मनुष्य को श्री अरविन्द ने विकसित प्राणी के रूप में लिया है। श्री अरबिन्द के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य सत् + चित + आनन्द अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति होता है। मनुष्य के विकास के संबन्ध में श्री अरविन्द का मत है कि उसके भौतिक विकास के लिये द्रव्य ज्ञान आवश्यक होता हैं जो इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। मनुष्य के आत्मिक विकास के लिये आत्म ज्ञान आवश्यक होता है जो योग की क्रिया द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। श्री अरविन्द इन सबके लिये उसी के अनुकूल उचित शिक्षा आवश्यक समझते थे। इनकी दृष्टि से मनुष्य को शिक्षा द्वारा सर्वप्रथम अपने द्रव्य एवं प्राण स्वरूप का ज्ञान करना चाहिये और उसके बाद अतिमानस् आनन्द ,चित्त और सत् का ज्ञान कराना चाहिये। इसके लिये ये स्वस्थ्य शरीर, निर्मल मन और संयमी जीवन आवश्यक समझते थे। श्री अरविन्द के अनुसार भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों तत्वों में मूल तत्व ब्रह्म ही है। इसलिये भौतिक एवं अध्यात्मिक तत्वों के अभेद को जानना ही सच्चा ज्ञान है। इन्होनें ज्ञान को दो भागों द्रव्यज्ञान और आत्मज्ञान में बांटा है। द्रव्यज्ञान को वे साधारण ज्ञान मानते थे और आत्म ज्ञान को उच्च ज्ञान। इनकी दृष्टि से वस्तु जगत का ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों द्वारा और आत्म तत्त्व का ज्ञान अंतः करण द्वारा होता है। आत्म तत्व के ज्ञान के लिये ये योग की क्रिया को आवश्यक मानते थे। उनका महान ग्रन्थ ''लाइफ डिवाइन'' है जिसमें सत्य के साक्षात्कार का उल्लेख है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

प्रश्न–1 : श्री अरबिन्द आश्रम कहाँ स्थित है ?

____

____

____

प्रश्न–2 : श्री अरविन्द ने किस समाचार पत्र का सम्पादन स्वंय किया ?

____

____

____

प्रश्न–3 : भारत लौटने पर श्री अरविन्द ने अध्यापन कार्य कहाँ किया था ?

5.4 श्री अरविन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचार

श्री अरबिन्द एक दार्शनिक के रूप में अधिक विख्यात हैं, परन्तु अपने दार्शनिक सिद्धान्तों को मनुष्य जीवन में उतारने के लिये इन्हें एक विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता प्रतीत हुई। उस समय राष्ट्र उत्थान हेतु भी तत्कालीन शिक्षा उपयुक्त नहीं थी। इसलिये इन्होंने शिक्षा की एक राष्ट्रीय योजना प्रस्तुत की। इनके शिक्षा सम्बन्धी ये विचार मुख्य रूप से इनकी दो पुस्तकों 'नेशनल सिस्टम ऑफ एजूकेशन' और 'ऑफ एजूकेशन' में देखने को मिलते हैं।

श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का अर्थ है पूर्णता की प्राप्ति है। श्री अरविन्द शिक्षा द्वारा मनुष्य का भौतिक, प्राणिक, मानसिक, अन्तरात्मिक और आध्यात्मिक विकास करना चाहते थे। इनके शब्दों में ''शिक्षा मानव के मस्तिक और आत्मा की शक्तियों का निर्माण करती है और उसमें ज्ञान्, चरित्र और संस्कृति को जागृत करती है।''

श्री अरविन्द के मनुष्यों को मुख्य रूप से 3 बातें सिखाना चाहिए। पहली, मनुष्यों को यह सिखाना कि जिन तथ्यों के आधार पर उन्हें निर्णय करना है उनका अवलोकन कैसे करे ंऔर उन्हें ठीक तरह से कैसे जानें। दूसरी, उन्हें सफल रूप में भली–भांति सोचना सिखाया जाये। तीसरी उन्हें उनके अपने तथा व्यापक भले के लिये अपने ज्ञान और विचार का प्रभावकारी रूप से उपयोग करना सिखाया जाये। श्री अरविन्द के शिक्षा दर्शन के आधारभुत सिद्धान्त निम्नलिखित है–

1. शिक्षा बाल–केन्द्रित होनी चाहिए।
2. मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।
3. मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुरूप शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।
4. बालक की रुचियों के अनुरूप शिक्षा देनी चाहिए।
5. शिक्षा द्वारा बालक का शारीरिक शुद्धिकरण होना चाहिए।
6. शिक्षा द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास होना चाहिए।
7. शिक्षा में धार्मिक तथ्यों का समावेश होना चाहिए।
8. शिक्षा द्वारा मनुष्य में नवीन चेतना का विकास होना चाहिए।

9. शिक्षा द्वारा बालक में मानवीय शक्तियों का विकास होना चाहिए।
10. एकीकृत या समन्वित शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए।
11. शिक्षा का आधार अन्तःकरण है। अतः अन्तःकरण की सरंचना पर बल दिया जाना चाहिए।
12. अन्तःकरण के चार तत्व होते हैं– चित, मानस, बुद्धि एवं ज्ञान।

शिक्षा द्वारा बालक के इन चारों तत्वों का अधिक से अधिक विकास होना चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका शिक्षा दर्शन आध्यात्मिक साधना, ब्रह्मचर्य एवं योग पर आधारित है। उनके अनुसार सच्ची शिक्षा वह है जो बालक की बौद्धिक, क्रियात्मक, नैतिक एवं सौन्दर्यात्मक शक्तियों को विकसित करने में सहायक हो।

5.4.1 शिक्षा के उद्देश्य

श्री अरबिन्द के अनुसार शिक्षा के दो मुख्य कार्य हैं। पहला कार्य है मनुष्य को उसके अपने विकास क्रम का स्पष्ट ज्ञान कराना और दूसरा कार्य है उसमें सत् तक पहुँचने की शक्ति का विकास करना। इसके लिये श्री अरबिन्द ने शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य पर बल दिया है–

- भौतिक विकास का उद्देश्य
- प्राणिक विकास का उद्देश्य
- मानसिक विकास का उद्देश्य
- अन्तरात्मिक विकास का उद्देश्य
- आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य

श्री अरविन्द ने भौतिक विकास को शिक्षा का पहला तथा आध्यात्मिक विकास को शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य माना है।

5.4.2 शिक्षा का पाठ्यचर्या

श्री अरबिन्द ने अपने द्वारा बताये गये उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विस्तृत एवं समन्वित पाठ्यचर्या प्रस्तुत की है। भौतिक विकास के लिये ये पाश्चात्य विज्ञान एवं तकनीकी को तथा आध्यात्मिक विकास के लिये धर्म, दर्शन व नैतिक शिक्षा को आवश्यक समझते थे। इनके द्वारा प्रस्तुत पाठ्यचर्या को हम निम्नलिखित रूप कें क्रमबद्ध कर सकते हैं–

भौतिक विषय में मातृभाषा, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की भाषाएं, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित, विज्ञान, मनोविज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, कृषि, उद्योग, वाणिज्य और कला पर बल दिया। खेल–कूद, व्यायाम, उत्पादन कार्य, शिल्प आदि भौतिक क्रियाओं की आवश्यकता को भी महत्व दिया। आध्यात्मिक विषय के अन्तर्गत वेद, उपनिषद, गीता, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र,

विभिन्न देशों के धर्म और दर्शन तथा अध्यात्मिक क्रियाओं जैसे– भजन, कीर्तन, ध्यान, योग आदि को जरूरी समझा।

विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम

श्री अरविन्द के अनुसार विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम में निम्न विषयों का समावेश होना चाहिए–

1. **प्राथमिक स्तर** – मातृभाषा, अंग्रेजी, फ्रेन्च, साहित्य, इतिहास, चित्रकला, सामान्य विज्ञान, गणित, सामाजिक अध्ययन आदि।

2. **माध्य मिक स्तर** – मातृभाषा, अंग्रेजी, फ्रेन्च, गणित, कला, भौतिक विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, रसायन विज्ञान, सामाजिक विषय आदि।

3. **उच्च स्तर** – भारतीय व पाश्चात्य दर्शन, अंग्रेजी, इतिहास, साहित्य, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, गणित, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, जीव विज्ञान, विश्व एकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध।

4. **व्यावसायिक शिक्षा** – शिल्पकला, चित्रकारी, सिलाई, टंकण, कुटीर उद्योग, इन्जीनियरिंग, संगीत, अभिनय, नृत्य, काष्ठ कला आदि।

5.4.3 शिक्षणविधियॉ

श्री अरविन्द ने शिक्षण के लिए निम्नलिखित विधियों को अपनाये जाने पर बल दिया है–

1. **शिक्षा बालक की रुचि के अनुसार** – श्री अरबिन्द के अनुसार शिक्षक को चाहिये कि वह बालक की रुचियों का अध्ययन करके उसी अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करें। ऐसा करने से बालक रुचि के साथ पढ़ाई करेगा।

2. **करके सीखने पर बल**– श्री अरविन्द ने बालक की क्रियाओं को महत्पूर्ण स्थान दिया तथा बताया कि बालक को स्वयं करके सीखने का अवसर मिलना चाहिये। इसीलिये उन्होनें शिशु–कक्षा मे मान्टेसरी प्रणाली तथा प्राथमिक एवं माध्यमिक कक्षाओं में चित्रकला को महत्वपूर्ण स्थान दिया।

3. **परस्पर सहयोग द्वारा शिक्षा**– श्री अरबिन्द का मानना था कि पढ़ने–लिखने तथा सीखने–सिखाने का कार्य परस्पर सहयोग के द्वारा ही सफल हो सकता है। अतः वे कहते थे कि पढ़ाते समय शिक्षक बालक का अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त करे।

4. **शिक्षा बालक की प्रकृति के अनुसार** – श्री अरबिन्द के अनुसार प्रत्येक बालक में कुछ ईश्वरीय देन होती है तथा कुछ उसकी प्रतिभा भी। उसकी आत्मा को सर्वोत्तम रूप से विकसित करने के लिये उसे उसकी प्रकृति के अनुसार विकसित होने का आसार मिलना चाहिये।

5. **बालक की स्वतन्त्रता–** श्री अरबिन्द के अनुसार बालक के सामने स्वतन्त्रता का वातावरण प्रस्तुत करने से बालक अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। उनका विश्वास था कि नियन्त्रित वातावरण में विकास कुंठित हो जाता।

6. **मातृभाषा द्वारा शिक्षा–** श्री अरबिन्द ने मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया। उनका मानना था कि इससे बालक कठिन विषयों को भी आसानी से समझ सकता है।

7. **स्व प्रयत्न तथा स्वानुभव द्वारा शिक्षा–** श्री अरविन्द ने बताया कि बालक को स्वप्रयत्न तथा स्वानुभव द्वारा सीखने के अधिक अवसर प्रदान किये जायें। इस प्रकार सीखा हुआ ज्ञान बालक के व्यक्तित्व का स्थायी अंग बन जाता है। ऐसी शिक्षा वास्तविक तथा लाभप्रद होती है।

8. **प्रेम व सहानुभूति व्यवहार–** बालक के प्रति प्रेम तथा सहानुभूति का व्यवहार करने से उसका विकास स्वाभाविक रूप से होता रहता है।

5.4.4 अनुशासन

श्री अरविन्द की दृष्टि से स्वेच्छा से कर्त्तव्य पालन करना ही अनुशासन है। वे अनुशासन का सम्बन्ध भावना से जोड़ते थे और इस भावना का सम्बन्ध नैतिकता से। इनके अनुसार प्रत्येक शिक्षक का यह उत्तरदायित्व है कि वह बच्चों के मन में ऐसी भावना भरें कि वे अच्छाई की ओर अग्रसर हों, नैतिकता का पालन करें और अपने अध्ययन में एकाग्रता से लगें। इनके अनुसार शिक्षक को बच्चों के साथ प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिये। कठोरता से वास्तविक अनुशासन की प्राप्तिं नही की जा सकती। दण्ड के ये अमानवीय कृत्य कहते थे। श्री अरविन्द प्रभावात्मक अनुशासन में विश्वास करते थे। इनके अनुसार शिक्षकों को बच्चो के सामने आदर्श आचरण प्रस्तुत करना चाहिये, जिसका अनुकरण कर बच्चे पहले तो आदर्श आचरण की ओर अग्रसर हों और फिर वैसा करना अपना कर्त्तव्य समझने लगे। इनके अनुसार वास्तविक अनुशासन आंतरिक होता है।

5.4.5 शिक्षक

श्री अरबिन्द के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक का स्थान बच्चे के पथ–प्रदर्शक और सहायक के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये। शिक्षक के स्थान के सम्बन्ध में श्री अरविन्द ने स्वयं ही लिखा है–''शिक्षक निर्देशक अथवा स्वामी नहीं है अपितु वह केवल सहायक तथा पथ–प्रदर्शक है। उसका कार्य सुझाव देना है न कि ज्ञान को थोपना। वह बालक के मस्तिष्क को प्रशिक्षित नहीं करता अपितु वह उसे सीखने की प्रक्रिया में सहायता तथा प्रेरणा देकर यह बताता है कि वह अपने ज्ञान के साधनों को किस प्रकार समृद्ध बना सकता है। वह छात्र को ज्ञान नहीं देता अपितु वह उसे यह बताता है कि ज्ञान को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। वह बालक के अन्तर्निहित ज्ञान को बाहर नहीं निकालता अपितु वह उसे केवल यह बताता है कि ज्ञान कहॉ है तथा उसको बाहर निकालने के लिये किस प्रकार आदत डाली जा सकती है।

5.4.6 शिक्षार्थी

शिक्षार्थी को श्री अरबिन्द शिक्षा के केन्द्र मानते थे। श्री अरविन्द के अनुसार प्रत्येक शिक्षार्थी में व्यक्तिगत क्षमतायें तथा विलक्षणतायें होती है। इस ईश्वरीय देन को पूर्णरूपेण विकसित करना ही उसकी सच्ची शिक्षा है। उनका मानना था कि बालक के विशेष गुणों, योग्यताओं, विचारों तथा धर्म को किसी पूर्ण निश्चित योजना के अनुसार बलपूर्वक विकसित करना उसके विकास को कुंठित करना है जो उसके साथ धोर अन्याय है। अतः उन्होनें बताया कि शिक्षा की व्यवस्था बालक की प्रकृति को ध्यान में रखते हुये करना चाहिए जिससे उसकी जिज्ञासा तथा रुचियों के अनुसार किये जाने से उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके। श्री अरविन्द के शब्दों में, ''बालक को माता–पिता अथवा शिक्षक की इच्छानुकूल ढालना अन्धविश्वास तथा जंगलीपन है। माता–पिता इससे बड़ी भूल और कोई नही कर सकते कि वे पहले ही इस बात की व्यवस्था करें कि उनके पुत्र में विशिष्ट गुणों, क्षमताओं तथा विचारों का विकास होगा। प्रकृति को स्वयं अपने धर्म का त्याग करने के लिये बाध्य करना उसे स्थायी हानि पहुँचाना है, उसके विकास को व्युत्कृत करना है तथा उसकी पूर्णता को दूषित करना है।''

5.4.7 विद्यालय

श्री अरविन्द के अनुसार प्रत्येक विद्यालय को बच्चों के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास में सहायक होना चाहिये। ये मनुष्य के भौतिक विकास के लिये विद्यालयों में संसार की सभी श्रेष्ठ भाषाओं, साहित्य, सभ्यता और संस्कृति, गणित और विज्ञान आदि की शिक्षा का प्रबन्ध करने और आध्यात्मिक विकास के लिये बच्चों को श्रम करने, कर्त्तव्य पालन करने, मानव सेवा करने और ध्यान करने के अवसर देने पर बल देते थे। इनके अनुसार विद्यालय भौतिक प्रगति और योग साधना के केन्द्र होने चाहिये। इनके अनुसार विद्यालयों में सभी बच्चों को अपनी योग्यतानुसार प्रवेश के समान अवसर दिये जाने चाहिये और उन्हें अपनी भाषा, धर्म और संस्कृति के अध्ययन के लिये सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिये। विद्यालययों का पर्यावरण विश्व बन्धुत्व की भावना से परिपूर्ण होना चाहिये। इनके द्वारा स्थापित श्री अरविन्द आश्रम का 'श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र' इसी प्रकार का शिक्षा केन्द्र है। इसमें शिशु शिक्षा से लेकर अनुसंधान कार्य तक का प्रबन्ध है।

5.05 श्री अरविन्द के शैक्षिक विचारों की समीक्षा

श्री अरबिन्द का शिक्षा दर्शन आध्यात्म से प्रेरित था। वे पाश्चात्य एवं भारतीय दोनों दर्शनों से प्रभावित थे। उन्होनें भारतीय दर्शन के साथ–साथ पाश्चात्य दर्शन की अच्छाईयों को भी अंगीकार किया है।

1. श्री अरबिन्द का शिक्षा दर्शन भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर ले जाता है। वे बालक के भौतिक विकास को शिक्षा का प्रथम लक्ष्य एवं आध्यत्मिकता के विकास को शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य मानते थे।
2. उनका दर्शन उपनिषदों के दर्शन के समक्ष है।
3. श्री अरबिन्द के शिक्षा दर्शन ने दिव्य शक्ति के बोध पर बल दिया।
4. श्री अरबिन्द के शैक्षिक दृष्टिकोण में सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का समावेश है।
5. वे बालक के स्वभाव के अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे
6. उनका मानना था कि ब्रह्मचर्य द्वारा तप और तेज की वृद्धि से बालकों के मन, शरीर और आत्मा को सशक्त बनाया जा सकता है।
7. श्री अरबिन्द के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य परम चेतना की प्राप्ति होनी चाहिए,
8. वे भारतीय साहित्य, कला तथा विज्ञान पर बल देते थे।
9. उन्होनें व्यावहारिक पाठ्यक्रमों पर बल दिया
10. इन्द्रिय प्रशिक्षण के साथ–साथ मानसिक शक्तियों के प्रशिक्षण पर भी वे बल देते थे।
11. व्यावहारिक शिक्षा के साथ–साथ धार्मिक शिक्षा को भी वे महत्वपूर्ण मानते थे,
12. श्री अरबिन्द ने एकीकृत शिक्षा (Integral Education) पर बल दिया जो बालक की सुषुप्त शक्तियों को जागृत कर दे। एकीकृत शिक्षा का आधार या यन्त्र अन्तःकरण के चार पटल होते है– चित, मानस, बुद्धि एवं ज्ञान। अन्तःकरण की संरचना पर बल देना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– **(क) अप ने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।**

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

प्रश्न–4 : श्री अरविन्द का शिक्षा दर्शन किस पर आधारित है ?

____

____

प्रश्न–5 : श्री अरविन्द के अनुसार बालकों को किस भाषा में शिक्षा दी जानी चाहिए?

____

____

प्रश्न–6 : श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं ?

प्रश्न–7 : शिक्षा में अनुशासन के सम्बन्ध में श्री अरविन्द के क्या विचार थे ?

प्रश्न–8 : श्री अरविन्द के अनुसार विद्यालय कैसा होना चाहिये ?

प्रश्न–9 : श्री अरविन्द के अनुसार ब्रह्मचर्य से बालक को क्या लाभ होता है ?

प्रश्न–10 : श्री अरविन्द किस प्रकार की शिक्षा पर बल देते थे?

प्रश्न–11 : श्री अरविन्द के अनुसार अन्तःकरण के कौन–कौन से पटल होते है?

5.6 स्वामी विवेकानन्द का जीवन–वृत्त एवं दर्शन

स्वामी विवेकानन्द का जन्म सन् 1863 ई० में कलकत्ता के एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। उनके जन्म का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। इनके पिता का नाम श्री विश्वनाथ दत्त था जो कलकत्ता हाईकोर्ट में वकील थे। इनकी माता का नाम श्रीमती भुवनेश्वर देवी था जो बहुत ही बुद्धिमती, गुणवती, धर्मपरायण एवं परोपकारी महिला थी। स्वामी विवेकानन्द जी पर उनकी माता का गहरा प्रभाव पड़ा। ये बाल्यावस्था से ही धर्म–कर्म, पूजा–पाठ तथा धार्मिक ग्रन्थों में रूचि लेते थे। हरबर्ट स्पेन्सर तथा जॉन स्टुअर्ट मिल उनके प्रिय दार्शनिक थे तथा वर्ड्सवर्थ एवं शैली उनके प्रिय कवि थे। स्वामी विवेकानन्द अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। उनके प्रधानाचार्य श्री हेस्टी विवेकानन्द की अद्वितीय प्रतिभा के कायल थे। एक बार उनके प्रधानाचार्य श्री हेस्टी ने उनके बारे में कहा था–''मैं बहुत दूर तक तक घूमा पर मैनें इतना गुणवान एवं प्रतिभा सम्पन्न बालक जर्मनी के विश्वविद्यालयों में भी नहीं देखा।'' स्वामी रामकृष्ण परमहंस का इनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा और स्वामी रामकृष्ण परमहंस को अपना आध्यात्मिक गुरू बना लिया। उनके सम्पर्क में आने के बाद वे नरेन्द्रनाथ दत्त से विवेकानन्द बन गये। सन् 1886 ई० में स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी का निधन हो गया। स्वामी

विवेकानन्द ने अपने गुरू की स्मृति में रामकृष्ण मिशन स्थापित किया तथा उनके द्वारा दिये हुये वेदान्त के उपदेशों को एशिया, यूरोप तथा अमरीका की जनता में आजीवन प्रचार किया। सन् 1902 ई० में स्वामी जी का देहावसान हो गया।

स्वामी विवेकानन्द का दर्शन

स्वामी विवेकानन्द वेदान्त दर्शन को मानते थे। वेदान्त के 3 रूप द्वैत, विशिष्ट द्वैत और अद्वैत में स्वामी जी अद्वैत दर्शन के समर्थक थे। स्वामी जी के अनुसार द्वैत, विशिष्ट द्वैत तथा अद्वैत वेदान्त दर्शन के 3 रूप न होकर वेदान्त दर्शन के 3 सोपान हैं, जिनका अन्तिम लक्ष्य अद्वैत की अनुभूति ही है। स्वामी जी तो विश्व के सभी धर्मों और दर्शनों को अन्त में अद्वैत की ओर झुका बताते थे। धर्म और दर्शन को स्वामी जी वैज्ञानिक नजरिये से देखते थे तथा कहते करते थे कि कला, विज्ञान और धर्म एक ही परम सत्य को व्यक्त करने के तीन विभिन्न साधन हैं। अद्वैत वेदान्त को ये सार्वभौमिक विज्ञान धर्म कहते थे। स्वामी जी ने वेदान्त को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने–समझने और उसकी वैज्ञानिक व्याख्या करने का प्रयास किया है। यही उनके अद्वैत वेदान्त का नयापन है और इसी आधार पर इनके दार्शनिक चिन्तन को नव्य वेदान्त कहा जाता है। बोस्टन के ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी क्लब में स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा दिया गया सारगर्भित व्याख्यान वेदान्त के सार एवं मानव धर्म की ओर इंगित करता है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार संसार के सभी स्थूल पदार्थ और सूक्ष्म आत्माएँ ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के अंश हैं। परमात्मा की भांति वे भी अनादि और अनन्त हैं। मनुष्य को विवेकानन्द शरीर, मन और आत्मा का योग मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य जीवन के दो पक्ष भौतिक और अध्यात्मिक हैं। स्वामी जी दोनों पक्षों के विकास पर बल देते थे। इनका मानना था कि जब तक मनुष्य शारीरिक दुर्बलता, अज्ञानता और राजनैतिक दासता से मुक्त नहीं हो जाता है तब तक वह आत्मिक मुक्तता की ओर नहीं बढ़ सकता है।

स्वामी जी वस्तु जगत और सूक्ष्म जगत दोनों के ज्ञान को सत्य ज्ञान मानते थे। इनका तर्क है कि वस्तु जगत ब्रह्म द्वारा निर्मित है और ब्रह्म सत्य है, तब यह जगत भी सत्य होना चाहिये। इनके अनुसार वस्तु जगत का ज्ञान प्रत्यक्ष विधि और प्रयोग विधि से होता है तथा सूक्ष्म जगत का ज्ञान सत्संग, स्वाध्याय और योग द्वारा होता है। योग को स्वामी जी ज्ञान प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि मानते थे।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

प्रश्न–12 : स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक चिन्तन को नव्य वेदान्त क्यों कहते है?

प्रश्न–13 : स्वामी विवेकानन्द के गुरू का नाम क्या था?

प्रश्न–14 : स्वामी विवेकानन्द के अनुस ार वस्तु जगत एवं सूक्ष्म जगत का ज्ञान किस प्रकार होता है?

....

....

5.7 स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचार

स्वामी जी तथ्यों के संग्रह को नहीं अपितु एकाग्रता को शिक्षा का मूल समझते थे। शिक्षा वास्तव में एक ऐसा प्रशिक्षण है जिसके द्वारा संकल्प शक्ति की अभिव्यक्ति को और उसके प्रवेग को संतुलित एवं लाभप्रद बनाया जाता है। शिक्षा का कार्य सूचनाओं की जानकारी प्रदान करना नहीं है बल्कि मनुष्य में अर्न्तनिहित शक्तियों का सर्वांगीण विकास करना है जिससे वह मानव बन सके। उन्होनें लिखा है ''यदि शिक्षा का अर्थ सूचनाओं से होता तो पुस्तकालय संसार के सर्वश्रेष्ठ संत होते तथा विश्वकोष ऋषि बन जाते।'' इनके अनुसार ''शिक्षा उस सन्निहित पूर्णता का प्रकाश है, जो मनुष्य में पहले से ही विद्यमान है।'' मनुष्य में पहले से ही विद्यमान अर्न्तनिहित शक्तियों का विकास करना ही शिक्षा है।

5.7.1 शिक्षा के उद्देश्य

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिये–

1. **पूर्णत्व को प्राप्त करने का उद्‌देश्य** – इनके अनुसार शिक्षा का प्रथम उद्देश्य अन्तर्निहित पूर्णता को प्राप्त करना है। इनके अनुसार लौकिक तथा आध्यात्मिक सभी ज्ञान मनुष्य के मन में पहले से ही विद्यमान होता है। अतः शिक्षा को मनुष्य के अन्तर्निहित ज्ञान की अभिव्यक्ति करनी चाहिये।

2. **शारीरिक एवं मानसिक विकास का उद्देश्य** – स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का द्वितीय उद्देश्य बालक का शारीरिक एवं मानसिक विकास है। स्वामी जी भौतिक जीवन की रक्षा एवं उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति और आत्मानुभूति दोनों के लिये स्वस्थ शरीर की आवश्यकता को स्वीकार करते थे। स्वामी जी ने भारत के पिछड़ेपन

का सबसे बड़ा कारण उसके बौद्धिक पिछड़ेपन को बताया और इस बात पर बल दिया कि हमें अपने बच्चों का शारीरिक विकास के साथ–साथ मानसिक एवं बौद्धिक विकास अनिवार्य रूप से करना चाहिये।

3. **नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य**– किसी भी देश की महानता उसके नागरिकों की महानता से होती है। नागरिकों को महान बनाने के लिये उनका नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास परम आवश्यक है। नैतिकता से स्वामी जी का तात्पर्य सामाजिक तथा धार्मिक दोनों प्रकार की नैतिकता से है। अतः शिक्षा को इस पर बल देना चाहिये।

4. **चरित्र निर्माण का उद्देश्य**– स्वामी जी ने इस बात का अनुभव किया कि शरीर से स्वस्थ्य, बुद्धि से विकसित और आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के साथ–साथ मनुष्य को चरित्रवान भी होना चाहिये। चरित्र ही मनुष्य को सत्यनिष्ठ तथा कर्त्तव्यनिष्ठ बनाता है। इसलिये इन्होनें शिक्षा द्वारा मनुष्य के चारित्रिक विकास पर बल दिया। इनका विश्वास था कि चरित्रवान मनुष्यों से ही कोई समाज अथवा राष्ट्र आगे बढ़ सकता है।

5. **व्यवसायिक विकास का उद्देश्य**– स्वामी जी ने भारत की दरिद्रता तथा पाश्चात्य देशों के वैभवशाली जीवन दोनों को ही बड़े निकट से देखा था तथा कहा कि केवल आध्यात्मिक सिद्धान्तों से जीवन नहीं चलेगा। अतः हम भारतवासियों को प्रत्येक क्षेत्र में आगे आना चाहिए। इसलिए शिक्षा द्वारा मनुष्यों को उत्पादन एवं उद्योग संबन्धी कार्यों तथा अन्य व्यवसायें में प्रशिक्षित करने पर बल दिया जाना चाहिए।

5.7.2 शिक्षा की पाठ्यचर्या

स्वामी जी ने अपने द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक विस्तृत पाठ्यचर्या को प्रस्तुत किया। उन्होनें पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उन सभी विषयों को सम्मिलित किया जिनके अध्ययन से आध्यात्मिक उन्नति के साथ–साथ भौतिक उन्नति भी होती रहे।

स्वामी जी ने आध्यात्मिक उन्नति के लिये पाठ्यक्रम में धर्म, दर्शन, पुराण, उपनिषद्, साहित्य, उपदेश, नीतिशास्त्र तथा कीर्तन को स्थान देने पर बल दिया। लौकिक समृद्धि के लिये भाषा, भूगोल, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, विज्ञान, मनोविज्ञान, कला, व्यावसायिक विषय, कृषि, प्राविधिक विषय, खेल–कूद तथा व्यायाम आदि विषयों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया।

भाषा के सन्दर्भ में स्वामी जी का दृष्टिकोण बड़ा विस्तृत था। इनकी दृष्टि से सामान्य जीवन के लिये मातृभाषा, अपने धर्म दर्शन को समझने के लिये संस्कृत भाषा, अपने देश को समझने हेतु प्रादेशिक भाषाओं और विदेशी ज्ञान–विज्ञान एवं तकनीकी को समझने के लिय अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक है। अतः इन भाषाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिये।

कला को ये मनुष्य जीवन का अभिन्न अंग मानते थे और इसके अन्तर्गत चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, नृत्य और अभिनय सभी को पाठ्यक्रम में स्थान देने के पक्ष में थे। इस प्रकार शिक्षा की पाठ्यचर्या के सम्बन्ध में स्वामी जी का दृष्टिकोण अति आधुनिक तथा अति व्यापक था।

5.7.3 शिक्षण विधियॉ

स्वामी विवेकानन्द ने आध्यात्मिक शिक्षण पद्धति को अपनाने पर बल दिया जिसमें गुरू और शिष्य के सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ रहते थे। स्वामी जी ने निम्नलिखित विशेषताओं वाली विधियों पर बल दिया।

1. चित् की वृत्तियों को योग द्वारा निरोध करना।
2. मन को केन्द्रीयकरण विधि द्वारा विकसित करना।
3. ज्ञान को व्याख्यान, तर्क, विचार–विमर्ष, स्वानुभव तथा रचनात्मक कार्यों एवं उपदेशों द्वारा अर्जित करना।
4. शिक्षक के गुणों तथा चरित्र का बुद्धि द्वारा अनुकरण करना।
5. बालक को व्यक्तिगत निर्देशन तथा परामर्श विधि के द्वारा उचित मार्ग की ओर अग्रसर करना।

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वामी जी ने अनुकरण विधि, व्याख्यान विधि, तर्क एवं विचार विमर्श विधि, निर्देशन और परामर्श विधि, प्रदर्शन एवं प्रयोग विधि, स्वाध्याय विधि तथा योग विधि पर बल दिया।

5.7.4 अनुशासन

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार अनुशासन का अर्थ है अपने व्यवहार में आत्मा द्वारा निर्दिष्ट होना। इनके अनुसार जब व्यक्ति अपने प्राकृतिक 'स्व' से प्रेरित होकर कार्य करता है तो हम उसे अनुशासित नहीं कह सकते, बल्कि जब वह अपने प्राकृतिक 'स्व' पर संयम रखकर सामाजिक 'स्व' से प्रेरित होता है तो हम उसे अनुशासित कह सकते है। परन्तु वास्तव में अनुशासित वह है जो आत्मा से प्रेरित होकर कार्य करता है।

स्वामी जी शिक्षक और विद्यार्थी दोनों को आत्मानुशासन का पालन करने को कहते थे। बच्चों में आत्मनुशासन के लिये स्वामी जी कहते थे कि शिक्षक विद्यार्थियों के सामने आत्मानुशासन का उच्च आदर्श प्रस्तुत करेगें तो बच्चे भी उनका अनुकरण करेगें और फिर धीरे–धीरे वैसा सोचने और करने की उन्हें अन्दर से प्रेरणा मिलने लगेगी तथा वे आत्मानुशासन की ओर बढ़ेगें।

5.7.5 शिक्षक

स्वामी जी स्वशिक्षा में विश्वास करते थे। वे कहते थे कि हम में से प्रत्येक व्यक्ति

अपना स्वयं शिक्षक है। वाह्य शिक्षक तो केवल मार्गदर्शन करता है जिनसे आन्तरिक शिक्षक (आत्मा) को कार्य करने और समझने के लिये चेतना मिलती हैं। अतः शिक्षक के सम्बन्ध में स्वामी जी लिखते हैं कि– ''शिक्षक एक दार्शनिक, मित्र तथा पथ–प्रदर्शक है, जो बालक को अपने ढंग से अग्रसर होने के लिये सहायता प्रदान करता है।''

5.7.6 विद्यार्थी

स्वामी जी विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य का पालन करने की बात करते थे। इनका विश्वास था कि जब तक विद्यार्थी इन्द्रिय निग्रह नहीं करते, उनमें सीखने के लिये प्रबल इच्छा उत्पन्न नहीं होती और वे गुरू में श्रद्धा रखकर सत्य को जानने का प्रयत्न नहीं करते तब तक वे न भौतिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और न आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। स्वामी जी बालकों को स्वयं विकसित होने का सुझाव देते हुये कहते हैं कि– ''अपने अन्दर जाओं और उपनिषदों को अपने में से बाहर निकालो। तुम सबसे महान पुस्तक हो, जो कभी थी अथवा होगी। जब तक अन्तरात्मा नहीं खुलती, समस्त वाह्य शिक्षण व्यर्थ है।''

5.7.7 विद्यालय

स्वामी जी गुरू गृह पद्धति के समर्थक थे। परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वे यह जानते थे कि अब गुरूकुल कोलाहल से दूर कहीं प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थापित नहीं हो सकता है। इसीलिये वे केवल इस बात पर जोर देते थे कि विद्यालयों का पर्यावरण शुद्ध हो और वहॉ व्यायाम, खेल–कूद, अध्ययन–अध्यापन और इन सबके साथ–साथ समाज सेवा, भजन–कीर्तन, ध्यान एवं योग की क्रियाएं भी सम्पादित हो।

5.08 स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों की समीक्षा

स्वामी विवेकानन्द भारतीय दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित और अद्वैव वेदान्त के पोषक थे। ये वेदान्त को व्यावहारिक रूप देने के लिए प्रसिद्ध है। इनके दार्शनिक विचार सैद्धान्तिक रूप में इनके द्वारा रचित पुस्तकों में पढ़े जा सकते है और इनका व्यावहारिक रूप रामकृष्ण मिशन के जन कल्याणकारी कार्यों में देखा जा सकता है। स्वामी जी अपने देशवासियों की अज्ञानता व निर्धनता से बहुत चिन्तित थे और इन्हें दूर करने के लिये इन्होनें शिक्षा की आवश्कता पर बल दिया था। ये अपने और अपने साथियों को केवल वेदान्त के प्रचार में ही नहीं लगायें रह बल्कि इन्होनें जन शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में भी बड़ा योगदान दिया है। स्वामी विवेकानन्द जी के लिये शिक्षा समाज सुधार की आंतरिक शक्ति है न कि केवल बाहरी आडम्बर। इसीलिये उनके लिये 'शिक्षा' मनुष्य की आन्तरिक शक्ति का प्रस्फुटन है। स्वामी विवेकानन्द जी भारतीय शिक्षा को भारतीय स्वरूप प्रदान करने के लिये सदैव याद किये जायेगें।

स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन का आधार वेदान्त एवं उपनिषद है। उनके अनुसार कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को नहीं सिखाता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वंय अपने आप ही सीखता है। बाहरी शिक्षक तो केवल छात्रों को अवगत ही कराता है। वे पुस्तकीय ज्ञान को व्यर्थ मानते थे। उनके अनुसार हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जो बालक के चरित्र–निर्माण में सहायक हो, मस्तिष्क की शक्ति में वृद्धि करती हो। बुद्धि विकसित करे तथा अपने पैरों पर खड़ा करने में सहायक हो। स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त निम्न है–

1. समस्त ज्ञान बालक के मस्तिष्क में विद्यमान होता है।
2. मन, वचन एवं कर्म की शुद्धता से आत्म नियन्त्रण होता है।
3. शिक्षा के द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास होना चाहिए।
4. शिक्षा द्वारा चित्त एकाग्र होता है।
5. धार्मिक शिक्षा स्त्रियों को दी जानी चाहिए।
6. जन साधारण में शिक्षा का प्रचार–प्रसार होना चाहिए।
7. शिक्षा बालक के चरित्र निर्माण एवं मानसिक शक्तियों के विकास में सहायक होती है।
8. पाठ्यक्रम में अन्य विषयों के साथ–साथ अंग्रेजी, तकनीकी एवं विज्ञान विषय भी सम्मिलित होने चाहिए।
9. शिक्षा व्यावहारिक एवं रोजगारपरक भी होनी चाहिए। उन्होनें पुस्तकीय ज्ञान का विरोध किया।
10. शिक्षा द्वारा बालक में आस्था, निष्ठा एवं आत्मविश्वास की भावना जागृत होनी चाहिए।
11. स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा द्वारा बालक के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर विशेष बल दिया।
12. वे बालक को शिक्षा का केन्द्र मानते थे।
13. केन्द्रीकरण विधि द्वारा मन को एकाग्र करने पर जोर देते थे।
14. वे धर्म एवं नैतिकता को मानव के विकास के लिए आवश्यक मानते थे।
15. स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा समाज सेवा के लिए दी जानी चाहिए। शिक्षा मनुष्य को इस योग्य बनाए कि वह मानव की सेवा कर सके।
16. वे वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव पर आधारित शिक्षा देने के पक्षधर थे।
17. उन्होनें शिक्षा के दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक पहलू के साथ–साथ व्यावहारिक पक्ष पर अत्यधिक बल दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द मानव निर्माण की शिक्षा (Man Making Education) के पक्षधर थे। उनके अनुसार ''केवल जानकारी का वह ढेर शिक्षा नहीं कहला सकता जिसे तुम्हारे दिमागों में ठूँस–ठूँस कर भर दिया जाता है। जो बिना आत्मसात् हुए वहाँ जीवन भर उपद्रव मचाया करता है। हमें विचारों को इस प्रकार आत्मसात् कर लेना चाहिए कि उनके द्वारा हमारा जीवन निर्माण हो सके और हम मनुष्य बन सकें।''

बोध प्रश्न – टिप्पणी–

(क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

प्रश्न–15 : स्वामी विवेकानन्द के अनुसार भारत के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण क्या है ?

____

____

प्रश्न–16 : स्वामी विवेकानन्द शिक्षकों व छात्रों के लिए किस प्रकार के अनुशासन की बात करते थे ?

____

____

प्रश्न–17 : स्वामी विवेकानन्द के अुनसार शिक्षा का क्या अर्थ है ?

____

____

प्रश्न–18 : शिक्षक के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द जी का क्या मत था ?

____

____

प्रश्न–19 : स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मनुष्य किस प्रकार आत्म नियन्त्रण कर सकता है ?

____

____

प्रश्न–20 :स्वामी विवेकानन्द किस विधि द्वारा मन को एकाग्र करने पर बल देते थे?

____

____

5.9 सारांश

श्री अरबिन्द आदर्शवादी थे। उपनिषद का मौलिक सिद्धान्त उनके दर्शन का आाधार था। वे विकास के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। अन्तःकरण को शिक्षा का मुख्य उपकरण बताया। जिसके 4 स्तर होते हैं– (1) चित्त, (2) मानस, (3) बुद्धि, तथा (4) ज्ञान। शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त के सम्बन्ध में श्री अरविन्द जी ने बालक प्रधान शिक्षा, मातृभाषा, मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ, सुसुप्त शक्तियों का विकास, शारीरिक वृद्धि, चेतना का विकास, अन्तःकरण का विकास, ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण, ऐच्छिक, विषय, शिक्षा में धार्मिक गुण तथा ब्रह्माचार्य पर बल दिया। उन्होनें कहा कि शिक्षा वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओं के अनुसार हो। शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में शारीरिक विकास और शुद्धि, ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण, मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, तार्किक शक्ति का प्रशिक्षण, नैतिकता के विकास, अन्तःकरण का विकास तथा आध्यात्मिक विकास पर बल दिया। पाठ्यक्रम ऐसा हो जो बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास करे। समकालिक तथा क्रमिक शिक्षण विधियों की बात कही। शिक्षा का केन्द्र बिन्दु बालक को माना तथा शिक्षक को निर्देशक, सहायक तथा पथ–प्रदर्शक कहा। अनुशासन आन्तरिक होना चाहिये तथा विद्यालय ऐसा हो जो बालक के भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों के विकास में सहायक हो।

स्वामी विवेकानन्द जी का जीवन दर्शन अभय होकर संघर्ष द्वारा मानवता की सेवा करना है। शिक्षा दर्शन के सम्बन्ध में स्वामी जी का विचार था कि शिक्षा मानसिक, चारित्रिक विकास करके बालक को अपने पैरों पर खड़ा करे। स्वामी के अनुसार शिक्षा का अर्थ सन्निहित पूर्णता का प्रकाश है जो मनुष्य में पहले से ही विद्यमान है। शारीरिक विकास, मानसिक विकास, नैतिक विकास, अध्यात्मिक विकास, चरित्र निर्माण, पूर्णतत्व को प्राप्त करना, आत्मा की भावना को विकसित करना, आत्म विश्वास, श्रद्धा का विकास, विश्व बन्धुत्व की भावना को अनन्त बनाना, विभिन्नता में एकता की खोज तथा व्यावसायिक उन्नति को शिक्षा का उद्देश्य माना। पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसके अध्ययन से आध्यात्मिक तथा भौतिक विकास हो सके। बालक को शिक्षा का केन्द्र तथा शिक्षक को दार्शनिक, मित्र एवं पथ–प्रदर्शक के रूप में स्वीकार किया। आत्मानुशासन को अनुशासन के रूप में स्वीकार किया तथा विद्यालय गुरूगृह पद्धति वाले हो।

5.10 अभ्यास प्रश्न

1. श्री अरबिन्द के दार्शनिक विचारों की संक्षेप में विवेचना कीजिए।
2. शिक्षा की पाठ्यचर्या के सन्दर्भ में श्री अरबिन्द के विचारों की विवेचना कीजिए।

3. शिक्षण विधियों के सन्दर्भ में श्री अरबिन्द के विचारों का मूल्यांकन कीजिए।
4. श्री अरबिन्द के शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
5. शिक्षा के उद्देश्यों के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द के विचारों की विवेचना कीजिये।
6. अन्तर्निहित पूर्णता से विवेकानन्द जी का क्या अभिप्राय है ?
7. स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक चिन्तन की विवेचना कीजिये।
8. एक शिक्षाशास्त्री के रूप में स्वामी विवेकानन्द का मूल्यांकन कीजिये।

5.11 चर्चा के बिन्दु

1. छात्राध्यापक आपस में श्री अरविन्द के शैक्षिक विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करेगें।
2. छात्राध्यापक आपस में स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करेगें।
3. छात्राध्यापक आपस में श्री अरविन्द के शैक्षिक विचारों की वर्तमान समय में प्रासंगिकता की चर्चा करेगें।
4. छात्राध्यापक आपस में स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों की वर्तमान समय में प्रासंगिकता की चर्चा करेगें।

5.12 बोध प्रश्नो के उत्तर

1. अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी में स्थित है।
2. श्री अरविन्द ने 'कर्मयोगिनी' नामक समाचार पत्र का सम्पादन स्वयं किया।
3. भारत लौटने पर श्री अरविन्द ने बड़ौदा में अध्यापन कार्य किया।
4. श्री अरविन्द का शिक्षा दर्शन आध्यात्मिक साधना, ब्रह्मचर्य एवं योग पर आधारित है।
5. श्री अरविन्द के अनुसार बालकों को मातृभाषा में शिक्षा दी जानी चाहिए।
6. श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक का भौतिक, प्राणिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास है।
7. श्री अरविन्द स्व–अनुशासन एवं आन्तरिक अनुशासन पर बल देते थे।
8. श्री अरविन्द के अनुसार विद्यालय भौतिक प्रगति एवं योग साधना के केन्द्र के रूप में होना चाहिए।

9. श्री अरविन्द के अनुसार ब्रह्मचर्य से बालक के मन, शरीर व आत्मा को सशक्त बनाया जा सकता है।

10. श्री अरविन्द एकीकृत शिक्षा पर बल देते थे।

11. श्री अरविन्द के अनुसार अन्तःकरण के चार पटल होते हैं– चित, मानस, बुद्धि एवं ज्ञान।

12. स्वामी विवेकानन्द अद्वैत वेदान्त को सार्वभौमिक विज्ञान धर्म कहते थे। उन्होनें वेदान्त को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखन–समझने एवं वैज्ञानिक व्याख्या करने का प्रयास किया। अतः उनके दार्शनिक चिन्तन को नव्य वेदान्त कहते है।

13. स्वामी विवेकानन्द के गुरू का नाम स्वामी रामकृष्ण परमहंस था।

14. स्वामी विवेकानन्द के अनुसार वस्तु जगत का ज्ञान प्रत्यक्ष विधि एवं प्रयोग विधि द्वारा होता है तथा सूक्ष्म जगत का ज्ञान सत्संग, स्वाध्याय एवं योग द्वारा होता है।

15. स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा उस सन्निहित पूर्णता का प्रकाश है जो मनुष्य में पहले से ही विद्यमान है।

16. स्वामी विवेकानन्द के अनुसार भारत के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण बौद्धिक पिछड़ापन है।

17. स्वामी विवेकानन्द शिक्षकों व छात्रों के लिए आत्म अनुशासन की बात करते थे?

18. स्वामी जी शिक्षक को एक दार्शनिक, मित्र पथ–प्रदर्शक मानते थे।

19. स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मन, वचन एवं कर्म की शुद्धता से मनुष्य द्वारा आत्म नियन्त्रण किया जा सकता है।

20. स्वामी विवेकानन्द केन्द्रीकरण विधि द्वारा मन को एकाग्र करने पर बल देते थे।

5.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- **ओड, एल0 के0 (2006),** शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- **कबीर, हुमायूँ (1962),** इण्डियन फिलॉसफी आफ एजुकेशन, बाम्बे : आसिया पब्लिशिंग हाउस।
- **चौबे, सरयू प्रसाद एवं चौबे, अखिलेश (2013),** आधुनिक शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।

- **पाण्डेय राम शकल (2009),** विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
- **पाण्डेय राम शकल (2009),** शिक्षा दर्शन, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
- **पाण्डेय राम शकल (2004),** भारतीय शिक्षा दर्शन, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
- **लाल, रमन बिहारी (2003),** शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, मेरठ : रस्तोगी पब्लिकेशन्स।
- **शर्मा, आर0 पी0 (1993),** आधुनिक पाश्चात्य दर्शन, पटना : भारती भवन।
- **सिंह, बी0 एन0 (1994),** पाश्चात्य दर्शन, वाराणसी : स्टूडेन्टस फ्रेण्डस एण्ड कम्पनी।
- **सिंह, रामपाल (2011)** उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षा, आगरा : अग्रवाल प्रकाशन।
- **श्री अरविन्द (1964),** ए सिस्टम आफ नेशनल एजुकेशन, दिल्ली : आर्या पब्लिशिंग हाउस।

इकाई–6 : जे. कृष्णमूर्ति एवं गिज्जू भाई के शैक्षिक विचार

संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 जे० कृष्णमूर्ति के जीवन–वृत्त एवं दर्शन

6.4 जे० कृष्णमूर्ति के शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण (विचार)

6.4.1 शिक्षा के उद्देश्य

6.4.2 शिक्षा की पाठ्यचर्या

6.4.3 शिक्षण विधियाँ

6.4.4 अनुशासन

6.4.5 शिक्षक

6.4.6 शिक्षार्थी

6.4.7 विद्यालय

6.05 जे0 कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचारों की समीक्षा

6.06 गिज्जू भाई का जीवन–वृत्त एवं दर्शन

6.07 गिज्जू भाई के शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण (विचार)

6.7.1 शिक्षा के उद्देश्य

6.7.2 शिक्षा की पाठ्यचर्या

6.7.3 शिक्षण विधियाँ

6.7.4 अनुशासन

6.7.5 शिक्षक

6.7.6 शिक्षार्थी

6.7.7 विद्यालय

6.08 गिज्जू भाई के शैक्षिक विचारों की समीक्षा

6.09 सारांश

6.10 अभ्यास प्रश्न

6.11 चर्चा के बिन्दू

6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

महान आध्यात्मिक गुरू जे0 कृष्णमूर्ति बीसवीं शताब्दी के महान् शिक्षाविद् हैं। प्रेम का सच्चा पाठ पढ़ाने वाले कृष्णमूर्ति अत्यन्त करूणामय कल्याणशी एवं संबुद्ध सन्त थे। ओशो के अनुसार–''जे0 कृष्णमूर्ति तो एक सद्‌गुरू हैं। उच्च कोटि में जहाँ बुद्ध, महावीर, कृष्ण तथा क्रइस्ट हैं वहीं वे एक जीवन्त, जागृत प्रबुद्ध पुरुष हैं।''

भारत में बाल शिक्षा के क्षेत्र में एक नए आंदोलन का प्रारम्भ करने वाले गिज्जू भाई का शिक्षा जगत में महत्वपूर्ण योगदान है। ''प्राथमिक शाला में भाषा शिक्षा'' नामक पुस्तक में इन्होंने भाषा शिक्षा की प्रक्रिया को समझाया है। वे फ्रोबेल तथा माइकल वेस्ट के विचारों से सहमत थे। वे एक समर्पित शिक्षक एवं शैक्षिक चिन्तक थे।

भारतीय शैक्षिक विचारक की यह छठवीं इकाई है। इस इकाई में जे० कृष्णमूर्ति तथा गिज्जू भाई के शैक्षिक विचारों के विभिन्न पहलुओं का वर्णन करेंगे। इसके अतिरिक्त जे० कृष्णमूर्ति तथा गिज्जू भाई के जीवन–वृत्त का वर्णन करेंगे। इसी खण्ड में इनके दर्शन तथा शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस इकाई के बाद आपको जे० कृष्णमूर्ति तथा गिज्जू भाई के शैक्षिक विचारों को समझने में सुविधा होगी।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्यय न करने के बाद आप–

- जे० कृष्णमूर्ति तथा गिज्जू भाई के शैक्षिक विचारों को समझ सकेंगे।
- भारतीय शिक्षा में इनके योगदानों को जान पायेंगे।
- जे० कृष्णमूर्ति तथा गिज्जू भाई के जीवन–वृत्त को जान पायेंगे।
- जे० कृष्णमूर्ति तथा गिज्जू भाई के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का विस्तार से वर्णन कर सकेंगे।

6.3 जे० कृष्णमूर्ति का जीवन–वृत्त एवं दर्शन

जे० कृष्णमूर्ति का जन्म सन् 1895 ई० में 11 मई को आन्ध्र प्रदेश के एक छोटे से कस्बे मदनपल्ली में हुआ था। किशोरकाल में उन्हें थियोंसोफिकल सोसाइटी की अध्यक्ष डॉ० एनी बेसेंट ने गोद ले लिया। थियोसोफी के अनुसार कृष्णमूर्ति को आगामी विश्व शिक्षक (वर्ल्ड टीचर) घोषित किया गया। विश्व शिक्षक के आगमन की तैयारी के उद्देश्य से कृष्णमूर्ति के इर्द–गिर्द आर्डर ऑफ द स्टार इन द ईस्ट नाम से एक विशाल संगठन

खड़ा किया जिसे कृष्णमूर्ति ने सन् 1929 ई० में अपने ऐतिहासिक वक्तव्य ''सत्य एक पथहीन भूमि है,'' के साथ भंग कर दिया। कृष्णामूर्ति के विचार उनकी रचनाओं में परिलक्षित होती है। इनके मूलग्रन्थ अंग्रेजी में है जिनमें कई ग्रन्थों एवं व्याख्यानों के कई भाषाओं में अनुवाद किए जा चुके हैं। उनके द्वारा स्थापित ''कृष्णामूर्ति फाउण्डेशन'' जनकल्याण कार्यों में निरन्तर संलग्न है। कृष्णमूर्ति के विचारों को मूर्त रूप देने के लिए भारत ही नहीं बल्कि इंग्लैण्ड एवं कैलिफोर्निया में भी विद्यालयों की स्थापना की गई है जिसमें बसन्ता कॉलेज फॉर वूमेन, राजघाट, वाराणसी, ऋषि वैलो स्कूल, चित्तूर, दि भागीरथी वैली स्कूल, उत्तरकाशी, द वैली स्कूल, हरिद्वारम्, सहयाद्रि स्कूल, पूना, बाल आनन्द, मुम्बई, द ओक ग्रोव स्कूल, कैलिफोर्निया आदि प्रमुख है।

जे0 कृष्णमूर्ति एक ऐसे दार्शनिक हैं जिन्होंने आत्म ज्ञान पर विशेष बल दिया। अनेक मौलिक, सारगर्भित और प्रेरणादायी विचार भारतीय शिक्षा की अमूल्य धरोहर है। 91 वर्ष की आयु में 17 फरवरी, 1986 ई0 को कैलिफोर्निया में उनका देहावसान हो गया।

जे0 कृष्णमूर्ति का दर्शन

कृष्णमूर्ति का दर्शन वास्तव में जीवन दर्शन है; जो आध्यात्मिकता से ओत–प्रोत है। वह हमें अपने को जानने–समझने में बहुत ही सहायक है तथा इस दिशा में प्रवृत्त होने में हमें शान्ति, सौम्यता, करूणा तथा प्रेम जैसे उदात्त मानवीय गुणों से संयुक्त होने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है।

जे० कृष्णमूर्ति जी का जीवन–दर्शन अन्तर्विरोधों अथवा टकराव की प्रक्रियाओं के स्थान पर समन्वयात्मकता को महत्व देता प्रतीत होता है। वे कहते हैं– व्यक्ति विभिन्न इकाईयों से मिलकर बना है, परन्तु इन भिन्नताओं पर जोर देने और किसी निश्चित पंजे के विकास को प्रोत्साहित करने से अनेक प्रकार की जटिलताओं से अन्तर्विरोधों का जन्म होगा। शिक्षा को इन अलग–अलग इकाईयों में समन्वयता लानी चाहिये, क्योंकि बिना समन्वयता के जीवन दुःखों और द्वन्दों की श्रृंखला बन जाता है। इस प्रकार जे० कृष्णमूर्ति ने मूल्यवान दर्शन प्रदान किया। जिसके सकारात्मक आध्यात्मिक और नैतिक परिणाम हो सकते हैं। उनका विचार था कि किसी व्यक्ति, ग्रन्थ या परम्परा द्वारा हमें सत्य या यथार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता। इसके लिये हमें स्वयं प्रयत्न करना होगा।

कृष्णमूर्ति के अनुसार जीवन की समग्रता से ही जीवन के लक्ष्यों का अनुभव होता है। मानव जीवन को खण्डों में विभक्त नहीं किया जा सकता है। वे अज्ञानी उसे मानते थे जो स्वयं की सत्ता से अपरिचित है। ऐसे सत्य की खोज करना ही जीवन का लक्ष्य है। वे कहते हैं कि सत्य एक पथहीन भूमि है। इस तक मनुष्य किसी

संगठन, पंथ, कर्मकाण्ड आदि के द्वारा नहीं पहुँच सकता है और न ही किसी दार्शनिक ज्ञान या मनोविज्ञान की तकनीक से, सत्य को निरीक्षण, बौद्धिक छानबीन एवं अर्न्तदर्शी सूक्ष्म परीक्षण से प्राप्त किया जा सकता है। उनके अनुसार ध्यान का अर्थ है– विचारों का अन्त होना और तभी एक भिन्न आयाम प्रकट होता है। समय से परे होता है। ध्यान विचार से मुक्ति है तथा सत्य के आनन्द में जीना है। वे कहते हैं कि जो ईश्वर मन्दिरों में बन्द है, वह तो भय के कारण मन की उपज है जिसे मूर्ति के रूप में महिमा मण्डित किया गया है। ईश्वर तो सर्वत्र विद्यमान है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

प्रश्न–1 : कृष्णमूर्ति की अध्यक्षता में किस संगठन की स्थापना की गई, जिसे स्वयं कृष्णमूर्ति ने 1929 में भंग कर दिया?

____

____

____

प्रश्न–2 : वर्तमान समय में जनकल्याण कार्यों में लगी कृष्णमूर्ति की संस्था का नाम क्या है?

____

____

____

प्रश्न–3 : ईश्वर के सम्बन्ध में जे0 कृष्णमूर्ति के क्या विचार थे?

____

____

____

जे० कृष्णमूर्ति के शिक्षा सम्बन्धी विचार

जे० कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा नवीन के खोज की प्रक्रिया है। जे० कृष्णमूर्ति ऐसी शिक्षा की संकल्पना करते हैं जो मनुष्य के आध्यात्मिक मन को पृष्ठ पोषण प्रदान करे। शिक्षा सिर्फ ऐसी न हो जो समाज को एक निश्चित धारा या पथ पर चलने के लिए बनाई गयी जिसे ग्रहण करके छात्र एक राष्ट्र, एक धर्म, एक जाति को ही सर्वश्रेष्ठ

माने। वे तो ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे जिससे छात्र सम्पूर्ण विश्व एवं धर्म को एक समान ही देखें। जे० कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का अर्थ है समूचे जीवन को समझना, जीवन के रहस्यों को खोजने में लगातार लगे रहना। वे कहते हैं, ''जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते हैं, दुर्भाग्य से, सुनने का, देखने का बोध समाप्त हो जाता है क्योंकि उनकी चिन्तायें होती हैं, उन्हें और अधिक धन, एक अच्छी कार, अधिक या कम संतान की इच्छा होने लगती है। ये ईर्ष्यालु, महत्वाकांक्षा, लालची तथा द्वेषपूर्ण हो जाते हैं। इस प्रकार ये पृथ्वी के सौंदर्य को खो देते हैं।'' अतः वे कहते हैं–''हमारा सरोकार एक भिन्न समाज के जन्म से है, अच्छाई प्रस्फुटन से है एवं एक ऐसे मन से है जो यान्त्रिकता से मुक्त हो। सच्ची शिक्षा यही है।

6.4.1 शिक्षा के उद्देश्य

कृष्णमूर्ति जी के अनुसार शिक्षा केवल पुस्तकों से सीखना, किन्हीं तथ्यों को कंठस्थ करना मात्र नहीं है। यह सीखना भी शिक्षा है कि अवलोकन कैसे किया जाये। पुस्तकें जो कह रही हैं उसे कैसे सुना जाये कि जो वह कह रही हैं वह सच है अथवा झूठा यह सब शिक्षा का ही अंग है। परीक्षायें पास करना, कोई डिग्री अथवा पद प्राप्त करना, विवाह करना तथा सुव्यवस्थित हो जाना ही शिक्षा नहीं है। उसका यह भी अर्थ है कि हम इस योग्य बनें कि पक्षियों के कलरव को सुन सकें, आकाश को देख सकें, वृक्षों के तथा पहाड़ियों के अनुपम सौन्दर्य का अवलोकन कर सकें तथा उनके साथ अनुभव कर सकें, उनका वास्तव में अपरोक्ष रूप से साक्षात् कर सकें। शिक्षा के द्वारा एक ऐसा मन उत्पन्न किया जाता है जो पूर्णतया नवीन है। एक मन जो लोभी नहीं है, जो ईर्ष्यालु नहीं है। शिक्षा द्वारा ऐसा मन विकसित किया जाता है जो महत्वाकांक्षी नहीं है, जो असाधारण रूप से सक्रिय एवं कार्यक्षम है। नित्य–प्रति के जीवन में जो सत्य है और अन्त में जो धर्म है उसका वास्तविक साक्षात् इसी मन को होता है। अतः शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसे मन का विकास करना होना चाहिए जो पवित्र, परोपकारी एवं प्रकृति तथा मानव से प्रेम करने वाला हो।

6.4.2 शिक्षा की पाठ्यचर्या

कृष्णमूर्ति जी के अनुसार पाठ्यक्रम ऐसी हो जो चुनौतीपूर्ण एवं स्वस्थ वातावरण प्रदान कर सके। जिसमें अन्य कार्य भी जैसे कला एवं शारीरिक शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रकृति एवं वाह्य शिक्षा, समाज सेवा एवं भ्रमण सम्मिलित हो। पाठ्यक्रम ऐसा वातावरण उत्पन्न करे जो अधिगम के लिए उपयुक्त हो। जहाँ खोजबीन से सम्बन्धित जागरूकता एवं कार्य का ऐसा वातावरण निर्माण करने में सहायक हो जो सुरक्षित दोस्ताना और बिना संघर्ष के और साहसपूर्ण हो। पाठ्यक्रम ऐसे छात्रों को तैयार कर सके जिनका दिमाग खुला हो और उनमें खोज की भावना सम्मिलित हो।

पाठ्यक्रम छात्रों को उनके मस्तिष्क, हृदय और शरीर का भरपूर उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करें।

6.4.3 शिक्षण विधियाँ

कृष्णमूर्ति जी के अनुसार शिक्षण विधियाँ ऐसी हो जिससे छात्र निरन्तर सीख सकें और भ्रमित न हो। शिक्षण में नीरसता कदापि नहीं होनी चाहिए। जे कृष्णमूर्ति कहा करते थे कि अपने बारे में जागरूक बनो। बच्चे को उसकी स्वयं की वास्तविक जीवन जीने के लिए प्रेरित करना चाहिए। शिक्षण विधि ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी निरन्तर सीख सके और भ्रमित न हो। कृष्णमूर्ति के अनुसार छात्रों को गेस्टाल्ट के मत के अनुसार सभी बातों को अंशों के बजाय पूर्ण में देखते हुए अध्ययन करना चाहिए। छात्रों को सीखने के लिए यह जरूरी है कि उनका मस्तिष्क पहले से बहुत सारे निरर्थक विचारों से न भरा हो या उनके मस्तिष्क में कोई पूर्व धारणा न हो। सीखने के लिए उनमें धैर्य एवं संवेदनशीलता होना आवश्यक है क्योंकि अधिगम एक जिम्मेदारी के साथ दर्द भरा काम भी है। जे0 कृष्णमूर्ति जी ने स्वयं अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए कई प्रकार के माध्यमों का प्रयोग अपने शिक्षण में किया। किसी समय वह व्याख्यान दिया करते तो कभी बातचीत तो कभी सुकरात की तरह प्रश्नोत्तर विधि का प्रयोग करते थे और कभी संवाद के द्वारा शिक्षण दिया करते थे। कृष्णमूर्ति जी ने जिस नवीन शिक्षा योजना का विचार जनता के समक्ष रखा उनमें शिक्षण विधि नितान्त नवीन है। कृष्णमूर्ति जी के शिक्षण विधि में सहयोगी क्रिया, नियोजन, यथार्थता और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व पर बल दिया गया है। इनके अनुसार यह प्रश्नोत्तर विधि है जो स्वयं सीखने पर अधिक बल देती है।

6.4.4 अनुशासन

जे0 कृष्णमूर्ति अनुशासन की जगह व्यवस्था शब्द का प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं कि मैं अनुशासन शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहता क्योंकि आज अनुशासन का अर्थ सिर्फ बाहरी दबाव तक सिमट कर रह गया है जबकि व्यवस्था तब तक नहीं हो सकती जब तक भीतरी समूची प्रक्रिया लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियां न बनाये। इस प्रकार से व्यवस्था अन्तः प्रेरणा का परिणाम है और सीखने की प्रक्रिया इसी भीतरी क्रियाशीलता पर ही निर्भर है। अतः बाहरी अनुशासन रूपी नियंत्रण की जगह भीतरी जिज्ञासा रूपी प्रेरणा ही बच्चों को सीखने का आनन्द दे सकती है, आत्मज्ञान के लिए प्रेरित कर सकती है।

6.4.5 षिक्षक

जे0 कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक ऐसा हो जो बालक को भय से मुक्ति दिलाये। शिक्षक का सिर्फ यही कर्तव्य नहीं है कि वह हमें पुस्तकों को कंठस्थ

कराये बल्कि उसका यह भी कर्तव्य है कि वह हमें यह सिखाये कि अवलोकन कैसे किया जाये? पुस्तकें जो कह रही हैं उसे कैसे सुना जाये कि वह जो कह रही है वह सच है या झूठ यह सब भी शिक्षक का कर्तव्य है। सिर्फ परीक्षायें पास करवाना या कोई डिग्री अथवा पद प्राप्त करने में सहायता करना ही शिक्षक का कार्य नहीं है। उसका यह भी कार्य है कि वह हमें इस योग्य बना सके कि छात्र पक्षियों के कलरव को सुन सके, आकाश को देख सके, वृक्षों तथा पहाड़ों के अनुपम सौन्दर्य का अवलोकन कर सके तथा उनका साथ अनुभव कर सकें। उनका वास्तव में अपरोक्ष रूप से साक्षात कर सके। शिक्षक का यह भी कार्य है कि आपसी प्रेम सौहार्द एवं भाईचारे को बढ़ावा दे सके जो छात्रों में विश्व कुटुम्बकम् की भावना को उत्पन्न कर सके तथा अनेकता में भी एकता को देखने की प्रेरणा प्रदान कर सके। शिक्षक ऐसा हो जो बच्चों को उनकी प्रवृति से प्रेम करना सिखायें और पर्यावरण को सुरक्षित रखने के प्रति जागरूक बना सके। शिक्षक वह माध्यम होता है जो एक पीढ़ी के ज्ञान को दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य करता है। इसलिए शिक्षक को अपने विषय पर पूर्ण आधिपत्य होना चाहिए। शिक्षक समाज की रीढ़ होता है वह समाज को जैसे साँचे में ढालना चाहे ढाल सकता है। समाज को सभी प्रकार की बुराईयों एवं कुरीतियों से दूर रखने का कार्य एक शिक्षक का होता है। इसलिए शिक्षक का चरित्र साफ सुथरा एवं अच्छा तथा गुणवत्तापूर्ण होना चाहिए। शिक्षक सम्प्रेषण का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण माध्यम होता है। एक शिक्षक में यदि अच्छी सम्प्रेषण कौशल न हो तो बच्चों का सीखना सम्भव नहीं हो पाता है।

6.4.6 शिक्षार्थी

कृष्णमूर्ति जी के विचार से शिक्षार्थी को अनुशासित होना चाहिए और उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। वे बच्चों को उनके वैयक्तिक विकास की पूरी–पूरी छूट देते थे पर उनके सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास को दृष्टि में रखते हुए कृष्णमूर्ति प्रारम्भ से ही बच्चों में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक बल का विकास करने और उन्हें आत्मनिर्भर बनाने पर बल देते थे। इनके विचार से ऐसा ही व्यक्ति संसार का भला कर सकता है। कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षार्थी को संयमी के साथ–साथ जिज्ञासु भी होना चाहिए। छात्र को किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित हुए बिना अपने वातावरण के अवलोकन के लायक बन सकें। छात्र पुस्तकों को सुन सके कि वह क्या कह रही है, उसका यह वातावरण उससे क्या कहता है, पक्षियाँ शोर मचाकर क्या कहना चाहती हैं? छात्र यह सब महसूस कर सके। कृष्णमूर्ति के अनुसार छात्र सिर्फ ज्ञान का भण्डार मात्र न बने बल्कि वह कठिन परिस्थितियों में अपनी बृद्धि एवं विवेक का उपयोग करने वाला बन सके। जे0 कृष्णमूर्ति छात्र को पूर्ण मानते थे। वे कहते थे कि छात्र अपने आप में पूर्ण होते हैं उनमें सभी ज्ञान जन्म से ही रहते हैं बस

वे उससे अपरिचित होते हैं और शिक्षकों का कार्य सिर्फ इतना है कि वे छात्रों को अपने स्वयं के ज्ञान को बस पढ़ना सिखा सके।

6.4.7 विद्यालय

विद्यालय के सम्बन्ध में कृष्णमूर्ति का विचार अन्य लोगों के विचार से बिल्कुल भिन्न है। कृष्णमूर्ति जी के अनुसार विद्यालय ऐसी कर्मशाला होनी चाहिए जहाँ अध्यापक सेवा भाव से पूर्ण निष्ठता के साथ कार्य करें और विद्यार्थियों के संयुक्त प्रयास से उसमें इतना उत्पादन कार्य हो कि वे आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो। वे विद्यालय को सामुदायिक केन्द्र बनाने पर बल देते थे। कृष्णमूर्ति जी द्वारा स्थापित 'द स्कूल' तथा 'द वैली स्कूल' तथा 'राजघाट बेसेण्ट स्कूल' इसी प्रकार के विद्यालय हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए ।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

प्रश्न–4 : जे0 कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का अर्थ और महत्व बताइये।

____

____

____

प्रश्न–5 : कृष्णमूर्ति के शिक्षा दर्शन में शिक्षक का क्या कार्य है?

____

____

____

प्रश्न–6 : अनुशासन के सम्बन्ध में कृष्णमूर्ति जी के क्या विचार हैं?

____

____

____

प्रश्न–7 : कृष्णमूर्ति जी किस प्रकार की पाठ्यचर्या के पक्षधर थे?

____

____

____

प्रश्न–8 : कृष्णमूर्ति जी के अनुसार स्वतंत्रता तथा अनुशासन में क्या सम्बन्ध है?

____

____

____

6.05 जे. कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन

कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचारों का आधार उनके दार्शनिक विचार हैं। उनके शैक्षिक विचार उनके स्वयं के अनुभवों पर आधारित है। उनके अनुसार शिक्षा केवल पुस्तकों में सीखना या तथ्यों को कंठस्थ करना मात्र नहीं है। उनका मानना था कि समस्त समस्याओं की जड़ हमारी दोषपूर्ण वर्तमान शिक्षा प्रणाली है। वे कहते थे कि वर्तमान शिक्षा व्यक्ति को केवल डिग्री लेने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार की शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य व्यवसाय एवं नौकरियाँ ही प्राप्त करना है। वर्तमान शिक्षा व्यक्ति को वास्तविक मानव बनने में रूकावट उत्पन्न करती है। उसे महत्वाकांक्षी बनाती है जिससे उसके अन्दर प्रतियोगिता की भावना पैदा हो जाती है। बालकों को भय उत्पन्न करने वाली शिक्षा दी जाती है। शिक्षा द्वारा बालकों में ऐसी क्षमता उत्पन्न होनी चाहिए जो सामाजिक रीति–रिवाजों, अन्धविश्वासों आदि के साथ–साथ स्वयं के मन की गतिविधियों को भी अवलोकन कर सके। इससे उनका दृष्टिकोण स्पष्ट होगा, इससे छात्र मौलिक परिवर्तन द्वारा नवीन विश्व की रचना में सहयोग कर सकेंगे, क्योंकि कृष्णमूर्ति चाहते थे कि शिक्षा ऐसी हो जिससे नवीन संस्कृति एवं विश्व का निर्माण हो सके। वे कहते हैं कि वर्तमान शिक्षा बालकों को अनुकरण करने को प्रेरित करती है जिससे उनकी निजता समाप्त हो जाती है। उनकी पूरी ऊर्जा किसी की प्रतिलिपि बनने में खत्म हो जाती है। शिक्षा द्वारा बालक में सचेतना एवं उद्यमियता का विकास होना चाहिए। कोई भी समस्या सामने आने पर बालक उसकी प्रकृति का अवलोकन करे, उसका सामना करे तथा उसका उपयुक्त समाधान निकालने में सक्षम हो सके।

कृष्णमूर्ति के अनुसार केवल बौद्धिक ज्ञान एक प्रकार की अज्ञानता है तथा केवल तथ्यों का ज्ञान ही हमारी समस्याओं का समाधान नहीं कर सकती है। शिक्षा द्वारा बालकों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास करने पर वे बल देते थे। यह उत्तरदायित्व समग्र रूप से समष्टि के प्रति होना चाहिए न कि केवल परिवार, जाति या धर्म के प्रति, वे शिक्षा के द्वारा छात्रों में आविष्कार करने, शोध करने में भी सक्षम बनाना चाहते थे जिससे बालक का मन तकनीकी ज्ञान से बोझिल होकर यन्त्रवत् न

बना रह जाए। इस प्रकार तकनीकी विषयों से सम्बन्धित भी उनके विचार मौलिक थे। वे प्रौढ़ शिक्षा के भी समर्थक थे। वे कहते थे कि जो लोग शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं उन्हें भी लगातार सीखते रहना चाहिए अन्यथा वे पिछड़ जायेंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनकी ज्ञान की सम्पन्नता एवं अध्ययनशीलता ने उन्हें एक श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री बना दिया। उन्होनें नवीन शिक्षा दर्शन का निर्माण किया जो उनके विद्यालयों के शिक्षा व्यवस्था में स्पष्ट दिखाई देती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

प्रश्न–9 : जे0 कृष्णमूर्ति हमारी समस्याओं का कारण किसे मानते थे?

____

____

____

प्रश्न–10 : तकनीकी ज्ञान के संबन्ध में कृष्णमूर्ति के क्या विचार थे?

____

____

____

6.06 गिज्जू भाई का जीवन–वृत्त एवं दर्शन

गिज्जू भाई का जन्म 15 नवम्बर सन् 1885 ई0 को हुआ था। गिज्जू भाई का जन्म सौराष्ट्र के चितल गाँव में हुआ था। उनका पूरा नाम था गिरजाशंकर भगवान जी बधेका परन्तु वे गिज्जू भाई बधेका के नाम से लोकप्रिय हुये।

गिज्जू भाई ने अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद वकालत का पेशा प्रारम्भ किया। किन्तु वकालत में उनका मन अधिक दिन तक नहीं लग सका। उन्होंने वकालत छोड़ दी और शिक्षक बन गये। तत्पश्चात् उनका सारा जीवन सन् 1916 ई0 से मृत्यु तक अर्थात् सन् 1939 ई0 तक शिक्षा के क्षेत्र में व्यतीत हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में पदार्पण करने के बाद उनकी अदालत अब माता–पिता परिवार व विद्यालय बन गया और उन्होंने उन सुकुमारित बालकों की वकालत करने का बीड़ा उठाया जो अपनी परिवार में कुछ नहीं कह पाते थे और बहुत से बच्चों को अपने माता–पिता के अत्याचारों को सहन करना पड़ता था। बच्चों के दुःख का यहीं अन्त नहीं था उन्हें विद्यालय में पढ़ाई के नाम पर

डाँट–फटकार तथा हिंसा का शिकार होना पड़ता था। इन सबके विरूद्ध माता–पिता व शिक्षकों की अदालत में उन्होंने बालकों के पक्ष में वकालत की। बच्चों की शिक्षा पर गम्भीर चिन्तन किया और बालकों के जीवन को सुखमय बनाने का भरसक प्रयास किया। अतः उन्हें 'बच्चों का गाँधी' कहकर पुकारा गया। भारत में पूर्व प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में नये सिद्धान्त तथा विधियों का निर्माण करने वाले वे पहले शिक्षाविद् थे। सन् 1916 ई0 से 1920 ई0 तक वे विनय मन्दिर, हाईस्कूल के मुख्य अध्यापक रहे। इस अवधि में उन्होंने अध्यापकों तथा छात्रों का निकटता से अवलोकन किया तत्पश्चात् उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र देकर तीन वर्ष की आयु के बच्चों के लिये बाल मन्दिर की स्थापना की। धीरे–धीरे गुजरात में इस पद्धति के अनेक मन्दिर स्थापित किये गये।

शिक्षा के क्षेत्र में इस कर्मठ कार्यकर्ता व नायक का 54 वर्ष की आयु में 23 जून 1939 को निधन हो गया। बालकों को एक प्रबल समर्थक, साथी एवं उन्नायक के निधन से बालकों की शिक्षा की अपूर्णीय क्षति हो गयी।

गिज्जू भाई का दर्शन

गिज्जू भाई ने न तो किसी नये दर्शन को जन्म दिया और न ही किसी दर्शन की व्यवस्था की है। परन्तु हर बड़े चिन्तक की तरह इनका अपना एक जीवन दर्शन है। इनका मानना था कि ईश्वर ही इस सृष्टि का निर्माण कर्ता है और वही इसका संहार कर्ता है। मनुष्य को ये ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति है जिसे मनुष्य धर्म एवं नैतिकता के पालन और ईश्वर भक्ति द्वारा प्राप्त कर सकता है। गिज्जू भाई भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान को आवश्यक मानते थे और यह मानते थे कि भौतिक जगत का ज्ञान ब्राह्म इन्द्रियों के माध्यम से किया जा सकता है और आध्यात्मिकता का ज्ञान अन्तः करण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इनकी दृष्टि से हर मनुष्य को सत्य, अहिंसा एवं ईमानदारी का पालन करना चाहिये और प्राणी मात्र के प्रति प्रेम, स्नेह, करूणा, दया एवं परोपकार का भाव रखना चाहिये। नैतिकता विहीन मनुष्य को ये मनुष्य नहीं मानते थे। गिज्जू भाई प्रत्येक मनुष्य से अपने राष्ट्र के प्रति समर्पित होने की अपेक्षा करते थे।

गिज्जू भाई का अपना एक जीवन दर्शन था जिसको निम्न बिन्दुओं के अंर्तगत समझ सकते हैं–

1. **तत्व मीमांसा**– गिज्जू भाई का मानना था कि ईश्वर ही इस सृष्टि का निर्माणकर्त्ता है तथा वही इसका संहारकर्त्ता भी है। मानव ईश्वर की श्रेष्ठ रचना है। मनुष्य के जीवन का सर्वोपरि उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति ही है।

2. **ज्ञान मीमांसा**– गिज्जू भाई भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान को आवश्यक मानते थे। उनके अनुसार भौतिक जगत का ज्ञान वाह्य इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान केवल अन्तःकरण द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

आचार मीमांसा– गिज्जू भाई के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को धर्म, अहिंसा एवं ईमानदारी का पालन करना चाहिए। वे धर्म एवं नैतिकता को मनुष्य के जीवन का आधार मानते थे। उनका कहना था कि प्रत्येक मनुष्य को अपने देश के लिए समर्पित होना चाहिए। नैतिकता से विहीन मनुष्य को वे मनुष्य नहीं मानते थे। वे कहते थे कि व्यक्ति में एक दूसरे के प्रति प्रेम, करूणा, दया व परोपकार की भावना होनी चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

प्रश्न–11 : गिज्जू भाई को **'बच्चों का गाँधी'** कहकर क्यों पुकारा गया?

____

____

____

प्रश्न–12 : गिज्जू भाई के अनुसार भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है ?

____

____

____

प्रश्न–13 : बच्चों के लिए गिज्जू भाई ने गुजरात में किस विद्यालय की स्थापना की?

____

____

____

6.07 गिज्जू भाई के शिक्षा सम्बन्धी विचार

गिज्जू भाई मनुष्य के सर्वांगीण विकास के पक्षधर थे। इनके शब्दों में वास्तविक शिक्षा वह है जो मनुष्य का सर्वांगीण विकास करे। गिज्जू भाई का मन हमेशा बालकों

के प्रति प्रेम से भरा रहा। उन्हें बच्चों से बहुत प्यार था तथा वे उनका बहुत ख्याल रखा करते थे। वे स्कूलों में बच्चों पर होने वाले जुल्मों के मुखर विरोधी थे। भारत में वे बालकेन्द्रित शिक्षा के प्रणेता थे और अपनी इसी भावना को जन–जन तक पहुँचाने के लिये उन्होंने शिक्षा का व्यवसाय चुना।

अपने जीवन काल में ही गिज्जू भाई ने कई विद्यालयों की स्थापना एवं उनका संचालन किया। शिक्षा के क्षेत्र में उनकी लोकप्रियता काफी बढ़ गयी थी। जिसके कारण गुजरात में अन्य जगहों पर भी स्कूलों में उन्हें भाषण देने या मेहमान की तरह बुलाया जाता था। गिज्जू भाई ने अपने जीवन काल में बालकों के लिये, माता–पिता के लिये एवं शिक्षकों के लिये कई पुस्तकों की रचना की जिसका समाज पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा।

गिज्जू भाई ने समाज में बालकों के प्रति नजरिये को बदलकर बच्चों को कड़े अनुशासन, डाट तथा शिक्षकों की मार से आजादी दिलायी। इसी कारण उन्हें बालकों का गाँधी भी कहा जाता है। गिज्जू भाई के अनुसार बालकों को ईश्वर के प्राकृतिक आवास में बढ़ने एवं फलने–फूलने का अवसर प्रदान करना चाहिये। गिज्जू भाई कहते थे कि बच्चे वही कार्य करें जिसमें उनका मन लगता है, वह कार्य नहीं जिसमें उनके माता–पिता का मन लगे। क्योंकि एक प्रौढ़मन एक बाल मन से अलग होता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पानी और हवा ये दोनों आपस में कभी नहीं मिलते। प्रौढ़ मन पानी की तरह है जो स्थिर एवं शान्त होता है पर बाल मन तो हवा की तरह चंचल कभी इधर कभी उधर घूमता रहता है। उसे किसी प्रकार की बेड़ियों से जकड़ा नहीं जा सकता है। हाँ, बस उसकी भावनाओं को कोई प्रयास करे तो ठंडी हवा के झोंके के समान महसूस कर सकता है और अगर कोई थोड़ा और प्रयास करे तो प्यार से उसे सही मार्ग पर भेज सकता है। परन्तु इसके लिये उस व्यक्ति को बहुत धैर्यवान होना चाहिये क्योंकि बाल मन तो चंचल है। एक बच्चा तो वही पाने की जिद्द करेगा जो उसे अच्छा लगता हो भले ही वह आग ही क्यों न हो। बालमन के इन्हीं भावों को पढ़ने एवं समझने की अद्भुत क्षमता गिज्जू भाई में थी, जो उनके पुस्तकों में झलकती है।

6.7.1 शिक्षा के उद्देश्य

गिज्जू भाई के शिक्षा का उद्देश्य है बालक में भली प्रकार से संतुलित रूप में व्यक्तित्व का विकास करना। संतुलित व्यक्तित्व वह है जिसमें बौद्धिक नैतिकता और धार्मिक जीवन भली प्रकार समन्वित होते हैं और कुशलता से कार्य करते हैं। बालक की शिक्षा मूल प्रवृत्तियों, प्रेरणाओं और संवेगों पर आधारित होनी चाहिये। बालक के सीखने के सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित होनी चाहिये। उन्होंने बालकों में सत्य, अहिंसा, प्रेम, स्नेह, करूणा, दया, त्याग, परोपकार एवं सहयोग जैसे मानवीय गुणों के विकास पर बल दिया। साथ ही ये उनके शारीरिक और मानसिक विकास पर

भी बल देते थे। उनकी सृजनशीलता के विकास पर बल देते थे, उनमें श्रेष्ठ नागरिकों के गुणों के विकास पर बल देते थे और उनमें राष्ट्रीय भावना के विकास पर बल देते थे।

6.7.2 शिक्षा की पाठ्यचर्या

गिज्जू भाई के विचार से पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिये जो समाज एवं व्यक्ति की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर बनाया गया है। साथ ही साथ प्रेरणाओं, मूल्यों और सीखने के सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिये। गिज्जू भाई ने अपनी बाल केन्द्रित शिक्षा के पाठ्यक्रम में कविता शिक्षा, कथा, कहानी शिक्षा, व्याकरण शिक्षा, इतिहास, भूगोल, खेलकूद शिक्षा, चित्रकला तथा धार्मिक शिक्षा आदि विषयों को स्थान दिया है। गिज्जू भाई का यह पाठ्यक्रम प्राथमिक स्तर तक सीमित है। पाठ्यक्रम में गिज्जू भाई खेल खेलना, गाना–गाना, काम करना, बाजा बजाना, गरबा नृत्य करना, रास रचाना, कविता पाठ करना, कहानी कहना, अभिनय करना, प्रहसन व नाट्य की योजना, लिखना पढ़ना, बगीचा सजाना, फूल पौधे लगाना, क्यारी लगाना, घूमना, प्रकृति दर्शन करना आदि क्रियाकलापों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया और इन सब कार्यों में वे स्वयं भी बच्चों के साथ रहते थे।

6.7.3 शिक्षण विधियाँ

गिज्जू भाई की एक अनुपम कृति 'प्राथमिक शाला में शिक्षा' है। इस पुस्तक में बालक और शिक्षक के बीच की उस प्रक्रिया की चर्चा है जिससे बालक के भाषा शिक्षा की बुनियाद तैयार होती है। इनके अनुसार सबसे पहले वाचन पर बल दिया गया तत्पश्चात् वे चित्रण से लेखन को प्रारम्भ पड़ती है। गिज्जू भाई ने कहानी शिक्षण विधि के माध्यम से बालकों को सीखने एवं सीखाने का प्रयत्न किया और इसमें वे सफल भी रहें। उन्होनें कहानी विधि के अतिरिक्त कविता शिक्षण तथा खेल–खेल में शिक्षा की शिक्षण विधि का प्रयोग किया। जिसका बालकों को सीखाने में अति महत्वपूर्ण योगदान होता है। भाषा एवं गणित शिक्षण को उन्होंने इतना रोचक बना दिया था कि व्याकरण व घनमूल, वर्गमूल भी बच्चे बड़ी सहजता से समझ लेते थे।

गिज्जू भाई के शिक्षण विधियों में सर्वाधिक क्रान्तिकारी व प्रभावी विधि थी कहानी विधि। कहानी कहने में वे इतने कुशल कथाकार थे कि इस विशेषता के कारण दक्षिणामूर्ति बाल मन्दिर दूर–दूर तक विख्यात हो गया था। अभिभावकों के सम्मेलन की भांति गिज्जू भाई ने बाल सम्मेलन भी अनिवार्य समझे। बाल सम्मेलन को उन्होंने इस रूप में लिया कि बाल मन्दिर में पढ़े हुये बालक फिर से अपनी मातृ संस्था आयें और सबके बीच में न सिर्फ आत्मीय सम्बन्ध बनाये अपितु शिक्षण के अवसर भी प्राप्त करें। इतिहास शिक्षण हेतु इतिहास को कहानी के माध्यम से पढ़ाया जाता था। भूगोल शिक्षण में ग्लोब तथा नक्शों का प्रयोग किया जाता था। बच्चों को विभिन्न प्रकार की

वस्तुओं द्वारा चित्रकला का शिक्षण दिया जाता था। बच्चों को चित्र बनाने में उत्साह बढ़ाया जाता था एवं स्थानीय सामग्री का प्रयोग किया जाता था। बाद में पेन्सिल से रंग भरना सिखाया जाता था। नैतिक शिक्षा पढ़ाने हेतु महा पुरूषों की जीवनियों का सहारा लिया जाता था। शिक्षक अपने आचरण द्वारा नैतिक शिक्षा का पाठ पढ़ाये। इससे बच्चों में नैतिकता का विकास स्वाभाविक रूप में होगा।

6.7.4 अनुशासन

गिज्जू भाई अनुशासन के सम्बन्ध में बच्चों के शारीरिक, मानसिक व आर्थिक दण्ड के विरूद्ध थे। इनका विचार था कि बच्चों के नैतिक गुणों का विकास आदर्शपाठ की शिक्षा के माध्यम से अनुशासित किया जा सकता है। इन्होंने शिक्षकों को निर्देश दिया कि किसी भी स्थिति में बच्चों को झिड़किये नहीं, डाँटिये–डपटिये नहीं, उन्हें पीटिये नही, उन्हें अभिव्यक्ति एवं कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दीजिये। प्यार एवं स्नेह भरे वातावरण में वे एक–दूसरे की सुख–सुविधा का स्वयं ध्यान रखेंगे, कोई अन्यथा आचरण नहीं करेंगे तथा उनमें स्वानुशासन का विकास होगा। इस प्रकार गिज्जू भाई दमनात्मक अनुशासन के घोर विरोधी तथा स्वानुशासन के पक्षधर थे।

6.7.5 शिक्षक

गिज्जू भाई के 'दिवा स्वप्न' के अनुसार शिक्षक को 'बाल केन्द्रित' होना चाहिये। बालक के स्वाभाविक, व्यावहारिक एवं मानसिक विकास को समझने का प्रयास करना चाहिये। गिज्जू भाई के अनुसार शिक्षक ऐसा होना चाहिये, जो 'बाल देव भवः' में विश्वास करने वाला हो। जो बालकों के भावनाओं को समझने वाला हो, जो उनकी रूचियों और क्षमताओं को जानने वाला हो और उसी के अनुसार उनको शिक्षा प्रदान करें। शिक्षक बालकों के सुख में अपने स्वर्ग को देखता हो। बालकों में भगवान के प्रतिबिम्ब को देखता हो। शिक्षक का स्वर्ग बालक के स्वास्थ्य, बालक के आनन्द, बालक के भोलेपन में हो। गिज्जू भाई के अनुसार शिक्षक को एक अच्छा वक्ता होना चाहिये। जिससे छात्र शिक्षक के बीच बातों को समझने और समझाने में कोई उलझन न हो और बालक आसानी से सीख सके।

6.7.6 शिक्षार्थी

गिज्जू भाई के विचार से शिक्षार्थी को अनुशासित रहना आवश्यक है। तभी आदर्श पाठ का आदर्श पाठन सम्भव हो सकता है। गिज्जू भाई शिक्षार्थी को शिक्षा ग्रहण करते समय संयम और अनुशासन को आवश्यक मानते थे। वे बालकों में मानवीय गुणों का विकास करके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास पर बल देते थे। गिज्जू भाई बच्चों की सम्पूर्ण इन्द्रिय विकास के लिये शांति की क्रिया, शैक्षणिक भ्रमण, शारीरिक कार्य, कक्षा कहानी जैसी प्रवृत्तियों के केन्द के रूप में शिक्षा केन्द्र को देखते थे जहां बच्चे हँसने, खेलने की गतिविधियों में भाग लेते हुये शिक्षा प्राप्त करें।

गिज्जू भाई बालकों को भगवान के रूप में देखते थे। ये बात इनके वाक्य 'बालो देव भवः' से सिद्ध हो जाती है। उन्होंने शिक्षकों को उपदेश दिया ''बच्चों के व्यक्तित्व का आदर करो, उनसे प्रेम करो, उन्हें देवता मानो, उनकी सेवा करो और उनके साथ इतना सुन्दर व्यवहार करो कि वे मुस्कुराते हुये विद्यालय आयें और मुस्कुराते हुये विद्यालय से जायें।

6.7.7 विद्यालय

गिज्जू भाई के अनुसार विद्यालय ऐसा विनय मन्दिर है जो पूर्ण रूप से बच्चों को समर्पित है। ये कहा करते थे कि विद्यालयों को मन्दिर की तरह सजाओ—संवारों, उन्हें आकर्षण का केन्द्र बनाओ, विद्यालयों में बच्चों के व्यक्तित्व का आदर करो, उनसे प्रेम करो, उनकी सेवा करो, उन्हें अपने विकास के स्वतन्त्र अवसर दो। किसी भी स्थिति में उन्हें किसी प्रकार की ताड़ना न दो, विद्यालयों का वातावरण भयमुक्त बनाओ, विद्यालयों में ऐसा प्रेम भरा वातावरण प्रस्तुत करो कि बच्चे हंसते हुये नये उत्साह के साथ विद्यालयों में प्रवेश करें और बिना किसी थकान और परेशानी के प्रसन्नता के साथ विद्यालय से घर जायें।

बोध प्रश्न

टिप्पणी— (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

प्रश्न—14 : गिज्जू भाई की शिक्षा से संबन्धित दो प्रमुख रचनाएँ बताइए।

____

____

____

प्रश्न—15 : गिज्जू भाई द्वारा स्थापित अध्ययन मन्दिरों के क्या उद्देश्य थे?

____

____

____

प्रश्न—16 : गिज्जू भाई ने बच्चों के संबन्ध में कौन—सा नारा दिया?

____

____

____

6.08 गिज्जू भाई के शैक्षिक विचारों की समीक्षा

गिज्जू भाई का शैक्षिक विचार शिशु शिक्षा तक सीमित है। इस क्षेत्र में ये डॉ0 मेरिया मॉन्टेसरी से विशेष रूप से प्रभावित थे। कुछ अर्थों में ये फ्रोबेल की किण्डर गार्टन

प्रणाली को भी अच्छा समझते थे। फ्रोबेल द्वारा विकसित शिक्षण पद्धतियों को भी इन्होंने भारतीय परिवेश में ढाला है। शिशु शिक्षा सम्बन्धी इनके विचार इनके द्वारा लिखित पुस्तकों में देखने को मिलते हैं। उनमें भी इनकी दो रचनायें विशेष महत्व की है– एक 'दिवा स्वप्न' और 'दूसरी प्राथमिक शाला में भाषा शिक्षा' दिवा स्वप्न कहानी विधि में लिखी गयी है जिसमें एक शिक्षक अपनी भावी शाला का ताना–बाना बुनता है। वह शिक्षक और कोई नहीं, स्वयं गिज्जू भाई है। गिज्जू भाई बाल केन्द्रित शिक्षा के पक्षधर थे। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो बच्चे में नैसर्गिक, मानसिक क्षमताओं के विकास में योगदान करें और उसे समाज एवं राष्ट्र के लिए उपयोगी एवं सबल नागरिक के रूप में तैयार कर सके।

उनका नारा था– **"बाल देवो भवः"** अर्थात् बच्चे को देवता मानो। वे बाल विद्यालय को एक मन्दिर मानते थे तथा बच्चों को उसका देवता, स्वयं को उन्होनें उस मन्दिर के देवता का पुजारी बताया। उनकी नजर में शिक्षण व्यवसाय सभी व्यवसायों में सबसे उत्तम है। अन्य व्यवसाय तो केवल वर्तमान से सम्बन्धित होते हैं जबकि शिक्षण व्यवसाय समाज के अतीत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों से सम्बन्धित होता है। शिशु बाल किसी भी प्रकार के विकास की नींव होती है। नींव मजबूत होने पर ही इमारत मजबूत होगी। यह कार्य बेहतर ढंग से शिक्षक तभी कर सकते हैं जब उन्हें शिशु प्रकृति का ज्ञान हो। शिशुओं के लिए उनके मन में प्रेम, सहानुभूति व त्याग की भावना हो।

उनका कहना था कि जब तक अभिभावक तथा शिक्षक एक दूसरे के पूरक बनकर बच्चों की शिक्षा एवं सर्वांगीण विकास के लिए प्रयत्न नहीं करते तब तक बच्चों की शिक्षा प्रभावी नहीं हो सकती है। उन्होनें बाल शिक्षा के क्षेत्र में एक नई क्रान्ति की शुरूआत की। निजी प्राथमिक विद्यालयों में इसका व्यापक प्रभाव पड़ा।

वर्तमान समय में शिशु शिक्षा से जुड़े व्यक्तियों को गिज्जु भाई के शैक्षिक दर्शन को सही तरीके से समझने की आवश्यकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गिज्जू भाई एक समर्पित शिक्षक थे।

6.9 सारांश

कृष्णमूर्ति जी समूचे जीवन को समझने को ही शिक्षा के रूप में स्वीकार करते थे। इनका जीवन दर्शन आध्यात्मिकता से ओत–प्रोत था। ये अन्तर्विरोधों अथवा टकराव की प्रक्रियाओं के स्थान पर समन्वयात्मकता को महत्व देते थे। इन्होनें शिक्षा का उद्देश्य ऐसे मन का विकास करना माना जो पवित्र, परोपकारी एवं प्रकृति तथा मानव से प्रेम करने वाला हो। शिक्षार्थी को अनुशासित होना चाहिये तथा शिक्षक ऐसा हो जो बालक को भय से मुक्ति दिला सके। अनुशासन की जगह व्यवस्था शब्द को

स्वीकारते थे तथा आन्तरिक अनुशासन पर बल देते थे। विद्यालय को ये कर्मशाला के रूप में स्वीकारते थे जहां शिक्षक सेवा भाव से पूर्ण निष्ठा के साथ कार्य करें।

गिज्जू भाई एक समर्पित शिक्षक थे जिन्होनें शिक्षण को बाल सेवा के रूप में स्वीकार किया। एक शैक्षिक चिन्तक के रूप में इन्होनें बाल शिक्षा सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन किया। शिशु शिक्षा के क्षेत्र में इन्होनें स्वतन्त्र रूप से प्रयोग किये और शिशु शिक्षा सम्बन्धी अनेक तथ्यों की खोज की। इन्होनें अपने शैक्षिक विचारों को पुस्तकों के माध्यम से शिक्षा जगत से सम्बन्धित व्यक्तियों एवं बालकों के अभिभावकों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। अपने शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोगों से परिचित कराने के लिये अध्ययन मन्दिरों की स्थापना भी की तथा जीवन काल में लगभग 600 शिक्षकों को शिशु विधियों से प्रशिक्षित भी किया। उनका सबसे बड़ा कार्य जगत में इन्हें बच्चों के गाँधी के नाम से जाना पहचाना जाता है। गिज्जू भाई पाश्चात्य शिक्षाविदों द्वारा विकसित शिशु शिक्षण विधियों को भारतीय परिवेश में कुछ अपने ढंग से प्रयोग करने के लिये सदैव स्मरण किये जायेगें।

6.10 अभ्यास प्रष्न

1. जे0 कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य क्या होने चाहिए ?
2. जे0 कृष्णमूर्ति के अनुसार विद्यालयों में कौन–सी विशेषताऍं होनी चाहिए ?
3. जे0 कृष्णमूति किन शिक्षण विधियों के पक्षधर थे ?
4. गिज्जू भाई के जीवन पर प्रकाश डालिये और उनके शैक्षिक कार्यों का वर्णन कीजिये।
5. गिज्जू भाई के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन कीजिये।
6. गिज्जू भाई के शिशु विद्यालय सम्बन्धी विचारों को संक्षेप में लिखो।
7. गिज्जू भाई ने किस प्रकार के पाठ्यक्रम पर बल दिये ? उल्लेख करों।

   अनुशासन के सम्बन्ध में गिज्जू भाई के विचार स्पष्ट करो।

6.11 चर्चा के बिन्दु

1. छात्राध्यापक आपस में जे0 कृष्णमूति द्वारा स्थापित विद्यालयों की विशेषताओं के बारे में चर्चा करेगें।
2. छात्राध्यापक गिज्जू भाई द्वारा बच्चों के शिक्षण हेतु बताए गये सिद्धान्तों को वर्तमान समय में प्राथमिक विद्यालयों में लागू किये जाने के बारे में चर्चा करेगें।

6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. कृष्णमूर्ति की अध्यक्षता में ''आर्डर ऑफ द स्टार इन द ईस्ट'' नामक संगठन स्थापित किया गया। जिसे उन्होनें 1929 में भंग कर दिया।
2. वर्तमान समय में जनकल्याण कार्यों में लगी उनकी संस्था का नाम ''कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन'' है।
3. कृष्णमूर्ति का मानना था कि ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है। जो ईश्वर मन्दिरों में बन्द है, वह तो हमारे भय के कारण मन की उपज है जिसे मूर्ति के रूप में महिमामण्डित किया गया है।
4. कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा नवीन के खोज की प्रक्रिया है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो मनुष्य के आध्यात्मिक मन को पृष्ठ पोषण प्रदान करे।
5. कृष्णमूर्ति के शिक्षा दर्शन में शिक्षक का कार्य यह है कि वह बच्चों को यह सिखाए कि अवलोकन कैसे किया जाए तथा उनमें विश्व कुटुम्बकम् की भावना विकसित कर सके।
6. कृष्णमूर्ति अनुशासन के स्थान पर 'व्यवस्था' शब्द का प्रयोग करते हैं। बाहरी अनुशासन रूपी नियन्त्रण के स्थान पर भीतरी जिज्ञासा रूपी प्रेरणा ही बच्चों को आत्मज्ञान व सीखने के लिए प्रेरित कर सकती है।
7. कृष्णमूर्ति के अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा हो जो छात्रों को चुनौतीपूर्ण एवं स्वस्थ वातावरण प्रदान कर सके। पाठ्यक्रम ऐसे छात्रों को तैयार कर सके जिनका दिमाग खुला हो तथा उनमें खोज की भावना सम्मिलित हो।
8. कृष्णमूर्ति के अनुसार नियन्त्रण का दमन नहीं है। अनुशासन के रूप में बालक की स्वतन्त्रता का हनन नहीं होना चाहिए।
9. कृष्णमूर्ति हमारी समस्त समस्याओं का कारण हमारी दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था को मानते थे।
10. वे तकनीकी ज्ञान द्वारा छात्रों को आविष्कार एवं शोध कार्यों के लिए प्रेरित करना चाहते थे।
11. गिज्जू भाई को ''बच्चों का गाँधी'' इसलिए कहकर पूकारा गया क्योंकि उन्होनें माता पिता एवं शिक्षकों द्वारा बच्चों पर होने वाले अत्याचारों को रोकने के लिए सार्थक कदम उठाए। वे बच्चों की शिक्षा के लिए समर्पित थे।
12. गिज्जू भाई के अनुसार भौतिक ज्ञान की प्राप्ति वाह्य इन्द्रियों के द्वारा हो सकती है तथा आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति अन्तःकरण द्वारा ही हो सकती है।

13. बच्चों के लिए गुजरात में उन्होनें ''बाल मन्दिर'' नामक विद्यालय की स्थापना की।
14. गिज्जू भाई की शिक्षा से सम्बन्धित दो प्रमुख रचनाएँ ''दिवा–स्वपन'' एवं ''प्राथमिक शाला में भाषा शिक्षा'' है।
15. गिज्जू भाई द्वारा स्थापित अध्ययन मंदिरों का उद्देश्य शिक्षकों को बाल शिक्षण कौशलों का प्रशिक्षण देना था।
16. गिज्जू भाई ने बच्चों के सम्बन्ध में ''बाल देवो भवः'' अर्थात् बच्चों को देवता समझो का नारा दिया।

6.13 अध्ययन हेतु उपयोगी पुस्तकें

- **ओड, एल0 के0 (2006),** शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- **चौबे, सरयू प्रसाद एवं चौबे, अखिलेश (2013),** आधुनिक शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।
- **पाण्डेय राम शकल (2009),** विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
- **पाण्डेय राम शकल (2009),** शिक्षा दर्शन, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
- **पाण्डेय राम शकल (2004),** भारतीय शिक्षा दर्शन, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
- **लाल, रमन बिहारी (2003),** शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, मेरठ : रस्तोगी पब्लिकेशन्स।
- **शर्मा, आर0 पी0 (1993),** आधुनिक पाश्चात्य दर्शन, पटना : भारती भवन।
- **सिंह, बी0 एन0 (1994),** पाश्चात्य दर्शन, वाराणसी : स्टूडेन्टस फ्रेण्डस एण्ड कम्पनी।
- **सिंह, रामपाल (2011)** उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षा, आगरा : अग्रवाल प्रकाशन।

खण्ड : तीन

शिक्षा दर्शन के सम्प्रदाय

इकाई - 7 133
भारतीय दार्शनिक विचार

इकाई - 8 185
आदर्शवाद और प्रकृतिवाद

इकाई - 9 214
यथार्थवाद, प्रयोजनवाद और अस्तित्ववाद

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	पूर्व निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 के0एस0मिश्र	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 अखिलेश चौबे	पूर्व आचार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो0 विद्या अग्रवाल	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 शैलेश कुमार यादव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई-1,3 एवं 14)
डॉ0 सरोज यादव	असि. प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 2 एवं 10)
डॉ0दिनेश सिंह	असि0 डायरेक्टर/असि0 प्रो0 शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई-4,5 एवं 6)
डॉ0 उपेन्द्र नाथ तिवारी	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 7,8 एवं 9)
डॉ0 मीनू गुप्ता	एसो0प्रो0बी0एड0विभाग,एम0डी0पी0जी0कालेज प्रतापगढ़ (इकाई-11)
डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 12,13 एवं 15)

सम्पादक

प्रो0 विद्या अग्रवाल	शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

परिमापक

प्रो0पी0के0 साहू	शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

समन्वयक

डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रकाशक

डॉ0 राजेश कुमार पाण्डेय	कुलसचिव,उ0प्र0राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN 978-93-83328-01-7

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

B.Ed.E-02 : समसामयिक भारत एवं शिक्षा

खण्ड–एक शैक्षिक विकास

इकाई–1 शिक्षा का अर्थ एवं अवधारणा : प्राचीन से वर्तमान तक

इकाई–2 शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था : राज्य तथा केन्द्र की भूमिका

इकाई–3 शिक्षा में संवैधानिक प्रावधान

खण्ड–दो भारतीय शैक्षिक विचारक

इकाई–4 महात्मा गॉधी एवं रवीन्द्र नाथ टैगोर के शैक्षिक विचार

इकाई–5 महर्षि श्री अरविन्द एवं स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचार

इकाई–6 जे0 कृष्णामूर्ति एवं गिज्जू भाई के शैक्षिक विचार

खण्ड–तीन शिक्षा दर्शन के सम्प्रदाय

इकाई–7 भारतीय दार्शनिक विचार

इकाई–8 आदर्शवाद और प्रकृतिवाद

इकाई–9 यथार्थवाद, प्रयोजनवाद और अस्तित्ववाद

खण्ड–चार शिक्षा के समसामयिक मुद्दे

इकाई–10 सार्वभौमिक, प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा

इकाई–11 उत्तरदायी नागरिकता के लिए शिक्षा

इकाई–12 पर्यावरण संरक्षणहेतु शिक्षा

खण्ड–पॉच शिक्षा में गुणवत्ता

इकाई–13 शिक्षा में गुणवत्ता : अर्थ, संकेतांक तथा उपलब्धि के मानक

इकाई–14 उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण एवं शिक्षा

इकाई–15 माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन

खण्ड–तीन : शिक्षा दर्शन के सम्प्रदाय

खण्ड परिचय

वर्तमान परिवेश में भारतीय शिक्षा पद्धति एक ऐसे मुकान पर खड़ी है, जिसके विकास हेतु नित नये–नये अनुसंधान एवं प्रयोग किये जा रहे हैं। यदि हम शैक्षिक प्रयोजन पर गम्भीरता से अध्ययन करें तो यह ज्ञात होगा कि इसका उद्देश्य मानव जीवन के सर्वागीणं विकास को समुन्नत करने हेतु उसकी अनुभूतियों के विविध पक्षों को सार्थक रुप में संचारित करना है। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि क्या हमारी शिक्षा पद्धति इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सार्थक भूमिका का निर्वहन कर रही है। अस्तु उपर्युक्त आशय की पूर्ति हेतु हम सुधारों की खोज में लगे हुए हैं। इस प्रसंग में हम यह कह सकते हैं कि शैक्षिक अधिगम के सुधार को आरम्भ करने में किसी ठोस आधार का होना आवश्यक है।

प्रगतिशील समाज के विकास में शिक्षा एक निश्चित भूमिका का निर्वहन करती है। अतः एक ऐसे विकासशील समाज जो सीखने की अवस्था में है वहाँ शिक्षक सामाजिक परिवर्तन के मुख्य कारक के रुप में कार्य करता है। यह पाठ्यक्रम सामाजिक तथा शैक्षिक सुधारों के विभिन्न मुद्दों से सम्बन्धित है। इस खण्ड में शिक्षा के दार्शनिक विचारों को विशेष रुप से भारत के सन्दर्भ में वर्णित किया गया है।

प्रस्तुत खण्ड तीन इकाईयों में विभक्त है। ''शिक्षा दर्शन के सम्प्रदाय'' नामक इस खण्ड की **सप्तम इकाई** प्राचीन भारतीय शिक्षा दर्शन के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्ध को ढूंढने का प्रयत्न करती है। इसमें भारतीय दर्शन के विभिन्न पारम्परिक स्वरुपों में आस्तिक एवं नास्तिक दर्शन की चर्चा की गई है। दर्शन और शिक्षा के आपसी सम्बन्धों को लेकर विभिन्न कालों में अनेक दार्शनिकों एवं शिक्षाविदों ने अपनी दार्शनिक विचारधाराओं को अभिव्यक्त किया है। उनके द्वारा प्रतिपादित मतों को शिक्षा प्रणालियों में प्रतिबिम्बित दार्शनिक सिद्धान्तों के शैक्षिक निहितार्थों के विश्लेशण को प्रस्तुत इकाई में देखने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही इस खण्ड की **अष्टम् इकाई** दर्शन के आदर्शवाद और प्रकृतिवाद जैसे सम्प्रदाय के शैक्षिक निहितार्थों की व्याख्या पर केन्द्रित है। प्राचीन दार्शनिक विचारधारा के रुप में प्रचलित आदर्शवाद को शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, जिसके द्वारा शिक्षा के विभिन्न अंगों का निर्धारण हुआ। प्रस्तुत इकाई में आदर्शवाद के अर्थ, उसकी पृष्ठभूमि, आधार एवं उसकी शाखाओं, एवं सिद्धान्तों तथा शिक्षा में आदर्शवाद के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त प्रकृतिवाद नामक शिक्षा के दार्शनिक आदर्शों की चर्चा करते हुए इसकी शिक्षा, के निहितार्थ उद्देश्य एवं बालक की भूमिका, विद्यालय के वातावरण में अनुशासन की प्रकृति को दर्शाने का प्रयास किया गया है।

इस खण्ड की **अन्तिम इकाई–9** यथार्थवाद, प्रयोजनवाद एवं अस्तित्ववाद जैसे दार्शनिक सम्प्रदायों की चर्चा पर आधारित है जिसके अन्तर्गत इनके आधार सिद्धान्तों एवं उनकी शैक्षिक विशेषताओं की विवेचना की गई है। उपर्युक्त सम्प्रदायों का संक्षिप्त विवरण देने के पश्चात पाठ्यचर्या के सन्दर्भ में इनके शैक्षिक महत्व की चर्चा को सम्मिलित करते हुए अधिगम में अध यापक की भूमिका या किसी सम्प्रदाय विशेष के सन्दर्भ में अनुशासन की प्रकृति को भी व्याख्यायित किया गया है।

इकाई – 7 भारतीय दार्शनिक विचार

संरचना

7.1. प्रस्तावना

7.2. उद्देश्य

7.3. भारतीय दर्शन की परिभाषा

7.4. दर्शन की भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणा

7.5. शिक्षा तथा दर्शन में सम्बन्ध

7.6. दर्शन की अवधारणा

7.7. दर्शन के उपांग

7.8. शिक्षा के सन्दर्भ में दर्शन की प्रांसगिकता

7.9. अध्यापन विधि तथा विधायें

7.10. अध्ययन प्रक्रिया

7.11. अनुशासन

7.12. उपनिषदिक शिक्षा का महत्व

7.13. भारतीय दर्शन का वर्गीकरण

7.14. भारतीय दर्शन की विशेषताएँ

7.15. न्याय दर्शन

7.16. न्याय दर्शन का शैक्षिक महत्व

7.17. न्याय दर्शन के अनुसार पाठ्यक्रम

7.18. सांख्य शिक्षा दर्शन

7.19. सांख्य दर्शन का शैक्षिक महत्व

7.20. सांख्य दर्शन का शैक्षिक पाठ्यक्रम

7.21. योग शिक्षा दर्शन

7.22. योग दर्शन का शैक्षिक निहितार्थ

7.23. बौद्ध शिक्षा दर्शन

7.24. बौद्ध दर्शन में छात्र संकल्पना

7.25. बौद्ध दर्शन में अध्यापक संकल्पना

7.26. बौद्ध दर्शन में पाठ्यक्रम

7.27. शिक्षण विधि

7.28. सारांश

7.29. अभ्यास कार्य

7.30. बोध प्रश्नों के उत्तर

7.31. कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई **'भारतीय दार्शनिक विचार'** शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में भारतीय दर्शन की परस्पर निर्भरता पर केन्द्रित है। चिन्तन मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। दर्शन उतना ही प्राचीन है जितना मनुष्य का मन। दार्शनिक खोज मनुष्य की मानसिक प्रौढ़ता और विभिन्नता पर निर्भर है। इस भिन्नता के परिणामस्वरुप दर्शन के विविध सम्प्रदायों का जन्म हुआ। इस इकाई में हम भारतीय दर्शन का वर्गीकरण मुख्यतः आस्तिक एवं नास्तिक सम्प्रदायों के सन्दर्भ में प्रस्तुत करते हुए यह देखने का प्रयास करेंगे कि दर्शन, शिक्षा एवं मानव जीवन को किस सीमा तक प्रभावित करता है। शिक्षा के सन्दर्भ में दर्शन उसके उद्देश्य, शिक्षा संगठन, पाठ्यक्रम, प्रशासन, शिक्षक तथा विद्यार्थी के सम्बन्धों पर परिलक्षित होता है। अतः परिस्थिति के अनुसार दर्शन शैक्षिक नीति एवं उसके स्वरुप को प्रभावित करता है। इस आशय को ध्यान में रखते हुए भारतीय दर्शन का वर्गीकरण परिभाषा एवं उसकी विशेषताओं तथा उसके शैक्षिक निहितार्थों आदि की जानकारी को इस इकाई में देने का प्रयास किया गया है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- भारतीय दर्शन को जान सकेंगे।
- दर्शन की भारतीय और पाश्चात्य अवधारणा को जान सकेगें।
- दर्शन के विभिन्न उपांग एवं शिक्षा के सन्दर्भ में उसकी उपयोगिता को समझ सकेगें।
- भारतीय दर्शन में वर्णित शैक्षिक निहितार्थों के विषय में जान सकेगें।
- भारतीय दर्शन को वर्गीकृत कर सकेगें।
- न्याय दर्शन तथा उसकी शिक्षण विधि से परिचित हो सकेगें।
- सांख्य शिक्षा दर्शन को जान सकेगें।
- सांख्य दर्शन के शैक्षिक महत्व को जान सकेगें।

- योग शिक्षा दर्शन से परिचित हो सकेगें।
- योग दर्शन के शैक्षिक महत्व से परिचित हो सकेगें।
- बौद्ध शिक्षा दर्शन और उसमें निहित छात्र एवं शिक्षक की संकल्पना को जान सकेगें।
- बौद्ध दर्शन में वर्णित पाठ्यक्रम से परिचित हो सकेगें।

7.3 भारतीय दर्शन की परिभाषा

इस संसार और जीवन को जानने की आकांक्षा मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है। इसी जिज्ञासा के फलस्वरुप दर्शन की उत्पत्ति हुई। नैसर्गिक आवश्यकताओं की सीमित पूर्ति एवं प्रकृति की विभीषिकाओं से अत्यधिक संघर्ष के उपरान्त मानव की दृष्टि इस सृष्टि या प्राकृतिक वैभव पर केन्द्रित होने लगी, जिसने मानव हृदय को आह्लाद से संचारित कर दिया, साथ ही मस्तिष्क में सृष्टि को जानने का कौतुहल भी उत्पन्न हुआ, जैसे– क्या इस प्रकृति का कोई सूत्रधार है, या यान्त्रिक ढंग से सूर्य, चन्द्रमा, वर्षा, धूप आदि प्राकृतिक घटनाएँ संचालित हो रही है? प्रकृति का वास्तविक स्वरूप क्या है? या इसे कैसे जाना जा सकता है? इत्यादि जिज्ञासाओं के समाधान हेतु एक विशेष प्रकार का तार्किक चिन्तन आरम्भ हुआ जिसे हम **'दर्शन'** कहते हैं। इस आधार पर प्रत्येक देश और जाति में वहाँ की परिस्थितियों के अनुरूप अपने–अपने ढंग से दर्शन की उत्पत्ति हुई। अतः हम यह कह सकते हैं कि दर्शन सुव्यवस्थित ढंग से अनवरत चिन्तन करने की एक कला है। इसमें मानव जीवन से सम्बन्धित समग्र वस्तुओं पर तार्किक दृष्टि से विचार किया जाता है। दूसरे शब्दों में शाश्वत समस्याओं का चिन्तन ही दर्शन है। जो इन समस्याओं पर विचार करते हैं वे दार्शनिक हैं।

दर्शन की एक सर्वमान्य परिभाषा प्रस्तुत करना जटिल है, क्योंकि इस शब्द का प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में किया जाता है। व्युत्पत्ति के आधार पर दर्शन या 'Philosophy' को स्पष्ट किया जा सकता है।

दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'दृश' धातु से हुई है जिसका अर्थ है– 'देखना' यहाँ देखने से तात्पर्य जानने या समझने से है। इस सन्दर्भ में दर्शन को दो दृष्टियों से स्पष्ट किया जा सकता है। प्रथम ''दृश्यते इति दर्शनम्'' अर्थात जो देखा या जाना जाय वह दर्शन है, इस अर्थ में परमसत्ता को जानना दर्शन है। दूसरी दृष्टि से ''दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'' अर्थात् जिसके द्वारा देखा या जाना जाय वह दर्शन है।

अंग्रेजी में दर्शन को 'फिलॉसफी' कहा जाता है। फिलॉसफी यूनानी भाषा के फिलॉस और सोफिया इन दो शब्दों के योग से बना है। फिलॉस का अर्थ 'प्रेम या अनुराग है, सोफिया का अर्थ है– विद्या या ज्ञान अतः फिलॉसफी शब्द इन्हीं दो शब्दों 'फिलॉस'

और 'सोफिया' से मिलकर बना है। इस प्रकार इसका शाब्दिक अर्थ = विद्यानुराग या ज्ञान के प्रति प्रेम है। स्पष्ट है कि भारतीय परम्परा में दर्शन परातत्व के ज्ञान एवं ज्ञान के साधनों का तार्किक चिन्तन है। जबकि पाश्चात्य दर्शन में जीवन के शाश्वत मूल सत्यों के ज्ञान के प्रति अनुराग ही फिलॉसफी है।

उपर्युक्त के आधार पर दर्शन या फिलॉसफी को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि जो निष्पक्ष विचार एवं तर्क के आधार पर जीवन के मूल सत्यों का अनुसंधान करता है, वही दर्शन है। वस्तुतः दर्शन में तर्क प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्व है। इसीलिए कहा जा सकता है कि दर्शन मनुष्य का वह बौद्धिक प्रयास है जिसके द्वारा वह किसी भी विषय से सम्बन्धित मूलतत्वों तथा आधारभूत मान्यताओं की तर्कसंगत एवं निष्पक्ष परीक्षण करता है, और उसके सम्बन्ध में केवल तर्क के आधार पर अपना मत निश्चित करता है। निष्कर्ष रुप से दर्शन को परिभाषित करते हुए कह सकते है कि ''ज्ञान सत् एवं नीति' के मूल प्रश्नों के उत्तरों की तटस्थ बौद्धिक खोज ही दर्शन है।''

उपर्युक्त वर्णित तथ्यों के आलोक में हम यह कह सकते हैं कि दर्शन में ज्ञान या चिन्तन विषयक तत्व की ही प्रधानता है। यही दर्शन का मूल तत्व है। यद्यपि समय और क्षेत्र के अनुरूप दर्शन को अलग–अलग स्वरूप में परिभाषित किया जाता है– जैसे– समकालीन दर्शन में भाषा विश्लेषण को ही दर्शन माना गया है। फिर भी ज्ञान या चिन्तन की तार्किक प्रक्रिया ही दर्शन का केन्द्र है।

पाश्चात्य विचारधारा के अनुसार ''ऐसी विधा जो ज्ञान के प्रति अनुराग उत्पन्न करती है दर्शन कहलाती है।'' इसके अनुसार यह चिन्तन का विषय है, पर भारतीय विचारधारा के अनुसार यह अनुभूति का विषय है। दर्शन को विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है।

- बरट्रेण्ड रसेल के अनुसार ''अन्य विधाओं के समान दर्शन का मुख्य उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति है।''
- आर0डब्ल्यू0 सेलर्स ने ''दर्शन को एक व्यवस्थित विचार द्वारा विश्व और मनुष्य की प्रकृति के विषय में निरन्तर ज्ञान प्राप्त करने का एक प्रयास माना है।''
- हरबर्ट स्पेन्सर ने ''दर्शन को एक सार्वभौमिक विज्ञान के रुप में प्रत्येक से सम्बन्धित स्वीकार किया है।''
- एडगर एस0 ब्राइटमैन द्वारा यह माना गया है कि ''दर्शन अनिवार्यतः अनुभव को जानने की एक विधि है। यह अनुभवों के विषय में परिणामों का व्यवस्थित ज्ञान समूह नहीं है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दर्शन एक ऐसा विज्ञान है, जो प्रकृति, मनुष्य, वस्तु, ईश्वर, ब्रह्माण्ड, आत्मा इत्यादि के रहस्यों के विषय में ज्ञान प्रदान करता है, तथा इनके पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है।

7.4 दर्शन की भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणा

भारतीय दृष्टिकोण	पाश्चात्य दृष्टिकोण
i. दर्शन अनुभूति का विषय	i. दर्शन ज्ञान के प्रति अनुराग
ii. अन्तिम मंजिल तक पहुँचना और उसकी अनुभूति करना। साधन को साध्य न मानना	ii. ज्ञान की खोज में लगे रहना उसके परिणामों से कोई सम्बन्ध न होना। मंजिल पर ध्यान न देना, वरन सफर के आनन्द तक अपने को सीमित रखना। ज्ञान की खोज पर बल देना।

7.5 शिक्षा तथा दर्शन में सम्बन्ध

शिक्षा के अन्तर्गत विचार जगत और क्रिया जगत दोनों ही आते हैं। अच्छे विचार, अच्छे व्यक्तित्व एवं अच्छे व्यवहार को जन्म देते हैं, या उसकी ओर अग्रसर करते हैं। इसी प्रकार अच्छा व्यवहार अच्छे विचारों को जन्म देता है। या उन्हें समृद्ध करता है। शैक्षिक प्रक्रिया में बुद्धिमत्ता से कार्य करने के लिए शिक्षा को दिशा–निर्देश तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। जिसे दर्शन प्रदान कर सकता है। अतः दर्शन किसी शिक्षक के लिए मात्र एक समव्यावसायिक उपकरण ही नहीं अपितु जीवन की गुणवत्ता को सुधारने का एक मार्ग भी है। क्योंकि यह मानव अस्तित्व तथा उसके चारों ओर की दुनिया के विषय में एक विस्तृत तथा गहन परिप्रेक्ष्य प्राप्त करने में सहायता करता है। अतः दर्शन तथा शिक्षा को अलग–अलग नहीं किया जा सकता है।

दर्शन, जीवन तथा ब्रह्माण्ड के प्रति मानव का दृष्टिकोण है। दर्शन जीवन के मार्ग को प्रशस्त करता है। यह जीवन के आदर्शों से जुड़ा हुआ होता है। दर्शन जीवन के नेतृत्व को ग्रहण कर संसार के अनेक परिवर्तनों एवं परिस्थितियों में से होकर रास्ता दिखाता है। जब तक दर्शन जीवित रहता है, वह लोक जीवन से दूर नहीं जाता है।

दार्शनिकों के विचार उनकी व्यक्तिगत दिनचर्या से ही विकसित होते हैं। इस प्रकार दर्शन विचारों तथा अनुभव पर आधारित संसार सम्बन्धित एक दृष्टिकोण है।

प्रत्येक जीवन–दर्शन एक निश्चित विश्वास पर आधारित होता है। यदि विश्वास जीवन के लिए उपयोगी है तो उसका शैक्षिक महत्व अवश्य होता है। अतः दर्शन को शिक्षा से पृथक नहीं किया जा सकता। वस्तुतः दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इतिहास इस तथ्य की पुष्टि करता है। उदाहरणार्थ महान दार्शनिक 'सुकरात' का विश्वास था ''ज्ञान एक सद्गुण है।'' सुकरात ने इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए किसी विचार पद्धति की स्थापना नहीं की, नहीं किसी ग्रन्थ की रचना की, न ही किसी सिद्धान्त की शिक्षा दी। वह बाजार में लोगों से मिलता था, उनके विचारों को जानने का प्रयास करता था, तथा उन्हें विचार करने का अवसर देता था। इस प्रकार उसने अपने जीवन पद्धति से लोगों को इस तथ्य की अनुभूति करायी। इस प्रकार उसके इस आदान–प्रदान से शिक्षा के क्षेत्र में 'सुकराती' विधि अर्थात 'प्रश्नोत्तर' विधि का जन्म हुआ। सुकराती विधि उसके जीवन दर्शन का व्यावहारिक रुप है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दर्शन तथा शिक्षा में घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिसके कारण उसमें पारस्परिक निर्भरता पाई जाती है। इसकी पुष्टि हम विभिन्न विचारों के मतों से भी कर सकते हैं।

1. ***फिक्टे–*** के अनुसार ''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा का उद्देश्य कभी भी पूर्ण रुप से स्पष्ट नहीं हो सकता।''

2. ***जेन्टाइल–*** के अनुसार ''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा की प्रक्रिया सही मार्ग पर नहीं बढ़ सकती है।''

3. ***जी0ई0पेर्टिंज*** द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि ''अत्यन्त गम्भीर अर्थ में यह कहना बिल्कुल उचित है कि जिस प्रकार शिक्षा दर्शन पर आधारित है उसी प्रकार दर्शन शिक्षा पर आधारित है।''

दर्शन तथा शिक्षा के सम्बन्ध को और अधिक स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं का अध्ययन आवश्यक है।

1. **उद्देश्य–** डेलर्स–रिपोर्ट ने शिक्षा के चार उद्देश्य बताये हैं–

समाज के अनुरुप व्यक्ति को	i. LEARNING TO BE
करना तैयार	ii. LEARNING TO KNOW
	iii. LEARNING TO DO
	iv. LEARNING TO LIVE TOGETHER

रस्क का मत है कि ''शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण जीवन के साध्यों के साथ है।'' दर्शन इस बात का निर्णय करता है कि जीवन का क्या उद्देश्य होना चाहिए। जब जीवन के उद्देश्यों का निर्धारण दर्शन द्वारा किया जाता है, तब शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण भी उसी के द्वारा किया जाना स्वाभाविक है, क्योंकि शिक्षा स्वयं जीवन है, और जीवन शिक्षा।

2. **पाठ्यक्रम—** शिक्षा के उद्देश्यों के समान पाठ्यक्रम भी दर्शन पर आधारित है। ***बोड*** का कथन है कि ''पाठ्यक्रम को ठीक प्रकार से निश्चित करने के लिए दार्शनिक की आवश्यकता है।

3. **शिक्षण विधि—** जैसा कि हम जानते हैं शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हम पाठ्यक्रम का निर्माण करते हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि पाठ्यक्रम को किस विधि से छात्र के मन का अंग बना दिया जाय, जिससे वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर सके। वस्तुतः विधि का निर्माण करना वैज्ञानिक का काम है, परन्तु उपर्युक्त विधि का निर्माण तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक उद्देश्य का ज्ञान न हो। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि ''लक्ष्य के ज्ञानाभाव में विधि का निर्माण करना सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में ***रॉस*** का कथन है कि ''शैक्षिक उद्देश्य और विधियाँ दार्शनिक सिद्धान्तों का स्वाभाविक परिणाम है।''

4. **अनुशासन—** अनुशासन की धारणा को विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं द्वारा प्रभावित किया जाता है। क्योंकि इसका सम्बन्ध व्यक्ति एवं समाज के दर्शन से होता है। दर्शन ही इसके विकास की पृष्ठभूमि तैयार करता है। उदाहरणार्थ— अनुशासन की स्थापना के लिए प्रकृतिवाद के दण्ड विधान में प्राकृतिक परिणामों एवं स्वतन्त्रता को स्थान देते हैं। आदर्शवादी मुख्यतः आत्मनियन्त्रण एवं शिक्षक के प्रभाव द्वारा अनुशासन की स्थापना करने के समर्थ परन्तु कुछ आदर्शवादी जो परमवाद (ABSOLUTISM) के पक्षपाती है। वे दमनात्मक अनुशासन का समर्थन करते हैं। अधिकांश आदर्शवादी प्रभावात्मक अनुशासन की धारणा को मानते हैं। परिणामस्वरुप अनुशासन के विभिन्न रुप जैसे— दमनात्मक, अनुशासन, प्रभावात्मक अनुशासन, मुक्त्यात्मक अनुशासन तथा सामाजिक जैसे अनुशासन पाये जाते हैं।

5. **शैक्षिक प्रशासन—** शैक्षिक प्रशासन में पहली समस्या यह आती है कि विद्यालय की स्थापना की जाय, अथवा नहीं जिसका उत्तर समाजशास्त्र एवं दर्शन देता है।

6. **विद्यालय का प्रशासन—** विद्यालय का प्रशासन किसके हाथ में हो। शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण हो अथवा नहीं। इन प्रश्नों का उत्तर दर्शन द्वारा दिया जाता है। यदि समाज व्यक्तिवादी दर्शन में आस्था रखता है तो वह शिक्षा को ऐच्छिक

संगठनों के हाथों में रखेगा। यदि समाज समाजवादी विचारधाराओं में विश्वास रखता है, तो वह समाज या राज्य का शिक्षा पर पूर्ण नियन्त्रण चाहेगा।

विद्यालय के आन्तरिक प्रशासन के लिए आचार्य या प्रिंसिपल कैसा हो। इसका निर्णय दर्शन द्वारा ही किया जाता है। दर्शन उसके गुणों का निर्धारण करता है। यदि समाज लोकतान्त्रिक है तो आचार्य भी लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण वाला होगा। यदि समाज का विश्वास अधिनायकवादी दर्शन में है तो आचार्य भी वही दृष्टिकोण अपनायेगा। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत से सारे प्रश्नों जैसे– शिक्षक कैसा हो? भवन किस प्रकार का हो, उत्तर भी दर्शन के द्वारा ही दिया जाता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि किसी भी प्रकार या दृष्टि से क्यों न देखा जाये, शिक्षा और दर्शन परस्पर सम्बन्धित है। यह सम्बन्ध प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। ***हैण्डरसन*** के शब्दों में ''दर्शन का एक महत्वपूर्ण कार्य यूनानी दर्शन के समय से लेकर आज तक सन्तोषप्रद जीवन के लक्ष्यों एवं सामग्री को निर्धारित करता रहा है।''

7.6 दर्शन की अवधारणा

प्राचीन अवधारणा	नवीन अवधारणा
''आध्यात्मिक व्यक्ति धर्म तथा ज्ञान से सम्बन्धित थे।''	• वैज्ञानिक चिन्तन का विकास • विश्लेषाणत्मक दृष्टिकोण का विकास • तार्किक दृष्टिकोण का विकास

7.7 दर्शन के उपांग

दर्शन के मुख्यतः तीन उपांग हैं–

(i) तत्वमीमांसा– तत्वमीमांसा दर्शनशास्त्र की वह शाखा है, जिसमें हम मूलतः चरम यथार्थ का पता लगाते है। यह वस्तुओं के सारतत्व की खोज करती है। अंग्रेजी में इसके लिए (METAPHYSICS) शब्द का प्रयोग होता है। यह शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों 'मेटा' तथा 'फिजिक्स' से बना है, जिनके अर्थ क्रमशः 'परे' (BEYOND) तथा 'प्रकृति (NATURE) है। इस प्रकार पूरा शब्द 'मेटाफिजिक्स' का अर्थ हुआ 'प्रकृति से परे क्या है'? इस प्रकार की खोज या अध्ययन करने वाला शास्त्र ही तत्वमीमांसा है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि तत्वमीमांसा दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जो वास्तविकता के प्रकृति की खोज करती है। यह मनुष्य जगत तथा परलोक से सम्बन्धित है। यह प्रकृति,

मनुष्य, ईश्वर, शक्ति, उर्जा आदि से सम्बन्धित तत्वों की वास्तविकता की खोज करने का प्रयास करती है।

तत्वमीमांसा में मानव प्रकृति के सम्बन्ध में भी गहन चर्चा की गई है। इसके अनुसार मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। मनुष्य के माध्यम से ही ईश्वर को पहचाना जा सकता है। तत्वमीमांसा में विश्व तथा ब्रह्माण्ड की वास्तविकता के सम्बन्ध की विराट रुप में व्याख्या की गई है। विश्व तथा ब्रह्माण्ड की रचना, उसके अनेकानेक तत्व, उसके हेतु (कारण), प्रभाव काल एवं क्षेत्र आदि से सम्बन्धित अनेक तत्वों का अध्ययन तत्वमीमांसा उनकी वास्तविकता जानने के लिए करता है। इस उपांग में इस बात की भी चर्चा है कि यह सम्पूर्ण विश्व तथा ब्रह्माण्ड के विभिन्न अवयव क्यों है? इसमें स्वतन्त्र इच्छा शक्ति तथा उस पर नियन्त्रण का भी अध्ययन मनुष्य के सन्दर्भ में करता है। इस क्षेत्र में तत्वमीमांसा यह जानने की चेष्टा करता है कि क्या मनुष्य की इच्छा ही अन्तिम तथा स्वतन्त्र है या उसकी इच्छा पर भी किसी अदृश्य शक्ति का नियन्त्रण है।

तत्वमीमांसा के शैक्षिक निहितार्थ– इस मीमांसा के शैक्षिक निहितार्थ को निम्नलिखित रुपों में व्याख्यायित किया जा सकता है।

- तत्वमीमांसा मनुष्य की प्रकृति का विस्तार से अध्ययन करता है। आज की शिक्षा भी मनुष्य की प्रकृति के अनुरुप है। व्यक्तिगत भिन्नताओं का मत इसी के आधार पर बना है।
- मनुष्य की इच्छाशक्ति का तत्वमीमांसा में अध्ययन किया जाता है। इच्छाशक्ति पर ही अभिप्रेरणा निर्भर करती है। शिक्षा के क्षेत्र में अभिप्रेरणा महत्वपूर्ण है।
- तत्वमीमांसा में विश्व तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की यथार्थता तथा वास्तविकता को जानने की यथेष्ट चेष्टा की गई है। शिक्षा के क्षेत्र में तत्वमीमांसा से विश्व तथा ब्रह्माण्ड की यथार्थता तथा वास्तविकता से सम्बन्धित तर्क लेकर पाठ्यक्रम–निर्माण तथा निर्धारण में पूरा–पूरा सहयोग लिया गया है।
- तत्वमीमांसा ने यथार्थवाद, प्रयोजनवाद, आदर्शवाद तथा अस्तित्वादी दार्शनिक विचारधाराओं को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया है। तथा इस समस्त दार्शनिक विचारधाराओं ने शिक्षा के प्रायः सभी आयामों को किसी न किसी रुप में प्रभावित किया है।

(ii) ज्ञानमीमांसा– यह ज्ञान का सिद्धान्त है, यह उन उपागमों का ज्ञान है, जिससे मनुष्य चरम पर पहुँच सकता है। यह हमें मार्ग बताता है कि ज्ञान की वास्तविक प्रकृति क्या है? दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि अन्तिम ज्ञान की उत्पत्ति कैसे होती है? इसकी खोज ही ज्ञानमीमांसा का मूल विषय है।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि ज्ञानमीमांसा दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जिसमें हम इस बात का विचार करते हैं कि सत्य की प्राप्ति कैसे सम्भव हो सकती है तथा इसकी प्राप्ति के उपागम कौन–कौन से हैं।

ज्ञानमीमांसा के शैक्षिक निहितार्थ– यह शिक्षण से सम्बन्धित है। किन विधियों के प्रयोग द्वारा छात्रों को अधिगम कराया जाय। यह ज्ञानमीमांसा के द्वारा प्राप्त होता है।

(iii) मूल्य मीमांसा– अंग्रेजी भाषा में इसके लिए 'AXIOLOGY' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो ग्रीक भाषा के 'AXIOS' शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है 'मूल्य' या 'मान'।

मूल्य एक आन्तरिक मात्रक है जो व्यक्ति के आचरण से प्रकट होता है। अतः मूल्यमीमांसा दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जिसमें हम आचरण की चर्चा करते हैं क्या अच्छा है, क्या बुरा है, क्या सत्य है, क्या असत्य है। इसका बोध कराता है।

मूल्यमीमांसा के शैक्षिक निहितार्थ– शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यों का महत्व है। शिक्षा के द्वारा हम आदर्श लाना चाहते हैं। उनका विचार करके मनुष्य के मूल्यों में वृद्धि करना चाहते है। उसके सामाजिक तथा राष्ट्रीय मूल्य में वृद्धि करके उसे उपयोगी बनाना चाहते हैं। इसके लिए उद्देश्यों का निर्धारण समय–सारणी, शिक्षण–दर्शन, विद्यालय प्रशासन तथा अध्यापक–व्यवहारों पर स्पष्ट प्रभाव डालना होता है। यह सभी मूल्य के ज्ञान के पश्चात ही संभव है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी – क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।
ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. दर्शन शब्द संस्कृत भाषा के किस धातु से निष्पन्न है?

____

____

____

2. दर्शन का अंग्रेजी रुप किस ग्रीक शब्द से लिया गया है?

____

____

____

3. बरट्रेण्ड के अनुसार दर्शन के मुख्य उद्देश्य क्या है?

____

____

7.8 शिक्षा के सन्दर्भ में दर्शन की प्रांसगिकता

उपनिषदीय शिक्षा– उपनिषद शब्द की व्युत्पत्ति (उप + नि + षद) के योग से हुआ है, जिसका अर्थ है ''समीप बैठना'' अर्थात् गुरु के चरणों के समीप बैठकर अध्ययन करना। उपनिषदों का तात्विक विवेचन संवाद के रुप में है, जिसमें जिज्ञासु शिष्य प्रश्न करता है तथा विद्वान गुरु विभिन्न विधाओं से उसकी जिज्ञासा शान्त करने का प्रयत्न करता है। शिष्य बीच–बीच में अपनी शंकाएँ प्रस्तुत करता जाता है। तथा गुरु उन शंकाओं का निवारण करता है। उपनिषद की इस परम्परा से शिक्षा–सम्बन्धी तीन अभिप्रेरण स्पष्ट होते है–

(i) ज्ञान स्वयं प्रयास द्वारा ग्रहण किया जाता है। परन्तु ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया में गुरु की सहायता एवं मार्गदर्शन आवश्यक होता है।

(ii) शिक्षा वैयक्तिक रुप से ग्रहण की जाती है। सामुहिक रुप से नहीं। प्रत्येक विद्यार्थी अपनी आवश्यकता, क्षमता एवं योग्यता के अनुरुप अपनी गति से स्वनिर्मित योजना के अनुसार शिक्षा ग्रहण करता है। एक ही प्रकार की शिक्षा, एक ही समय में, एक ही गति से, किसी पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार नहीं दी जा सकती।

(iii) उपनिषद ज्ञान को गूढ़ तथा रहस्य मानता है। ज्ञान प्राप्ति के फलस्वरुप ज्ञाता की शक्ति अनन्तगुनी बढ़ जाती है। अतः ज्ञान उसी को प्रदान किया जाना चाहिए जो ज्ञान प्राप्ति के लिए 'पात्र' हों। अपात्र को ज्ञान–प्रदान करने से, ज्ञान तथा शक्ति के दुरुपयोग होने की आशंका बनी रहती है।

शिक्षा का उद्देश्य– भिन्न–भिन्न उपनिषदों में शिक्षा के उद्देश्यों की व्याख्या भिन्न–भिन्न प्रकार से की गई है। परन्तु इन्हें मिलाकर देखा जाये तो सबके एक ही आशय निकलते हैं। उपनिषद में एक स्थान पर 'विद्ययाअमृतमृनुते'' लिखा गया है– जिसका अर्थ होता है विद्या से अमरत्व मिलता है। दूसरे शब्दों में विद्या द्वारा सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है।

उपनिषदों का मूल विषय आत्म–ज्ञान है। अतः उपनिषद्ीय शिक्षा के मूल उद्देश्य निम्नलिखित है।

(i) भौतिक तत्वों की जानकारी उनका प्रयोग, तथा भौतिक सम्पदा को बढ़ाने वाली क्रिया का ज्ञान प्रदान करना।

(ii) शरीर का रख–रखाव तथा प्राणिजगत एवं जीव–जगत का अध्ययन।

(iii) बालक का मानसिक विकास करना।

(iv) बालक का बौद्धिक विकास करना है ताकि वह सद्–असद् तथा प्रेयस–श्रेयस के बीच अन्तर कर सके।

(v) आत्मानुभूति के लिए बालक को तैयार करना।

उपनिषदों में छात्र संकल्पना तथा शिक्षक सम्बन्ध–

उपनिषदों में विद्यार्थी की कल्पना उस ज्ञान–पिपासु की है जिसमें ज्ञान प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा है। जो ज्ञान–पिपासा की तृप्ति के लिए किसी योग्य गुरु की तलाश करता है। शिक्षा ग्रहण करने के लिए किसी आयु की कोई सीमा नहीं है। जीवन की किसी भी अवस्था में ज्ञान–पिपासा जागृत हो सकती है। ज्ञान प्राप्ति का कोई भी समय निश्चित नहीं हैं। कोई शिष्य स्वल्प श्रम से अत्यन्त कम समय में ज्ञान प्राप्त कर सकता है। और किसी को लम्बे समय तक साधना करनी पड़ सकती है।

उपनिषद्कार अनिवार्य शिक्षा में विश्वास नहीं करते। अनिच्छा से शिक्षा प्रदान नहीं की जा सकती फिर सभी के लिए एक समान शिक्षा उचित भी नहीं है। छात्र के मन में शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा उत्पन्न होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान प्राप्ति के लिए योग्य नहीं माना जाता। ज्ञान अनन्य शक्ति का स्रोत होता है। अयोग्य व्यक्ति के हाथ में यह शक्ति विनाशकारी हो सकती है। अर्धविदग्ध ज्ञान लाभ की अपेक्षा हानि अधिक कर सकता है। शिक्षक की यह स्वायत्तता है कि वह जिसे चाहे शिष्य के रुप में स्वीकार करे। जिसे योग्य न समझे उसे न स्वीकार करे। विद्यार्थी से गुरु के प्रति समर्पण भाव की अपेक्षा की गई है।

शिष्य आत्मज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरु के समीप उपस्थित होता है। शिक्षा आरम्भ होने का प्रथम चरण तब प्रारम्भ होता है, जब गुरु उसे बाह्य जगत का अध्ययन करने के लिए आदेश देता है।

''सर्व खलु इंद ब्रह्म''

''यह समग्र विश्व ही ब्रह्म है।''

विद्यार्थी इस विश्व में व्याप्त ब्रह्म के बाह्य स्वरुप का अध्ययन करता है। इसमें जीवन के व्यावहारिक पक्ष का अध्ययन होता है।

दूसरा चरण– ''तत्वंमसि'' अर्थात् ''ब्रह्म तुम हो''। इस स्थिति में शिक्षक अध्येता को ब्रह्म के साथ उसके तादात्म्य की बात समझाता है। छात्र अध्यापक के निर्देशों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही रुपों में पालन करता है। इसके साथ ही महान व्यक्तियों के चरित्रों का अध्ययन तथा अनुकरण भी करता है।

अन्तिम चरण ''सोऽहम'' अर्थात ''मैं स्वयं ही ब्रह्म हूँ'' का है। इस स्थिति में आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, तथा व्यक्तित्व का इस प्रकार रुपान्तरण हो जाता है कि गुण सहज हो जाते हैं। मैं क्या करूँ और क्या न करूँ, क्या करना पुण्य है, और क्या

पाप है आदि सभी प्रकार की दुबिधाएँ समाप्त हो जाती हैं, और जीवन का अन्तिम लक्ष्य जिसे ''आनन्द'' कहा जाता है, प्राप्त हो जाता है। आत्मोन्नति की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिक्षक विद्यार्थी सम्बन्ध को निम्नलिखित सूत्रों के माध्यम से और भी स्पष्ट किया जा सकता है–

सहनावहतु	–	एक दूसरे की रक्षा करें।
सहनौभुनाक्ति	–	अर्जित ज्ञानोंपलाब्धियों तथा सिद्धियों का मिल–जुल करउपयोग करें।
सहवीर्यंकरवाबहै	–	एक दूसरे की शक्ति में वृद्धि करें।
तेजस्विनावाधितमस्तु	–	हमारा अध्ययन हम दोनों को तेजस्वी वनाये।
माविद्विषवावहै	–	हम एक दूसरे से ईष्या न करें।

शिक्षक शिष्य सम्बन्धों का इतना उदार तथा भव्य विवेचन अन्यत्र मिलना कठिन है। नैतिक जीवन के परिपालन में शिक्षक और छात्र दोनों ही का समान दायित्व है। यदि शिष्य का पतन होता है तो शिक्षक उसे बचाता है। इसके साथ ही शिक्षक के नैतिक स्खलन में शिष्य उसकी रक्षा करता है। ज्ञान द्वारा अर्जित कल का उपयोग करना दोनों का अधिकार है। दोनों एक दूसरे के तेज की वृद्धि करते है, एक की उन्नति से दूसरे में ईर्ष्या नहीं होती।

उपनिषद् एवं पाठ्य़क्रम– उपनिषदों में ज्ञान को दो भागों में विभक्त किया गया है। जिसे 'अपरा' (WORDLY) एवं 'परा' (PERTAINING OF SPIRIT) विद्या के नाम से अभिहित किया गया है। ''अपरा विद्या'' इस दृश्यमान जगत तथा आत्मा को धारण करने वाले इस शरीर से सम्बन्धित है। तथा 'परा' विद्या आत्म ज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान से सम्बन्धित है। उपनिषदों का वर्ण्य विषय आत्मज्ञान होने के कारण 'परा' विद्या की महत्ता प्रदर्शित की गई है। 'अपरा' विद्या को हेय माना जाता है, परन्तु तैत्तिरिय उपनिषद् में शिक्षक द्वारा यह उपदेश दिलवाया गया है कि ''मूल्येन प्रमदितव्यम् कुशलान्न प्रमदित यम्'' अर्थात व्यक्तिगत हित तथा समृद्धि की उपेक्षा मत करना। इससे यह अभिप्रेतार्थ निकलता है कि उपनिषद्कार ने सांसारिक सुखों से सम्बन्धित ''अपरा'' विद्या की उपेक्षा नहीं की।

इस प्रकार उपनिषदों के अनुसार पाठ्यक्रम में 'अपरा' और 'परा' विद्या दोनों को ही उचित स्थान दिया गया है। पंचकोश, चारों आश्रम तथा चार पुरुषार्थों में इसी 'परा' 'अपरा' विद्या से युक्त पाठ्यक्रम संयोजा गया है। आरम्भ में शरीर रक्षा तथा बाह्यदृष्टि के साथ उसके सामंजस्य से सम्बन्धित शिक्षा पर ध्यान दिया जाता है, जो पूर्णतया 'अपरा विद्या' के विषय हैं। क्रमशः प्राणिजगत तथा मनुष्य जगत से सम्बन्धित विधाओं की ओर अग्रसर किया जाता है। जो 'अपरा–विद्या' की ओर

अग्रसर होते हुए दिखाई देते हैं और अन्त में आत्म विद्या की ओर प्रेरित किया जाता है। जो शिक्षा क्रम की अन्तिम सीढ़ी है।

उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम की विशेषता यह है कि पाठ्यक्रम का प्रत्येक विषय तथा प्रत्येक इकाई आत्मा को उन्नत करने के अन्तिम उद्देश्य से जुड़ी हुई है। अध्ययन–अध्यापन के हर पद पर आत्मानुभूति का लक्ष्य सामने रखना चाहिए, फिर चाहे भौतिक ज्ञान प्राप्त किया जाय चाहे कलाओं का अनुसरण किया जाय यदि लक्ष्य सामने रहता है तो व्यक्ति के भटकने की आशंका नहीं रहती।

7.9 अध्यापन विधि तथा विधाएँ

विभिन्न उपनिषदों में विभिन्न प्रकार की विधियों का प्रयोग किया गया है। परन्तु सबसे प्रमुख विधि स्वयं अन्वेषण विधि है। उपनिषद्कारों की यह दृढ़ धारणा है कि व्यक्ति को ज्ञान स्वयं के प्रयास से प्राप्त होता है। दूसरों द्वारा प्रदत्त ज्ञान को शाब्दिक रुप से ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु उसे आत्मसात् नहीं किया जा सकता है। उपर्युक्त प्रमुख विधियों के अन्तर्गत अनेक छोटी–मोटी विधाएँ आती हैं जिनका संक्षेप में विवेचन निम्नलिखित है–

(i) **पहेली विधि–** कभी–कभी गूढ़ बातों को व्याख्या द्वारा समझाना कठिन होता है। अतः उन्हें पहेली के माध्यम से सरलता से समझाया जा सकता है।

(ii) **सूत्र प्रणाली–** ज्ञान जब अबाध गति से बढ़ने लगता है तो उसे विस्तृत भाषा में याद रखना कठिन होता है, अतः ज्ञान को संचित रखने तथा स्मृति में बनाये रखने के लिए सूत्र भाषा का प्रयोग आवश्यक होता है। विज्ञान में प्रयुक्त फार्मूले इसी के अन्तर्गत आते हैं। सूत्रों के निर्माण तथा व्याख्या दोनों के लिए प्रत्यक्ष अनुभव को आधार बनाना पड़ता है। श्वेताश्वर उपनिषद् का 'तत्वंमसि' इसी प्रकार का सूत्र है।

(iii) **व्युत्पत्ति प्रणाली–** शब्दों का मूल उद्गम उसमें निहित भावों को अभिव्यक्त करता है। किसी गुढ विचार की व्याख्या उसके लिए प्रयुक्त शब्द की व्याख्या व्युत्पत्ति द्वारा की जा सकती है। वृहदारण्यक् उपनिषद् में पुरुष की व्युत्पत्ति ''पुरुषिय'' से की गई है। जिसका अर्थ है हृदय दुर्ग में निवास करने वाला।

(iv) **कथा प्रणाली–** नैतिक शिक्षा के लिए कथाओं का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता रहा है। सीधी–सीधी भाषा में प्रत्यक्ष रुप से यदि उपदेश दिया जाय तो वह छात्रों को प्रभावित नहीं करता। परन्तु कथा के माध्यम से उपदेश को रूचिकर बनाया जा सकता है। उदाहरणार्थ केनोपनिषद् में इन्द्र तथा राक्षसों की कथा द्वारा मानवीय करुणा का उपदेश दिया गया है।

(v) चर्चा प्रणाली– इस प्रणाली का प्रयोग उपनिषदों में सबसे अधिक मिलता है। इस प्रणाली में अध्यापक तथा विद्यार्थी एक स्थान पर बैठकर किसी समस्या पर विचार–विमर्श करते हैं। आधुनिक लोकतान्त्रिक प्रणालियों में इसका प्रयोग बढ़ गया है।

(vi) संश्लेषण प्रणाली– चर्चा प्रणाली में विश्लेषण किया जाता है। अर्थात् किसी समस्या के विभिन्न पक्षों पर पृथक्–पृथक् भिन्न–भिन्न दृष्टियों से विचार किया जाता है। संश्लेषण प्रणाली उसकी पूरक है। जिसमें विश्लेषण द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को सार रुप में प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरणार्थ– वृहदारण्यक उपनिषद् में महाराज जनक द्वारा प्रस्तुत विभिन्न दृष्टिकोणों के समाहार को सार रुप में 'याज्ञवल्क्य' द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

(vii) भाषण प्रणाली– उपनिषदों में विशेष रुप से तो प्रश्नोत्तर विधि का प्रयोग हुआ है। परन्तु कभी–कभी व्याख्यान प्रणाली का प्रयोग भी उचित माना जाता है। विशेष रुप से प्रेरणास्पद विषयों के लिए इस प्रणाली का उपयोग प्रभावी ढ़ग से किया जा सकता है।

(viii) तदर्थ प्रणाली– यह प्रणाली शिक्षार्थी के मानसिक विकास को ध्यान में रखकर प्रयुक्त की जाती है। किसी शिक्षार्थी को समझाने के लिए एक लम्बी व्याख्या चाहिए और कोई सूत्र रुप में बात को शीघ्र समझ जाता है। तदर्थ प्रणाली में जिज्ञासु ज्ञान ग्रहण करने के लिए स्वयं प्रयास करता है, अध्यापक केवल मार्गदर्शन करता है। 'इन्द्र' तथा विशेचन द्वारा प्रजापति के पास आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए शिष्यत्व ग्रहण करने की कथा में इस प्रणाली का उपयोग मिलता है। विशेचन अपनी–मानसिक अवस्था के अनुरुप आत्मा के जाग्रतावस्था को ही सत्य मानकर संतुष्ट हो जाता है।

(ix) अनुक्रमिक प्रणाली– दर्शन तथा विज्ञान के अध्ययन–अध्यापन में इसका बहुतायत से प्रयोग होता है। अभिक्रमिक अध्ययन का सिद्धान्त प्रतिगमन प्रणाली से मिलता–जुलता है। इस प्रणाली में सामग्री को क्रमबद्ध प्रश्नों के रुप में प्रस्तुत किया जाता है। एक प्रश्न का उत्तर दूसरे प्रश्न को जन्म देता है, इस प्रकार प्रश्नोत्तर का क्रम तब तक चलता रहता है। जब तक कि जिज्ञासु अन्तिम उत्तर तक नहीं पहुँच जाता। उदाहरणार्थ, याज्ञवल्क्य जनक संवाद में इसी प्रणाली का प्रयोग किया गया है। साक्रेटिक विधि भी इसी के अनुरुप है।

7.10 अध्ययन प्रक्रिया

उपनिषदों में अध्ययन प्रक्रिया के तीन सोपानों का वर्णन किया गया है। प्रथम सोपान को 'श्रवण' की संज्ञा प्रदान की गई है। श्रवण के स्तर पर तथ्यों का संचयन

'श्रवण' तथा 'पठन' द्वारा किया जाता है। इस स्तर पर तथ्यों का चयन विचार–विमर्श पूर्वक नहीं किया जाता है। द्वितीय सोपान ''मनन'' का है। इस स्तर पर शंकाओं का समाधान किया जाता है। अध्यापक तथा सॅहपाठियों के साथ विवादास्पद प्रश्नों पर विचार–विमर्श तथा तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है। तथा गहराई से उसका मनन किया जाता है। चिन्तन एवं मनन में तर्क व्याख्या तथा बोध पर आग्रह रहता है।

तृतीय सोपान 'निदिध्यासन' का है। इस स्तर पर शंकाएँ समाप्त हो जाती हैं, तथा अवधारणाएँ स्पष्ट हो जाती है। ज्ञान केवल तथ्यों के संकलन तक सीमित नहीं रहता। अपितु उसका उपयोग जीवन की समस्याओं का हल ढूँढने में होने लगता है। निदिध्यासन के स्तर पर ज्ञान तथा ज्ञाता का अस्तित्व पृथक नहीं रहता बल्कि ज्ञान, ज्ञाता के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन जाता है, तथा सच्चे अर्थों में ज्ञान के द्वारा व्यवहार परिवर्तन होने लगता है।

7.11 अनुशासन

उपनिषदों में अनुशासन के तीन तत्व माने गये हैं। प्रथम तत्व है– ज्ञान–प्राप्ति के लिए उत्कट अभिलाषा, जब तक शिक्षार्थी के अन्दर ज्ञान, प्राप्ति की प्रेरणा उत्पन्न न हो, तब तक अध्ययन में रुचि नहीं हो सकती। और यदि अध्ययन में रुचि नहीं होती तो अनुशासन का पालन कठिन हो जाता है।

उपनिषदों में वर्णित अनुशासन से सम्बन्धित द्वितीय तत्व शिक्षार्थी के 'आत्म–संम्प्रत्यय' के विकास पर केन्द्रित है। छात्र क्या बनना चाहता है? इसकी स्पष्ट संकल्पना छात्र के मनः मस्तिष्क मे होना आवश्यक है। आत्म–सम्प्रत्यय के पश्चात तृतीय तत्व 'आत्म–संयम' का है। समाज तथा धर्म द्वारा मान्य नैतिक सिद्धान्तों का परिपालन इसके अन्तर्गत आता है। जब यह शंका उत्पन्न हो कि कौन सा व्यवहार उचित है, कौन सा अनुचित, ऐसी परिस्थिति में समाज के गणमान्य व्यक्ति, जैसा आचरण करें वैसा आचरण करना, आचार के अन्तर्गत आता है।

कभी–कभी प्रभाववश अथवा इन्द्रियों के मोह में फँसकर शिक्षार्थी के आचरण में विच्युति या स्खलन भी आ सकता है जिसे अनुशासन भंग कहते हैं। उपनिषद्‌कार शिक्षक से यह अपेक्षा करता है कि वह शिक्षार्थी के आचारण पर दृष्टि रखे तथा उसे कुमार्ग से बचाये। शिक्षक द्वारा दिये जाने वाले दण्ड में भर्त्सना, अप्रसन्नता, अस्वीकृति, आदेश आदि आ सकते है। जिनका प्रयोग यदा–कदा हो सकता है। इसके अलावा अध्ययन काल में वृद्धि तथा निष्कासन का प्रयोग भी हो सकता है। परन्तु इसका प्रयोग आपत्ति काल में हो।

7.12 उपनिषदिक् शिक्षा का महत्व

यह किसी काल विशेष की शिक्षा नहीं है, अपितु इसके सिद्धान्तों का प्रयोग

सार्वकालिक है। क्योंकि उसके प्रश्न आत्मा के प्रश्न से जुड़े हुए है। आत्मा की उत्तरोत्तर–अवस्थाओं का जो वर्णन इनके अन्तर्गत किया गया है, वह आज भी शिक्षा के उद्देश्यों का सही सोपान प्रस्तुत करता है। आज हमें आजीविका, स्वास्थ्य, ज्ञान–विज्ञान तथा नैतिक जीवन के विकास की शिक्षा चाहिए तथा इसी प्रकार आगामी युगों में ये उद्देश्य उतने ही सार्थक रहेंगे।

शिक्षक–शिक्षार्थी सम्बन्धों का जो स्वरुप उपनिषदों में वर्णित है, वह किसी भी समाज व किसी भी युग के लिए आदर्श सम्बन्धों की परिकल्पना है। आज के युग के छात्रानुशासन विभीषिका को कम करने का एक मात्र उपाय शिक्षक–छात्र सम्बन्धों को बेहतर बनाना है। उपनिषदों में विवेचित शिक्षक–शिष्य सम्बन्ध इसका एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

उपनिषदों में वर्णित अनेक शिक्षण विधियाँ आज भी आधुनिक शिक्षण विधियों में प्रयुक्त होती हैं। उपनिषदिक् शिक्षण विधि का मूल–मन्त्र स्व–अध्ययन प्रणाली है, जो आधुनिक शिक्षा का मूल मन्त्र है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. उपनिषद् का क्या अर्थ है व्याख्या कीजिए।

____

5. उपनिषदों में वर्णित शिक्षा के मूल उद्देश्यों के विषय में आप क्या जानते है?

6. उपनिषदों में वर्णित अध्ययन प्रक्रिया के सोपानों के विषय में आप क्या जानते है।

7. अनुशासन के संदर्भ में उपनिषदों के तत्वों की चर्चा करें।

7.13 भारतीय दर्शन का वर्गीकरण

भारतीय दर्शन का लक्ष्य मात्र बौद्धिक चिन्तन या बुद्धि–विलास न होकर परम् तत्व का साक्षात्कार है। यह परमतत्व के स्वरुप एवं उसके ज्ञान के साधन दोनों पर विचार करता है। अर्थात् भारतीय दार्शनिक परम्परा में परमतत्व के ज्ञान एवं उसके जानने के साधनों पर विचार किया जाता है। जिसका लक्ष्य व्यावहारिक समस्याओं का समाधान करना है।

भारत–भूमि पर उत्पन्न होने वाले जितने भी सम्प्रदाय हैं, वे सभी भारतीय दर्शन के अन्तर्गत आते हैं जिसे मात्र हिन्दू दर्शन समझना अनुचित है। वस्तुतः भारत में उत्पन्न एवं विकसित सभी दर्शन चाहे वे आस्तिक हों या नास्तिक, प्राचीन हों या अर्वाचीन सभी भारतीय दर्शन कहलाते हैं।

भारतीय दर्शन का वर्गीकरण मुख्यतः आस्तिक व नास्तिक सम्प्रदाय में किया जाता है। प्रायः ईश्वर में विश्वास करने वाले को आस्तिक एवं ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करने वाले को नास्तिक समझा जाता है। किन्तु यह व्याख्या तार्किक नहीं है।

भारतीय दर्शन में आस्तिक शब्द ईश्वरवाद का पर्यायवाची नहीं है ऐसे अनेक सम्प्रदाय हैं जो ईश्वर में विश्वास नहीं रखते हैं, जैसे– सांख्य एवं मीमांसा। फिर भी ये आस्तिक सम्प्रदायों के अन्तर्गत आते हैं यदि हम ईश्वर के आधार पर वर्गीकरण करें तो हमें चार्वाक जैन के साथ ही सांख्य व मीमांसा को नास्तिक मानना पड़ेगा।

पुनः मोक्ष, पुनर्जन्म कर्मवाद इत्यादि पर विश्वास करने वाले सम्प्रदायों को आस्तिक कहा जाता है। किन्तु इस अर्थ में बौद्ध एवं जैन भी आस्तिक सम्प्रदाय में आ जायेगें क्योंकि यह दोनों दर्शन पुनर्जन्म, मोक्ष, कर्मवाद को मानते हैं। मोक्ष या पुनर्जन्म के आधार पर वर्गीकरण करने की स्थिति में केवल चार्वाक ही एक मात्र नास्तिक सम्प्रदाय रह जायेगा।

अतः भारतीय दर्शन में आस्तिक व नास्तिक का विभाजन ईश्वर, पुर्नजन्म, कर्मवाद पर आधारित नहीं है। यहाँ वेद को प्रमाणिक मानने वाले सम्प्रदाय आस्तिक तथा इसे अप्रमाणिक मानने वाले नास्तिक कहलाते हैं। इस अर्थ में सांख्य, न्याय योग, वैशेषिक, मीमांसा एवं वेदान्त आस्तिक हैं। जिन्हें शड्दर्शन कहा जाता हैं जबकि चार्वाक, बौद्ध जैन सम्प्रदाय नास्तिक दर्शन माने जाते हैं।

भारतीय दर्शन का वर्गीकरण

भारतीय दर्शन के पारम्परिक स्वरूप का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

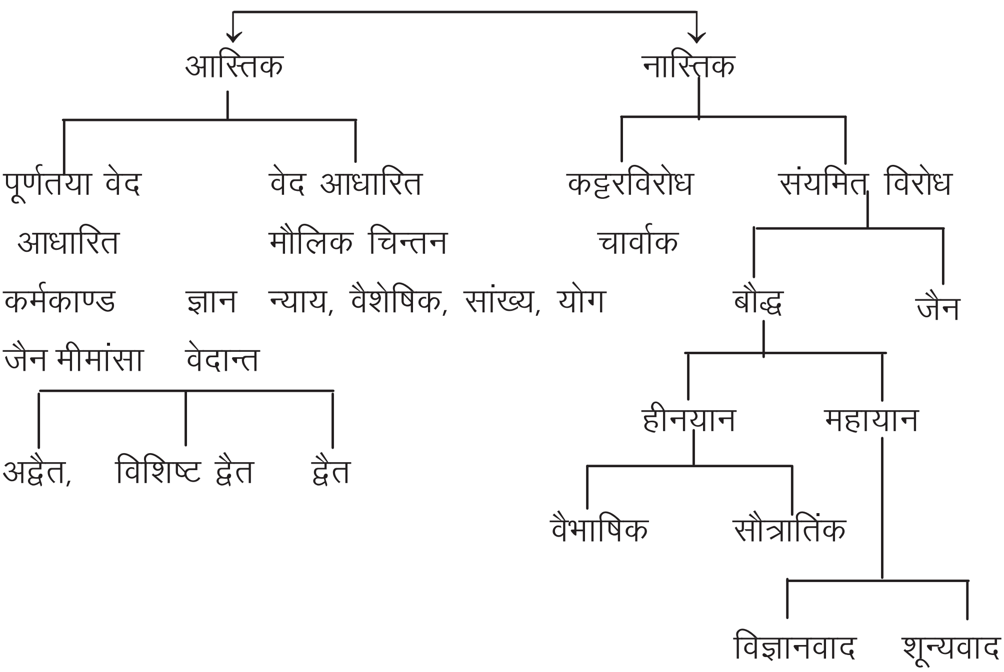

इस प्रकार नास्तिक दर्शन के अन्तर्गत वृहस्पति का चार्वाक सम्प्रदाय गौतम बुद्ध व उनके अनुयायियों का बौद्ध–दर्शन, तथा ऋषभदेव व प्रमुख रुप से महावीर स्वामी द्वारा विकसित जैन दर्शन आते हैं। आस्तिक दर्शन में कपिलमुनि का सांख्य, महर्षि पंतजलि का योग, महर्षि गौतम का न्याय, महर्षि कणाद का वैशेषिक, महर्षि जैमिनी का मीमांसा एवं वादरायण द्वारा स्थापित वेदान्त दर्शन, जिसके अन्तर्गत शंकराचार्य का द्वैत, रामानुज का विशिष्टाद्वैत एवं माधवाचार्य का द्वैतवाद मुख्य रुप से सम्मिलित है।

7.14 भारतीय दर्शन की विशेषताएँ

किसी भी दर्शन का प्रादुर्भाव वहाँ पर प्रचलित विचारधाराओं के आधार पर होता है। इसी कारण किसी भी दर्शन में स्थानीय विचारों की छाप विद्यमान रहती है। विभिन्नताओं के होते हुए भी भारतीय दर्शन में भारतीय संस्कृति की छाप विद्यमान रहती है। इसी कारण उसमें आपसी समानता भी पाई जाती है।

भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) सभी भारतीय दर्शन पुरुषार्थ साधन हेतु हैं। अर्थात जीवन को समझने हेतु दर्शन परमावश्यक है।

(ii) दर्शन का उद्देश्य केवल मानसिक कौतुहल की निवृत्ति ही नहीं है बल्कि किस प्रकार मनुष्य दूरदृष्टि, भविष्य दृष्टि तथा आन्तरिक दृष्टि के साथ जीवन यापन कर सके इसकी शिक्षा देना भी है।

(iii) भारतीय दर्शन के व्यावहारिक उद्देश्य की प्रधानता का कारण मुख्य रुप से यह है कि संसार में अनेक दुःख है। अतः सभी दर्शनों में दुःखों के निवारण हेतु ही विचारों की उत्पत्ति हुई।

(iv) भारतीय दर्शन में अध्यात्मवाद पर बल दिया गया है यह विचारधारा इस बात पर विश्वास दिलाती है कि संसार में एक शाश्वत नैतिक व्यवस्था हैं इसी कारण भारत के सभी दर्शन नैतिक व्यवस्था में विश्वास व आस्था रखते हैं।

(v) भारतीय दर्शन सम्पूर्ण विश्व को एक रंगमंच के समान मानता है। जिसमें मनुष्य को कर्म करने का अवसर मिलता है। वे अपनी योग्यता के अनुसार कर्म करते हैं व अपने वर्तमान तथा भविष्य को सुधारने का प्रयत्न करते हैं।

(vi) भारतीय दर्शन अज्ञात को ही बन्धन का कारण मानता है और आत्मा का तत्वज्ञान प्राप्त करके मनुष्य इस अज्ञान से मुक्ति पा सकता है। इस तत्वज्ञान को सफल बनाने हेतु दो प्रकार के अभ्यास पर बल देता है–

1. निदिध्यासन– अर्थात स्वीकृत सिद्धान्तों का अनवरत चिन्तन।
2. आत्म संयम।

(vii) यह एकाग्रचिन्तन तथा ध्यान पर बल देता है। ज्ञान की परिपक्वता के लिए ज्ञान को शरीर, मन और वचन के द्वारा जीवन में उतारने की साधना निरन्तर करते रहने पर जोर देता है।

(viii) भारतीय दर्शन आत्मसंयम व सेवा के विरोध की भी चर्चा करता है। उसके अनुसार जब तक तृष्णा तथा नीच प्रवृत्तियों का पूर्ण नियन्त्रण नहीं हो, तब तक हमारे कर्म पूर्णतया नैतिक तथा धार्मिक नहीं हो सकते।

(ix) चार्वाक के अतिरिक्त सभी भारतीय दर्शन मोक्ष को जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानते हैं और यह स्वीकार करते हैं कि मोक्ष की प्राप्ति से जीवन के दुःखों का नाश होता है और आनन्द की प्राप्ति होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

8. भातीय दर्शन की विभिन्न शाखाओं की चर्चा कीजिए।

9. भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा करें।

10. ''शिक्षा के उद्देश्यों पर दर्शन का प्रभाव पड़ता है'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

7.15 न्याय दर्शन

इस दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम थे, जिन्हें अक्षपाद के नाम से भी जाना जाता है। इस कारण न्यायदर्शन का एक नाम अक्षपाद दर्शन भी है। इस दर्शन को अन्य नामों से भी जाना जाता है। जैसे– (1) ज्ञान शास्त्र अथवा (Emistemology), (2) हेतु विद्या या कारणों का विज्ञान (Hetuvidya or Science of Causes), (3) वाद विद्या या वाद–विवाद का विज्ञान (Vad Vidya or the Science of Debate), (4) आन्वीक्षिकी या आलोचनात्मक अध्ययन का विज्ञान (Anviksiki or the Science of Critical Study)।

भारतीय दर्शन में तर्कशास्त्र के लिए भी न्याय शास्त्र का प्रयोग किया जाता है। न्याय प्रधानतः तर्क का विचार करता है साथ ही वह भौतिक जगत के स्वरूप जीवात्मा तथा परमात्मा के स्वरूप का भी दार्शनिक विवेचन करता है। न्याय ''वस्तुवादी'' दर्शन है। और इसका प्रतिपादन विशेषतः युक्तियों के द्वारा माना गया है।

न्याय दर्शन विचारों की शुद्धता पर ध्यान देता है। इसके अनुसार वाह्य वस्तुओं का अस्तित्व ज्ञाता से स्वतन्त्र रहता है, अर्थात वह हमारे ज्ञान पर निर्भर नहीं है। जैसे– डस्टर, चाक, श्यामपट्ट, पंखा आदि वाह्य वस्तुएँ और इनका अस्तित्व हमारे मन पर निर्भर नहीं है। या हम इनसे अनभिज्ञ भी हैं। तब भी वह अपने अस्तित्व को कायम रखेगें, जबकि मानसिक भावों का अस्तित्व मन पर निर्भर करता है अर्थात जब तक मन उसकी अनुभूति नहीं कर लेता तब तक उसका कोई अस्तित्व नहीं। न्याय दर्शन में सोलह पदार्थों की चर्चा की गई है इनमें– 1. प्रमाण, 2. प्रमेय, 3. संशय, 4. प्रयोजन, 5. दृष्टांत, 6. सिद्धान्त, 7. अवयव, 8. तर्क, 9. निर्णय, 10. वाद, 11. जलप, 12. वितण्डा, 13. हेत्वामास, 14. दल, 15. जाति, 16. निग्रह मुख्य हैं। न्याय दर्शन यथार्थ ज्ञान के कारण (साधन) को मुख्य रुप से चार प्रमाणों में विभक्त किया है–

1. प्रत्यक्ष (Perception)
2. अनुमान (Inference)
3. उपमान (Comparison)
4. शब्द (Verbal Authority)

1. **प्रत्यक्ष या अर्न्तदृष्टि (Knowledge and Perception)** न्याय ज्ञान या बुद्धि को अर्थों की उपलब्धि या चेतना व अनुभव कहता है। इसके अनुसार वस्तुओं के साक्षात् या आरोप ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं और इसकी उत्पत्ति वस्तु या ज्ञानेन्द्रियों के संयोग से होती है। यथार्थ ज्ञान जिसे 'प्रभा' कहा गया है, वस्तुओं को उसी रुप में ग्रहण करता है जिस रुप में वह है, यह स्मृति को प्रभा (Valid Knowledge) नहीं मानते। इनके अनुसार स्मृति पहले के ज्ञान का स्मरण मात्र है। स्मृति से भिन्न ज्ञान को अनुभव मानते हैं। न्याय संशय, भ्रम, व तर्क को 'अप्रभा' (Invalid Knowledge) मानते हैं। प्रमाण 'प्रभा' का कारण या साधन है। अप्रभा अनुभव नहीं है। स्मृति अनुभव न होने के कारण अप्रभा है। 'अप्रभा' वस्तु के सच्चे स्वरूप की उपलब्धि नहीं करती। अप्रभा का विषय यथार्थ नहीं होता। प्रत्यक्ष ज्ञान बाह्य या आन्तरिक हो सकता है। जिस वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान हो और उसका सम्बन्ध बाह्य इन्द्रियों से हो तो उसे हम बाह्य प्रत्यक्ष कहते हैं व उसका संयोग यदि अन्तर से हो तो उसे मानव प्रत्यक्ष कहते हैं। बाह्य ज्ञान को इन्द्रिजन्य व अर्न्तज्ञान को मानव जन्य ज्ञान की संज्ञा दी जा सकती है।

2. **अनुमान (Inference)** अनुमान परोक्ष ज्ञान है। दो वस्तुओं की व्याप्ति के आधार पर उनमें से एक वस्तु के ज्ञान से दूसरी वस्तु का ज्ञान होना अनुमान है। इस प्रकार ज्ञान को अनुमान इस कारण कहा जाता है, चूँकि यह किसी अन्य ज्ञान के बाद अनुभव होता है। अनुमान का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार से किया जा सकता है।

अनु –

पश्चात मान

– ज्ञान

यह हेतु और साध्य की व्याप्ति के ज्ञान पर आधारित होता है, जहाँ वस्तु प्रत्यक्ष गोचर होती है, वहाँ अनुमान का कोई महत्व नहीं होता। इसी कारण अनुमान केवल उन वस्तुओं या पदार्थों का होता है जो प्रत्यक्षगम्य नहीं है। न्याय दर्शन यह मानता है कि सभी प्रकार का ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा अर्जित नहीं किया जा सकता और अनुमान प्रत्यक्ष ज्ञान का पूरक है।

न्याय दर्शन के अनुसार अनुमान में भूत, भविष्य व वर्तमान तथा दूरस्थ वस्तुओं का समावेश होता है; जबकि प्रत्यक्ष में 'इस स्थान' व 'इस काल' को समाहित किया जाता है।

3. **उपमान (Comparison)** उपमान अथवा तुलना वह साधन है, जिसके द्वारा हम किसी ज्ञात पदार्थ के सादृश्य से अन्य पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करते हैं। अर्थात इसके द्वारा

किसी नाम तथा उसके नामों के सम्बन्ध का ज्ञान होता है। उदाहरण के लिए किसी बच्चे को यह बताया जाये कि शिव के गले में साँप लिपटा रहता है यदि उसे साँप की शक्ल का ज्ञान है तो वह साँप लिपटे जब कोई भगवान का चित्र अवलोकित करेगा तो समझ में आ जायेगा कि यह भगवान शिव हैं।

(i) एक विल्कुल नई पहले से अज्ञात वस्तु का ज्ञान अर्थात ज्ञेय पदार्थ का ज्ञान।

(ii) ऐसी वस्तु के पहले से ज्ञात एक अन्य प्रसिद्ध वस्तु से सादृश का ज्ञान अर्थात सादृश का पूर्ण एवं प्रत्यक्ष ज्ञान। यदि सादृश का ज्ञान अपूर्ण तथा अपर्याप्त होता है तो ज्ञेय पदार्थ का ज्ञान भी त्रुटिरहित नहीं हो सकता। भारतीय दर्शन उपमान को स्वतन्त्र प्रमाण नहीं मानते उनके अनुसार उपमान द्वारा प्राप्त ज्ञान या तो स्मृति अथवा अनुमान या शब्द के अन्तर्गत माना जाता है। उपमान प्रमाण से ज्ञान प्राप्त होता है, वह उपमिति कहलाता है।

4. शब्द प्रमाणिकता (Verval Authority) न्याय ने शब्द को एक स्वतन्त्र प्रमाण माना है। शब्द का अभिप्राय है वह पुरुष या व्यक्ति जो सत्य का ज्ञाता और सत्य का वक्ता है, ऐसा पुरुष जो कुछ कहता है, उसका अर्थ समझकर किसी बात को जानना शब्द प्रमाण है। वास्तव में शब्दों और वाक्यों में जिन वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है, उसे शब्द कहते हैं। सभी शब्द ज्ञान यथार्थ नहीं होता अतः शब्द को प्रमाण तभी समझा जाता है, जब इसके द्वारा यथार्थ ज्ञान मिलता है। प्रमाण ज्ञान प्राप्ति की परोक्ष विधि है। न्याय दर्शन शब्दों के दो प्रकारों की चर्चा करता है।

(i) दृष्टार्थ

(ii) अदृष्टार्थ

न्याय के अनुसार दृष्टार्थ शब्द, उसे कहते है जिससे ऐसी वस्तुओं का ज्ञान होता है, जिनका प्रत्यक्ष हो सके। अदृष्टार्थ शब्द वह है जिससे अदृष्ट वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

न्याय दर्शन वाक्य विवेचन करते हुए यह मानता है कि वाक्य शब्दों से मिलकर बनता है और उसका कोई अर्थ होता है अर्थात् वाक्य ऐसे पदों का समूह है जो एक विशेष ढंग से क्रमबद्ध रहते है। पद का अर्थ ही उसकी विशेषता है। इस कारण पद में सार्थकता का होना आवश्यक है इसे सार्थक होने के लिए वाक्य में निम्नलिखित बातों का होना जरुरी है।

(i) आकांक्षा

(ii) योग्यता

(iii) सन्निधि

(iv) तात्पर्य

(i) आकांक्षा (Expectancy) में किसी वाक्य पदों की आपस में एक दूसरे से अपेक्षा रहती है। किसी भी वाक्य में ऐसे शब्द होने चाहिए जो पूरी बात को अभिव्यक्त कर सकें। चूंकि एक अकेला शब्द पूरी बात को प्रकट नहीं कर सकता।

(ii) योग्यता या (Fitness) का अभिप्राय है कि वाक्य में ऐसे शब्दों की योग्यता होनी चाहिए जो एक दूसरे से संगति रखते हों। योग्यता रहित शब्द वाक्य को निरर्थक बना देते है।

(iii) सन्निधि या (Proximity) वाक्य की तीसरी आवश्यकता है वाक्य के पदों में सामीप्य होना ही सन्निधि है कोई भी वाक्य तभी अर्थ सूचक हो सकता है जब उसके पदों में समय व स्थान की दृष्टि से नैकट्य हो।

(iv) तात्पर्य (Intention) से अभिप्राय यह है कि वाक्य का अर्थ जानने के लिए वक्ता को तात्पर्य का ज्ञान होना जरुरी है। किसी वाक्य के जिस अर्थ को सूचित करने का अभिप्राय रहता है, वही उसका तात्पर्य है। विभिन्न स्थानों में एक ही पद के कई अर्थ हो सकते हैं किसी विशेष स्थान पर क्या अर्थ होगा, यह वक्ता के अभिप्राय पर निर्भर करता है अतः इसको समझने के लिए हमें वक्ता या लेखक के अभिप्राय का विचार करना होगा। इस प्रकार आंकाक्षा, योग्यता, सन्निधि तथा तात्पर्य का ज्ञान वाक्य की सार्थकता हेतु आवश्यक है। योग्यता से वाक्य में आकारतन्त्र (Formal Consistency) आती है और तात्पर्य से उसमें वस्तुतन्त्र क्या चीज है? व्यक्ति हो या आकृति या जाति न्याय का मत है कि शब्द का अर्थ व्यक्ति, आकृति और जाति तीनों ही होता है।

7.16 न्याय दर्शन का शैक्षिक महत्व

अब तक हमने न्याय दर्शन में वर्णित शिक्षा के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न पक्षों की चर्चा की है अब हम इस बात पर विचार करेगें कि न्याय दर्शन ने शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षण विधि, तथा पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में क्या चर्चा की है।

न्याय दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

न्याय दर्शन के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिए।

1. बालक को इस योग्य बनाना कि वह सत्य का अनुसरण कर सके।
2. शिक्षा द्वारा बालक को मोक्ष प्राप्ति के लिए तत्पर करना और उसके लिए उसमें आत्मानुभूति का विकास करना।
3. बालक को आत्मा के स्वरुप को पहचानने हेतु सक्षम बनाना अर्थात बालक में आत्मा की परीक्षा का ज्ञान उत्पन्न करना।
4. शिक्षा द्वारा उन षोडस पदार्थों का ज्ञान करना जो मोक्ष प्राप्ति के माध्यम हैं।
5. मानव जीवन में ज्ञान को प्रज्जवलित करना।

6. बालक को इतना समर्थ बनाना कि वह ईश्वर के अस्तित्व से परिचित रहकर उसके अस्तित्व को प्रमाणित कर सके व उसके रुप को पहचान सके।
7. बालक की ईश्वर भक्ति में आस्था उत्पन्न करते हुए उनके अन्दर धार्मिक दृष्टिकोण उत्पन्न करना।
8. न्याय कर्म के सिद्धान्त में विश्वास रखता है, व पुर्नजन्म को मानता है। अतः शिक्षा द्वारा बालक को सदाचरण का ज्ञान कराया जाय।
9. वेदों के अस्तित्व में विश्वास रखना।
10. बालक की तर्क शक्ति का विकास करना

न्याय दर्शन के अनुसार शिक्षण विधियाँ

न्याय दर्शन, शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति मानता है और इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर शिक्षण विधियों की चर्चा की है जो निम्नलिखित है–

1. चिन्तन विधि
2. आगमन निगमन विधि
3. प्रत्यक्ष विधि
4. प्रयोगात्मक विधि
5. योजना विधि
6. वैज्ञानिक विधि
7. संश्लेषण विश्लेषण विधि
8. चर्चा विधि
9. व्याख्यान विधि
10. व्याख्या विधि
11. स्वाध्याय विधि
12. समस्या विधि
13. खेल विधि
14. तर्क विधि

इसके साथ ही न्याय दर्शन यह मानता है कि शिक्षा का उद्देश्य छात्रों में सम्प्रेषण कला का उचित रूप में विकास करना होना चाहिए इसके अभाव में छात्र अपने विचारों को दूसरे के समक्ष प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत नहीं कर सकता। वक्ताओं के मध्य सम्प्रेषण कला का समुचित रुप से विकास करने हेतु यह आवश्यक है कि अध्यापक समूह गतिशीलता से परिचित हो। क्योंकि सम्प्रेषण उचित मधुर सम्बन्धों पर निर्भर करता है।

न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष विधि के प्रयोग की चर्चा है। इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि प्रत्यक्ष विधि के अतिरिक्त हम शिक्षा में जिस विधि का प्रयोग करते हैं।

वह अनुमान विधि है, जो वैज्ञानिक विधि के अन्तर्गत आती है। हमारे लिए यह असम्भव है कि हम प्रत्येक वस्तु का नाम प्रत्यक्ष रुप में अथवा इन्द्रियों द्वारा अर्जित कर सकें। ऐसी स्थिति में हमें अनुमान विधि का सहारा लेना पड़ता है। उदाहरणार्थ– भाषा शिक्षण में जब हम कल्पना के रास्ते पहुँचकर अघटित परिस्थितियों पर विचार करने लगते है तो हम अनुमान विधि का प्रयोग करते हैं। सामाजिक विषयों के अध्ययन में हम अनुमान विधि का प्रयोग करते हैं। इस शिक्षण के द्वारा अध्यापक का मुख्य उद्देश्य छात्रों की विचार शक्ति को उत्प्रेरित करना होता है। विचार और कल्पना सिर्फ अनुमान की प्रक्रिया द्वारा ही सम्भव है।

अनुमान विधि का प्रयोग आगमन–निगमन तथा संश्लेषण विश्लेषण के रुप में हम गणित शिक्षण में भी करते हैं। वैज्ञानिक प्रयोग को करने के पूर्व भी हम अनुमान विधि का सहारा होते हैं। परन्तु वैज्ञानिक प्रयोगों के अन्तर्गत हम अनुमान को जब प्रत्यक्ष क्रिया के साथ संलग्न कर देते हैं तो उसे समस्या विधि अथवा प्रयोगात्मक विधि कहते हैं, और जब हम अनुमान विधि को क्रिया विधि के साथ जोड़ देते है तो उसे प्रोजेक्ट विधि, योजना विधि या खेल विधि कहते है। अनुमान विधि के सम्बन्ध में न्याय शास्त्र यह भी मानता है कि यदि हम इसका प्रयोग उचित रुप से नहीं करेंगे तो यह विधि हमारे लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

न्याय दर्शन यह भी मानता है कि शब्द विधि का प्रयोग सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली में किया जाता है। प्रश्नोत्तर विधि, चर्चा विधि, व्याख्यान विधि व व्याख्या विधि शब्दों के सफल प्रयोग पर ही निर्भर करती है। इसके अन्तर्गत शब्दों के चारों गुण, आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि व तात्पर्य निहित होने चाहिए। शिक्षण में हम मौखिक व लिखित दोनों ही शब्दों का प्रयोग करते है। शब्द प्रणाली का प्रयोग करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शब्दों के माध्यम से छात्रों को यथार्थ ज्ञान प्रदान करना चाहिए, मिथ्यापूर्ण ज्ञान नहीं। हम इस प्रकार का ज्ञान छात्रों को भाषण पद्धति या पत्र–पत्रिकाओं व पुस्तकों द्वारा प्रदान कर सकते हैं।

7.17 न्याय दर्शन के अनुसार पाठ्यक्रम

न्याय दर्शन का प्रमुख योगदान ज्ञान मीमांसा से है। इसका प्रमुख विषय, ''ज्ञान'' 'ज्ञान प्राप्ति के साधन' तथा 'ज्ञान प्रक्रिया' से है। इसी कारण पाठ्यक्रम का वह प्रमुख आधार 'ज्ञान' को ही मानते हैं। न्याय दर्शन के अनुसार ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया में चार तत्वों का होना अनिवार्य है जो निम्नलिखित है–

1. प्रमाता
2. प्रमेय
3. प्रमाण
4. प्रमिति

प्रमाता ज्ञान प्राप्त करने वाले उस विद्यार्थी को कहते हैं जो ज्ञान प्राप्त करने हेतु जिज्ञासु होता है। प्रमेय से अभिप्राय है कि वह ज्ञेय विषय जिसका अध्ययन प्रमाता करता है। प्रमाण उस साधन को कहते हैं, जिसकी सहायता से प्रमाता प्रमेय की प्राप्ति करता है, अर्थात जिसके माध्यम से ज्ञान प्राप्त किया जाता है। 'प्रमिति' पदार्थों का स्पष्ट प्रकटीकरण है जो निश्चित त्रुतिरहित ज्ञान की परिकल्पना करता है।

न्याय शास्त्र पाठ्यक्रम में इन्द्रियज्ञान की भी चर्चा करता है। इन्द्रिय ज्ञान को प्राप्त करने हेतु न्याय दर्शन यह मानता है कि शिक्षा के द्वारा इन्द्रियों का सही दिशा में प्रशिक्षण अनिवार्य है। दोषपूर्ण इन्द्रियाँ त्रुटियों का कारण बनती हैं व वह वैध ज्ञान की प्राप्ति में बाधा डालती हैं। यदि हम मानव की इन्द्रियों को सही प्रशिक्षण देगें तो वह अपने विषय को पहचानने व ग्रहण करने में सफल होगा। न्याय शास्त्र की यह मान्यता है कि हमारे मस्तिष्क में जगत का ज्ञान जिस रुप में प्रकट होता है, वह बहुत सीमा तक विश्वसनीय होता है।

पाठ्यक्रम में वातावरण के महत्व की चर्चा करते हुए न्याय दर्शन यह मानता है कि प्रत्यक्ष ज्ञान ही सम्पूर्ण शिक्षा को सफल बनाता है। चूँकि पूरी शिक्षा इसी पर टिकी हुई है। अन्य प्रमाणों से हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसके लिए भी पूर्ण ज्ञान हम प्रत्यक्ष विधि के माध्यम से प्राप्त करते हैं। शिक्षा के लिए यह भी आवश्यक है कि वह बालकों को इस बात का अवसर दें कि वह अपने चारों ओर के वातावरण पर दृष्टिपात करें। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि जिन पदार्थों का हम प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ रहे, उन्हें अन्य माध्यमों के द्वारा छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करें। इसके लिए वह पाठ्यक्रम में श्रव्य–दृष्य सामग्री के प्रयोग की चर्चा करते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान प्रदान करते समय विद्यार्थी को अनुप्रेरित करना अनिवार्य है। अनुप्रेरित करने के पश्चात छात्र उसका अवलोकन करें तब पदार्थ का सागोपांग ज्ञान प्राप्त करें।

भाषा शिक्षण के पाठ्यक्रम को हम छात्रों के समक्ष मूर्त प्रत्यय को प्रत्यक्ष विधि द्वारा प्रस्तुत करते हैं। परन्तु अमूर्त प्रत्ययों के निर्माण हेतु हम अन्य विधियों का सहारा लेते हैं। व्याकरण पढ़ाते समय यह आवश्यक है कि हम पदार्थ और शब्दों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करें। अर्थात भाषा व्याकरण के द्वारा छात्र जो भी सुनता, पढ़ता, बोलता है, उसका प्रत्यक्षीकरण होना परमावश्यक है। सामाजिक विषयों के शिक्षण में यदि हम ऐतिहासिक इमारतों का अध्ययन परिभ्रमण के द्वारा करायें तो छात्रों को उन स्थलों का अवलोकन करवा देना चाहिए और यदि यह सम्भव नहीं है तो श्रव्य–दृश्य सामग्री का सहयोग ले सकते हैं। विज्ञान विषयों को पढ़ाने हेतु उपयोग की जाने वाली प्रयोगात्मक प्रणाली प्रत्यक्ष ज्ञान के अन्तर्गत आती है। गणित शिक्षण में मूर्त वस्तुओं तथा वास्तविक परिस्थितियों का प्रयोग भी प्रत्यक्ष प्रणाली के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि न्याय दर्शन द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्ष ज्ञान की प्रणाली का प्रयोग यदि हम शिक्षा में करें तो शिक्षा को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी – क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

11. न्याय दर्शन के प्रवर्त्तक कौन थे?

12. न्याय दर्शन के अनुसार शिक्षा के पाठ्यक्रम का वर्णन करें।

10. न्याय दर्शन के अनुसार शिक्षण विधियों की व्याख्या करें।

7.18 सांख्य शिक्षा दर्शन

सांख्य दर्शन के प्रवर्त्तक महर्षि कपिलमुनि थे। यह दर्शन सांख्य प्रवचन के नाम से भी प्रसिद्ध है। सांख्य दर्शन ईश्वरवाद की स्थापना में विश्वास नहीं करता इसके अनुसार ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध नहीं किया जा सकता है। इसी कारण इसे 'निरीश्वर सांख्य' भी कहा जाता है। कपिल ने 'तत्वसमाज' एवं 'सांख्य सूत्र' नामक ग्रन्थों की भी रचना की। सांख्य दर्शन भारतीय दर्शनों में अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। इसकी प्राचीनता का पता इसी से हो जाता है कि सभी– भारतीय दर्शन में, गीता, महाभारत, रामायण, मनुस्मृति, उपनिषद, पुराण आदि में सर्वत्र सांख्य की चर्चा की गई है। सांख्य दर्शन पच्चीस तत्वों को आधार मानकर जगत का विश्लेषण करता है। सांख्य का अर्थ सांख्य से लिया गया है। इस दर्शन का नाम सांख्य क्यों पड़ा इसके विषय में विद्वानों की धारणा यह है कि यह तत्वों की संख्या का बोध करता है। चूँकि इस दर्शन में तत्वों की संख्या निर्धारित की गई है। इस कारण इसें सांख्य कहा गया है। कुछ विद्वान सांख्य का अर्थ ज्ञान से करते हैं।

सांख्य दर्शन भारतीय दर्शनों में प्राचीन होने के साथ–साथ श्रेष्ठ भी है। इस पर परवर्ती सभी दार्शनिक सम्प्रदायों ने विचार किया है। सांख्य दर्शन के कुछ प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं।

1. सत्कार्यवाद– (THEORY OF CAUSATION) सांख्य दर्शन का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। सांख्य यह मानता है कि जगत का मूल प्रकृति से विकसित हुआ

है। सत्कार्यवाद को सांख्य दर्शन का कारणवाद कहा जाता है। श्रीमदभागवत गीता में सांख्य दर्शन के कारणवाद को ''नासतो विद्यते भावो न भावो विद्यते सत'' कहा गया है। अर्थात् सांख्य के अनुसार जगत का भाव 'सत्ता' नहीं होती और सत् का अभाव नहीं होता। सत्कार्यवाद का तात्पर्य 'कारण से कार्य की उत्पत्ति' होना है। कारण में कार्य–वर्तमान रहता है, कारण से कार्य की उत्पत्ति का अर्थ है, 'अव्यक्त का व्यक्त होना' तथा कार्य के नाष का अर्थ 'व्यक्त का अव्यक्त होना होता है।'

इस प्रकार कार्य व कारण में केवल धर्म अथवा स्वरुप का भेद है। ''जब कार्य कारण में अव्यक्त रुप में पड़ा रहता है तो, वह कारण से अलग वस्तु नहीं है और कार्य से कारण की सत्ता वर्तमान है, केवल रुप परिवर्तन ही कार्य और कारण के बीच की कड़ी है। इस प्रकार उत्पत्ति व विनाश दोनों का अर्थ एक धर्म को छोड़कर दूसरा धर्म ग्रहण करना है। कार्य का कारण में अवस्थित होना ही सत्कार्यवाद कहलाता है।

2. प्रकृति– सांख्य दर्शन परिणामवादी है इसका तात्पर्य यह है कि कारण से कार्य उत्पन्न होकर दूसरा रुप अथवा धर्म ग्रहण कर लेता है। परिणामवाद की यह विशेषता है कि इसमें कार्य अपने कारण के समान ही सत् होता है। सांख्य दर्शन जगत में प्रकृति को सभी बातों का मूल कारण मानता है और समस्त विषयों का अनादि मूल स्रोत होने के कारण वह प्रकृति को नित्य और निरपेक्ष मानता है, क्योंकि सापेक्ष व अनित्य पदार्थ जगत का मूल कारण नहीं हो सकता है। अतः सांख्य प्रकृति के अस्तित्व को सिद्ध करने हेतु निम्नलिखित प्रमाण को प्रस्तुत करता है।

(i) अनुभव की वस्तुएँ कृतक हैं वे उन कारणों पर निर्भर हैं जिनमें वे अव्यक्त अवस्था में रहती है। कारण में कम से कम उतनी सत्यता रहनी चाहिए जितनी कार्य मे रहती है। प्रत्येक कारण अकृतक कारण है जिससे सारा जगत और उसके कार्य–परिणाम हों।

(ii) दृश्य वस्तुएँ अनित्य व नाशवान हैं वे नष्ट होने पर अपने कारणों में लीन हो जाती हैं इसलिए जगत के आदि उपादन कारण को नित्य होना चाहिए प्रकृति ही जगत का आदि कारण है, जिसमें सारे संसार का लय होता है। प्रकृति से ऊँचा कोई ऐसा कारण नहीं है जिसमें प्रकृति का लय हो सके।

(iii) दृष्य वस्तुएँ परिछिन्न परिणाम वाली है वे अविभु हैं अध्यापक हैं। कार्य कारण से व्याप्त रहता है, लेकिन कारण कार्य से व्याप्त नहीं रहता। कारण कार्य की अपेक्षा अधिक व्यापक है।

(iv) दृष्य वस्तुएँ सक्रिय और गतिशील होती है इसलिए उसका आदि कारण निष्क्रिय और गतिहीन होना चाहिए। प्रकृति परिणमनशील लेकिन उसमें गति नहीं है।

सांख्य प्रकृति व पुरुष के द्वैत सम्बन्ध में यह भी मानता है कि प्रकृति अचेतन है जबकि पुरुष चेतन। प्रकृति दृष्य है, जबकि पुरुष दृष्टा, उसका विचार है कि न तो प्रकृति पुरुष को उत्पन्न कर सकती है और न पुरुष प्रकृति को उत्पन्न कर सकता है इस कारण सांख्य न तो जड़ को एक मात्र मूल तत्व मानता है, न चेतन को, वह न जड़वादी कहा जा सकता है, न चेतनवादी। सांख्य प्रकृति के परिणाम को पुरुष के प्रयोजनों का साधन मानता है। प्रकृति निष्प्रयोज्य नहीं है बल्कि संप्रयोजन है। प्रकृति के परिणामों के पीछे कोई उद्देश्य होता है। सांख्य दर्शन प्रकृति के तीन गुण, सत्य, रजस व तमस् में विभक्त किया है।

3. पुरुष या आत्मा– सांख्य दर्शन में आत्मा को ही पुरुष कहा गया है। पुरुष के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि यह मैं हूँ, पतला हूँ, लम्बा हूँ आदि। अर्थात अपने मन की सिद्धि के लिए किसी बाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं है। मैं और मेरा का अनुभव स्वाभाविक रुप से प्रत्येक व्यक्ति को होता है। अतः सांख्य दर्शन इसे स्वतः सिद्ध मानता है। कोई भी मनुष्य अपने अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकता अतः इसके लिए अधिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। प्रकृति, अचेतन, जड़, तथा निष्क्रिय है। पुरुष चेतन, क्रियाशील, प्राणवान तथा अनेक है। सांख्य मत आत्मा अथवा पुरुष की अनेकता में विश्वास करता है। जड़ प्रकृति और चेतन पुरुष के संयोग से ही सृष्टि का विकास होता है। अकेली प्रकृति सृष्टि नहीं कर सकती क्योंकि वह निष्क्रिय है। और अकेले पुरुष भी सृष्टि नहीं कर सकता।

सांख्य दर्शन को समझने के लिए आत्मा के स्वरुप को समझना आवश्यक है। यहाँ हम सांख्य दर्शन के आत्मा की जैन दर्शन से तुलना कर सकते हैं। जैन मत में आत्मा को अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यवान माना गया है। जबकि सांख्य में इसके विपरीत आत्मा को विशेषताओं से रहित विशुद्ध चैतन्य माना गया है। वेदान्त के विरुद्ध सांख्य आत्मा को आनन्दस्वरुप नहीं मानता। उसके अनुसार आनन्द व चैतन्य अलग–अलग है। आनन्द प्रकृति का गुण है पुरुष का नहीं। पुरुष निष्क्रिय और अविकारी है। उसके विषय बदलते रहते हैं पर वह कभी नहीं बदलता। पुरुष को मानस, अहंकार तथा बुद्धि के परे भी माना गया है। वह शुद्ध चैतन्य है अतः ज्ञान का विषय नहीं हो सकता। वह ज्ञान का आधार और परम ज्ञाता है वह देशकाल व परिवर्तन की क्रिया से परे है। वह स्वयं प्रकाश व स्वयंसिद्ध है।

सांख्य दर्शन पुरुष और ज्ञान के सम्बन्ध के बारे में विशिष्टता का खण्डन करता है उनके अनुसार आत्मा का स्वभाव ज्ञान के सूक्ष्म तत्वों से परे की वस्तु है। ज्ञान स्वतः प्रकाशमान वस्तु नहीं है बल्कि वह आत्मा की ज्योति से प्रकाशित होता है। हमारी अनुभूतियों के चित्र मस्तिष्क के अंधेरे में पड़े रहते हैं। परन्तु जब आत्म ज्योति पड़ती है

तो जगमग उठते हैं। इस प्रकार सांख्य दर्शन का पुरुष अन्य दर्शनों में मान्य आत्मा के सिद्धान्त से भिन्न है।

प्रकृति व पुरुष में भेद– सांख्य प्रकृति और पुरुष में अन्तर को स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित मत का प्रतिपादन किया है।

प्रकृति	पुरुष
जड़ है।	चेतन है।
माया है।	आत्मा है।
अविद्या है।	ज्ञान का भण्डार है।
विषय है।	विषयी है ।
योग्य है।	भोक्त है।
बन्धनमय है।	बन्धन मुक्त है।
देशकाल में है।	देशकाल से परे है।

सांख्य दर्शन पुरुष और जीव के भेद को स्वीकार करता है। इसके साथ ही जीवन के सुख दुःख एवं ईश्वर के विषय में भी चर्चा किया है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख.इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

14. सांख्य के अनुसार सत्कार्यवाद की व्याख्या कीजिए।

____

____

15. सांख्य के अनुसार 'प्रकृति' के गुण व स्वभाव की विवेचना करें।

____

____

16. सांख्य दर्शन में 'पुरुष' क्या है?

____

____

17. सांख्य ने पुरुष की स्वतन्त्रत सत्ता की सिद्धि के लिए किन युक्तियों का वर्णन किया

____

____

7.19 सांख्य दर्शन का शैक्षिक महत्व

सांख्य दर्शन ने सृष्टि विकास की व्यापक चर्चा की है और यह माना है कि सम्पूर्ण सृष्टि में दो सत्ता विद्यमान है।

(i) प्रकृति

(ii) पुरुष

सांख्य का यह सिद्धान्त बाल विकास का सिद्धान्त प्रस्तुत करता है हम यह जानते है कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक का शारीरिक मानसिक व चारित्रिक विकास करना है। इस रुप में हम यह देखें तो यह कह सकते है कि पुरुष के संसर्ग में जैसे प्रकृति का विकास होता है, वैसे ही शिक्षा के संसर्ग में बालक का। बालक के विकास की अवस्थाओं को सांख्य दर्शन के अनुसार निम्नलिखित रुप से प्रस्तुत कर सकते हैं।

(i) **मन**

(ii) **ज्ञानेन्द्रियाँ–** श्रोत, त्वक् चक्षु, रसना, धाण

(iii) **कर्मेन्द्रियाँ–** मुख, हाथ, पैर, मल नि कासन, प्रजनेन्द्रियाँ

(iv) **तन्मात्राएँ–**

शब्द	स्पर्श,	रुप,	रस,	गन्ध
↓	↓	↓	↓	↓
आकाश	वायु	तेजस	जल	पृथ्वी
↑	↑	↑	↑	↑

पंच महाभूत

इसके साथ ही सांख्य दर्शन बालक के विकास की दो अवस्थाओं की चर्चा भी करता है–

(i) गर्भावस्था में बालक का विकास

(ii) जन्म के पश्चात बालक का विकास

सांख्य के अनुसार मन से उपर बालक की विचार प्रक्रिया के दो और तत्वों का विकास होता है और उसने इन तत्वों को क्रमशः अहंकार और महत् कहा है। यह दोनों ही तत्व बाह्य क्रियाओं के आधार पर विकसित होते हैं। अहंकार बालक को स्व (SELF) का ज्ञान कराता है और शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य (INDIVIDUAL AIM) की शिक्षा शास्त्री या मनोवैज्ञानिक जब भी परिकल्पना करते हैं तो यह मानते हैं कि शिक्षा के द्वारा बालक के 'आत्म' या 'स्व' का विकास परमावश्यक है और बालक वैयक्तिकता का विकास करने हेतु भी हमें 'अहम्' की आवश्यकता होती है।

शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य यह भी है कि वह बालक की बुद्धि का विकास करे चूँकि बाह्य जगत के अनुभवों का तथ्यात्मक संकलन बुद्धि द्वारा ही संभव है। सांख्य

दर्शन द्वारा प्रतिपादित मन अहंकार और बुद्धि को हम विभिन्न पक्षों से निम्नलिखित रुप से प्रस्तुत कर सकते हैं।

(i) मन (MIND) ज्ञानात्मक

(ii) अहंकार (EGO) भावात्मक

(iii) बुद्धि (INTELLECT) संकल्पनात्मक

सांख्य का यह भी मत है कि प्रकृति अचेतन तथा जड़ है जो शिक्षक को इस बात का ज्ञान कराती है कि बुद्धि, अहंकार, मन आदि भी चेतना रहित होने के कारण स्वयं की शक्ति से न ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं न, क्रियाशील हो सकते हैं। उन्हें 'पुरुष' की चेतना का ज्ञान प्राप्त होता है व उसी से वह ज्ञान प्राप्त करते हैं। 'पुरुष' की सक्रियता प्रकृति पर निर्भर है परन्तु ध्यान रखने योग्य यह बात हो सकती है कि पुरुष 'ज्ञाता' हो सकता है और स्वयं ज्ञेय नहीं और प्रकृति 'ज्ञेय' हो सकती है ज्ञाता नहीं। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि बालक की ज्ञानप्राप्ति उसके शरीर व आत्मा दोनों पर निर्भर करती है, जीवन मे पूर्णता लाने हेतु शरीर व आत्मा के मध्य सांमजस्य होना आवश्यक है। इसी कारण शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक का शारीरिक, मानसिक, वैयक्तिक व आध्यात्मिक विकास करना है। सांख्य दर्शन शिक्षा के उद्देश्यों को मुख्यतः दो भागों में विभक्त करता है। 1. परमार्थिक उद्देश्य, 2. लौकिक उद्देश्य

परमार्थिक उद्देश्य से आशय है— मुक्ति और मुक्ति प्राप्ति का मार्ग अविद्या या अज्ञान का नाश। अतः शिक्षा का यह उत्तरदायित्व है कि वह मनुष्य को अज्ञान व अविद्या से मुक्ति दिलाए। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है अज्ञान रुपी अन्धकार से ज्ञान रुपी प्रकाश की ओर उन्मुख करना।

लौकिक उद्देश्यों की चर्चा करते हुए सांख्य का विचार है कि मानव के अन्दर निहित तीन गुण मुख्य हैं। 1. सत्व, 2. रजस, 3. तमस

शिक्षा का यह दायित्व है कि वह मानव में रज और तम् का बाहुल्य स्थापित न होने दे चूँकि सत्य के बाहुल्य से ही मनुष्य सुखदायी होता है। शिक्षा के द्वारा रज् व तम् (उदासीनता व दुःख) से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया जाना चाहिए जिसके लिए यह आवश्यक है कि बालक के अन्दर विवेक ज्ञान उत्पन्न किया जाये। लौकिक उद्देश्यों के सन्दर्भ में सांख्य यह मानता है कि बालक का शरीर ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों की तन्मात्राओं से निर्मित है, इसी कारण शिक्षा का यह दायित्व है कि वह बालक शरीर में कर्मशीलता या क्रियाशीलता उत्पन्न करे। सांख्य दर्शन इस बात पर बल देता है कि शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक विकास शिक्षा के द्वारा किये जाने चाहिए।

सांख्य दर्शन में वर्णित शिक्षण विधि

शिक्षण के सन्दर्भ में सांख्य दर्शन निम्नलिखित विधियों की चर्चा करता है।

1. **प्रत्यक्ष विधि–** इस विधि के अन्तर्गत विषयों का वह ज्ञान सम्मिलित होता है जो हम इन्द्रियों के सम्पर्क से प्राप्त करते हैं। इसी कारण इसे प्रत्यक्ष विधि कहा जाता है। इससे प्राप्त ज्ञान यथार्थ तथा साक्षात होता है। इस प्रकार के ज्ञान प्राप्ति में मनुष्य की इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि तथा आत्मा चारों ही क्रियाशील रहते हैं। किसी भी वस्तु का साक्षात्कार होना ही प्रत्यक्ष ज्ञान है, जिसे सांख्य ने दो वर्गों में विभक्त किया है– 1. निर्विकल्प, 2. सविकल्प। प्रारम्भिक कक्षाओं में हमें मुख्यतः इस विधि का प्रयोग, गणित, प्राकृतिक विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि का शिक्षण अधिगम कराते समय करना चाहिए। यदि हम इन तथ्यों का प्रत्यक्ष रुप प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं तो हमें श्रव्य–दृश्य सामग्री के सहयोग से उपर्युक्त विषयों का प्रत्यक्षीकरण कराना चाहिए।

2. **अनुमान विधि–** इस विधि में किसी ज्ञात विषय के द्वारा अज्ञात विषय का अनुमान लगाते हैं। अनुमान का शाब्दिक अर्थ भी यही है। अनु+मान अर्थात जो ज्ञान के पश्चात आये। अतः अनुमान उस ज्ञान को कहते हैं जो किसी पूर्व ज्ञान के पश्चात आता है। यह अनुमान दो प्रकार का होता है। यथा– **(i) वीत–** विधि वाक्य पर आधारित इसे पुनः दो भागों में वर्गीकृत करते हैं– (अ) पूर्ववत (ब) सामान्यतोदृष्ट, **(ii) अवीत–** शाश्वत निषेध वाक्य पर आधारित (Negative preposition)

   अनुमान विधि के आधार पर हम जिस विधि का बहुत प्रयोग करते हैं वह संश्लेषण–विश्लेषण विधि (Synthesis analysis) है। इसका प्रयोग गणित व सामाजिक विषयों के अध्ययन में करते हैं। लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित सांख्य की विचारधारा यह है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से भिन्न होता है इसी कारण वही शिक्षा उचित है जो प्रत्येक छात्र को उसकी योग्यता, क्षमता व सामर्थ्य के अनुसार विकसित करने के अवसर प्रदान करे।

3. **शब्द विधि–** इस विधि के प्रयोग पर भी सांख्य बल देता है। वह यह मानता है कि वाक्य बोध हेतु शब्द बोध का होना आवश्यक है। शब्द प्रमाण को भी यह दर्शन दो कोटियों में विभक्त करता है– 1. लौकिक व 2. वैदिक शब्द।

4. **तर्क विधि–** तर्क विधि के सम्बन्ध में सांख्य यह मानता है कि अनुमान विधि के अन्तर्गत हमें तर्क का आश्रय जरुर लेना चाहिए, परन्तु इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि सुतर्क सत्य ज्ञान की प्राप्ति में सहायक होता है। जबकि कुतर्क मिथ्या ज्ञान की ओर प्रेरित करता है। हम तर्क द्वारा ज्ञात तथ्यों से अज्ञात तथ्यों को जान सकते हैं।

7.20 सांख्य दर्शन का शैक्षिक पाठ्यक्रम

सांख्य दर्शन पाठ्यक्रम की चर्चा बालक की विभिन्न अवस्थाओं के सन्दर्भ में की है जो निम्नलिखित है–

अवस्था	उद्देश्य	पाठ्यक्रम
1. शैशवावस्था	1.ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों का विकास	1.बालक को मिट्टी, हवा, पानी, प्रकाश, खुले आकाश के सम्पर्क मे आने के अवसर देना।
		2. पंच महाभूत अर्थात् रुप, रस, गन्ध, श्रव्य व स्पर्श का ज्ञान।
	2. शब्दों में अभिवृद्धि करना	3.शब्दों की ध्वनि, उच्चारण आदि का समावेष।
		4.वस्तुओं के रुप, आकृति आदि के ज्ञान का समावेष।
	3. रस ज्ञान में वृद्धि	5. विभिन्न वस्तुओं के स्वाद का प्रत्यक्ष ज्ञान।
	4.गन्ध क्षमता का विकास	6. घ्राणेन्द्रियों के अनुभवों का प्रत्यक्ष ज्ञान कराना।
	5. स्पर्श ज्ञान में वृद्धि	7.चिकना, खुरदुरा, भारी, हल्का आदि का ज्ञान कराना
	6. बालक के व्यक्तित्व के शारीरिक पक्ष को विकसित करना	8. शारीरिक स्वास्थ्य, सफाई खेलकूद व व्यायाम को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना।
2. बाल्यावस्था	1. बालक के मनस का विकास करना	1. गणित व इतिहास को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान देना।
	2. बालक की वैयक्तिकता या उसके 'स्व' प्रत्यय का विकास करना	2. भाषा व सामाजिक विषयों के द्वारा छात्रों की 'स्व' क्षमता को विकास करना।
3. किशोरावस्था	1. बालक की तर्क व विवेचना शक्ति का विकास करना।	1.पाठ्यक्रम में गणित विज्ञान आदि विषयों को महत्वपूर्ण स्थान देना।
	2. छात्रों की मौलिक शक्ति का विकास	2. मौलिकता व रचनात्मक प्रवृत्ति के विकास हेतु छात्रों को पर्याप्त अवसर प्रदान करना।

	3. छात्रों के रचनात्मक शक्ति को प्रोत्साहित करना	

इसके साथ ही ध्यान देने योग्य बात यह है कि शैशवास्था के उद्देश्यों को उस अवस्था की समाप्ति पर नहीं छोड़ देना चाहिए वरन बाल्यावस्था में आवश्यक उद्देश्य को शिक्षा में समाहित कर लेना चाहिए इसी प्रकार बाल्यावस्था के उद्देश्यों को किशोरावस्था में शामिल कर लेना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी – क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

18. सांख्य के अनुसार शिक्षण विधि का उल्लेख कीजिए।

____

____

____

19. सांख्य दर्शन द्वारा प्रतिपादित बाल विकास की अवस्थाओं का उल्लेख करते हुए तदनुकूल पाठ्यक्रम की विवेचना करें।

____

____

____

20. सांख्य दर्शन शिक्षा के कुछ उद्देश्यों को निर्धारित किया है उसके विषय में आप क्या जानते हैं?

____

____

____

7.21 योग शिक्षा दर्शन

योग का अभिप्राय है जोड़ना जिससे आध्यात्मिक रुप से आत्मा और सांसारिकता को जोड़ने का प्रयास किया जाता है। योगसूत्र के प्रवर्त्तक महर्षि पतंजलि ने योग को जोड़ने के सम्बन्ध में जोड़ने के सन्दर्भ में यह मत प्रतिपादित किया है कि योग द्वारा व्यक्ति अपने शरीर, इन्द्रियों व मन पर नियंत्रण करके तथा प्रकृति और पुरुषों के मध्य सही निर्णय लेकर पूर्णता को प्राप्त करता है।

सांख्य व योग में घनिष्ठ सम्बन्ध है, योग सांख्य के प्रमाणों व तत्वों को स्वीकार करता है। यह सांख्य के 25 तत्वों के साथ–साथ ईश्वर की सत्ता को भी स्वीकार करता है। योग दर्शन का मुख्य विषय योगाभ्यास है, जबकि सांख्य दर्शन विवेक व ज्ञान को

ही मोक्ष प्राप्ति का साधन मानता है और विवेक की प्राप्ति हेतु योगाभ्यास की बात करता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते है कि योग का अर्थ– 'आध्यात्मिक' कार्य है, जबकि सांख्य का अर्थ– 'ज्ञान' से है। इस आधार पर सांख्य को सिद्धान्त व योग को व्यवहार रुप में स्वीकार किया जा सकता है।

सांख्य के तत्वों में ईश्वर को जोड़ने के कारण ही योग को 'सेश्वर सांख्य' कहकर भी पुकारते हैं योग दर्शन प्रकृति और उसकी विकृतियों को अनन्त पुरुष तथा ईश्वर को मानता है। इसके अनुसार प्रकृति जगत का उपादान कारण है, ईश्वर जगत का निमित्त कारण है, उसने प्रकृति को नहीं बनाया, न ही उसने पुरुष को बनाया है। प्रकृति, पुरुष तथा ईश्वर तीनों अनादि तथा नित्य हैं। ईश्वर ही वेदों का कर्त्ता है, वही जगत की सृष्टि और प्रलय करता है। योग दर्शन में चार प्रकार के सूत्रों का प्रतिपादन किया गया है जो निम्नलिखित हैं–

1. **समाधिपाद–** इसमें योग का स्वरुप, उद्देश्य, लक्षण, चिन्तवृत्ति तथा निरोग के उपायों की चर्चा की गयी है।
2. **साधनापाद–** इसमें समाधि के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु चेष्टा का वर्णन है। इसके अन्तर्गत क्रियायोग, कर्मफल, उनका दुखात्मक स्वभाव तथा दुःख इन चारों विषयों का वर्णन मिलता है।
3. **विभूतिपाद**– योग द्वारा प्राप्त शक्तियों की चर्चा विभूतिपाद में की गयी है। इसके साथ ही योग की अन्तरंग अवस्थाओं तथा योग जनित या योगाभ्यासजनित सिद्धियों का वर्णन है।
4. **कैवल्यपाद**– इसके अन्तर्गत मुक्ति के स्वरुप एवं परम आत्मा की चर्चा की गई है।

पतंजलि ने योग को 'चित्तवृत्ति' कहा है। वह यह मानते हैं कि योग द्वारा ज्ञान तभी संभव हो सकता है, जब शारीरिक और मानसिक वृत्तियों का दमन करते हुए अर्थात, शरीर, मन, बुद्धि और अहंकार पर विजय प्राप्त करते हुए शुद्ध आत्मा या पुरुष के यथार्थ स्वरुप को पहचानें। यही अनुभव आत्मज्ञान है। और योग इस आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यावहारिक ज्ञान पर बल देता है। पतजंलि ने अपने योग दर्शन में निम्नलिखित आठ मार्ग बतायें हैं।

(i) **यम–** योग में यम के पाँच अंग, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पांच अंग बताये गये है।

(ii) **नियम–** योग का दूसरा अंग नियम है इसका आशय है सदाचार का पालन इसके पाँच मान है। (अ) शौच, (ब) सन्तोष, (स) तप, (ड) स्वाध्याय, (य) ईश्वर प्राणिधान।

(iii) **आसन–** इस योगांग के अन्तर्गत शरीर को ऐसी स्थिति में रखना है जिससे निश्चिन्त होकर सुख के साथ देर तक रह सकते हैं। आसन कई प्रकार के होते हैं जैसे– पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, शीर्षासन, मयूरासन इत्यादि जो शरीर

को स्वस्थ्य रखते हैं।

(iv) **प्राणायाम–** प्राणायाम श्वास पर नियन्त्रण से सम्बन्धित है। इस क्रिया के तीन अंग होते हैं– 1. पूरक, 2. कुंभक, 3. रेचक, प्राणायाम से समाधि में सहायता मिलती है। यह वह तप है जिससे ज्ञान का उदय होता है।

(v) **प्रत्याहार–** इसका अभिप्राय इन्द्रियों को वश में रखने से है। जब इन्द्रियाँ मन के वश में आ जाये तब वह अपने स्वाभाविक विषयों से हट जाती हैं। इस अवस्था में सांसारिक विषय में रहते हुए उनसे प्रभावित नहीं होते। यह अत्यन्त दृढ़ संकल्प की साधना है।

(vi) **धारणा–** इसका अर्थ– चित्त को किसी एक वस्तु पर केन्द्रित करने से है। धारणा द्वारा ध्यान की क्षमता का विकास होता है।

(vii) **ध्यान–** ध्येय वस्तु का निरन्तर मनन ध्यान है।

(viii) **समाधि–** योगासन की यह अतिन्म सीढ़ी है। इस अवस्था में ध्येय वस्तु की चेतना रहती है। ध्यान में चित्त की एकाग्रता होती है। समाधि में आत्मा का और ध्यान की क्रिया का लोप हो जाता है। केवल ध्येय वस्तु का ही प्रकाश रहता है उसे सम्प्रज्ञात, समाधि कहते हैं और जब अर्थ का प्रकाश भी नहीं रहेगा तो उसे असम्प्रज्ञात समाधि कहते है।

7.22 योग दर्शन का शैक्षिक निहितार्थ

1. अनुशासन

योग दर्शन में अनुशासन की चर्चा विस्तार से की गई है। योग के अनुसार विवेक और ज्ञान प्राप्ति हेतु अनुशासन की आवश्यकता होती है, यह अनुशासन ही योग दर्शन का विषय है। योग का विचार है कि मनुष्य की ज्ञान प्राप्ति हेतु यह आवश्यक है कि उसका चित्त निर्मल और स्थिर हो चूँकि शुद्ध हृदय व शान्त मन से ही साधना सम्भव है। योग में केवल बुद्धि की ही परीक्षा नहीं की जाती है वरन् आस्था की परीक्षा भी होती है, और आस्था ही पात्रता है, आस्था के साथ संकल्प भी जरुरी है, चूँकि संकल्प के अभाव में आस्था के डिगने का खतरा रहता है। पतजंलि ने अपने दर्शन में जिस अनुशासन की चर्चा की है, वह आज के अनुशासन से भिन्न है। आज हम जिस अनुशाासन की चर्चा करते है, उसमें बाहर से कुछ थोपे जाने की गन्ध आती है इसके विपरीत पतजंलि का अनुशासन भीतर से उत्पन्न हुआ अनुशासन है। उनके अनुसार अर्न्तज्ञान के मार्ग पर बढ़ने के लिए आस्था व संकल्प के साथ जिसकी आवश्यकता होती है, वह अनुशासन है। अतः इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है।

आस्था → संकल्प → अनुशासन → अर्न्तज्ञान

अतः स्वाभाविक रुप से यह प्रश्न उठता है कि किसका अनुशासन किस पर अनुशासन, और कैसे? आँखे जितनी चंचल होती है मन उतना ही अस्थिर रहता है। आँखों में ठहराव

इस बात का संकेत है कि गति रुक रही है। यदि हम मन की चंचलता पर अंकुश लगाना चाहते हैं तो अनुशासन की मदद लेनी होगी, मन की चंचलता पर अंकुश लगाना ही अनुशासन है। अनुशासन कैसे लाया जा सकता है, इसके सम्बन्ध में योग यह मानता है कि अनुशासन का उपाय है– आसन। वास्तव में स्थिर आसन ही अनुशासन का पहला चरण है, इसे मजबूत बनाने हेतु प्राणायाम की सहायता ली जा सकती है। मानव शरीर की हलचल का कारण नाड़ियाँ है, जब तक यह नाड़ियाँ शुद्ध नहीं होती, आवश्यक अनुशासन सम्भव नहीं होता इस कारण नाड़ी शोधन अनुशासन हेतु है और यह आन्तरिक अनुशासन योग के लिए जरुरी है।

शिक्षा जगत में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता पर विचार करें तो हम योग दर्शन से बहुत सहयोग ले सकते हैं। हमें छात्रों में अनुशासन थोपने का प्रयास नहीं करना चाहिए वरन् उन्हें इतना सक्षम बनाना चाहिए कि वह स्वयं ही अनुशासन का पालन करें।

योग दर्शन व बालक का व्यक्तित्व– योग दर्शन बालक के व्यक्तित्व विकास हेतु निम्नलिखित तीन प्रमुख पक्षों की चर्चा करता है। 1. शारीरिक पक्ष, 2. मानसिक पक्ष, 3. आत्मिक पक्ष

भौतिक वातावरण बालक के शारीरिक विकास हेतु उत्तरदायि कारक हैं। मानसिक स्वास्थ्य हेतु यह आवश्यक है कि बालक की बुद्धि परिपक्व हो व उसे अन्दर के अहंकार का विनाश हो। आत्मिक विकास हेतु बालक के अन्दर शुद्ध चैतन्य स्वरुप का विकास होना आवश्यक है। योग दर्शन इन तीनों के विकास हेतु अष्टांग योग की चर्चा की है। जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

शिक्षा का उद्देश्य

योग दर्शन के अनुसार शिक्षा द्वारा अष्टांग योग का अभ्यास कराना शिक्षा का चरम लक्ष्य है। शिक्षा का उद्देश्य शिक्षार्थी को पूर्ण मानव बनाना है। पूर्ण मानवता मनुष्य के अन्दर उस समय आती है जब उसके अन्दर अधिभौतिक और आध्यात्मिकता का पूर्ण समन्वय सांमजस्य और सन्तुलन स्थापित हो जाता है। बालक में योग शिक्षा दर्शन द्वारा निम्नलिखित गुणों का आविर्भाव किया जा सकता है।

(i) योग बालक के आत्मिक विकास पर बल देता है व शिक्षा के द्वारा इस क्षेत्र में सहयोग देने की चर्चा करता है।

(ii) शिक्षा के द्वारा बालक के अन्दर अनुशासन के महत्व को उत्पन्न करना तथा परिश्रम के महत्व को स्वीकार करने की चर्चा योग करता है।

(iii) योग दर्शन मन को संयमित कर पाशविक वृत्तियों से छुटकारा सिखाता है। जीवन की सफलता हेतु संयम मन पर बल देता है। मन के संयम का अभिप्राय, किसी एक समय किसी एक ही वस्तु पर चित्त का एकाग्र होना है।

(iv) स्वस्थ्य शरीर में ही स्वस्थ्य मन रहता है। यह सर्वमान्य धारणा है लौकिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकार के प्रयासों हेतु स्वस्थ्य शरीर आवश्यक है। योग शिक्षा में आहार–विहार के नियमों का पालन आवश्यक है।

(v) नियमित योगाभ्यास द्वारा स्वभाव में शीतलता और गम्भीरता लाई जा सकती है। चरित्र भीतर की शान्ति और गम्भीरता मानव की आन्तरिक शुद्धता की अभिव्यक्ति होती है। जिन्हें नियमित योगाभ्यास द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

(vi) अविचलित एकाग्रता तथा चंचलता को समाप्त करने तथा उसकी शक्तियों का सृजनात्मक की दिशा प्रदान करने में योग सहायक होता है। इससे दैनिक जीवन में शान्ति और स्थिरता आती है।

(vii) महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत अन्य योगाभ्यासों का समावेश है। इनके अभ्यास द्वारा मन की जाँच पड़ताल हो सकती है और जीवन के तमाम तनाव दूर हो सकते हैं।

इस प्रकार योग शिक्षा दर्शन के माध्यम से यौगिक पद्धति में ज्ञान की प्राप्ति सहज रुप मे हो सकती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

21. योग दर्शन के अनुसार बालक एवं अनुशासन की धारणाओं की व्याख्या कीजिए।

____

____

____

22. योग दर्शन के अनुसार बालक व्यक्तित्व के विषय में आप क्या जानते है।

____

____

____

23. योग दर्शन के शैक्षिक उद्देश्य के विषय में आप क्या जानते है? चर्चा कीजिए।

____

____

____

7.23 बौद्ध शिक्षा दर्शन

बौद्ध दर्शन नैतिक–जीवन का दर्शन है। भगवान बुद्ध ने तत्व–मीमांसा के विवेचन में समय लगाना अनुपयोगी समझा क्योंकि इससे मनुष्य के जीवन को उन्नत करने में

सहायता नहीं मिलती। बुद्ध का कहना था कि जिन विषयों के समाधान के लिये पर्याप्त प्रमाण न हो उनके सामधान की चेष्टा व्यर्थ है। बुद्ध ने पूर्व–प्रचलित अनेक दार्शनिक मतों को युक्तिहीन और निराधार प्रतिपादित किया। उन्होंने अप्रत्यक्ष और संदिग्ध विषयों के बारे में तर्क का परित्याग किया, क्योंकि उससे मुक्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं होता।

शिक्षा के उद्देश्य

बौद्ध दर्शन विशेष रुप से दुःखवादी है बौद्ध दर्शन के अनुसार जीवन में दुःख है और बौद्ध दर्शन के आधार चार आर्य सत्य हैं। यथा जीवन दुःखों से परिपूर्ण है, दुःखों का कारण हैं, दुःखों का अन्त संभंव है, तथा दुःखों के अन्त का उपाय है। वेदान्त के समान बौद्ध दर्शन में भी दुःखों का कारण हमारा अज्ञान मानना है और यदि इस अज्ञान को दूर किया जा सके तो दुःखों का अंत हो सकता है। अतः शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति को अज्ञान से मुक्त करना है जो कि दुःख का कारण है।

बौद्ध दर्शन के इस निराशावादी दृष्टिकोण के आधार पर व्यवहारिक शिक्षा के कोई उद्देश्य निर्धारित करना संभव नहीं दिखाई देता यद्यपि बौद्धों ने एक विकसित शिक्षा प्रणाली प्रदान की है, जिसके अपने विशिष्ट उद्देश्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

भगवान बुद्ध ने सहजजीवन के लिये जो अष्टांग मार्ग प्रदर्शित किया है, उसी को हम बौद्ध शिक्षा के विशिष्ट उद्देश्य कहते हैं–

1. **सम्यक् दृष्टि (सम्मा दिठ्ठि)–** अविद्या के कारण इस जगत तथा आत्मा के संबंध में मिथ्या दृष्टि उत्पन्न होती हैं। अविद्या के कारण हम अनित्य, दुखःदायी, क्षणिक् तथा सतत् परिवर्तनशील, अनात्मवस्तु को नित्य, सुखदायी तथा स्थायी और आत्मरुप मान लेते हैं। ज्ञान–प्राप्ति के फलस्वरुप शिक्षित व्यक्ति वस्तुओं के यथार्थ स्वरुप को पहचान देता है। उसे सम्यक् दृष्टि कहते हैं। शिक्षा का पहला कार्य शिक्षार्थी को सम्यक् दृष्टि प्रदान करना है।

2. **सम्यक् संकल्प (सम्मा संकप्प)–** केवल ज्ञान प्राप्त कर लेने से ही दुःखों का अन्त नहीं हो जाता, जब तक कि उसके अनुसार जीवन बिताने का निश्चय नहीं किया जाय। दूसरों के प्रति द्वेष का त्याग, सांसारिक विषयों से विरक्ति–भाव तथा हिंसा का त्याग करने का निश्चय करना चाहिये, इसी का नाम सत्संकल्प है। शिक्षा का दूसरा उद्देश्य छात्र को सम्यक्–संकल्प करने में सहायता करना है।

3. **सम्यक् वाक् (सम्मा वाचा)–** शिक्षित व्यक्ति का तीसरा लक्षण यह है कि उसकी वाणी संयमित हो। शिक्षित व्यक्ति दूसरों की निन्दा नहीं करता, अप्रिय तथा मिथ्या वाणी का व्यवहार नहीं करता और अत्यधिक वाचाल नहीं होता। इस प्रकार संयमित वाणी का व्यवहार सम्यक् वाक् कहलाता है।

4. **सम्यक्कर्म (सम्मा कम्मान्त)–** शिक्षित मनुष्य के कार्य भी संयमित तथा शुभ होते हैं। सम्यक् संकल्प तथा सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्म के पालन में सहायक होते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा इन्द्रिय संयम सम्यक् कर्म माने जाते हैं।

5. **सम्यक्–आजीविका (सम्मा आजीव)–** शिक्षित मनुष्य के जीवन तथा व्यवहार में इस प्रकार का रूपान्तरण होना चाहिए की वह शुद्ध उपाय से अपना तथा परिवार का पालन–पोषण कर सके। शिक्षा द्वारा शुद्ध उपायों से अपनी आजीविका उपार्जन करना, सिखलाना शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है।

6. **सम्यक् व्यायाम (सम्मा बायाम)** – व्यक्ति सन्मार्ग से विचलित न हो, इसके लिये उसे निम्न बातों का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए–

   (i) पुराने बुरे भाव या विचार पूरी तरह नष्ट हो जाये।

   (ii) कोई नया बुरा विचार मन में प्रवेश न होने पाये।

   (iii) मन विचारों से शून्य नहीं रहता। अतः सदा अच्छे–अच्छे विचारों से उसे परिपूर्ण रखा जाय।

   (iv) शुभ विचारों को मन में धारण करने के लिये सतत् प्रयास करते रहना आवश्यक है।

7. **सम्यक् स्मृति (सम्मा सति)–** शिक्षित व्यक्ति अधिक बातों का बारम्बार स्मरण करता रहता है जिससे कि पुनः अजान के अँधेरे में भटक न जाए। जो सम्यक् है, वह भी स्मरण न करने से धुँधली पड़ जाती है।

8. **सम्यक् समाधि (सम्मा समाधि)–** उपर्युक्त सात गुण जिस व्यक्ति के चरित्र तथा जीवन के अंग बन जाते हैं, वह व्यक्ति सम्यक् समाधि में प्रविष्ट होने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। सम्यक् समाधि निर्वाण प्राप्त करने की प्रथम अवस्था है।

कालान्तर में बौद्ध शिक्षा–प्रणाली में जिन व्यवहारिक उद्देश्यों को स्थान मिला वे निम्नलिखित हैं–

(i) **नैतिक जीवन–** भगवान बुद्ध ने नैतिक जीवन को शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य माना। उपदेशों के अलावा मठों तथा बिहारों का वातावरण छात्रों के चरित्र–निर्माण में सहायक था। आचार्य का मुख्य कार्य ही शिष्यों के नैतिक जीवन का विकास करना था। चरित्र निर्माण के लिये आवश्यक नियमों का निर्धारण किया गया था।

(ii) **व्यक्तित्व का विकास–** आत्म–सम्मान, आत्म–निर्भरता, आत्म–संयम, आत्म–विश्वास तथा विवेक आदि गुणों का विकास करना शिक्षा का दूसरा प्रमुख लक्ष्य था।

(iii) संस्कृति का संरक्षण– इसके अन्तर्गत बुद्ध के उपदेशों एवं भारतीय संस्कृति धरोहर को विद्यार्थियों को हस्तान्तरित करना था। भिक्षुगण स्वय अध्ययन करते थे, जीवन में उसका परिपालन करते थे, तथा दूसरे लोगों को शिक्षा देते थे। इस प्रकार सांसारिक धरोहर संरक्षित रहती थी।

(iv) सर्वागींण विकास– बौद्ध शिक्षा–प्रणाली में शारीरिक व्यायाम, मानसिक शिक्षा, भौतिक कल्याण तथा नैतिक जीवन के अभ्यास का समन्वय किया जाता था, और इस प्रकार व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के समन्वित विकास पर ध्यान दिया जाता था।

7.24 बौद्ध दर्शन में छात्र–संकल्पना

बौद्ध दर्शन के **"मध्यमा प्रतिपदा"** सिद्धान्त के अनुसार विद्यार्थी का कोई अतीत हैं तथा उसका भविष्य भी है। छात्र का वर्तमान अस्तित्व उसके पूर्वजन्म के कर्म तथा बाल्यावस्था के संस्कारों पर निर्भर है। वह जो कुछ है, अकस्मात नहीं बना है, परन्तु उसके अतीत के संस्कार उसके साथ जुड़े हैं। छात्र का भविष्य उसके वर्तमान संकल्पों तथा कर्मों पर निर्भर है।

बालकों का वर्तमान स्वरुप उसके अतीत के संस्कारों का परिणाम है और चूँकि सभी छात्रों का अतीत एक समान नहीं होता अतः उनमें विभिन्नता होना स्वाभाविक है। प्रत्येक छात्र की अध्ययन क्षमताएँ भी एक नहीं होती, अतः प्रत्येक छात्र के स्तर के अनुरुप अध्ययन–अध्यापन क्रिया का संयोजन करना अध्यापक के लिए आवश्यक है।

बौद्ध दर्शन के अनुसार भावी विकास की क्षमताएँ, वर्तमान अस्तित्व में विद्यमान हैं, बालक के वर्तमान अस्तित्व में जो विद्यमान है, उससे भिन्न उसे नहीं बनाया जा सकता। कोई कार्य बिना कारण के नहीं होता है। भावी कार्य कारण नियम को बौद्ध–दर्शन में (प्रतीत्यसमुत्पाद) का नियम कहा जाता है।

7.25 बौद्ध दर्शन में अध्यापक संकल्पना

बौद्ध दर्शन के अनुसार वही व्यक्ति शिक्षक हो सकता है जिसने चार आर्य सत्यों को समझ लिया है तथा जिसका स्वयं का जीवन बुद्ध द्वारा प्रदर्शित अष्टांग मार्ग के अनुरुप व्यतीत होता है। इसमें दो प्रकार के शिक्षकों की कल्पना की गयी है। आचार्य छात्रानुशासन का अधिकारी होता है तथा उपाध्याय अध्ययन–अध्यापन का।

बौद्ध दर्शन में शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण है। प्रत्येक विद्यार्थी के लिए किसी को गुरु बनाना अनिवार्य है। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में आधुनिक संस्थागत शिक्षा का स्वरुप दृष्टिगोचर होता है, जिसमें एक आचार्य के अधीनस्थ अनेक उपाध्याय और प्रत्येक उपाध्याय के पास छात्रों का एक छोटा सा समूह अध्ययन करता था। अध्यापकों

के पारस्परिक संबंधों को स्नेहपूर्ण बनाए रखने के लिये आचार्य कुछ नियम निर्धारित करता है जो शास्त्र–सम्मत होते हैं। इस प्रकार उपाध्याय का काम अध्ययन–अध्यापन करना है तो आचार्य का काम न केवल छत्रों में अनुशासन बनाये रखा है, अपितु उसका दायित्व शिक्षकों के बीच अनुशासन कायम रखने का भी है।

7.26 बौद्ध दर्शन में पाठ्यक्रम

बौद्ध शिक्षा दर्शन का पाठ्यक्रम इस प्रकार होगा–

1. **चार आर्य सत्यों का पूर्ण परिपाक–** इसके अन्तर्गत विश्व की व्याख्या, जगत में मनुष्य का स्थान, जगत के कार्य व्यापार, जगत की परिवर्तनीयता तथा क्षणिकता, कार्य–कारण संबंध, जगत में आभास होने वाले सुख, जो वास्तव में दुःख है, इत्यादि का गहन अध्ययन आते हैं। अन्य दर्शनों के साथ, बौद्ध दर्शन की तुलना तथा बौद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन।
2. सम्यक रुप से आजीविका उपार्जन करने की कला।
3. बौद्ध साहित्य का अध्ययन।
4. भगवान बुद्ध तथा अन्य सन्तों के जीवन चरित्रों का अध्ययन। बाद में बौद्ध शिक्षा–प्रणाली में बौद्ध पाठ्यक्रम का विस्तार दिखाई देता है।

बौद्ध विहार तथा मठों में पाँच प्रकार की विधिओं से अध्ययन–अध्यापन किया जाता था–

(i) **शब्द विधा–** इसके अन्तर्गत शब्द–निर्माण, ब्युत्पत्ति तथा व्याकरण ज्ञान का समावेष होता था।

(ii) **शिल्पासन विधा–** इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के उद्योग तथा कलाएँ आती हैं।

(iii) **चिकित्सा विधा–** इसके अन्तर्गत औषध विज्ञान, शरीर विज्ञान आदि का समावेश किया जाता है।

(iv) **हेतु विधा–** इसके अन्तर्गत तर्कशास्त्र का अध्ययन आता है।

(v) **अध्यात्म विधा–** इसके अन्तर्गत बौद्ध दर्शन तथा अन्य दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन आता है।

दूसरे शब्दों में कहा जाय तो बौद्ध शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्न विषय शामिल थे–

1. बौद्ध दर्शन, साहित्य, इतिहास।
2. नैतिकशास्त्र, गणित, ज्योतिष।
3. नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, सामाजिक विज्ञान।

4. भाषा, व्याकरण।
5. योग, संगीत, कला।
6. स्वास्थ्य शिक्षा, खेलकूद, मनोविज्ञान।
7. व्यवसायिक एवं तकनीकी शिक्षा।
8. संगीत, सामुदायिक कार्य।

7.27 शिक्षण विधि

बौद्ध विहारों में शिक्षा प्रदान करने की तीन प्रमुख विधियों का उल्लेख मिलता है–

(i) **अध्यापक द्वारा व्याख्यान–** ये व्याख्यान एक साथ अनेक शिष्यों को दिये जा सकते हैं, परन्तु देने वाले अपने विषय का निष्णात होना चाहिए। इस विधि में शिक्षा की प्रक्रिया एकांगी रहती है। अध्यापक तो विषय का पूर्ण परिपाक प्रस्तुत करता है, परन्तु छात्र अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार उसे ग्रहण कर पाता है।

(ii) **अध्यापक द्वारा छोटे समूह में शिक्षा–** इस विधि में अध्यापक एक समय 5–6 शिष्यों को शिक्षा प्रदान करता है। अध्यनीय सामग्री का पहले स्वयं पाठ करता है।

छात्र उसका श्रवण करते हैं तदनन्तर अध्यापक का अनुकरण करते हुये छात्र स्वयं पाठ करते हैं। अध्यापक अशुद्धि संशोधन के साथ बार–बार पाठ करने का उन्हें अभ्यास करवाता है।

(iii) **व्याख्या–** अधीत विषयवस्तु अथवा सूत्रबद्ध ज्ञान की अध्यापक व्याख्या करता है। छात्र बीच–बीच में शंका उपस्थित करते हैं तथा अध्यापक उन शंकाओं का निवारण करता जाता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि छात्र उसे पूरी तरह ग्रहण न कर ले।

(iv) **चर्चा–** जटिल दार्शनिक सिद्धान्त अथवा अधीत सामग्री पर विद्यार्थी परस्पर चर्चा करते हैं।

बौद्ध शिक्षा के मूल्य– बौद्ध शिक्षा प्रणाली में बौद्ध–दर्शन का मध्यमा–प्रतिपदा सिद्धान्त परिलक्षित होता है। बौद्ध दर्शन में जीवन के किसी सैद्धान्तिक मूल्य पर आग्रह दिखाई नहीं देता।

(i) **आध्यात्मिक एवं व्यवहारिक विषय के बीच में मध्यम मार्ग–** बौद्ध शिक्षा के पाठ्यक्रम का अवलोकन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बौद्ध–दर्शन में एक ओर बौद्ध धर्म की शिक्षा पर आग्रह है तो दूसरी ओर व्यवहारिक जीवन की शिक्षा की उपेक्षा नहीं की गई हैं।

(ii) **नैतिक मूल्य–** बौद्ध दर्शन द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है उसमें यह स्पष्ट दिखाई देता है कि मनुष्य के विकास में नैतिक कारण–कार्य सिद्धान्त सक्रिय रहता हैं। बौद्ध दर्शन के अनुसार हमारा संकल्प हमें निश्चित रुप से नैतिक बनाता है।

(iii) **शारीरिक मूल्य–** यद्यपि इच्छाओं का त्याग तथा इन्द्रियों का दमन नैतिक जीवन के लिये आवश्यक है तथापि शारीरिक स्वास्थ्य की उपेक्षा करना उचित नहीं है। बुद्ध के अनुसार ''शरीर को स्वस्थ रखना हमारा कर्तव्य है, अन्यथा विवेक का दीपक प्रज्वलित नही किया जा सकता, तथा मन को स्वच्छ तथा दृढ़ नहीं बनाया जा सकता।''

(iv) **आर्थिक मूल्य–** बौद्ध दर्शन में एक ओर सांसारिक सुखों की लालसा का त्याग करने का उपदेश दिया गया है तो दूसरी ओर उचित विधि से आजीविका कमाने का भी उपदेश है।

(v) **सामाजिक मूल्य–** बौद्ध दर्शन के अनुसार मनुष्य कोई भी कार्य करे, वह चाहे गृहस्थ हो अथवा भिक्षु अपने को सामाजिक हित के लिये समर्पित करके मनुष्य सुख, शक्ति तथा आनन्द प्राप्त कर सकता है, जबकि तृष्णा, आकाक्षाएँ आदि स्वार्थी वृत्तियाँ केवल दुःख का कारण बनती हैं।

बौद्धकालीन शिक्षा के गुण– इसके निम्न गुण हैं–

1. प्रत्येक वर्ण के व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था।
2. शिक्षा के द्वार महिलाओं के लिए भी खुले थे।
3. अपराध होने की दशा में विद्यार्थी अपराध बोध करते थे व दण्ड के लिये निवेदन करते थे।
4. विद्यार्थी समूह में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे।
5. शिष्य गुरु के दोष बता सकते थे।

बौद्धकालीन शिक्षा के दोष–

1. बौद्ध धर्म के अनुयायियों व बौद्ध धर्म के सर्मथकों परन्तु संघ में शामिल न होने वाले और सामान्य लोगों हेतु शिक्षा की समान व्यवस्था नहीं थी।
2. विद्यार्थी हमेशा के लिए गृहत्याग करते थे।
3. शिक्षा समाप्ति की आयु बीस वर्ष थी।
4. मठ व बिहार केन्द्रीय बौद्ध संघ के नियन्त्रण में कार्य करते थे।

बौद्धकालीन शिक्षा के आधुनिक शिक्षा में गृहणीय तत्व–

1. **छात्रों का जीवन–** बौद्ध काल में छात्रों के जीवन के दो मुख्य आदर्श थे– सादगी व श्रेष्ठ विचार। इन आदर्शो के बावजूद उनके लिए तपस्यापूर्ण जीवन के बजाय सुख–सुविधा पूर्ण जीवन को अच्छा माना जाता था।

आधुनिक भारत में भी छात्रों को आधुनिक अविष्कारों से प्राप्त होने वाली सुख–सुविधाओं से वंचित न करके, सादगी और श्रेष्ठ विचारों के आदर्श को प्राप्त करने के लिए अनुप्राणित किया जा सकता है।

2. **छात्रों के अधिकार–** बौद्ध काल में जब छात्र को भिक्षु के रुप में मठ में प्रवेश करने की आज्ञा मिल जाती थी तब उसे पूर्ण स्वतंत्रता और जीवन सम्बंधी अधिकार प्राप्त हो जाते थे। आधुनिक भारतीय शिक्षा में इस तत्व का अत्यन्त महत्व है। आधुनिक शिक्षा में इस तत्व को समाविष्ट करके अनेक समस्याओं का समाधान किया जाता है।

3. **अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र–** बौद्ध काल की तरह आधुनिक भारत को भी अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र बनाया जा सकता है।

4. **शिक्षा संस्थाओं का जनतंत्रीय संगठन–** बौद्ध काल में शिक्षा संस्थाएँ बाह्य नियन्त्रण से मुक्त थी। उनका संगठन जनतंत्रीय आधार पर किया गया था। आधुनिक भारत की शिक्षा–संस्थाओं का स्वरुप बौद्ध काल की शिक्षा संस्थाओं के अनुरुप बनाया जाना वांछनीय हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।
ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

24. बौद्ध दर्शन में उल्लिखित शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।

____

____

25. बौद्ध शिक्षा प्रणाली के व्यावहारिक उद्देश्यों की चर्चा करें।

____

____

26. बौद्ध दर्शन में वर्णित शिक्षण विधियों के बारे में आप क्या जानते हैं?

____

____

27. बौद्ध दर्शन की शिक्षा के प्रमुख दोष कौन–कौन से हैं?

____

____

7.28 सारांश

विवेच्य इकाई में आपको शिक्षा के दार्शनिक आधारों से परिचित कराने का प्रयास किया गया है, इसके साथ ही इस विषय पर चर्चा की गई है कि शैक्षिक प्रणाली में दर्शन की क्या उपयोगिता हो सकती है। दर्शन में प्रतिपादित विद्यालय, परिवेश, पाठ्यचर्या अध्यापक की भूमिका तथा अनुशासन की अवधारणा के विशेष सन्दर्भ में दर्शन विशेष के योगदान को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। दर्शन को परिभाषित करते हुए उसका शिक्षा से क्या सम्बन्ध है बताने की चेष्टा की गई है। शिक्षा के सन्दर्भ में भारतीय दर्शन की उपयोगिता अध्यापन विधि, अध्ययन प्रक्रिया तथा उपनिषदों में वर्णित शिक्षा के महत्व को समझाते हुए शिक्षक तथा विद्यार्थी के सम्बन्धों को आदर्श रुप में देखने का प्रयास किया गया है। जो किसी भी समाज व किसी भी युग के लिए एक आदर्श है। उपनिषदों में वर्णित शिक्षण विधियाँ आज की आधुनिक शिक्षण विधि में किसी न किसी रुप में प्रयुक्त होती है। यह विधि किस तरह स्व–अध्ययन प्रणाली पर जोर देती है जो आधुनिक शिक्षा का मूल मन्त्र है।

भारतीय दर्शन के आस्तिक एवं नास्तिक विचारधाराओं के वर्गीकरण में मान्य धाराओं की चर्चा की गई है। कोई भी दर्शन विशेष परिस्थिति एवं काल के सन्दर्भ में वहाँ पर प्रचलित विचारधाराओं के आधार पर अपने विचारों की व्याख्या करता है।

न्याय सांख्य, योग दर्शन शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों को अधिकतम स्वतन्त्रता का समर्थन करता है बच्चे को अनुशासन की कठोरता हस्तक्षेप आदि की निरकुंशता से स्वतन्त्र करने पर विशेष बल देता है। उनके अनुसार बाल्यकाल मानव वृद्धि और विकास के लिए उचित आवश्यक तथा महत्वपूर्ण अवस्था होती है। अतः पाठ्यचर्या तथा शिक्षण बच्चे की प्रवृत्तियों पर प्रत्यक्ष रुप से आधारित होने चाहिए। दुखःवादी व्याख्या पर आधारित बौद्ध शिक्षा दर्शन में सहजजीवन हेतु बुद्ध ने जिन अष्टांग मार्ग का प्रदर्शन किया है उसे विशिष्ट शिक्षा के रुप में देखा जा सकता है।

7.29 अभ्यास कार्य

1. भारतीय दर्शन में पाठ्यचर्या की अवधारणा, तथा इसके तत्वों को आधुनिक पाठ्यचर्या निर्माण में किस प्रकार से सम्मिलित किया जा सकता है। चर्चा कीजिए।
2. क्या आप इस बात से सहमत है कि आधुनिक भारतीय शिक्षा में प्राचीन भारतीय दार्शनिक विचार समाविष्ट है? अध्यापक के रुप में इसकी विवेचना करें।
3. भारतीय दार्शनिक विचारों को आप आधुनिक शिक्षण में कितना महत्वपूर्ण समझते हैं।

7.30 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. दर्शन शब्द संस्कृत भाषा के 'दृश' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ होता है देखना।
2. दर्शन का अंग्रेजी रुप ग्रीक भाषा के दो शब्दों ''फिलॉस'' जिसका अर्थ है (प्रेम और अनुराग), तथा ''सोफिया'' (अर्थात् विवेक) से लिया गया है।
3. बरट्रेण्ड के अनुसार दर्शन का मुख्य उद्देश्य, ''ज्ञान की प्राप्ति'' है।
4. उपनिषद शब्द का अर्थ उस विद्या से लिया जाता है जिसका अर्थ होता है समीप बैठना, अर्थात गुरु के चरणों के समीप बैठकर अध्ययन करना। उपनिषद में उस विद्या का आख्यान है, जिसके द्वारा जिज्ञासु अविद्या का नाश करके संसार के बन्धनों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त करते हैं।
5. उपनिषदों का मूल विषय आत्म–ज्ञान से सम्बन्धित है। इस आधार पर उपनिषदीय शिक्षा के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं

4. भौतिक पदार्थों की जानकारी एवं उनका उपयोग तथा भौतिक तत्वों के क्रियात्मक ज्ञान की बढ़ोत्तरी।
5. शरीर एवं प्राणि जगत का अध्ययन।
6. बालक के मानसिक विकास में बढ़ोत्तरी करना।
7. बालक का बौद्धिक विकास करना।
8. स्व–अनुभूति हेतु बालक को तैयार करना।

6. उपनिषदों में वर्णित अध्ययन प्रक्रिया के सोपान निम्न है।

   (i) श्रवण, (ii) मनन एवं (iii) निदिध्यासन

7. उपनिषदों में अनुशासन के तीन तत्वों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

   (i) ज्ञान प्राप्ति हेतु **'उत्कट अभिलाषा'**

   (ii) आत्म–सम्प्रत्यय का विकास।

   (iii) आत्म संयम मुख्य है।

8. भारतीय दर्शन को मुख्यतः आस्तिक एवं नास्तिक शाखाओं के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है। आस्तिक दर्शन में सांख्य, योग, न्याय, वेदान्त, वैशेषिक एवं मीमांसा को सम्मिलित कर षड्दर्शन के नाम से जाना जाता है। नास्तिक दर्शन में चार्वाक, बौद्ध एवं जैन दर्शन मुख्य हैं।
9. भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं–

(i) जीवन के लक्ष्य को समझने हेतु दर्शन की आवश्यकता है।

(ii) भारतीय दर्शन में दूरदृष्टि, भविष्यदृष्टि तथा अन्र्तदृष्टि से सम्बन्धित शिक्षा समाहित है।

(iii) दुःखों का कारण, उनका निवारण एवं दुःख नाश करने के खोज के साथ भारतीय दर्शन दुःखमय स्थिति को दूर करने का प्रयत्न करता है।

(iv) भारतीय दर्शन अध्यात्मवादी है। जो इस बात पर बल देता है कि सम्पूर्ण संसार एक नैतिक व्यवस्था द्वारा संचालित होता है।

10. जीवन के प्रति दृष्टिकोण का नाम दर्शन है। व्यक्ति इसी दृष्टिकोण के अनुसार अपना जीवन यापन करता है। अतः जीवन और दर्शन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। जीवन के दृष्टिकोण के अनुसार ही शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण होता है। जीवन और शिक्षा में वैसे ही घनिष्ठ सम्बन्ध हैं जैसा कि दर्शन और जीवन में अतः जिस प्रकार का हमारा जीवन का दृष्टिकोण होगा उसी प्रकार के शैक्षिक उद्देश्य हमारे द्वारा निर्धारित किये जायेगें। अतः शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में दर्शन का बहुत बड़ा हाथ है। इस सम्बन्ध में डयूबी ने लिखा है कि–''दर्शन शिक्षा के साध्यों को निर्धारित करने से सम्बन्धित है।

11. न्याय दर्शन के प्रवर्त्तक महर्षि गौतम थे जिन्हें गौतम और अक्षपाद के नाम से भी जाना जाता है।

12. न्याय दर्शन मुख्यतः ज्ञान मीमांसा के क्षेत्र से सम्बन्धित है। इसका मुख्य विषय ज्ञान, ज्ञान की प्राप्ति के साधन तथा ज्ञान की अनवरत प्रक्रिया से है। इसलिए यह दर्शन शिक्षा के पाठ्यक्रम में चार तत्वों को समाहित किया है वे इस प्रकार हैं– प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण, प्रमिति। प्रमाता ज्ञान प्राप्त करने वाला विद्यार्थी होता है। प्रमेय ज्ञेय विषय है जिसका अध्ययन विद्यार्थी करता है। प्रमाण वह साधन है जिसकी सहायता से विद्यार्थी ज्ञेय विषय की जानकारी प्राप्त करता है। इसके साथ ही पाठ्यक्रम में इन्द्रिय ज्ञान एवं वातावरण को भी सम्मिलित किया गया है।

13. न्याय दर्शन शिक्षण हेतु, चिन्तन, आगमन, निगमन, प्रत्यक्ष, प्रयोगात्मक, योजना, वैज्ञानिक, संश्लेषण–विश्लेषण, चर्चा, व्याख्यान, व्याख्या, स्वाध्याय एवं तर्क विधि के माध्यम से शिक्षण देने की चर्चा करता है।

14. सांख्य दर्शन सत्कार्यवाद मानता है। इसके अनुसार सृष्टि के समस्त तत्व प्रलयावस्था में बीज रुप मे या अव्यक्त रुप में प्रकृति में समाहित रहते है। इनका व्यक्त होना सृष्टि का कोई नया कार्य नहीं होता, बल्कि कारण ही कार्य रुप में व्यक्त हो जाता है। अतः सांख्य दर्शन प्रकृति परिणामवाद भी कहलाता है।

15. सांख्य दर्शन प्रकृति में सत्व, रजस व तमस् तीन गुणों की चर्चा करता है। जिस कारण इसे त्रिगुणात्मक कहा गया हैं। ये गुण सूक्ष्म रुप में विद्यमान हैं जिस कारण इनका प्रत्यक्षीकरण नहीं होता, केवल इनके कार्यों से इनका अनुमान किया जाता है।

16. सांख्य मानता है कि आत्मा (पुरुष) का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है। इसकी सत्ता कभी खण्डित नहीं हो सकती वह यह मानता है कि पुरुष प्रत्येक शरीर में भिन्न–भिन्न है। पुरुष को वह चेतन भी मानता है। सांख्य अनेक पुरुषों का अस्तित्व स्वीकार करता है क्योंकि अलग–अलग शरीरों में अलग–अलग पुरुष होते हैं। सभी पुरुषों में नैतिक गुण भी अलग–अलग होते हैं। कुछ में सत्व होता है तो कुछ में रजस व तमस।

17. सांख्य ने पुरुष की स्वतन्त्र सत्ता की सिद्धि हेतु निम्नलिखित युक्तियों की चर्चा की है–

1. अव्यक्त प्रकृति तथा उससे उत्पन्न नाना प्रकार के तत्व जो चेतन हो तथा उसके प्रयोजन के लिए उसकी सत्ता हो। प्रकृति तथा इसके नाना प्रकार के कार्य चेतन पुरुष के प्रयोजन हेतु है।

2. प्रकृति तथा जगत के समस्त तत्व त्रिगुणात्मक है, इन तीन गुणों से रहित एक सत्ता होगी, क्योंकि सगुण निर्गुण की ओर तथा त्रिगुण निस्तिगुण की ओर संकेत करता है। अतः निर्गुण अपरिणाम चेतन पुरुष की सत्ता सिद्ध होती है।

3. ज्ञान तथा समस्त अनुभव का आधार पुरुष है।

18. सांख्य दर्शन ने निम्नलिखित शिक्षण विधियों की चर्चा की है–1. प्रत्यक्ष विधि, 2. अनुमान विधि, 3. शब्द विधि तथा 4. तर्क विधि

19. सांख्य दर्शन बाल विकास की निम्नलिखित तीन अवस्थाओं– शैशवावस्था, बाल्यावस्था व किशोरावस्था को मानता है। शैशवावस्था में बालक को हवा, पानी, खुले आकाश, रुप, रस एवं गन्ध के ज्ञान तथा शब्दों के ध्वनि उच्चारण, स्वाद एवं अनुभव तथा बाल्यावस्था में शारीरिक स्वास्थ्य सफाई, खेल–कूद, गणित व इतिहास और किशोरावस्था छात्रों की मौलिक शक्ति एवं रचनात्मक शक्ति जैसे–पाठ्यक्रम को सम्मिलित करने की चर्चा करता है।

20. सांख्य दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं– परमार्थिक व लौकिक। सांख्य दर्शन परमार्थिक उद्देश्य के अन्तर्गत मुक्ति को मानता है जिसका आशय है अविज्ञा या अज्ञान का विनाश। इसका मुख्य उद्देश्य है अज्ञान रुपी अन्धकार से ज्ञान रुपी प्रकाश की ओर अग्रसर करना। लौकिक उद्देश्यों के अन्तर्गत सत्व, रजस और तमस् जैसे तीन गुणों की चर्चा मानव में निहित मानता है। अतः शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वह मानव में रज व तम् का बाहुल्य न स्थापित होने दे।

21. योग दर्शन में इस पर विस्तार से चर्चा की गई है अनुशासन की योग दर्शन का विषय है। योग के अनुसार मनुष्य की ज्ञान प्राप्ति हेतु यह आवश्यक है कि उसका चित्त निर्मल और स्थिर हो क्योंकि शुद्ध हृदय और शान्त मन से ही साधना सम्भव है।

योग का अनुशासन भीतर से उत्पन्न हुआ अनुशासन है उसके अनुसार अर्न्तज्ञान के मार्ग पर बढ़ने हेतु संकल्प के साथ अनुशासन आवश्यक है।

22. योगदर्शन बालक व्यक्तित्व के निम्नलिखित तीन पक्षों की चर्चा करता है–

    1. शारीरिक पक्ष, 2. मानसिक पक्ष और 3. आत्मिक पक्ष

23. योग का प्रमुख उद्देश्य बालक के मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य में अभिवृद्धि करना हैं यह बालक के आत्मिक विकास के उपर भी बल देता है। शिक्षा के द्वारा बालक के अन्दर अनुशासन तथा परिश्रम के महत्व को उत्पन्न करना प्रमुख उद्देश्य माना है।

24. बौद्ध दर्शन सहज जीवन के लिए जो अष्टांग मार्ग का प्रतिपादन किया है उसी को बौद्ध शिक्षा के विशिष्ट उद्देश्य कहते है जो निम्न हैं।

    1.सम्यक् दृष्टि, 2. सम्यक् संकल्प, 3. सम्यक् वाक, 4. सम्यक् कर्म, 5. सम्यक् आजीविका, 6. सम्यक् व्यायाम, 7. सम्यक् स्मृति और 8. सम्यक् समाधि

25. बौद्ध शिक्षा प्रणाली के व्यावहारिक उद्देश्य निम्न हैं–

    (1) नैतिक जीवन, (2) व्यक्तित्व का विकास तथा (3) संस्कृति का संरक्षण

26. बौद्ध दर्शन में शिक्षण की निम्नलिखित विधियों की चर्चा की गयी है–

    (i) व्याख्यान विधि, (ii) छोटे समूह में शिक्षा विधि, (iii) व्याख्या विधि और (iv) चर्चा विधि मुख्य है।

27. बौद्ध संघ में शामिल होने वाले लोगों और सामान्य लोगों हेतु शिक्षा की समान व्यवस्था नहीं थी। विद्यार्थी हमेशा के लिए गृह त्याग करते थे। मठ व विहार केन्द्रीय बौद्ध संघ के नियन्त्रण में कार्य करते थे।

7.31 कुछ उपयोगी पुस्तकें

पाण्डेय, रामशकल	:	शिक्षा की दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय पृष्ठभूमि
पाण्डेय, रामशकल	:	शिक्षा दर्शन
पाण्डेय रामशकल	:	भारतीय शिक्षा दर्शन की रूपरेखा
चौबे, सरयू प्रसाद	:	दर्शन और शिक्षा
ओड, एल0के0	:	शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि
चतुर्वेदी एस0	:	शिक्षा दर्शन
रस्क आर0आर0	:	शिक्षा के दार्शनिक आधार
पाठक, पी0डी0 एवं त्यागी, जी0एस0डी0	:	शिक्षा के सिद्धान्त
सक्सेना सरोज	:	शिक्षा के दार्शनिक व समाजशास्त्रीय आधार

ईकाई – 8 आदर्शवाद और प्रकृतिवाद

संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 आदर्शवाद

8.4 आदर्शवाद की परिभाषा

8.5 आदर्शवाद का दार्शनिक दृष्टिकोण

8.6. आदर्शवाद व शिक्षा

- 8.6.1 व्यक्तित्व का उत्कर्ष व आत्मानुभूति
- 8.6.2 सांस्कृतिक विरासत की समृद्धि
- 8.6.3 अमर आदर्शों एवं मूल्यों की प्राप्ति
- 8.6.4 मनुष्य की मूल प्रवृत्ति का आध्यात्मिक प्रवृत्ति में परिवर्तन
- 8.6.5 चेतना की पूर्ण दशा की प्राप्ति
- 8.6.6 पवित्र जीवन की प्राप्ति

8.7 आदर्शवाद में पाठ्यक्रम

8.8 आदर्शवाद में शिक्षण विधि

8.9 आदर्शवाद में शिक्षक

8.10 आदर्शवाद तथा छात्र

8.11 आदर्शवाद में अनुशासन

8.12 आदर्शवादी दर्शन का शैक्षिक निहितार्थ

8.13 आदर्शवाद की समीक्षा

8.14 प्रकृतिवाद

8.15 प्रकृतिवाद की परिभाषा

8.16 प्रकृतिवाद के रूप

8.17 प्रकृतिवाद का दार्शनिक दृष्टिकोण

8.18 प्रकृतिवाद के मूल सिद्धान्त

8.19 प्रकृतिवाद व शिक्षा

8.20 प्रकृतिवाद व पाठ्क्रम

8.21 प्रकृतिवाद व शिक्षक

8.22 प्रकृतिवाद में अनुशासन
8.23 प्रकृतिवाद में विद्यालय
8.24 प्रकृतिवाद का समीक्षा
8.25 सारांश
8.26 अभ्यास कार्य
8.27 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.28 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

आदर्शवाद सबसे प्राचीन दार्शनिक विचारधारा है, मानव के चिन्तन से प्रारम्भ होकर यह विचारधारा अपना अस्तित्व बनाये हुए है। पाश्चात्य देशों में इसका विकास ऐतिहासिक काल में (सुकरात) और प्लेटो से माना जाता है। आदर्शवादी विचारधारा यथार्थ पर बल देती है। वे आत्मा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं। आदर्शवाद की कुछ आधारभूत मान्यताएँ हैं जैसे– भौतिक जगत की अपेक्षा आध्यात्मिक जगत को महत्व देना, ब्रह्माण्ड को मानव मस्तिष्क में निहित होना, सम्पूर्ण संसार में मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ स्थिति को स्वीकार करते हुए आदर्शवादी विचारधारा ब्रह्माण्ड की रचना आध्यात्मिक शक्तियों में निहित स्वीकार करती है। इसके साथ मानव मूल्य एवं व्यक्तित्व के विकास पर बल देती है। शिक्षा के क्षेत्र में विचार करने के उपरान्त यह ज्ञात होता है कि आदर्शवाद बालक चरित्र के निर्माण के उन्नयन, सभ्यता तथा संस्कृति के विकास हेतु पाठ्यक्रम में कुछ मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। जिनपर आगे चर्चा की गई है।

प्रकृतिवाद भौतिकता को ही वास्तविक संसार मानता है। इसी कारण प्रकृतिवादी दर्शन को भौतिकता दर्शन भी कहा जाता है। यह सृष्टि की रचना प्रकृति में ही निहित स्वीकार करते हैं उनके अनुसार सभी समस्याओं के उत्तर को प्रकृति में ढूँढा जा सकता है। प्रकृतिवादी यह मानते हैं कि प्रकृति एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इस ब्रह्माण्ड में मौजूद सभी वस्तुओं के निर्माण में मनुष्य का कोई योगदान नहीं है जो मौजूद है वह प्रकृति है। प्रकृतिवाद आदर्शवाद के विपरीत मानव मन को पदार्थ के अधीन स्वीकार करते हुए यह विश्वास करता है कि अन्तिम वास्तविकता भौतिक है न कि आध्यात्मिक मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि प्रकृतिवाद पाश्चातात्य चिन्तन की वह विचारधारा है जो प्रकृति को ही मूल तत्व मानती है। इसी को ही ब्रह्माण्ड का कर्ता एवं उपादान कारण मानती है। अतः यह पूर्णरुपेण भौतिकवादी दर्शन है। व्यापक प्रकृति एवं इस संसार के मूल कारण पर यूनानी दार्शनिक थेल्स (640–550 ई0पू0) ने इस संसार की रचना में 'जल' को महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकार किया, तत्पश्चात् एनेक्सिजेनस तथा हेराक्लीटस ने क्रमशः 'वायु' एवं 'अग्नि' को सृष्टि का मूल तत्व स्वीकार किया। स्वतन्त्र

दर्शन के रूप में इसका बीजारोपण यूनानी दार्शनिक डेमोक्रीटस (640–370 ई0पू0) से हुआ। इस सृष्टि की रचना में उन्होंने परमाणुओं के आपसी संयोग से सिद्ध करने का प्रयास किया। यह विचारधारा परमाणुवाद के नाम से विख्यात हुई। किन्तु शिक्षा दर्शन से सम्बन्धित प्रकृतिवाद का जन्म 18वीं शताब्दी में यूरोप की सामाजिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप हुई। प्रकृतिवाद के प्रमुख समर्थक वाल्टेयर तथा रुसो थे। जिन्होंने मनुष्य को सांसारिक बन्धनों से मुक्ति दिलाने हेतु ''प्रकृति की ओर लौटो'' का नारा दिया था। इस इकाई में हम आदर्शवाद और प्रकृतिवाद के विषय में जानेगें।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेगें कि –

- आदर्शवादी दर्शन की अवधारणा से परिचित हो सकेगें।
- आदर्शवाद की परिभाषा को जान सकेगें।
- आदर्शवाद कि दार्शनिक दृष्टिकोण को जान सकेगें।
- आदर्शवादी शिक्षा के विषय में जान सकेगें।
- आदर्शवाद में प्रतिवादित पाठ्यक्रम को जान सकेगें।
- आदर्शवाद में प्रतिबिम्बित शिक्षण विधि एवं शिक्षक से परिचित हो सकेगें।
- आदर्शवादी दर्शन के शैक्षिक निहितार्थ एवं उसका मूल्यांकन कर सकेगें।
- प्रकृतिवादी दर्शन से परिचित हो सकें।
- प्रकृतिवाद की परिभाषा को जान सकेगें।
- प्रकृतिवाद के विभिन्न रूपों से परिचित हो सकेगें।
- प्रकृतिवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि को जान सकेगें।
- प्रकृतिवाद के सिद्धान्तों को जान सकेगें।
- प्रकृतिवादी शिक्षा और पाठ्यक्रम को जान सकेगें।
- प्रकृतिवादी शिक्षक व अनुशासन से परिचित हो सकेगें।
- प्रकृतिवाद का मूल्यांकन कर सकेगें।

8.3 आदर्शवाद

मनुष्य द्वारा जाने गये दर्शनों में आदर्शवाद संभवतः प्राचीनतम दर्शन है। पूर्व में इसका विकास प्राचीन भारत में हुआ तथा पश्चिम में प्लेटों के समय में। सामान्यतः विचारवादियों का मत है कि विचार ही सही यथार्थता को निरुपित करते हैं। इसके अनुसार जीवन में आत्मा सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। विश्व की सम्पूर्ण सत्ता इस मूलभूत तत्व 'आत्मा' में परिवर्त्य है। ब्रहमाण्ड तात्विक स्थानों में अभौतिक है। भौतिक तत्व यथार्थ नहीं है, यह तो एक धारणा मात्र है, मन की एक कल्पना है, वास्तविक तो मन है, अतः सभी भौतिक वस्तुएँ जो वास्तविक प्रतीत होती है, मन अथवा आत्मा

में परिवर्त्य है। आदर्शवाद शब्द 'IDEALI,SM' से बना है। जो कि प्लेटो के आध्यात्मिक सिद्धान्त से उत्पन्न है। भारत में आदर्शवाद शंकराचार्य की देन है। शंकराचार्य कहते है– ''असतो माँ सद्गमय'' अर्थात हे प्रभु हमें असत्य से सत्य की ओर ले चलो।

'कूर्मोङ्गानीव':– परमात्मा भी कछुओं (कुर्मों) के समान जब चाहता है, संसार को फैलाता है, 'अंगों के समान और जब चाहता है समेट लेता है। परमात्मा सत्य है और उसके द्वारा बनायी गई सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर है। नाशवान हैं आदर्शवाद व्यक्ति को कर्मपथ पर ले जाता है। ईश्वर के प्रति आसक्ति उत्पन्न करता है।

8.4 आदर्शवाद की परिभाषा

इसको और अधिक स्पष्ट करने के लिये इसकी कुछ परिभाषाएँ दी गयी है।

1. **हेण्डरसनः–** ''आदर्शवाद मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है। इसका कारण है कि आध्यात्मिक मूल्य मनुष्य और जीवन के सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। आदर्शवादियों का विश्वास है कि मनुष्य अपने सीमित मन को असीमित मन से प्राप्त करता है। वे मानते हैं कि व्यक्ति व संसार दोनों बुद्धि की अभिव्यक्तियाँ हैं। वे कहते हैं कि भौतिक संसार की व्याख्या मन से ही की जा सकती है।''

2. **हार्नः–** ''आदर्शवाद का सार, है कि ब्रह्माण्ड बुद्धि एवं इच्छा की अभिव्यक्ति है। विश्व के स्थायी तत्व की प्रकृति मानसिक है। भौतिकता की बुद्धि द्वारा व्याख्या की जाती है।''

8.5 आदर्शवाद का दार्शनिक दृष्टिकोण

1. **तत्वमीमांसा में आदर्शवादः–** विचारवाद दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जिसमें इस बात पर विचार करते हैं कि मूलतः सत्य क्या है? अच्छा क्या है? बुरा क्या है?

आदर्शवाद में विचारों को श्रेष्ठ एवं सनातन माना जाता है। विचारवादी मानते हैं कि आदर्श कभी नष्ट नहीं होते हैं।

2. **ज्ञानमीमांसा में आदर्शवादः–** आदर्शवादी ज्ञान एवं सत्य की विवेचना विवेक विधि से करते हैं। वे ब्रहमाण्ड में उन सिद्धान्तों की खोज करने का प्रयास करते हैं, जिनको सार्वभौमिक सत्य का रूप प्रदान किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से उनकी धारणा है कि सत्य का अस्तित्व है किन्तु उनका कहना है कि सत्य का अस्तित्व इसलिये नहीं है कि वह व्यक्ति या समाज द्वारा निर्मित की गयी है।

3. **मूल्यमीमांसा में आदर्शवादः–** 'शिव' क्या है? इसके विषय में आदर्शवादियों का कहना है कि सद्जीवन को ब्रह्माण्ड से सामंजस्य स्थापित कर ही व्यतीत किया जा

सकता है। दूसरे शब्दों में निरपेक्ष सत्ता का अनुकरण करके ही 'शिव' या अच्छाई की प्राप्ति की जा सकती है। आदर्शवादी नैतिकता परम सत्ता पर आधारित है। मानव या समाज द्वारा निर्मित नहीं है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी– (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।
(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरी से अपने उत्तर का मिलान किजिए।

1) आदर्शवाद क्या है? या आदर्शवाद को परिभाषित करें।

____

____

____

2) आदर्शवाद की तत्वमीमांसा का वर्णन करें।

____

____

____

8.6 'आदर्शवाद व शिक्षा'

आदर्शवादियों का कहना है कि शिक्षा एक सामाजिक आवश्यकता भी हैं। मनुष्य समाज का एक वस्तुनिष्ठ प्रक्षेप हैं जो एक व्यक्तिगत स्वरूप में प्रगट होता है। ऐसा प्रक्षेपण समाज में सद्जीवन को प्रतिबिम्बित करता है। इस कारण समाज में विद्यालयों तथा शिक्षकों की आवश्यकता होती है। इस दृष्टिकोण से शिक्षा को समाज में 'सद्' को प्रतिबिम्बित करने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है।

आदर्शवाद में शिक्षा के उद्देश्यः– आदर्शवाद में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों में सत्य के भाव का विकास कर कल्याणकारी समाज की स्थापना करना है ताकि समाज में त्याग, शक्ति, अपरिग्रह अहिंसा आदि के भाव जागृत हो।

इसके उद्देश्यों को हम निम्न बिन्दुओं के द्वारा हम और अधिक स्पष्ट कर सकते हैं–

8.6.1 व्यक्तित्व का उत्कर्ष एवं आत्मानुभूति :

'रॉस और 'रस्क' दोनों का कथन है कि ''आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्तित्व का उत्कर्ष या आत्मानुभूति अर्थात आत्मा की सर्वोच्च शक्तियों या क्षमताओं को वास्तविक रूप देना है।''

'प्लेटो' के अनुसार आत्मानुभूति द्वारा व्यक्ति को पूर्ण या आदर्श अवस्था में पहुँचाना शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है।

8.6.2 – सांस्कृतिक विरासत की समृद्धि

आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा का दूसरा उद्देश्य सांस्कृतिक विरासत की समृद्धि है। आदर्शवाद मनुष्य की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत पर बहुत बल देता है। अतः आदर्शवाद में शिक्षा का यह उद्देश्य होना चाहिए की मनुष्य अपनी आध्यात्मिक शक्तियों द्वारा अपने सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध बनाये।

8.6.3 अमर आदर्शों एवं मूल्यों की प्राप्ति :

आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा का तीसरा उद्देश्य आध्यात्मिक जगत के अमर आदर्शों व मूल्यों की प्राप्ति है।

8.6.4 मनुष्य की मूल प्रवृति का आध्यात्मिक प्रवृत्ति मे परिवर्तन

आदर्शवाद के अनुसार मनुष्य की दो प्रवृत्तियाँ है। 'मूल' और आध्यात्मिक।' शिक्षा का कार्य है– मूल प्रवृत्ति को आध्यात्मिक बनाना। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा मनुष्य को सच्चे अथों में मनुष्य बनाये।

8.7 आदर्शवाद में पाठ्यक्रम

आदर्शवादियों ने पाठ्यक्रम पर बहुत प्रभाव डाला है। पाठ्यक्रम के बारे में उनके विचार निम्नलिखित हैं–

1. पाठ्यक्रम का आधार जीवन के सर्वोच्च आदर्श होने चाहिए।
2. इसे सभ्यता व संस्कृति का प्रतिबिम्ब होना चाहिये।
3. इसे मानव जाति के अनुभवों को व्यक्त करना चाहिये।
4. इसे मानव जाति के अनुभवों को संगठित करना चाहिये।
5. मनुष्य के अनुभवों में उसके भौतिक और सामाजिक।

वातावरण के अनुभव आते हैं। इसलिए पाठ्यक्रम में विभिन्न विज्ञान और मानवशास्त्रों को स्थान मिलना चाहिए।

1. ज्ञान सनातन है। साथ ही अनन्त और असीम भी है।

पाठ्यक्रम के बारे में कुछ आदर्शवादियों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं–

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।
(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

3) आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा क्या है?

4) आदर्शवादी शिक्षा के मुख्य तत्व क्या हैं?

1) प्लेटो का विचारः– प्लेटो आदर्शवादी था। उसने आदर्शविचार को पाठ्यक्रम का आधार माना। उनके अनुसार जीवन का सर्वोच्य विचार, सर्वोतम अच्छाई या ईश्वर को प्राप्त करना है। अतः उसने इस बात पर बल दिया है कि पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक मूल्यों को स्थान दिया जाना चाहिए। ये आध्यात्मिक मूल्य तीन हैं– 'सत्यम', 'शिवम', तथा 'सुन्दरम'।

ये तीनों मूल्य तीन प्रकार की क्रियाओं को जन्म देते हैं– मानसिक, नैतिक एवं सौन्दर्यात्मक इसमें से प्रत्येक क्रिया के आधार कुछ निश्चित विषय है। जिनको पाठ्यक्रम में स्थान मिलना चाहिए। इन क्रियाओं के अनुसार पाठ्यक्रम का स्वरूप निम्न प्रकार का होना चाहिए–

मानव की क्रियाएँ व उनसे संबन्धित विषय

(मानसिक क्रियाएँ)	(सौन्दर्यात्मक क्रियाएँ)	(नैतिक क्रियाएँ)
(भाषा, साहित्य इहिास, भूगोल व विज्ञान)	(कला व कविता)	(धर्म, आचार, शास्त्र व आध्यात्मवाद)

2) 'नन' के विचारः– नन के शिक्षा का दृष्टिकोण व्यक्तिगत है पर पाठ्यक्रम के बारे में उसका विचार आदर्शवादी है। उसका कथन है कि विद्यालय को ऐसा स्थान नहीं समझना चाहिए जहाँ बालकों को एक निश्चित प्रकार की शिक्षा दी जाती है। इसके विपरीत विद्यालय को ऐसा स्थान समझना चाहिए जहाँ बच्चों को ऐसी क्रियाओं में प्रशिक्षित किया जाता है, जो संसार के लिये महत्वपूर्ण होती हैं। ये क्रियाएँ दो समूहों में बाँटी जा सकती हैं–

1. वे जो व्यक्ति और समाज के जीवन को बनाए रखती हैं।
2. वे जो सभ्यता के ढाँचे का निर्माण करती हैं।

इन क्रियाओं के अनुसार पाठ्यक्रम का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिए–

मानव की क्रियाएँ व उनसे संबन्धित विषय

शारीरिक, सामाजिक नैतिक धार्मिक क्रियाएँ व	साहित्यिक सौन्दर्यात्मक व सामान्य क्रियाएँ
शारीरिक व्यायाम, सामाजिक शिक्षा नीतिशास्त्र व धर्म	साहित्यिक, कला, संगीत दस्तकारी, विज्ञान गणित, इतिहास व भूगोल

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

5) आदर्शवादी किस प्रकार के पाठ्यक्रम की संकल्पना करते हैं?

____

____

____

6) आदर्शवादी शिक्षण विधि का उल्लेख करें?

____

____

____

8.8 आदर्शवाद में शिक्षण विधि

'बटलर' का कथन है– 'आदर्शवादी अपने को किसी एक विधि का भक्त न मानकर विधियों का निर्माण व निश्चय करने वाला मानते हैं।

आदर्शवादियों का विश्वास है कि यदि हमारे लक्ष्य स्पष्ट और निश्चित हैं तो हम बालकों की रूचि और योग्यता के अनुसार विधि की खोज सरलता से कर सकते हैं। इसलिये विभिन्न आदर्शवादी शिक्षकों द्वारा विभिन्न शिक्षण विधियों को अपनाया गया। 'सुकरात' ने प्रश्न विधि, प्लेटो ने संवाद विधि, अरस्तू ने आगमन और निगमन विधि, 'हीगल' ने तर्क विधि, और हरबर्ट ने निर्देशन विधि को अपनाया। फ्रॉबेल ने खेल द्वारा शिक्षा पर बल दिया। 'पेस्टालॉजी ने अभ्यास व आवृत्ति को सबसे उत्तम विधि माना।

संक्षेप में हम कह सकते हैं आदर्शवादी विधियों का सार है– 'क्रिया, नियमित और निर्देशन स्वतंत्रता।'

आदर्शवादी अनुकरण को शिक्षण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग मानते हैं। उनका विचार है कि अपरिपक्व बालक अपने से बड़ों तथा साथियों के व्यवहार का अनुकरण

बन्दर के समान न करके अपनी चेतना व शक्ति के प्रभाव व प्रयोग से करता है। चेतना शक्ति के प्रयोग से बालक अनुकरण द्वारा विभिन्न गुणों को ग्रहण करके शिवम् से समन्वय स्थापित करने में समर्थ होता है।

8.9 आदर्शवाद में शिक्षक

आदर्शवादी शिक्षक को बहुत महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। उनके अनुसार शिक्षक के कार्य को 'फ्रॉबेल' के 'किण्डरगार्टेन' वाले इस रूपक से बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया जा सकता है–

विद्यालय बाग है, छात्र कोमल पौधा है और शिक्षक कुशल माली है। माली की अनुपस्थिति में भी पौधा बढ़ेगा और अपने उचित रूप को प्राप्त करेगा। प्रत्येक पौधा अपने स्वयं के नियमानुसार विकसित करेगा। यह असंभव है कि गोभी का पौधा बड़ा होकर गुलाब का पौधा बन जाय। फिर भी माली के लिये कुछ कार्य है। वह अपनी कला में कुशल होता है, इसलिए वह गोभी व गुलाब दोनों को उनके स्वतंत्र रूप में विकसित कर सकता है। इस प्रकार उसकी उपस्थिति में उनसे कहीं अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं जितने की उनकी अनुपस्थिति में होते हैं। यही बात शिक्षक के बारे में हैं। उसे अपनी कला का ज्ञान होता है। इसलिए वो बालकों के विकास में उत्तम सहायता दे सकता है।

आदर्शवादियों का यह भी विश्वास है कि 'विद्यार्थी' अपनी 'ज्योति' अध्यापक से प्राप्त करते हैं। जबकि अध्यापक स्वयं में ज्योति स्वरूप होता है। उनके अनुसार अध्यापक स्वयं में आदर्श रूप होना चाहिए ताकि वह बौद्धिक व नैतिक दोनों दृष्टियों से अपने विद्यार्थियों के लिए एक उदाहरण बन सके। अध्यापक को मात्र अधिगम की आवश्यकताओं को समझना ही पर्याप्त नहीं है उसे अधिगम के अंतिम लक्ष्य के प्रति अपनी चिंता को भी निरन्तर रूप से बनाये रखना है। रॉस महोदय के शब्दों में ''शिक्षक एक विशिष्ट परिवेशीय घटक है, जिसका कार्य बच्चे को यथार्थता से परिचित कराने में, उसे नेतृत्व देना है ताकि वह अपने विकास की उच्चतम संभावनाओं को प्राप्त कर सके।''

विभिन्न आदर्शवादी दार्शनिकों ने शिक्षक के अनेक गुणों एवं योग्यताओं का विवेचन किया है। बटलर महोदय ने उन्हें संकलित करने का प्रयास किया है। जो निम्न हैं–

1. शिक्षक बालक के लिए सत्ता का साकार रूप होता है।
2. शिक्षक को विषय का पूर्ण ज्ञाता होना चाहिए।
3. शिक्षक को अपनी व्यवसायिक कला में दक्ष होना चाहिए।
4. शिक्षक को अपने छात्रों का मित्र, हितैषी तथा दार्शनिक होना चाहिए।

5. शिक्षक को जीवन की कला में निपुण होना चाहिए।
6. शिक्षक को चरित्रवान होना चाहिए।
7. शिक्षक में छात्रों में रूचि विकसित करने की क्षमता होनी चाहिए।
8. शिक्षक को निरन्तर अध्ययन करते रहना चाहिए।
9. विद्यार्थियों के लिए संस्कृति तथा यथार्थ को साकार करे।
10. एक ऐसा व्यक्ति हो जो अपने व्यक्तित्व के प्रभाव के कारण बच्चों से सम्मान पाने का अधिकारी हो।
11. अपने पढ़ाये जाने वाले विषय को सक्षम तथा प्रभावी रूप में संप्रेषित कर सके।

8.10 आदर्शवाद तथा छात्र

आदर्शवाद छात्रों को केवल शरीर, इन्द्रिय तथा मस्तिष्क का बना हुआ अंगी मात्र नहीं मानता। उनके अनुसार वह मानस तथा आत्मा है। वह शरीरधारी है परन्तु उसका वास्तविक स्वरूप शरीर की सीमाओं को लाँघा जाता है। वह अपूर्ण है। 'हार्न' के अनुसार ''बालक एक परिमित व्यक्ति है, जो शिक्षित होने पर अनन्त पुरुष के रूप में विकसित होता है। उसका वास्तविक उद्भव देवत्व है। उसकी प्रकृति स्वतंत्र हैं, तथा उसकी नियति अमरत्व है।''

आदर्शवादियों के अनुसार छात्र को 'अन्तेवासी' अर्थात गुरु के हृदय में वास करे या गुरु के साथ रहे। उसे 'माणवक' अर्थात मानरहित होना चाहिए। उस गुरु द्वारा कहे गये वास्य को सहशब्द पालन करना चाहिए व अपने गुरु के यश को आगे बढ़ाना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आदर्शवाद में विद्यार्थी को गुरु के पुत्र के समान माना गया है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।
(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

7) आदर्शवादी शिक्षक की संकल्पना का वर्णन करें।

____

____

8) आदर्शवाद में छात्र संकल्पना का वर्णन करें।

____

____

8.11 आदर्शवाद में अनुशासन

आदर्शवादी कठोर अनुशासन के पक्ष में नहीं है। 'फ्रॉबेल' का कथन है– ''बालक की रूचि का ज्ञानं प्राप्त करके तथा प्रेम व सहानुभूति व्यक्त करके उन पर नियंत्रण रखा

जाना चाहिए। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आदर्शवादियों का अनुशासन का सिद्धान्त उनकी स्वतंत्रता की धारणा पर आधारित है। उनका मूल ध्येय है–

''आधीनता से युक्त स्वतंत्रता की सत्ता और अनुशासन से सामंजस्य

आदर्शवाद में आत्मानुशासन की बात की जाती है गाँधी जी का यह विचार है, कि ''वास्तविक स्वतंत्रता, स्व अनुशासन की अवधारणा स्वतंत्रता तथा बाह्य नियन्त्रण दोनों का संश्लेषण हैं।''

आदर्शवादियों का मत है कि ''मानव व्यवहार–आंतरिक रूप से नियंत्रित हो बाह्य दाबों से नहीं।'' उनके अनुसार प्रभुत्व (सत्ता) बाह्य रूप धारण करते हुये आरम्भ होती हैं परन्तु इसकी परिणति आंतरिक चिन्तनात्मक स्वभाव तथा आत्मनियन्त्रण के रूप में होना चाहिए।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वे प्रभावात्मक अनुशासन के पक्ष में हैं। वे नियंत्रित स्वतंत्रता पर आधारित अनुशासन चाहते हैं। उनके अनुसार अनुशासन का अर्थ है नम्रता, शिष्टता, अधीनता और आज्ञाकारिता के भौतिक मूल्यों का विकास करना।

8.12 आदर्शवादी दर्शन का शैक्षिक निहितार्थ

यदि शिक्षा का अध्ययन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखकर किया जाय तो यह अवगत होगा कि पाश्चात्य एवं प्राचीन भारतीय शिक्षा का मूल स्वरूप विचारवादी दर्शन से प्रभावित था। शैक्षिक विचार तथा व्यवहार के मूल में विचारवाद की धारणा का समावेश था। शैक्षिक उद्देश्य पाठ्यक्रम, विद्यालय तथा शिक्षक की धारणा कुछ बुनियादी पहलू है, जिनमें विचारवादी दृष्टिकोण की झलक मिलती है। इसके शैक्षिक निहितार्थ को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. गुरु के महत्व की स्थापना हुई
2. गुरु शिष्य के बीच अन्तः क्रिया होने लगी। व्यास विधि का प्रयोग नहीं होता है।
3. विद्यालय की स्थापना एकान्त में होनी चाहिए।
4. विद्यालयो में प्रार्थना सभा का आयोजन अवश्य हो।
5. छात्रों को पीटने के बजाय प्रेम किया जाय।
6. साहित्य, गणित व संगीत की शिक्षा प्राथमिक स्तर से दिया जाय।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

9) आदर्शवादी शिक्षा के क्या उद्देश्य हैं?

---

10) आदर्शवाद की आलोचना करें।

8.13 आदर्शवाद की समीक्षा

इसका मूल्यांकन करने के लिए हम इसके गुण–दोषों की चर्चा करते हैं–

गुणः–

1. आदर्शवादी शिक्षा में बालक के व्यक्तित्व का आदर किया जाता है।
2. आदर्शवादी शिक्षा बालकों में 'सत्यम् शिवम्, सुन्दरम्' जैसे श्रेष्ठ गुणों का विकास करती है। फलस्वरूप बालकों में उत्तम चरित्र का निर्माण होता है।
3. आदर्शवादी शिक्षा की प्रक्रिया में, शिक्षक को अति महत्वपूर्ण स्थान देता है। इसमें बालक और समाज दोनों का हित होता है।
4. आदर्शवाद आत्म–चरित्र और आत्म–अनुशासन के सिद्धान्तों को शिक्षा में अति महत्वपूर्ण स्थान देता है।
5. आदर्शवाद शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित करने में अद्वितीय स्थान रखता है। केवल आदर्शवाद ही शिक्षा के उद्देश्यों की विस्तृत व्याख्या करता है।

दोषः–

1. आदर्शवाद के उद्देश्य अमूर्त हैं। इसका सम्बंध भविष्य से है।
2. आधुनिक शिक्षण शास्त्र के क्षेत्र में आदर्शवाद की कोई विशेष देन नहीं है।
3. आदर्शवाद बालक को गौंण स्थान और शिक्षक तथा आदर्श को मुख्य स्थान देता है।
4. आदर्शवाद पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक विषयों को स्थान देता है जिनकी आज के औद्योगिक युग में आवश्यकता नहीं जान पड़ती है।
5. आदर्शवाद हमें जीवन के अंतिम उद्देश्य की ओर ले जाता हैं, जिससे हमें इस समय कोई प्रयोजन नहीं है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आज कम्प्यूटर के इस युग में ये दोष ठीक मालूम पड़ते हैं– लेकिन यदि हम गंभीरतापूर्वक विचार करें तो हमें ये दोष निर्मूल जान पड़ते हैं। सत्य यह है कि इस भौतिकवादी युग के संघर्षों, कलहों और वैमनस्यों से आदर्शवाद का सहारा लेकर ही मुक्ति मिल सकती है।

नोटः– आदर्शवाद को ही प्रत्ययवाद की संज्ञा दी जाती है।

8.14 प्रकृतिवाद

प्रकृतिवाद प्राचीनतम् दर्शनशास्त्र हैं। पुराने चिन्तक की दृष्टि में ईश्वर, ब्रह्म यह सब कुछ नहीं है सिर्फ प्रकृति ही सब कुछ है। प्रकृतिवादी विचारधारा के उत्पत्ति को निम्नलिखित रूप में बताई जा सकती है–

डिमाक्रिटस (460–370 ई0पू0):– ये एक ग्रीक दार्शनिक थे, जिनके अनुसार प्रकृति ही अन्तिम यथार्थ है। उनकी यह धारणा थी कि प्रकृति के भौतिक पदार्थों की रचना छोटे–छोटे टुकड़ों से होती है। और ये ही टुकड़े सभी पदार्थों के निर्माणक तत्व हैं। उन्होंने यह राय दी कि मनुष्य को चाहिए की वह प्रकृति के निकट रहे और उसकी सादगी को अपनाये।

जान हेनरिक पेस्टालॉजीः– व्यक्ति तथा प्रकृति पर बल देने की दृष्टि से पेस्टालॉजी रुसो से प्रभावित था। उन्होने व्यक्ति को विशेष रूप से महत्वपूर्ण समझा। उनका विश्वास था कि शिक्षा स्वाभाविक रूप में होनी चाहिए और इस संबंध में प्रकृति प्रदत्त नियमों का अनुसरण करना चाहिए न कि मनुष्य निर्मित व्यवस्थाओं का। आजकल उनकी धारणाओं का प्रभाव प्रगतिवादी तथा बाल केन्द्रित आन्दोलनों के रूप में देखा जा सकता है।

प्रकृतिवाद का अर्थः– प्रकृतिवाद तत्व मीमांसा का वह रूप है जो प्रकृति को पूर्ण वास्तविक मानता है। यह अलौकिक और परालौकिक को नहीं मानता है। जो बातें प्राकृतिक नियम से स्वतंत्र जान पड़ती हैं जैसे– मानव जीवन या कल्पना की उपज वे भी वास्तव में प्रकृति की योजना में आती है। प्रत्येक वस्तु प्रकृति से उत्पन्न होती है और उसी में विलीन हो जाती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है 'प्रकृति' का अर्थ– स्थान और समय में होने वाली ऐसी बातें और घटनाओं से है जो समान नियमों के अनुसार होती है।

8.15 प्रकृतिवाद की परिभाषा

प्रकृतिवाद की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. थॉमस और लैंगः– ''प्रकृतिवाद आदर्श के विपरीत मन को पदार्थ के अधीन मानता है और यह विश्वास करता है कि अन्तिम वास्तविकता भौतिक है, आध्यात्मिक नहीं।''

2. पैरीः– ''प्रकृतिवाद विज्ञान नहीं है, वरन विज्ञान के बारे में दावा है। अधिक स्पष्ट रूप में इस बात का दावा है कि वैज्ञानिक ज्ञान अन्तिम है जिसमें विज्ञान से बाहर या दार्शनिक ज्ञान का कोई स्थान नहीं है।''

3. जेम्स वार्डः– प्रकृतिवाद वह सिद्धान्त है जो, प्रकृति को ईश्वर से पृथक करता है। आत्मा को पदार्थ के अधीन करता है। अपरिवर्तनीय नियमों को सर्वोच्चता प्रदान करता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर प्रकृतिवाद को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है। '' प्रकृतिवाद एक ऐसा सिद्धान्त है जो भौतिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान को आध्यात्म के उपर महत्ता प्रदान करते हों उसे अंतिम सत्य मानता है, प्रकृति को ईश्वर से पृथक करता है, आत्मा को पदार्थ के अधीन मानता है तथा उन नियमों को सर्वोच्चता प्रदान करता है जो परिवर्तनशील नहीं है।''

8.16 प्रकृतिवाद के रूप

इसके मुख्यतः चार रूप हैं–

1. **परमाणुवादी प्रकृतिवादः–** इसके अनुसार जगत की अंतिम ईकाई परमाणु है। दृश्य जगत परमाणुओं के विविध संयोगों का प्रतिफल है। परमाणु अविभाज्य तथा नश्वर है।

2. **वैज्ञानिक प्रकृतिवाद या शक्तिवादः–** विज्ञान ने यह सिद्ध किया कि परमाणुओं में गति होती है। उनके पुनः खण्ड हो सकते हैं। अतः इस वाद ने जगत का अंतिम तत्व शक्ति को माना। शक्तिवाद मानव सृष्टि को भी प्रकृति प्रदत्त मानता है। शक्तिवाद मनुष्य में स्वतंत्र इच्छा शक्ति को अस्वीकार करता है। शक्तिवाद, नियतिवाद को लेकर आगे बढ़ता है। प्रकृति के अपने निश्चित नियम हैं, जिनमें कार्य–कारण का नियम प्रमुख है। समस्त मानवीय क्रियायें इस नियम से बँधी हुयी है। शक्तिवाद को विज्ञानवाद के नाम से भी पुकारा जाता है।

3. **यंत्रवादी प्रकृतिवादः–** इस वाद के अनुसार सृष्टि यंत्रवत है। भौतिक जगत्, जीव–जगत तथा मानव जगत की व्याख्या विज्ञान के माध्यम से की जाती है। ये भी शक्तिवादियों के समान नियतिवाद में आस्था रखते हैं।

4. **जैविक प्रकृतिवादः–** इस वाद का जन्म 'डार्विन' के विकासवादी सिद्धान्त से माना जाता है। इसके अनुसार मनुष्य सभी दृष्टियों से अन्य प्राणियों से भिन्न नहीं हैं। अन्य प्राणियों के समान मनुष्य भी प्रकृति के हाथों का खिलौना मात्र है। उसकी नियति और विकास की संभावनाएँ वंशानुक्रम तथा पर्यावरण पर निर्भर हैं। उसकी स्वतंत्रता भी अन्य जीवों की भाँति सीमित है। वस्तुतः जैविक प्रकृतिवाद को सच्चे अर्थों में प्रकृतिवाद की संज्ञा दी जा सकती है। इसके अलावा प्रकृतिवाद के एक अन्य रूप में रुमानी प्रकृतिवाद की चर्चा की जाती है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी –(क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

11) प्रकृतिवाद क्या है? प्रकृतिवाद को परिभाषित कीजिए।

---

12) प्रकृतिवाद के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

8.17 प्रकृतिवाद का दार्शनिक दृष्टिकोण

1. **तत्वमीमांसा में प्रकृतिवादः–** प्रकृतिवादी परमाणु को सत्, अनश्वर एवं अविभाज्य मानते हैं। ये परमाणु आकार एवं मात्रा में भिन्न होते हैं। इन्हीं के संयोग से ब्रह्माण्ड की रचना होती है। जो कुछ हम देखते हैं, वह परमाणुओं के संयोग का फल है। प्रकृतिवादियों के अनुसार मनुष्य इन्द्रियों और विभिन्न शक्तियों का रूप हैं। यह सब प्रकृति का खेल है। इसमें आत्मा नामक चेतन तत्व नहीं है। सम्पूर्ण सृष्टि मे नियम विद्यमान है। सब कार्य नियमानुसार होते हैं। इसलिए मनुष्य भी नियमाधीन होते हैं। उसमें स्वतंत्र इच्छा जैसी कोई शक्ति नहीं हैं। ये नियम प्रकृति के स्वयं के नियम हैं। प्रकृति के नियम, शाश्वत एवं अपरिवर्तनशील हैं। इसमें प्रयोजनवाद का कोई स्थान नहीं है क्योंकि इसमें परिवर्तन किसी प्रयोजन से नहीं होते हैं। वरन् कार्य–कारण संबंध के आधार पर अपने–आप स्वयं हो जाते हैं।

2. **ज्ञानमीमांसा में प्रकृतिवादः–** प्रकृतिवादी प्रत्यक्ष ज्ञान का समर्थन करते हैं। वे इन्द्रियों तथा अनुभव के माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति पर बल देते हैं। वे इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किये जाने वाले ज्ञान को सत्य मानते हैं। ये ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण या अभ्यास पर विशेष बल देते हैं क्योंकि उनके अनुसार ज्ञानेन्द्रिय ही अधिगम के प्रवेश द्वार है।

3. **मूल्यमीमांसा में प्रकृतिवादः–** प्रकृतिवादियों के अनुसार मूल्यों का उद्‌भव व्यक्तियों द्वारा अपने वातावरण के साथ अन्योन्य क्रिया करने के फलस्वरूप होता है। मूल प्रवृत्तियॉ, उर्जस्विता, सहज प्रवृत्ति, प्रेरणा, मनोवेग आदि की

अभिव्यक्ति या प्रकटीकरण की आवश्यकयता होती है न कि इसे दमित करने की। उनके अनुसार संसार में ऐसी चीज नहीं है जो निरपेक्ष रूप से अच्छी या बुरी कही जा सके। जीवन मूल्यों का सृजन मानव आवश्यकताओं के आधार पर होता है।

8.18 प्रकृतिवाद के मूल सिद्धान्त

थामस और लैंग ने प्रकृतिवाद के निम्नलिखित सिद्धान्त बताये हैं –

1. संसार एक बड़ी मशीन है।
2. केवल विज्ञान ही ज्ञान देता है।
3. ज्ञान व सत्य का आधार इन्द्रियों का अनुभव है।
4. प्रत्येक वस्तु पर प्रकृति से उत्पन्न होती है, और उसी में विलीन हो जाती है।
5. प्रकृति के नियम अपरिवतर्नीय हैं। अपरिर्वतनीय प्राकृतिक नियम सब घटनाओं को भली प्रकार स्पष्ट करते हैं।
6. विकास की प्रक्रिया में मस्तिष्क एक घटना है। यह उच्च कोटि के जीवों में अधिक विकसित नाड़ी–मण्डल का समूह है।
7. नैतिक मूल प्रवृत्ति जन्मजात अन्तर्रात्मा, परलोक, वैयक्तिक अमरता, चमत्कार, ईश्वर कृपा, प्रार्थना, शक्ति और इच्छा की स्वतंत्रता भ्रम है।
8. प्रकृति अन्तिम सत्ता या वास्तविक है। समस्त वस्तुएँ पुद्‌गल या पदार्थ से उत्पन्न हुई है।

8.19 प्रकृतिवाद व शिक्षा

प्रकृतिवाद को शिक्षा के एक दर्शन के रूप में 18वीं शताब्दी में विकसित किया गया । इसके प्रारम्भ का श्रेय फ्रांसिस बेकल' और 'कामेनियस' को जाता है। रूसो ने इसे चरम–सीमा पर पहुॅचाया।

प्रकृतिवाद में शिक्षा के उद्‌देश्य :– प्रकृतिवाद में शिक्षा के निम्नलिखित उद्‌देश्य हैं:–

1. उचित सहज सम्बद्ध क्रियाओं का निर्माण ।
2. मूल प्रवृत्तियों का शोधन, मार्गान्तीकरण और समन्वय
3. जीवन संघर्ष के लिये तैयारी।
4. वातावरण से अनुकूलन करने की क्षमता ।
5. आत्म–संरक्षण और आत्म संतोष की प्राप्ति ।
6. प्रजातीय प्रगति की प्राप्ति या सन्तति पालन।
7. वैयक्तिक स्वतंत्रता का विकास।

8. मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति ।
9. अवकाश के काल का उपयोग।
10. सामाजिक एवं राजनीतिक संबंधों का विकास।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

13. प्रकृतिवादियों के अनुसार शिक्षा क्या है?

....

....

....

14. प्रकृतिवादियों के अनुसार शिक्षा के मुख्य उद्देश्य क्या हैं?

....

....

....

15. प्रकृतिवादियों के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम क्या है?

....

....

....

8.20 प्रकृतिवाद व पाठ्यक्रम

प्रकृतिवादी बालक को पाठ्यक्रम का आधार मानते हैं इसलिए उनका कहना है कि पाठ्यक्रम का निर्माण बालक की रूचियों, योग्यताओं और स्वाभाविक क्रियाओं के अनुसार होना चाहिए। प्रायः सभी प्रकृतिवादियों ने पाठ्यक्रम के बारे में अपने विचार प्रकट किये हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख विचार निम्नलिखित हैं –

1. कामेनियस के अनुसार, ''पाठ्य विषयों में से कुछ विषय बालक को पढ़ाने के लिए न चुने जायें बल्कि सभी विषय छात्रों को पढ़ाये जायें।''

2. स्पेन्सर के विचार ''शिक्षा देने से पहले हमारा मुख्य कार्य यह है कि हम मानव जीवन की प्रमुख क्रियाओं का उनके महत्व के अनुसार वर्गीकरण करें। उसने इन क्रियाओं को पॉच भागों में बॉटा है और इन क्रियाओं के अनुसार शिक्षा विषयों को बताया है जो कि निम्न है –

1. वे क्रिया जो प्रत्यक्ष रूप से आत्म–संरक्षण में सहायता देती है। इनसे सम्बंधित विषय है– शरीर–विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान आदि।

2. वें क्रियायें जो अप्रत्यक्ष रूप में आत्म–संरक्षण के लिए जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सहायता देती है। इनसे संबंधित विषय भौतिक विज्ञान, गणित भूगोल आदि हैं।

3. वे क्रियायें जो संतान के पालन–पोषण में सहायता देती है। इनसे सम्बन्धित विषय हैं गृहशास्त्र, शरीर विज्ञान, बाल मनोविज्ञान आदि।

4. वे क्रियाएं जो मनोरंजन और व्यक्ति की रूचियों तथा भावनाओं को संतुष्ट करने में सहायता देती हैं। इनसे संबंधित विषय हैं – कला, भाषा, साहित्य इत्यादि।

5. वे क्रियाएं जो सामाजिक व राजनैतिक संबंधों की स्थापना और व्यक्ति को योग्य नागरिक तथा पड़ोसी बनाने में सहायता देती हैं। इनमें संबंधित विषय हैं – इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि।

3. हक्सले का विचार, टी0एच0 हक्सले प्रकृतिवादी हैं। सर स्पेन्सर और अन्य प्रकृतिवादियों के समान वह विज्ञान के अध्ययन पर बल न देकर सांस्कृतिक पहलू के अध्ययन को महत्व देते हैं।

4. रविन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार, साहित्य तथा विज्ञान के अध्ययन के साथ–साथ आध्यात्मिक मूल्यों के अध्ययन पर भी बल देते हैं ताकि बच्चे का सुसंगल व समस्त विकास सुनिश्चित हो सके।

5. रूसों के विचार, नकारात्मक शिक्षा (जो एक विशिष्ट प्रकृतिवादी दर्शन है) का समर्थन करते हैं जिनके अनुसार बच्चे को प्राकृतिक क्रम के अनुसार ढालने या रहने तथा सामाजिक व्यवस्था से मुक्ति के लिए तैयार करना ही शिक्षा समझा जाता है।

नकारात्मक शिक्षा वह है, जिसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से पहले ज्ञानेन्द्रियों को जो कि ज्ञान के स्रोत या साधन हैं दक्ष किया जाय। बच्चे को अपने शरीर तथा ज्ञानेन्द्रियों की दक्षता प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता से क्रिया कलाप करने देने चाहिए। अतः रूसो ऐन्द्रिक प्रशिक्षण (ज्ञानेंन्द्रियों का प्रशिक्षण) को बहुत महत्व देते हैं।

उपर्युक्त विचारों के आधार पर प्रकृतिवाद में पाठ्यक्रम कुछ इस प्रकार बनाया जा सकता है –

1. बालक को पाठ्यक्रम का आधार होना चाहिए।

2. सभी विषयों के लिए विज्ञान को केन्द्रीय विषय बनाया जाना चाहिए।

3. पाठ्यक्रम में जीवन रक्षा संबंधी विषयों को प्रधानता दी जानी चाहिए।

4. पाठ्यक्रम को बालक के विकास की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिये।
5. पाठ्यक्रम बालक की रूचियों, योग्यताओं और स्वाभाविक क्रियाओं के अनुसार होना चाहिए।
6. पाठ्य विषयों में सभी विषयों को बालक को पढ़ाया जाना चाहिये।
7. पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषयों को उनके सापेक्षिक महत्व के अनुसार स्थान दिया जाना चाहिए— शरीर विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भौतिक विज्ञान, गणित भूगोल, इतिहास, गृहशास्त्र, बाल—मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, कला, भाषा व साहित्य। इसके अलाव सैन्य शिक्षा, योग, खेल—कूद, पर्यटन, संगीत, मानव—विज्ञान आदि भी बताया जाना चाहिये।

प्रकृतिवाद व शिक्षण विधियाँः— प्रकृतिवाद प्राचीन और परम्परागत शिक्षण—विधियों के विरूद्ध क्रान्ति है यह 'रटने' और निष्क्रिय अभ्यास का विरोध तथा 'करके' सीखने और 'अनुभव' द्वारा सीखने का समर्थन करता है। इसके बारे में रुसो का कथन जिस पर प्रकृतिवाद की सभी शिक्षण विधियाँ आधारित है— अपने छात्रों को मौखिक पाठ मत पढ़ाओ, उसे केवल अनुभव से सीखने दो। जब भी संभव हो आप कार्य द्वारा पढ़ाये और शब्दों का सहारा केवल तभी ले, जब कार्य करना संभव न हो।''

प्रकृतिवादियों के सिद्धान्तों ने अनेक शिक्षा पद्धतियों को जन्म दिया है,जैसे— ह्यूरिस्टिक पद्धति, डाल्टन पद्धति, मॉन्टेसरी पद्धति, निरीक्षण पद्धति और खेल विधि को वो बहुत महत्वपूर्ण समझते थे। उनका मानना है कि यह बालक की गुप्त शक्तियों को प्रदर्शित करता है। उसे अनेक प्रकार से अपने को व्यक्त करने का अवसर देता है।

बोध प्रश्न —

टिप्पणी — (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरी से अपने उत्तर का मिलान किजिए।

16) प्रकृतिवादियों के अनुसार शिक्षण विधि की चर्चा करें।

---

17) प्रकृतिवाद में विद्यालय का क्या स्थान है?

---

18) प्रकृतिवादियों के गुण या प्रभाव का वर्णन करें?

____

____

____

19) शिक्षा में वैज्ञानिक प्रकृति से क्या समझते हैं?

____

____

____

8.21 प्रकृतिवाद व शिक्षक

प्रकृतिवादियों का कहना है कि प्रकृति ही बालक का वास्तविक शिक्षक है। ये बालक की शिक्षा में शिक्षक को किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने की आज्ञा नहीं देता है। यदि वह ऐसा करता है और बालक पर अपना प्रभाव डालने का प्रयत्न करता है तो वे उसकी निन्दा करते हैं। वे शिक्षक से केवल यह चाहते हैं कि वह बालक के स्वाभाविक विकास के लिये अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करें। 'रॉस' ने शिक्षक के स्थान और कार्य को बताते हुये लिखा है, ''यदि शिक्षक का कोई स्थान है तो पर्दे के पीछे है, वह बालक के विकास का निरीक्षण करने वाला है उसको सूचनाओं, विचारों, आदर्शों और इच्छा शक्ति को देने वाला या उसके चरित्र का निर्माण करने वाला नहीं बल्कि इन बातों को स्वयं ही कर लेगा। वह किसी भी शिक्षक की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानता है। उसे क्या, कब और कैसे सीखना है? उसकी शिक्षा उसकी रूढ़ियों और प्रेरणाओं का स्वतंत्र विकास है, न कि इसके लिये शिक्षक द्वारा किया गया कृत्रिम प्रयास।''

रुसो के विचार में अध्यापक सर्वप्रथम एक ऐसा व्यक्ति है जो पूर्ण रूपेण प्रकृति के रंग में रंगा हुआ है, उसकी इस बात में गूढ़ आस्था है कि मानव प्रकृति मूलतः अच्छी है। उसकी मान्यता है कि अधिगम के लिए व्यक्तियों की अपनी समय सारिणी होती है। अतः रुसो ने अपने शिक्षाशात्रीय उपन्यास 'EMILE' में (जो एक लड़का है।) की शिक्षा को उसकी विकास के अवस्थाओं के अनुसार व्यवस्थित किया। विकास की प्रत्येक अवस्था के लिए बच्चा कुछ लक्षण दर्शाता है। यह बताने के लिये वह सीखने के लिए (जो कुछ भी उस अवस्था के अनुकूल व संगत है) तत्पर है।

'रुसो' का विचार है कि बच्चे को सीखाने में अध्यापक को अतिशीघ्रता का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। इसके विपरित उसे धैर्यवान, अनुज्ञात्मक तथा अहस्तक्षेपी होना चाहिए। पर्याप्त धैर्य का प्रदर्शन करते हुये अध्यापक को चाहिए कि वह विधार्थी को स्वयं यह न बताये कि सच्चाई क्या है अपितु पीछे रहकर अध्येता को स्वयं खोजने

के लिये प्रोत्साहित करे। उसके मतानुसार अध्यापक अधिगम के लिये एक गुप्त या अदृश्य मार्ग दर्शक का कार्य करता है। हर समय साथ रह कर भी वह कदापि कठोर अधिकारी नहीं है। प्रकृतिवादियों का विचार है कि अध्यापक ऐसा न हो जो साहित्यिक रूप में पुस्तकों पर सस्वर पठन तथा सूचना एकत्र करने पर बल देता हो, अपितु उसे क्रियाकलापों, खोज तथा 'करके' सीखने पर बल देना चाहिये।

8.22 प्रकृतिवाद में अनुशासन

प्रकृतिवादियों को बाह्य शक्तियों पर आधारित अनुशासन में विश्वास नहीं है उसका नारा 'स्वतंत्रता' है। 'रुसो' का कथन है, ''बच्चों को कभी दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए। स्वतंत्रता न कि शक्ति सबसे अच्छी चीज है।''

प्रकृतिवादी यदि किसी प्रकार के अनुशासन में विश्वास करते हैं तो वह है, ''प्राकृतिक परिणामों द्वारा अनुशासन।'' रुसो ने कहा कि ''अनुशासन सदैव बालकों की गलतियों के प्राकृतिक परिणामों द्वारा होना चाहिए।'' इसका अभिप्राय है कि अनुशासन बालक के कार्यों का प्राकृतिक परिणाम है, इस बात को स्पेन्सर ने निम्नलिखित उदाहरण देकर स्पष्ट किया है– ''जब बालक गिरता है या अपने सिर को मेज पर पटकता है तो उसे दर्द मालूम पड़ता है। इस दर्द की याद उसे अधिक सावधान बना देती है। दर्द के इस प्रकार बार–बार होने वाले अनुभवों के कारण वह अन्त में अपने कार्यों में अनुशासित हो जाता है।''

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

20) आदर्शवाद और प्रकृतिवाद में क्या अन्तर है?

____

____

____

21) प्रकृतिवाद की आलोचना करे।

____

____

____

8.23 प्रकृतिवाद में विद्यालय

प्रकृतिवादी विद्यालय को कृत्रिम, कठोर तथा दृढ़ बंधनों वाली संस्था नहीं चाहते हैं। वे इसका स्वतंत्र संगठन चाहते हैं, जिससे बालक को अपने स्वाभाविक विकास के लिये उचित वातावरण मिले। वे विद्यालय में 'स्वशासन' का समर्थन करते हैं। उनका

कहना है कि विद्यालय के बालकों को अपने सामाजिक जीवन पर स्वयं ही शासन करना चाहिये और उन पर ऊपर से किसी प्रकार का दबाव नहीं पड़ना चाहिये।

8.24 प्रकृतिवाद की समीक्षा

इसका मूल्यांकन करने के लिये हम इसके गुण और दोषों की चर्चा करते हैं।

गुणः–

1. व्यवहारवाद का जन्म प्रकृतिवाद से माना जाता है।
2. आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान और समाजशास्त्र प्रकृतिवादी है।
3. प्रकृतिवाद ने शिक्षा को वैज्ञानिक और जैविकीय दृष्टिकोण दिये हैं।
4. समाज और सामाजिक शास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन का जन्म प्रकृतिवाद से हुआ है।
5. प्रकृतिवाद ने शिक्षा और ज्ञान की सभी शाखाओं पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है।
6. प्रकृतिवाद ने इस सिद्धान्त को जन्म दिया है कि मनोविज्ञान की प्रकृति पूर्ण रूप से निरीक्षणात्मक और वस्तुपरक विधियों पर निर्भर है।
7. अध्यापक और विद्यालय के शोषण से मुक्ति।
8. बाल–केन्द्रित शिक्षा पर जोर।

दोषः–

1. इसके उद्देश्य संतोषजनक नहीं है।
2. प्रकृतिवाद तात्कालिक उपयोगिता पर बल देता है।
3. प्रकृतिवाद शिक्षक को गौण स्थान देकर उसकी उपेक्षा करता है।
4. प्राकृतिक परिणामों द्वारा अनुशासन का सिद्धान्त बिल्कुल उचित नहीं है।
5. प्रकृतिवाद आध्यात्मिक गुणों की अवहेलना करता है, जिसके बिना मुनष्य पशु के समान होता है।
6. प्रकृतिवाद ने बालक को पाठ्यक्रम का आधार बनाकर पाठ्यक्रम के महत्व को कम कर दिया है।
7. प्रकृतिवाद बालक के केवल वर्तमान जीवन को महत्व देता है, उसके भावी जीवन से कोई सरोकार नहीं रखा है।
8. छात्रों में 3 शृंखलता का विकास अर्थात् छात्रों में, अनुशासनहीनता।
9. यह मस्तिष्क को महत्व नहीं देता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रकृतिवाद में अनेक कमियाँ है पर इन कमियों के बावजूद भी इसने शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किये हैं। इसने

शिक्षकों और शिक्षाविदों को अनेक नये दृष्टिकोण दिये हैं जिससे उनको अपने कार्य में बहुत सहायता और प्रोत्साहन मिला है। 'पाल मुनरो' ने ठीक ही कहा है– ''प्रकृतिवाद ने शिक्षा की मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय और वैज्ञानिक धारणा के स्पष्ट निर्माण में प्रत्यक्ष प्रेरणा दी है।''

नोटः–

1. 'हरबर्ट स्पेन्सर' को अतिप्रकृतिवादी की संज्ञा दी जाती है।
2. रुमानी प्रकृतिवाद का जनक रुसो है।

8.25 सारांश

आदर्शवादी तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि यह जीवन की प्राचीन दार्शनिक विचारधारा है जो यह सोचने के लिए विवश करती है कि भौतिक जगत नाशवान व अस्थाई है; आध्यात्मिक जगत सत्य और स्थाई है। हमने आदर्शवाद की परिभाषा, उसके दार्शनिक दृष्टिकोण, आदर्शवाद व शिक्षा तथा पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधि पर प्रकाश डालते हुए यह देखा कि किस प्रकार यह दार्शनिक विचारधारा, मन, विचार एवं आदर्श को सत्य एवं वास्तविक मानती है। इसके साथ ही इस भौतिक जगत को एक भ्रम मानती है। आदर्शवादी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य को इतना सक्षम बनाने से है कि वह अपने स्वरूप को पहचान कर उसकी अनुभूति कर सके इसे मुख्यतः चार सोपानों में बाँटा गया है। जिसके अन्तर्गत आध्यात्मिक, बौद्धिक, सामाजिक तथा शारीरिक व जैविकीय को स्थान दिया गया है। आदर्शवादी ज्ञान और बुद्धि के विकास, मानव के विचारों और आदर्शों शाश्वत मूल्यों एवं अनुभवों तथा विभिन्न क्रियाओं से सम्बन्धित विषयों पर आधारित मानते हैं। शिक्षण विधियों के संदर्भ में प्रश्न विधि, निर्देशन, तर्क विधि, खेल विधि, अभ्यास एवं आकृति विधि की चर्चा आदर्शवादी दार्शनिक करते हैं। शिक्षा व्यवस्था में आदर्शवादी शिक्षक को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। अनुशासन के सन्दर्भ में आदर्शवादी कठोर अनुशासन के पक्षधर नहीं है। आदर्शवाद में आत्मानुशासन की बात की जाती है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आदर्शवादी प्रभावात्मक अनुशासन के पक्ष में हैं वे नियन्त्रित सत्ता पर आधारित अनुशासन चाहते हैं। उनके अनुसार नम्रता, शिष्टता, अधीनता, आज्ञाकारिता, के नैतिक मूल्यों का विकास करना है।

शिक्षा दर्शन के रूप में प्रकृतिवाद बच्चे को अधिकतम् स्वतन्त्रता का समर्थन करता है, और बच्चे के अनुशासन में कठोरता, हस्तक्षेप आदि से स्वतन्त्र करने पर बल देता है। प्रकृतिवादी विद्यालय को बच्चे के वातावरण से अलग नहीं समझते। उनके अनुसार बच्चे का अधिगम उनके निकटवर्ती वातावरण से इन्द्रियों के माध्यम से प्रत्यक्ष अनुभवों से आरम्भ करना चाहिए न कि शाब्दिक अभिव्यक्ति द्वारा वे व्याख्यान, प्रवचन एवं पुस्तकों के माध्यम से अधिगम के अधिक पक्षधर नहीं है। प्रकृतिवादी

बाल्यकाल को मानव वृद्धि और विकास को उचित तथा आवश्यक एवं महत्वपूर्ण अवस्था मानते हैं। उसके अनुरूप पाठ्यक्रम तथा शिक्षण बच्चे की प्रवृत्तियों पर प्रत्यक्ष रूप में आधारित होने चाहिए।

8.26 अभ्यास कार्य

1. आदर्शवाद ने शिक्षण विधियों की अपेक्षा शिक्षा के उद्देश्यों के सम्बन्ध में अधिक योगदान दिया है? क्या आप इस कथन से सहमत हैं? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिए।
2. सत्यम् शिवम् सुन्दरम् आदर्शवाद के मूल्य हैं जो शिक्षा के द्वारा विकसित होना चाहिए विवेचना कीजिए।
3. आदर्शवादी स्वर्य को विधियों का सृष्टा एवं निश्चयकर्ता मानते हैं न कि किसी विधि का उपासक विवेचना कीजिए।
4. आदर्शवादी दर्शन का शिक्षा के आध्यात्मिक दृष्टिकोण से क्या तात्पर्य है।
5. प्रकृतिवादी परिप्रेक्ष्य में विद्यालय की अवधारणा के विषय में चर्चा करें।
6. विद्यालय के शैक्षिक प्रबन्धन में विद्यार्थियों की सहभागिता में दार्शनिक विचारधारा को कैसे उपयोगी बनाया जा सकता है।
7. विद्यालयों को विद्यार्थियों के नैतिक उत्थान हेतु कौन से कदम उठाने चाहिए चर्चा करें।
8. अपने विद्यालय के आस–पास अन्य संस्थानों में साक्षरता से सम्बन्धित आँकड़े को एकत्र करें। इन कार्यक्रमों को और भी कैसे उपयोगी बनाया जा सकता है। अपने सुझाव बताएँ।

8.27 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. आदर्शवाद मूलतः विचारवादी दर्शन है। यह पश्चात्य दर्शन की वह शाखा है, जो यह बताती है कि यह भौतिक जगत वास्तविकता की अपूर्ण अभिव्यक्ति है। इसका अस्तित्व तो है, लेकिन इसे समझने के लिए मानसिक और आध्यात्मिक जगत की आवश्यकता होती है। जो कि विचारों में है, क्यों कि विचार ही शाश्वत है।
2. आदर्शवाद के तत्वमीमांसा को निम्नलिखित वाक्यों के द्वारा समझा जा सकता है।

   (क) जगत भौतिक नहीं अपितु आध्यात्मिक है।

(ख) जगत विचारों की एक व्यवस्था है।

(ग) यह अंध संकल्प शक्ति है।

(घ) भौतिक सृष्टि का आधार मानसिक जगत है जो उसे समझता है तथा मूल्य प्रदान करता है।

(ङ) यह जगत सोदेश्य है।

3. आदर्शवादियों के अनुसार ''शिक्षा इस प्रकार की क्रिया अथवा अध्यवसाय है, जिसके द्वारा मानव समाज मे परिपक्वता लाने के निमित्त तथा उसके द्वारा मानव समाज, जीवन में सुधार लाने हेतु योगदान करने का प्रयत्न करते हैं।

4. आदर्शवादी शिक्षा के मुख्य तत्व निम्न हैं–

(क) शिक्षा प्रदान करने के लिए तथा अर्जित करने के लिए सक्रिय प्रयास करना पड़ता है।

(ख) शिक्षा प्राप्त करने के लिए शिक्षक की अनिवार्य रूप से आवश्यकता पड़ती है।

(ग) शिक्षा के उद्देश्य तथा लक्ष्य पूर्व निर्धारित है।

(घ) शिक्षा से व्यक्ति परिपक्व तथा संस्कारी बनता है।

(ङ) शिक्षा से न केवल व्यक्ति का विकास होता है अपितु मानव समाज बेहतर बनता है।

5. आदर्शवादी पाठ्यक्रम को निम्नलिखित 4 खण्डों में बाँटते हैं–

(क) सभी वैज्ञानिक विषय– प्रकृति की निर्जीव शक्तियाँ, सौरमण्डल, जीवन का विकास आदि।

(ख) सामाजिक विज्ञान जैसे– मानव संस्थाओं की संसिद्धियाँ, वातावरण पर नियंन्त्रण, जीवन–यापन की कला, भोजन वस्त्र, निवास, कला–कौशल, संचार व्यवस्था, शासन–प्रशासन इत्यादि।

(ग) संस्कृति खण्ड– दर्शन, कला, साहित्य, धर्म, वातावरण आदि।

(घ) व्यक्तित्व निर्माण जैसे– शारीरिक, प्राकृतिक, भावात्मक तथा भौतिक पक्ष मुख्य है।

6. आदर्शवाद में किसी विशेष विधि का उल्लेख नहीं किया गया है। इसकी मान्यता है कि निश्चित उद्देश्यों की स्पष्टता हो जाये तो उन उद्देश्यों के पूर्व जो भी विधि उपयुक्त प्रतीत हो, उसे अपना लेना चाहिए। विधि तो साधन है, साध्य नहीं। साध्य को प्रकृति के अनुरूप साधन का निर्धारण किया जाता है।

7. आदर्शवाद में –

(क) शिक्षक ईश्वर का प्रतिरूप होता है।

(ख) अध्यापक को अपने छात्रों के विषय में पूर्ण ज्ञाता होना चाहिए।

(ग) शिक्षक को अपने छात्र का हितैशी, मित्र व अपने व्यावसायिक कला में दक्ष होना चाहिए।

(घ) शिक्षक को स्वाध्यायी होना चाहिए।

(ङ) अध्यापक में ऐसा गुण होना चाहिए कि वह सीखने के लिए छात्रों को अभिप्रेति कर सकें तथा उनमें पढ़ने के लिए रूचि जागृत कर सके।

(च) शिक्षक को आत्म–अनुभूति के सभी सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पहलुओं से अवगत होना चाहिए ताकि वह विद्यार्थी को उस दिशा में अग्रसर कर सके।

8. आदर्शवाद के अनुसार छात्र मनस अथवा आत्मा है। उसका शरीर भी है। परन्तु उसका वास्तविक स्वरूप शरीर की सीमाओं को लाँघ जाता है। वह अपूर्ण है। परन्तु वह पूर्णता की ओर निरन्तर अग्रसर होता जा रहा है। वह जन्म से न अच्छा होता है न बुरा। प्रत्येक बालक में जन्म से अन्तःकरण को भोजन मिलता है, और बालक को सद् तथा शुभ की ओर प्रेरित किया जाता है।

9. आदर्शवादी शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य है–

(क) उचित वातावरण प्रदान कर, उनकी इच्छा शक्ति का विकास करना।

(ख) जिससे उनके व्यक्तित्व का विकास हो सके।

(ग) नैतिक और आध्यात्मिक प्रशिक्षण

(घ) आध्यात्मिकता का विकास– बच्चे को आध्यात्मिक स्व की अनुभूति कराना, जहाँ वह ईश्वर के साथ एकाकार कर सके।

10. (क) ये वास्तविकता और ईश्वर के अस्तित्व की बात करते हैं, लेकिन किसी ने इसे प्रमाणित नहीं किया है।

(ख) शिक्षक को विद्यार्थी से ज्यादा महत्व दिया गया है।

(ग) ये शारीरिक क्रिया–कलापों की तुलना में सोचने को ज्यादा महत्व देते हैं।

(घ) ये बच्चे के वर्तमान को नकारकर उसे सिर्फ भावी जीवन के लिए तैयार करता है।

11. प्रकृतिवाद पाश्चात्य दर्शन का वह सम्प्रदाय है; जो चरमसत्ता को प्रकृति में निहित मानता है। प्रकृति को ईश्वर से अलग करता है, पदार्थ को आध्यात्म से श्रेष्ठ मानता है तथा प्रकृति के अपरिवर्तनशील नियमों को श्रेष्ठ मानता है।

12. प्रकृतिवाद के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित है–

(क) यह ब्रह्माण्ड एक प्राकृतिक रचना है।

(ख) यह भौतिक संसार ही सत्य है। इसके अतिरिक्त कोई आध्यात्मिक संसार नहीं है।

(ग) आत्मा पदार्थजन्य चेतना तत्व है।

(घ) मानव विकास एक प्राकृतिक क्रिया है।

(ङ) मनुष्य संसार की सर्वश्रेष्ठ रचना है।

(च) मनुष्य जीवन का उद्देश्य सुखपूर्वक जीना है।

(छ) सुखपूर्वक जीवन जीने के लिए प्राकृतिक जीवन उत्तम है।

(ज) प्राकृतिक जीवन मे सामर्थ्य, समायोजन, और परिस्थितियों पर नियन्त्रण का महत्व है।

13. प्रकृतिवादियों के अनुसार पुस्तकीय ज्ञान वास्तविक शिक्षा नहीं है। वरन् वास्तविक शिक्षा वह है, जो मनुष्य को उसकी प्रकृति के अनुकूल विकास करने एवं जीवन को सुखमय बनाने में सहायता करती है। दूसरे शब्दों में शिक्षा व्यक्ति का बाह्य पर्यावरण के साथ समायोजन है।

14. प्रकृतिवादियों के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित लक्ष्य है–

(क) मूल प्रवृत्तियों का मार्गान्तीकरण और उदात्तीकरण।

(ख) जीवन संघर्ष के लिए शक्ति एवं योग्यता का विकास।

(ग) मनुष्य को पर्यावरण के अनुकूल बनाना।

(घ) मनुष्य को प्राकृतिक जीवन जीने योग्य बनाना।

15. हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार करना है, जिसके लिए उसे पाँच प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं इसी के अनुकूल पाठ्यक्रम होना चाहिए।

(क) आत्मरक्षा के कार्य– स्वास्थ्य, विज्ञान

(ख) जीविकोपार्जन के कार्य– भाषा, गणित, भूगोल तथा पदार्थ विज्ञान

(ग) वंश वृद्धि एवं शिशु रक्षा सम्बन्धी कार्य– शरीर विज्ञान, बाल मनोविज्ञान तथा गृहविज्ञान

(घ) सामाजिक तथा राजनैतिक कार्य– इतिहास, समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र।

(ङ) अवकाश के समय सदुपयोग के कार्य– साहित्य, संगीत, कविता तथा कला।

प्रकृतिवादियो के अनुसार पाठ्यचर्चा के विभिन्न विषयों को वैसा ही महत्व देना चाहिए जैसा कि जीवन में उनसे सम्बन्धित व्यवसायों का होता है।

16. प्रकृतिवादियों के अनुसार मुख्य शिक्षण विधियाँ निम्नलिखित है।
   (क) स्व– अनुभव द्वारा सीखना
   (ख) भाषा शिक्षण के लिए प्रत्यक्ष विधि
   (ग) शब्दों से तभी सीखना चाहिए जब स्व – अनुभव से सीखना संभव न हो।
   (घ) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शिक्षा
   (ङ) सरल से जटिल की ओर, ज्ञान से अज्ञान की ओर मूर्त से अमूर्त की ओर, अनिश्चित से निश्चित की ओर चलकर शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।
   (च) खोज विधि तथा डाल्टन विधि।
   (छ) भूगोल शिक्षण की निरीक्षण विधि।
   (ज) खेल द्वारा शिक्षा इत्यादि।

17. प्रकृतिवाद में प्रकृति की गोद विद्यालय है। अर्थात् विद्यालय ऐसा होना चाहिए जहाँ बच्चों को अपना स्वाभाविक विकास करने हेतु स्वतन्त्र पर्यावरण मिले। ये विद्यालय की समय–सारिणी का विरोध करते हैं। कार्य करने के लिए प्रकृति स्वयं समय का निर्धारण करती है। विद्यालय में किसी प्रकार के बाहरी नियन्त्रण को ये स्थान नहीं देते। स्वशासन इनका नारा है। विद्यालय की पूरी व्यवस्था में बच्चों का हाथ। सहशिक्षा वाले विद्यालय को समर्थन। परीक्षा की समाप्ति का स्थान मुख्य है।

18. प्रकृतिवाद के निम्नलिखित गुण हैं–
   (क) बाल मनोविज्ञान का विकास।
   (ख) समाज एवं मनुष्य के वैज्ञानिक अध्ययन पर बल।
   (ग) शिक्षा में प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों पर बल।
   (घ) शिक्षा में वैज्ञानिक अध्ययन पर बल।
   (ङ) बाल केन्द्रित क्रिया–कलापों को शिक्षा में स्थान।
   (च) स्कूल में अनुशासन के सम्प्रत्य में परिवर्तन।

19. प्रकृतिवादी सिर्फ इन्द्रियानुभूत ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान मानते हैं। प्रकृतिवादियों ने लोगों को विज्ञान से सम्बन्धित विषयों भौतिकी, रसायनशास्त्र, जीव विज्ञान, खगोल विज्ञान आदि में प्रायोगिक कार्यों के समीप आने के लिए अभिप्रेरित किया। जिससे बहुत सारे नये खोज और आविष्कार सामने आये। इसी को शिक्षा में वैज्ञानिक प्रवृत्ति कहा गया।

20. आदर्शवाद और प्रकृतिवाद में निम्न अन्तर है—

आदर्शवाद	प्रकृतिवाद
(1) आध्यात्मिक जगत को सत्य मानता है।	(1) प्राकृतिक जगत को सत्य मानता है
(2) शिक्षा पद्धति में शिक्षक का स्थान मुख्य है।	(2) शिक्षा पद्धति में छात्र का महत्वपूर्ण स्थान है।
(3) प्रभाववादी अनुशासन	(3) मुक्त अनुशासन
(4) विचारों को सत्य मानते हैं।	(4) पदार्थ को सत्य मानते हैं।

21. (क) यह एक पक्षीय और अपूर्ण है। यह बताता है कि क्या नहीं करना चाहिए, लेकिन क्या करना चाहिए, इसकी कोई बात नहीं होती।

(ख) यहाँ उपलब्धि के मूल्यांकन का मापदण्ड अनिर्णीत है।

(ग) यह दर्शन लोगों को स्वार्थी और स्वकेन्द्रित बनने की ओर प्रेरित करता है, जो हानिकारक है।

(घ) जीवन के क्षेत्र को सीमित करता है।

(ङ) छात्र के वर्तमान आवश्यकता पर बल देता है।

8.28 — कुछ उपयोगी पुस्तकें

पाण्डेय, रामशकल ; शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि

पाण्डेय राम शकल. ; शिक्षा दर्शन

चौबे एस0 पी0 ; भारतीय शिक्षा दर्शन

लाल रमन बिहारी ; शिक्षा दर्शन

ओड़ एल0 के0 ; शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि

रथ आर0 आर0 ; शिक्षा का दार्शनिक आधार

शुक्ला रमा ; शिक्षा का दार्शनिक आधार

Bereday (1969) ; *Exssays on world Education, The Crisis of Supply and Demand.* Oxford University Press, New Yark.

Bombwall K.R. (ed); (1968) ; *Aspect of Democratic Government and Politics in India,* Atma Ram & Sons, New Delhi.

Brubacher, John (1950) ; *Modern Philosophies fo Education,* Me Graw-hill book Co. Newyark.

इकाई–9 यथार्थवाद, प्रयोजनवाद और अस्तित्ववाद

सरंचना :

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 यथार्थवाद का अर्थ एवं परिभाषा

9.4 यथार्थवाद के मूल सिद्धान्त

9.5 भारतीय यथार्थवाद

9.6 शिक्षा में यथार्थवाद

9.6.1. यथार्थवाद तथा शिक्षा के उद्देश्य

9.6.2. यथार्थवाद तथा पाठयक्रम

9.6.3. यथार्थवाद तथा शिक्षण विधि

9.6.4. यथार्थवाद तथा शिक्षक

9.6.5. यथार्थवाद तथा छात्र

9.6.6. यथार्थवाद तथा अनुशासन

9.7 भारतीय शिक्षा तथा यथार्थवाद

9.8 यथार्थवाद की समीक्षा

9.9 प्रयोजनवाद

9.10 प्रयोजनवाद का दार्शनिक दृष्टिकोण

9.11 प्रयोजनवाद के रूप

9.12 प्रयोजनवाद के सिद्धान्त

9.13 प्रयोजनवाद व शिक्षा

9.13.1 प्रयोजनवाद में शिक्षा के उद्देश्य

9.13.2 प्रयोजनवाद में शिक्षण विधि

9.13.3 प्रयोजनवाद में पाठ्यक्रम

9.13.4 प्रयोजनवाद में बालक

9.13.5 प्रयोजनवाद में अनुशासन

9.13.6 प्रयोजनवाद में विद्यालय

9.14 प्रयोजनवाद की समीक्षा
9.15 अस्तित्ववाद
9.16 अस्तित्ववाद का शैक्षिक निहितार्थ
9.16.1 अस्तित्ववाद में शिक्षा के लक्ष्य
9.16.2 अस्तित्ववाद में छात्र संकल्पना
9.16.3 अस्तित्ववादी शिक्षक
9.16.4 अस्तित्ववाद और विद्यालय
9.16.5 अस्तित्ववाद में शिक्षण विधि
9.17 भारतीय परम्परा में अस्तित्व
9.18 अस्तित्ववाद की समीक्षा
9.19 सारांश
9.20 अभ्यासकार्य
9.21 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.22 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

वस्तुवादी विचारधारा के रूप में प्रचलित यथार्थवाद मध्यकालीन दर्शन के आदर्शों की अनुपयोगिता एवं वैज्ञानिक प्रवृत्तियों के विकास के फलस्वरुप 17वीं शताब्दी में यथार्थवाद जैसे दार्शनिक विचारों का जन्म हुआ क्योंकि इसके पूर्ववर्ती सभी आदर्श लगभग महत्वहीन हो चुके थे इसका मुख्य कारण उनका मानव जीवन में उपयोगी न होना माना जाता है। वे मनुष्य की साधारण आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम नहीं थे। अतः मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक के पश्चात एक (ISM) 'वाद' का जन्म होता रहा। मध्य युग में पुनर्जागरण काल (Renaissance Period) का जन्म हुआ। यह ऐसा काल है जहाँ मानवतावाद को प्रोत्साहन मिला यह काल मानवतावाद के विकास तथा मानव जाति के उन्नति का काल था। उपर्युक्त के विकास हेतु यूनानी तथा रोमन साहित्य का अध्ययन आवश्यक समझा गया। पुर्नजागरण काल के पश्चात मानवतावाद का जन्म हुआ मानवतावादी दार्शनिकों ने यूनानी तथा रोमन साहित्य को मानवतावादी साहित्य का नाम दिया। इस प्रकार की शिक्षा मानवतावादी शिक्षा के नाम से प्रसिद्ध हुई। शिक्षा केवल लेखन शैली तथा व्याकरण

की शिक्षा ग्रहण करने तक ही सीमित होकर रह गयी व्याकरण की शिक्षा प्राप्त करना 'सिसरो' की लेखन शैली उपनांना जीवन के आदर्श बनते गये अस्तु मानवतावाद 'सिसरोवाद' में परिवर्तित हो गया। अतः पुस्तकीय एवं अव्यावहारिक ज्ञान शिक्षा का उद्देश्य हो गया। इसके बाद सुधारवाद (Period of Reformation) का जन्म हुआ। यह भी एक निश्चित विचारों तथा नियमों के प्रतिपादन तक ही सीमित रहा। मानवतावाद और सुधारवाद से मनुष्यों का बुद्धि और विवेक में विश्वास बढ़ गया वे हर वस्तु की वास्तविकता को अपने बुद्धि और विवेक द्वारा समझने की कोशिश करने लगे जिसके परिणाम स्वरुप मनुष्यों में स्वतन्त्र विचारों की भावना जागृत हुई मनुष्य अब हर एक वस्तु के यथार्थ, रूप को समझने का प्रयत्न करने लगा। इस प्रकार यथार्थवाद की खोज आरम्भ हुई। यह युग नये–नये आविष्कार व नये–नये खोजों का काल था। कोपरनिक्स, गैलेलियो, न्यूटन, जाँन केपलर, वेकर आदि इस युग के वैज्ञानिक थे। इनके अनुसंधानों ने मानव की सोच को बदलने के लिए बाध्य कर दिया। अतः यथार्थ की खोज में विज्ञान सहायक हुआ। उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि भौतिक दार्शनिकता तथा वैज्ञानिक प्रवृत्ति के अर्न्तसम्बन्धों के फलस्वरुप यथार्थवाद का जन्म हुआ।

यथार्थवाद किसी एक दार्शनिक विचारधारा का नाम न होकर उन सभी विचारों का प्रतिनिधित्व करता है, जो यह मानते हैं कि वस्तु का अस्तित्व स्वतन्त्र रूप से है। आदर्शवादी यह मानता है कि 'वस्तु' का अस्तित्व हमारे ज्ञान पर निर्भर करता है। यदि यह विचार सही है तो वस्तु की कोई स्थिति नहीं है। इसके विपरित यथार्थवादी यह मानते हैं कि वस्तु का स्वतन्त्र अस्तित्व है। चाहे वे हमारे विचारों में हो या नहीं। वस्तु तथा उससे सम्बन्धित ज्ञान दोनों अलग–अलग सत्ता है। संसार में अनेक ऐसी वस्तुएँ है जिनके सम्बन्ध में हमें जानकारी नहीं है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे अस्तित्व में है ही नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि वस्तु की स्वतन्त्र स्थिति है। हमारा ज्ञान हमको उसकी स्थिति से अवगत कराता है, परन्तु उसके बारे में हमारा ज्ञान न होने से उसका अस्तित्व नष्ट नहीं हो जाता। ज्ञान प्राप्ति के साधन के विषय में यथार्थवादी प्रयोजनवाद के समान वैज्ञानिक विधि को सवोत्तम विधि मानता है और निगमन विधि का आश्रय लेता है।

नवीन दार्शनिक विचारधारा के रूप में प्रचलित प्रयोजनवादी दर्शन आधुनिक काल की महत्वपूर्ण विचारधारा है। सुप्रसिद्ध दार्शनिक विलियम जेम्स इसके प्रवर्तक थे– तत्पश्चात जॉन ड्यूबी, तथा शिलर इनके प्रमुख समर्थक हुए। बेकन और लॉक इसके विचारक थे। शिक्षा के क्षेत्र में अमेरिकन दार्शनिक एवं शिक्षाशासी जॉन ड्यूबी ने सर्वप्रथम इसका प्रयोग किया। आधुनिक युग में प्रयोजन वन्दी विचारधारा अमेरिकी रहन–सहन तथा विचारों की परिणति है। 16 वीं 17 वीं शताब्दी के धार्मिक आन्दोलन, असहिष्णुता तथा विद्रोह के फल स्वरुप यूरोपीय देशों विशेष कर इंग्लैड के लोगों का

अमेरिका में प्रव्रजन के परिणामस्वरूप इनकें समक्ष उत्पन्न कठिनाईयों ने इनके समाधान हेतु उन्हें सोचने के लिए विवश कर दिया। उन्हें एक नये आदर्श की आवश्यकता पड़ी। अतः उन्होने एक ऐसी विचारधारा को जन्म दिया। जिसका अनुसरण कर वे नई–नई तथा कठोर परिस्थितियों का सामना कर सकें। दूसरे शब्दों में कुछ पूर्व निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर वहाँ के जीवन की रूप रेखा नहीं बदली बल्कि जीवन की वास्तविकता तथा नई–नई परिस्थितियों ने नये जीवन दर्शन को जन्म दिया। परिणामतः दर्शन जीवन को नहीं बदल सका इसके प्रत्युत्तर में जीवन के आधार पर दर्शन बदल गया। यह नई विचारधारा ही प्रयोजनवाद के नाम से जानी जाती है।

अस्तित्ववाद बीसवीं शताब्दी के संकट का दर्शन है। तत्कालीन समाज के अनुरूप जीवन के सैद्धान्तिक पक्षों का प्रतिपादन अस्तित्ववाद में मिलता है। मनुष्य का स्व के प्रति उदासीनता संकट को जन्म देती है। अस्तित्ववाद 'स्व' के प्रति चेतना को जागृत करने का दर्शन है। अस्थिर समाज में मनुष्य अपने नैतिक निर्णय के अन्तर्द्वन्द में फँसा रहता है। जिसके कारण वह अपने अन्तर्निहीत ज्ञान का भी प्रयोग नहीं कर पाता है। परम्पराओं और नैतिक मूल्यों से विहीन समाज की अस्थिरता मूल्यों को धराशायी कर देती है जिसके परिणाम स्वरुप नैतिक निर्णय सही ढ़ंग से संभव नही हो पाता। संकट के इस अंग की अस्तित्वाद में विस्तृत समीक्षा है।

संकट का एक अन्य उदाहरण वर्तमान मशीनी युग, एवं भीड़ के साथ लोकतन्त्र, फासिज्म तथा समाजवाद की सामूहिक भावना है जिससे व्यक्तित्व का लोप हो रहा है, जिसका आस्तित्ववादी दर्शन विरोध करता है। इनका मानना है कि अल गाव एवं विच्छिन्नता की भावना समाज में संकट को जन्म देता है। अस्तित्ववाद इन भावनाओं की विस्तार से चर्चा करता है।

अस्तित्ववाद पूर्व प्रचलित परम्परागत दर्शनों में वर्णित सर्वव्यापी सारतत्व को खोजने से इतर 'अस्तिव' का प्रश्न करता है। मनुष्य क्या है? इसका उत्तर ढूँढ़ने के पूर्व मनुष्य के अस्तित्व का उत्तर ढूँढ़ना आवश्यक है। अतः अस्तित्व के पश्चात ही सारतत्व की चर्चा करना तर्क संगत है क्योंकि सारतत्व पर ही मनुष्य क्या बनता है की निर्भरता स्थित है। अस्तित्ववाद सारतत्व विषयक प्रश्नों से अलग हटकर मनुष्य के अस्तित्व को जानने का प्रयास करता है। उनके अनुसार केवल मनुष्य है, जिसका अस्तित्व है, किसी विशिष्ट वस्तु होने के पूर्व सबसे पहले उसका अस्तित्व है।

शिक्षा के क्षेत्र में यह विचारधारा यह मानती है कि मनुष्य जो बनना चाहे उसके लिए वह स्वतन्त्र है। उसे चयन की स्वतन्त्रता है। अपने चयन का पूरा दायित्व उसका है। अस्तित्ववादी शिक्षा के द्वारा उपर्युक्त मूल्यों के विकास पर जोर देते हैं। अर्थात शिक्षा

के द्वारा बालक को स्वतन्त्र बनाना है, जिससे कि व अपने जीवन के सम्बन्ध में पराधीन रहकर 'स्व' (अपनी) नियति का निर्धारण कर सके।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनो परान्त आप इस योग्य हो जायेगें कि:

- दर्शन के यथार्थवादी सम्प्रदाय में प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली के अनुप्रयोगों का विश्लेषण कर सकेगें।
- शिक्षा में यथार्थवाद को पाभिाषित कर सकेगें।
- यथार्थवाद के मूल सिद्धान्तों से परिचित हो सकेंगें।
- यथार्थवाद में वर्णित शैक्षिक निहितार्थों को जान सकेगें।
- यथार्थवाद के पाठयक्रम को जान सकेगें।
- यथार्थवादी कार्यक्रम एवं शिक्षण विधि के विषय में चर्चा कर सकेगें।
- यथार्थवादी शिक्षा में शिक्षक की भूमिका को स्पष्ट कर सकेगें।
- यथार्थवादी शिक्षा में छात्र के महत्व को बता सकेगें।
- यथार्थवादी अनुशासन की व्याख्या कर सकेगें।
- यथार्थवादी शिक्षा की विशेषताओं को जान सकेगें।
- यथार्थवादी शिक्षा का मूल्याकन कर सकेगें।
- प्रयोजनवाद को परिभाषित कर सकेगें।
- प्रयोजनवाद के दार्शनिक दृष्टिकोण को जान सकेगें।
- प्रयोजनवाद के विभिन्न रूपों को जान सकेगें।
- प्रयोजनवाद शिक्षा के उद्देश्य को जान सकेगें।
- प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम और शिक्षण विधि का उल्लेख कर सकेगें।
- प्रयोजनवादी तथा छात्र के सम्बन्ध का वर्णन कर सकेगें।
- प्रयोजनवाद में शिक्षा की भूमिका बता सकेगें।
- प्रयोजनवाद में अनुशासन की अवधारणा की व्याख्या कर सकेगें।
- प्रयोजनवादी अनुशासन की व्याख्या कर सकेगें।
- प्रयोजनवाद में विद्यालय की अवधारणा बता सकेगें।
- प्रयोजनवाद का मूल्यांकन कर सकेगें।
- अस्तित्वाद को पारिभाषित कर सकेगें।

- अस्तित्वाद में छात्र संकल्पना को जान सकेगें।
- अस्तित्वादी शिक्षा में शिक्षक की भूमिका को स्पष्ट कर सकेगे।
- अस्तित्वादी शिक्षण विधि का उल्लेख कर सकेगें।
- अस्तित्वादी विद्यालय को व्याख्यायित कर सकेगे।

9.3 यथार्थवाद का अर्थ एवं परिभाषा

यथार्थवाद– अंग्रेजी भाषा के शब्द– (Realism) का हिन्दी रूपान्तर है। 'REAL' शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के 'RES' शब्द से मानी जाती है, जिसका अर्थ वस्तु है। अतः 'REALISM' का शाब्दिक अर्थ है 'वस्तु सम्बन्धी विचारधारा'। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि– 'यथार्थवाद' वस्तु के अस्तित्व सम्बन्धी विचारों के प्रति एक दृष्टिकोण है। जो प्रत्यक्ष जगत को सत्य मानता है। यह विचारों और सिद्धान्तों की अपेक्षा वस्तुओं और घटनाओं की विचारों और सिद्धान्तों की अपेक्षा वस्तुओं और घटनाओं की वास्तविकता पर बल देते हैं।

यथार्थवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसका बीजारोपण मानव मस्तिष्क में प्राचीन काल में ही हो गया था, जबकि वह अपने चारो ओर के वातावरण की वस्तुओं से प्रभावित होकर उन्हीं को यथार्थ मान लेता है। बटलर के अनुसार– ''बहुत बड़ी संख्या में व्यक्तियों के लिए संसार निर्विवाद यथार्थ है। यदि उसकी यथार्थता के सम्बन्ध में पूछा जाय तो शीघ्र ही उत्तर प्राप्त होगा कि वास्तव में यह जगत यथार्थ है। अज्ञात क्रिया एवं उपयुक्ति के अकृत्रिम क्षणों में हम सभी जगत के बाह्य रूप को स्वीकार करते हुए यही मनोवृत्ति धारण करेगें। यहाँ तक कि आदर्शवादी विचारक अपने अनाधिकृत क्षणों में इस प्रकार की अकृत्रिमता के दोषी हैं। ऐसा यथार्थवादियों का कथन है– यथार्थवाद जैसा यह संसार है वैसा ही सामान्यतः उसे स्वीकार करता है।''

जहाँ तक यथार्थवाद के वैज्ञानिक स्वरूप का प्रश्न है, उसके विषय में हम यह कह सकते हैं कि जिस यथार्थवादी विचारधारा का बहुत पहले मानव मस्तिष्क में अचेतन रूप में बीजारोपण हो गया था, उसका सूत्रपात 16वीं शताब्दी के अन्त में हुआ जिसकी चरम परिणति 17वीं शताब्दी में हुई।

यथार्थवाद किसी एक सुसंगठित दार्शनिक विचारधारा का नाम न होकर उन सभी विचारों का प्रतिनिधित्व करता है जो यह मानते हैं कि वस्तु का स्वतन्त्र आस्तित्व हमारे ज्ञान पर निर्भर करता है, किन्तु यथार्थवादी विचारक यह मानते हैं कि वस्तु का स्वतन्त्र अस्तित्व है, चाहे वह हमारे अनुभव में हो अथवा नहीं। वस्तु तथा उससे सम्बन्धित ज्ञान दोनों अलग–अलग सत्ताएँ हैं। विश्व में अनेक ऐसी वस्तुएँ हैं, जिनके

विषय में हमें कोई ज्ञान नहीं होता परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे वस्तुएँ अस्तित्व में नहीं हैं। जगत का सम्पूर्ण रहस्य मानव ज्ञान की सीमा में कभी नहीं आ सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि वस्तु की स्वतन्त्र स्थिति है, चाहें मनुष्य को उसका ज्ञान हो अथवा नहीं। व्यक्ति का ज्ञान उसे वस्तु की स्थिति से अवगत कराता है, परन्तु वस्तु की स्थिति का ज्ञान मनुष्य को न हो तो वस्तु का अस्तित्व नष्ट नहीं होता। यथार्थवाद के अनुसार हमारा अनुभव स्वतन्त्र न होकर बाह्य पदार्थों के प्रति प्रतिक्रिया का निर्धारण करता है। अनुभव बाह्य जगत से प्रभावित है, और बाह्य जगत का वास्तविक सत्ता है। यथार्थवाद के अनुसार मनुष्य को वातावरण का ज्ञान होना चाहिए। उसे यह पता होना चाहिए कि वह वातावरण को परिवर्तित कर सकता है अथवा नहीं। इसी ज्ञान के अनुसार उसे कार्य करना चाहिए।

अपने विकास के क्रम में यथार्थवाद प्राचीन काल से आधुनिक काल के मध्य अनेक रूपों में उपस्थित हुआ। प्राचीन यथार्थवाद सृष्टि के दो रूपों का समर्थन करता है जैसे–

(1) प्राकृतिक व्यवस्था की सृष्टि, जिसमें परिवर्तन संभव है।

(2) दैवीय व्यवस्था की सृष्टि, जिसमें परिवर्तन की कोई सम्भावना नहीं है। इस प्रकार बौद्धिकतावादी यथार्थवाद ने द्वैतवाद का समर्थन किया है। बौद्धिकतावादी यथार्थवाद के अनुसार दैवी जगत में कोई परिवर्तन नहीं होता। इसलिए वहाँ शिक्षा का कोई प्रश्न ही नहीं। सीखना केवल प्राकृतिक जगत में ही संभव है, दैवीय जगत में नहीं। यथार्थवाद का नवीन रूप वैज्ञानिक यथार्थवाद है। वैज्ञानिक यथार्थवादियों ने दर्शन की समस्याओं को सुलझाने में विशेष रूचि नहीं प्रदर्शित की। उनके अनुसार यथार्थ प्रवाहमय है। यह परिवर्तनशील है, इसके किसी निश्चित रूप को जानना असंभव है। अतः यह परिकल्पित करता है कि यथार्थ मानव मन की उपज नहीं है। सत्य मानव मस्तिष्क की देन है। 'यथार्थ मानव मस्तिष्क के परे की वस्तु है। उस यथार्थ के प्रति दृष्टिकोण। विकसित करना सत्य कहा जायेगा।' जो सत्य यथार्थ के जितना निकट होगा वह उतना ही यथार्थ सत्य होगा।

यथार्थवाद की कुछ परिभाषाएँ नीचे दी जा रही हैं जिनके माध्यम से यथार्थवादी विचारधारा को स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है। जो निम्न है –

1. **'नेफ' के अनुसार** ''यथार्थवाद आत्मगत आदर्शवाद का प्रतिकार है, जो सत्य का निवास मानव मस्तिष्क में मानता है। सब यथार्थवादी इस बात से सहमत हैं कि सत्य और वास्तविकता का अस्तित्व है और रहेगा। भले ही किसी व्यक्ति को उसके अस्तित्व का ज्ञान न हो।''

2. **'स्वामी रामतीर्थ' के अनुसार** ''यथार्थवाद का अर्थ व विश्वास या सिद्धान्त है, जो जगत को वैसा ही स्वीकार करता है जैसा कि हमें दिखाई देता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'यथार्थवाद' दर्शनशास्त्र की वह शाखा है, जो यह स्वीकार करता है कि, प्रत्येक वस्तु का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। चाहे वह हमारे ज्ञान की परिधि में हों अथवा न हों। यह मूलतः भारतीय दर्शन है एवं इसकी उत्पत्ति न्याय व वैशेषिक दर्शन जिसके प्रतिवादक गौतम मुनि थे से मानी जाती है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी–(क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान किजिए।

1) यथार्थवाद क्या है? यथार्थवाद को परिभाषित कीजिए।

____

____

____

9.4 यथार्थवाद के मूल सिद्धान्त

यथार्थवादी विचारधारा यह स्वीकार करती है कि जो कुछ हम देखते हैं, अथवा जो कुछ हमारे सामने है, वही सत्य है। दूसरे शब्दों में केवल प्रत्यक्ष जगत ही सत्य है। वह अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता है। हमारा ज्ञान प्रत्यक्ष पदार्थों पर ही आधारित होता है। इस प्रकार यथार्थवाद (Realism) भौतिकवाद (Materialism) पर निर्भर है जिसके अनुसार केवल भौतिक जगत ही सत्य है। यथार्थवाद ने वास्तविकता, व्यवहारिकता, क्रिया, यथार्थ तथा लौकिक जीवन को महत्वपूर्ण माना है। यथार्थवाद ने 'सिद्धान्त तथा शब्द' की अपेक्षा 'वस्तु अथवा पदार्थ' की वास्तविकता पर बल दिया है। अतः यथार्थवाद के निम्न सिद्धान्त हैं

– 1. दृश्य जगत ही सत्य है।

2. आंगिक सिद्धान्त– प्रसिद्ध यथार्थवादी 'ह्वाइटहेड' का विचार है कि संसार की चर–अचर प्रत्येक वस्तु समष्टि का एक अंग है।

3. इन्द्रियाँ ज्ञान के द्वार हैं– यथार्थवादियों के अनुसार सच्चे ज्ञान की प्राप्ति केवल इन्द्रियों द्वारा ही होती है।

4. वस्तु जगत में नियमितता

5. यथार्थवाद परालौकिक को अस्वीकार करता है।

6. मानव के वर्तमान और व्यावहारिक जीवन पर बल देता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–(क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

2) यथार्थवाद के 5 आधारभूत सिद्धान्त कौन से हैं?

1. ____________________

2- ____________________

3- ____________________

4- ____________________

5- ____________________

9.5 भारतीय यथार्थवाद

भारतीय दर्शन में न्याय एवं वैशेषिक दर्शन यथार्थवाद के समकालीन माने जाते हैं। न्याय दर्शन के प्रवर्तक गौतम थे जो अक्षपाद के नाम से भी प्रसिद्ध थे। न्याय दर्शन में तार्किक आलोचना का आश्रय लिया गया है। अन्य सभी भारतीय दर्शन की भाँति न्याय दर्शन का उद्देश्य भी मोक्ष प्राप्ति है। किन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है। न्याय दर्शन में प्रमाण का विशेष महत्व है। यह दर्शन जीवन की समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रमाणों द्वारा किसी विषय की परीक्षा करता है। जिसके द्वारा प्रभा की उत्पत्ति होती है, उसे प्रमाण कहते हैं। प्रभा का अर्थ है–

यथार्थ ज्ञान अथवा यथार्थ अनुभव न्याय दर्शन के अनुसार यथार्थ ज्ञान चार उपायों से प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए प्रमाण भी चार माने गये हैं। यथा प्रत्यक्ष, अनुमान उपमान एवं शब्द। जो अनुभव इन्द्रियों के संयोग से प्राप्त होता है और जिसके

विषय में सन्देह का अभाव होता है तथा जो यथार्थ भी होता है उसे 'प्रत्यक्ष' कहते हैं। किसी हेतु अथवा लक्षण के ज्ञान से उस हेतु को धारण करने वाले पदार्थ का ज्ञान करना 'अनुमान' कहलाता है। 'उपमान' के द्वारा नाम एवं नामी का सम्बन्ध जाना जाता है। 'गवय' अथवा नील गाय, सामान्य गाय के समान होती है। इसको सुनकर जब कोई व्यक्ति गो' अर्थात् सामान्य गाय के समान पशु को नीलगाय समझने लगता है तब उसे 'उपमान' द्वारा प्राप्त ज्ञान कहा जाता है। चार्वाक दर्शन में उपमान को प्रमाण स्वीकार नहीं किया गया है। 'शब्द' न्याय दर्शन के अनुसार अन्तिम प्रमाण है। शब्दों एवं वाक्यों से हम पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह ज्ञान शब्द प्रमाण द्वारा होता है। इसलिए कहा गया है – आप्तोपदेशः शब्दः अर्थात यथार्थ का ज्ञान रखने वाले पुरूष का वचन ही शब्द प्रमाण है। वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय एवं अभाव इन सात पदार्थों पर विचार किया है। न्याय एवं वैशेषिक को यहाँ यथार्थवादी कहा गया है किन्तु दोनों ही मुक्ति पर विश्वास करते हैं। अपने विवेचन में यह यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हैं, इसीलिए इन्हें यथार्थवाद कहा गया है। जैन दर्शन का स्यादवाद भी यथार्थवादी माना गया है। स्यादवाद सहिष्णुता एवं विनीतता का मार्ग है जो हमें छात्रों मे जनतंत्रात्मक मनोवृत्ति का विकास करने की प्रेरणा देता है, साथ ही दूसरों के विचारों को सुनना, दूसरे के रीति रिवाजों को समझना तथा लोकतंत्र के संचालन की भी शिक्षा देता है। भारतीय यथार्थवाद जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने का परार्श देता है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ईश्वर, आत्मा इत्यादि को यह अनावश्यक बताता है।

9.6 शिक्षा में यथार्थवाद

यथार्थवाद का जन्म सत्रहवीं शताब्दी में हुआ था। यथार्थवाद के प्रादुर्भाव के दो प्रमुख कारण थे – प्रथम, प्राचीनकाल से चली आने वाली आदर्शवादी विचारधारा का 16वीं शताब्दी तक आडम्बरपूर्ण एवं खोखला हो जाना तथा द्वितीय, विज्ञान का विकास। सोलहवीं शताब्दी तक लगभग सभी प्राचीन तथा मध्यकालीन आदर्श महत्वहीन हो चुके थे। उनमें किसी का विश्वास न था क्योंकि वे वर्तमान मानव जीवन के लिए उपयोगी नहीं थे। वे मनुष्य की सामान्य आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ थे। वे मानसिक विकास तो कर सकते थे किन्तु मनुष्यों में क्रियाशीलता एवं व्यावहारिकता उत्पन्न नहीं कर सकते थे। प्राचीन आदर्श समय की माँग को पूरा करने में असमर्थ थे, इसलिए मनुष्य ऐसे आदर्श की माँग करने लगा जो वास्तविक जीवन व्यतीत करने में सहायक हो। परिणाम स्वरूप मध्यकाल में मठवाद एवं विद्वद्वाद के बाद पुनरूत्थान काल का जन्म हुआ।

पुनरूत्थान काल के इस युग में मनुष्य में एक ऐसी लहर उत्पन्न हो गयी कि परलोक के बजाय मानवीय गुणों का विकास करना मानव जाति का प्रधान लक्ष्य हो

गया। इसके परिणामस्वरूप 'मानवतावाद' का प्रादुर्भाव हुआ और धीरे–धीरे मानवतावाद सिसरोवाद में परिवर्तित हो गया क्योंकि सिसरों की लेखन शैली अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य बन गया। इसके उपरान्त – 'सुधारकाल' का जन्म हुआ। मानवतावाद एवं सुधारवाद के परिणाम स्वरूप मनुष्य 'बुद्धि' एवं 'विवेक' पर आस्था रखने लगा और इनके आधार पर सभी वस्तुओं को समझने का प्रयास करने लगा। उनके विश्वास को और अधिक दृढ़ विज्ञान के विकास ने किया जो यथार्थवाद के जन्म का दूसरा महत्वपूर्ण कारण है। कोपरनिकस, गैलीलियो, न्यूटन, जॉन केपलर, हारवीज, बेकन इत्यादि के शोधों के फलस्वरूप मानव दृष्टिकोण की संकीर्णता एवं अन्ध विश्वास नष्ट हो गये। वैज्ञानिक युग का आरम्भ हुआ और इस युग ने 'बुद्धि' एवं विवेक' को अधिक प्रधानता दी तथा मनुष्य का ध्यान वास्तविकता की ओर आकृष्ट किया। इस प्रकार भौतिक दार्शनिकता एवं वैज्ञानिक प्रवृत्ति के समावेस से यथार्थवाद का जन्म हुआ जो परलोक की सत्ता को अस्वीकार करता है। जिस प्रकार प्रकृतिवाद शिक्षा में कृत्रिमता के विरोध स्वरूप आया, उसी प्रकार यथार्थवाद ने भी पुस्तकीय एवं अनुपयुक्त एवं पाठ्यक्रम का विरोध करते हुए शिक्षा में पदार्पण किया।

यथार्थवाद का तात्पर्य उस विचारधारा से है जो कि उस वस्तु एवं भौतिक जगत को सत्य मानती है, जिसका हम ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। पशु, पक्षी, मानव, जल थल, आकाश इत्यादि सभी वस्तुओं का हम प्रत्यक्षीकरण कर सकते हैं, इसलिए ये सभी सत्य हैं, वास्तविक है। यथार्थवाद यद्यपि आदर्शवाद के विपरीत विचारधारा है किन्तु यह बहुत कुछ प्रकृतिवाद एवं प्रयोजनवाद से साम्य रखती है।

9.6.1 यथार्थवाद तथा शिक्षा के उद्देश्य

मूल्यों के विषय में यथार्थवादी दृष्टिकोण व्यक्तिनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ है, इसलिए यथार्थवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य बालकों को विद्वान बनाना नहीं है क्योंकि विद्वत्ता प्रायः शाब्दिक एवं बौद्धिक स्तर तक रहती है। शैक्षिक उद्देश्य शैक्षिक मूल्य से सम्बन्धित होते हैं, जो जीवन के मूल्यों पर निर्भर है। जिस प्रकार ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण सहायक नहीं होता है, उसी प्रकार मूल्यों की प्राप्ति के लिए भी व्यक्तितिष्ठ दृष्टिकोण की अपेक्षा वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अधिक श्रेयस्कर हाता है। व्यक्ति अपनी इच्छाओं, भावनाओं एवं विचारों को प्रकट करते हैं, जिनका अध्ययन करके मूल्यों का अध्ययन किया जाता है। यथार्थवाद ने शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्यों का निर्धारण किया है –

यथार्थवाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को वास्तविक जीवन की तैयारी में सहायता प्रदान करना है। वास्तविक जीवन की तैयारी का तात्पर्य बालक में उन गुणों का विकास करना है कि जब वह अपने व्यावहारिक जीवन में प्रवेश करें तो जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति का रूप और सामने आने वाली समस्याओं एवं कठिनाइयों का भलीभाँति समाधान कर सके।

शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य छात्रों को मानव समाज का पूर्ण ज्ञान देना है जिससे वह जीवन की सफलता प्राप्त कर सके। मानव प्रकृति, प्रेरणाओं, इच्छाओं, आवश्यकताओं तथा संस्थाओं को भली भाँति समझ सके।

शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को काई तकनीक, विज्ञान, सामान्य ज्ञान राशि तथा कलात्मक सराहना सिखाना है। उसकी शिक्षा के सभी अंग परस्पर एक–दूसरे से प्रभावित होने चाहिये। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तियों का इस प्रकार निर्माण करना है कि वे सामाजिक संस्थाओं में अपना दायित्व निभा सके। वे सामाजिक संस्थायें हैं– परिवार, उद्योग, राज्य, स्वास्थ्य–संरक्षण इत्यादि। फिने ने शिक्षा के दो उद्देश्य निर्धारित किये हैं – (1) भावी समाज की रूपरेखा तैयार करना, (2) उक्त रूपरेखा के अनुरूप व्यक्ति तैयार करना।

यथार्थवादी विचारकों ने आध्यात्मिक धार्मिक तथा ईश्वर भक्ति से सम्बन्धित विकास को भी शिक्षा का उद्देश्य माना है। यथार्थवाद सुधार एवं पुनरूत्थान के आधार पर स्थापित अवश्य हुआ लेकिन इस विचारधारा को प्रभावित करने वाले प्रमुखतया धर्म से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति थे।

यथार्थवाद सफल एवं सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाने का लक्ष्य तो रखता ही है लेकिन इसके साथ–साथ उसका उद्देश्य प्रत्येक छात्र अथवा व्यक्ति को वह अन्तर्दृष्टि देना है, जिससे वह जीवन की इच्छाओं में चुनाव कर सके तथा अपना निर्णय दे सकें।

यथार्थवादी विचारकों के अनुसार शिक्षा उल्लेखनीय उद्देश्य बालक की प्राकृतिक प्रवृत्तियों एवं क्रियाओं का स्वतंत्र विकास करना है। इसके लिए शिक्षा के द्वारा बालक में ऐसी योग्यता का विकास कर देना चाहिए कि वह अपने प्राकृतिक वातावरण पर स्वयं नियन्त्रण कर सके।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरी से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

3) यथार्थवादी शिक्षा के चार उद्देश्य बताइये –

1. ______________________________

____

____

2- ______________________________

____

____

3- ______________________________

4- ______________________________

9.6.2 यथार्थवाद तथा पाठ्यक्रम

यथार्थवादी ज्ञान को अत्यधिक महत्व देते हैं तथा उसे शैक्षिक प्रक्रिया का अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक मानते हैं। यथार्थवाद इस प्रचलित धारणा को पुष्ट करता है कि शिक्षा का अर्थ शिक्षार्थी द्वारा ज्ञान की प्राप्ति है। आदर्शवाद के समान यथार्थवाद भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान की संचित राशि को हस्तान्तरित करने में विश्वास करता है। यथार्थवादी दार्शनिक का विश्वास है कि शिक्षा द्वारा ज्ञान का संरक्षण तथा विकास किया जा सकता है। इसलिए यथार्थवाद के अनुसार पाठ्यक्रम विस्तृत होना चाहिए। छात्रों को उस विस्तृत पाठ्यक्रम में अपनी योग्यता के अनुसार अपने लिए विषय का चुनाव करने का अधिकार होना चाहिए। छात्र के जीवन में जो विषय सर्वाधिक उपयोगी हो, वही उसे पढ़ाना चाहिये। जिस विषय से उनका जीवन सफल हो सके और जिस विषय में वह अधिक योग्यता प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता हो, उसे उसी विषय का अध्ययन करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

छात्र के लिए कौन सा विषय अधिक उपयुक्त है, कौन सा नहीं, इसका निर्णय अकेले छात्र नहीं कर सकता है। उसे उपयुक्त पथ प्रदर्शन मिलना चाहिये। माता–पिता, अभिभावक एवं शिक्षक इस कार्य में उसकी सहायता कर सकते हैं। छात्र का पथ प्रदर्शन करने में इस बात का ध्यान रहे कि विषयों का आपस में सम्बन्ध हो साथ ही समाज की माँग का भी ध्यान रखना चाहिए। समाज की आवश्यकतायें भिन्न–भिन्न प्रकार की होती हैं, सामाजिक परिस्थितियाँ भी भिन्न होती हैं, अतः किसी एक विषय से काम नहीं चल सकता, इसलिए छात्र को अनेक प्रकार की परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिए उसे अनेक विषयों का अध्ययन करना आवश्यक है।

यथार्थवादी विचारक अपने यथार्थवादी पाठ्यक्रमक के अन्तर्गत व्यावसायिक विषयों एवं विज्ञान को मुख्य, भूगोल, कानून, राजनीति इत्यादि को गौण और साहित्य, कला, संगीत आदि को गौणतम स्थान देते हैं। इसके अतिरिक्त वे पाठ्य विषय के अन्तर्गत मातृभाषा को भी प्रमुख स्थान देते हैं, क्योंकि इनके अनुसार वह बालकों के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं के विकास की आधरशिला है।

स्पष्ट है कि यथार्थवादी बालकों को पूर्ण जीवन की तैयारी करने के लिए उन्हें सभी विषयों को पढ़ाना चाहते हैं किन्तु महत्वपूर्ण स्थान व्यवसाय तथा विज्ञान से

सम्बन्धित विषयों को ही देना चाहते हैं। संक्षेप में यथार्थवादी पाठ्य–विषय के अन्तर्गत निम्नलिखित विषय का समावेश करना चाहते हैं– यथार्थवाद ने ज्ञान के लिए वैज्ञानिक, सामाजिक, कला–कौशल, भाषा तथा साहित्य सम्बन्धी विषयों के अध्ययन पर बल दिया है। जीवन के दैनिक व्यवहार में काम आने वाली आधुनिक भाषायें तथा ज्ञानप्रद प्राचीन साहित्य, कलायें, संगीत इत्यादि विषय, कौशल से संबंधित विषय, प्राकृतिक विज्ञान जैसे भौतिक, रसायनिक, जैविक एवं वानस्पतिक इत्यादि, राजनीति विज्ञान, मनोविज्ञान, स्वास्थ्य रक्षा, व्यायाम तथा खेलकूद भ्रमण इत्यादि विषयों को पढ़ाने की वकालत करता है। इसके अतिरिक्त धर्म शिक्षा, गणित, इतिहास, भूगोल तथा नक्षत्र विज्ञान इत्यादि विषयों के लिए यथार्थवादी विचारकों ने अनुमति प्रदान की है।

9.6.3 यथार्थवाद तथा शिक्षण विधि :

यथार्थवादी विचारकों ने ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से शिक्षा देने पर बल दिया है। यथार्थवाद शिक्षा की सामग्री प्रस्तुत करने पर बल देता है। इसमें यथार्थवादी तथ्यों के यथातथ्य रूप में अध्ययन करने पर बल देते हैं, इसीलिए वे शब्दजाल, पक्षपात, वैयक्तिकता आदि से दूर रहना चाहते हैं। इसके स्थान पर विषयगत भावना अथवा वस्तुनिष्ठता के लिए पूर्ण रूपेण बल देता है जिससे शिक्षण–विधि व्यावहारिक एवं उपयोगी हो। इसलिए वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक विधि पर बल दिया जाता है। यथार्थवाद के अनुसार वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करने से न केवल तथ्यों का ज्ञान होगा अपितु शिक्षण अधिक स्वाभाविक, रूचिकर, व्यावहारिक एवं उपयोगी होगा।

यथार्थवाद अपने वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण आगमन एवं निगमन दोनों के संयुक्त प्रयोग पर बल देते हैं। क्योंकि ये विधियों एवं तथ्यों के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकालने एवं निष्कर्ष को प्रमाणित करने में विशेष सहायक होती हैं।

वैज्ञानिक विधि में निरीक्षण, परीक्षण, एवं प्रयोग विधियों के उपयोग पर भी अत्यधिक बल दिया गया है। ये विधियाँ पृथक एवं संयुक्त तथा अन्य पद्धतियों की सहायक के रूप में प्रयोग की जाती है।

इसके साथ ही साथ स्वानुभव विधि के लिए भी यथार्थवादी अपना विचार प्रकट करते हैं। इस कारण वे बालकों को स्वयं पढ़ने के लिए उत्साहित करते हैं। जिसे स्वयं ज्ञान पद्धति अथवा ह्यूरिस्टिक पद्धति कहते हैं।

यथार्थवादी विचारक प्रत्येक वस्तु को अलग–अलग अस्तित्व देते हैं। इन अलग–अलग वस्तुओं को विभिन्न अंगों के रूप में वे देखते हैं और इन्हें जोड़ कर एक नया रूप देते हैं। यथार्थवादियों का विचार है कि इस संश्लेषण में ही 'वास्तविक सौन्दर्य' छिपा है। इसी प्रकार के प्रत्येक विषय को पृथक–पृथक नहीं अपितु उन्हें एक

दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करते हुए शिक्षा देने पर यथार्थवादी बल देते हैं। इसे संश्लेषण एवं सह सम्बन्ध विधि कहा जाता है।

यथार्थवाद के लिए खण्डों का अपना महत्व है। सम्पूर्ण खण्डों का परिणाम होता है। पूर्ण बनाने में खण्ड स्वयं का अस्तित्व समाप्त नहीं कर देते। शिक्षण में भी यथार्थवाद खण्ड से आरम्भ करके छात्र को पूर्ण तक ले जाता है। वह किसी सिद्धान्त को अनेक परिकल्पनाओं में बाँट देता है। इसी प्रकार तथ्यों को सामान्य कथनों में बाँट देता है और वहीं से आरम्भ करता है। यथार्थवाद छात्रों को तर्क पूर्ण ढंग से विचार करके तथ्यों का वर्गीकरण करना सिखाता है। यथार्थवाद छात्रों को तर्क पूर्ण ढंग से विचार करके तथ्यों का वर्गीकरण करना सिखाता है। यदि शिक्षण–विधि का सुचारू रूप से संचालन किया जाय तो एक तथ्य से दूसरा तथ्य स्वतः निकलता चलता है और इस प्रकार शिक्षण विधि स्वतः अध्ययन की विधि बन जाती है।

9.6.4 यथार्थवाद तथा शिक्षक :

यथार्थवादी विचारकों आदर्शवादियों की भाँति शिक्षक को शिक्षा–प्रक्रिया में उच्चतम स्थान नहीं देते हैं किन्तु उनकी आवश्यकता एवं महत्व को स्वीकार अवश्य करते हैं। वे शिक्षक से यह आशा करते हैं कि वे बालक के समक्ष तथ्यों एवं वस्तुओं को वास्तविक रूप में ही रखें जिससे बालक स्वयं अपनी बुद्धि से आवश्यकतानुसार ज्ञान को ग्रहण कर सकें। शिक्षक को तथ्यों एवं वस्तुओं के सम्बन्ध में छात्रों को किसी प्रकार के व्यक्तिगत राय देने से यथार्थवाद मना करता है। यथार्थवाद शिक्षक से मात्र यही चाहता है कि वे बालकों के समक्ष तथ्यों को रख दें और बालकों के लिए ऐसा स्वतंत्र वातावरण सृजित करें कि बालक स्वयं निरीक्षण करके उनके सम्बन्ध में आवश्यक निष्कर्ष प्राप्त कर सकें। यथार्थवाद के अनुसार शिक्षक के परिकल्पना की निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिए –

1. यथार्थवादी शिक्षक व्यक्तिनिष्ठता से ऊपर उठकर वस्तुनिष्ठ मनः स्थिति बनाए रखता है।
2. वह एक वैज्ञानिक है, जिसका विज्ञान में अटूट विश्वास होता है।
3. शिक्षक का स्वयं का दृष्टिकोण वैज्ञानिक होता है तथा छात्रों में भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयत्न करता है।
4. यथार्थवादी शिक्षक शोध एवं अन्वेषण में विश्वास रखता है। उसकी अन्वेषण विधि वैज्ञानिक होती है।
5. यथार्थवादी शिक्षक का विश्वास है कि वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता। वह केवल किसी एक विशिष्ट क्षेत्र में प्रवेश करके गहराई तक अध्ययन कर सकता है।
6. यथार्थवादी शिक्षक मनोविज्ञान में भी आस्था रखता है परन्तु केवल व्यवहारवादी एवं प्रायोगिक मनोविज्ञान में।

7. छात्रों द्वारा अपने वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित कराने के लिए यथार्थवादी शिक्षक अभ्यनुकूलन सिद्धान्त का उपयोग करता है।
8. शिक्षक छात्रों को उस ज्ञान के प्रयोग का पूर्वाभ्यास देना चाहता है जो उसे श्रमिक, उत्पादक अथवा कामगार के रूप में उपयोग में लेना पड़ेगा।

वास्तव में यथार्थवादी शिक्षक वह है जो व्यक्ति का निर्माण करे। एक व्यक्तित्व निर्माता के रूप में वह विद्यार्थी के समक्ष यथार्थ वातावरण ही प्रस्तुत करता है और बालक उसे अपनी बुद्धि एवं आवश्यकतानुसार चुनता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइये।

4) शिक्षक के सम्बन्ध में यथार्थवादी दृष्टिकोण क्या है?

____

____

____

9.6.5 यथार्थवाद तथा छात्र

यथार्थवादी विचारक शिक्षा प्रक्रिया में छात्र को 'केन्द्रीय' स्थान प्रदान करते हैं और शिक्षक से आशा करते हैं कि छात्रों के साथ प्रेम एवं सहानुभूति के व्यवहार को और उनकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं एवं रूचियों के अनुकूल उनसे कार्य करायें तथा उनमें विषयों का ज्ञान विकसित करने के लिए उन्हें उपयुक्त अवसर प्रदान करें। यथार्थवादी दार्शनिकों के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यह है कि बालक अथवा छात्र की वास्तविक प्रवृत्ति को उसकी पूर्णता तक पहुँचा दिया जाये। छात्र ही शिक्षा का महत्वपूर्ण बिन्दु होता है, इसलिए सम्पूर्ण शिक्षा इस प्रकार व्यवस्थित होनी चाहिये कि वह छात्र के व्यक्तित्व में सहायक हो।

यथार्थवाद के अनुसार छात्र एक यथार्थ इकाई है और शिक्षा की प्रक्रिया में उसका आदर होना चाहिए तथा वैज्ञानिक विधियों द्वारा छात्रों का यथोचित विकास होना चाहिए। यथार्थवादी मानते हैं कि छात्र को शिक्षा प्रक्रिया में पूर्ण स्वतंत्र नहीं छोड़ा जा सकता है, इसलिए शिक्षक को उनका सहयोग करना चाहिए। यथार्थवादी विचारकों के अनुसार छात्रों की कुछ विशेषताएँ होती हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. छात्र विवेक से ही सीखकर यथार्थ के निकट पहुँच सकता है।
2. छात्र अपने बुद्धि के विकास के लिए अधिक से अधिक स्वतंत्रता चाहता है।
3. छात्र तथ्यों के आधार पर ही आगे बढ़ता है क्योंकि तथ्य निश्चित होते हैं।

4. छात्र सिद्धान्तों की अपेक्षा वास्तविक ज्ञान एवं उपयोगी व्यवहार पर ज्यादा ध्यान देता है।

5. यथार्थवाद छात्र को यथार्थ जगत का प्राकृतिक प्राणी मानता है न कि आदर्शवादियों के समान केवल विचार की अभिव्यक्ति। इसलिए वह छात्र को देवता नहीं मानता। वह छात्र के सामाजिक सामन्जस्य तथा उसके व्यवहार को महत्व देता है।

इस प्रकार जो शिक्षक छात्र संबंधी इस संकल्पना को स्वीकार करता है, वह अपने छात्रों को दिक्–काल युक्त जगत् में उपयुक्त सम्बन्ध स्थापित करने के कार्य में संलग्न करता है। यथार्थवाद छात्रों को इस जगत से पलायन नहीं सिखाता अपितु इस जगत की वास्तविकताओं का सामना करने के लिए तैयार करता है।

9.6.6 यथार्थवाद तथा अनुशासन

विद्यालय को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए अनुशासन की महती आवश्यकता होती है। इसलिए अनुशासन के प्रति अधिकारियों, शिक्षकों एवं छात्रों के दृष्टिकोण का विशेष महत्व होता है। शिक्षा के अनेक दर्शनों ने इसे अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है। जहाँ तक यथार्थवाद का प्रश्न है तो यह दर्शन 'मृदु शिक्षा' में विश्वास नहीं करता। शिक्षा श्रमजन्य कार्य है तथा उसे गम्भीरता के साथ करने की आवश्यकता है। शिक्षा द्वारा एक विशिष्ट योजना के अनुरूप छात्रों के व्यक्तित्व का निर्माण किया जाता है। शिक्षा उस क्षण की प्रतीक्षा नहीं करती जब छात्र में सीखने की सहज रूचि उत्पन्न होगी। शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्र को अनुशासित रहना ही होगा तथा आवश्यकतानुसार शिक्षक का भी सहयोग लेना होगा।

यथार्थवादी विचारक दमनात्मक अनुशासन का विरोध तथा अन्तः प्रेरित अनुशासन का समर्थन करते हैं, जिसे आत्मानुशासन कहा जाता है। इस विचारधारा के अनुसार अनुशासन हेतु प्रेम एवं सहानुभूति आवश्यक है। इसमें शिक्षक के व्यवहार को विशेष महत्व दिया गया है। ताकि छात्र उनके साथ आत्मीय सम्बन्ध स्थापित कर आत्मानुशासन विकसित कर सकें।

यथार्थवादी विचारक मुक्त्यात्मक अनुशासन का समर्थन करते हैं। मुक्त्यात्मक, अनुशासन का तात्पर्य ऐसे अनुशासन से है। जो दमन, भय, दण्ड इत्यादि पर आधारित न होकर प्रेम, स्वतंत्रता एवं सहानुभूति पर आधारित होता है। यथार्थवादियों के अनुसार बालकों को अपने विकास के लिए पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिये तभी वे अपनी जन्मजात रूचियों एवं प्रकृतियों के अनुरूप अपना विकास कर सकेंगें। भौतिक वातावरण पर यथार्थवाद अधिक बल देता है जिसके कारण वस्तुनिष्ठता के आधार पर अनुशासन स्थापित करने का प्रयत्न यथार्थवादी करते हैं। चूँकि व्यक्ति भी भौतिक जगत का एक अंग है अतः व्यक्ति को भौतिक नियमों का पालन करना आवश्यक है। इस विचार से यथार्थवादी व्यक्ति को प्रकृति के अधीन समझने लगता है, जहाँ पर अनुशासन का

आधार 'प्राकृतिक परिणाम' होता है। बालक के अनैतिक एवं अप्राकृतिक कार्यों के लिए उसे स्वयं दण्ड न देकर प्रकृति के ऊपर छोड़ देना चाहिए। प्रकृति स्वयं उसे दण्ड देगी। यह दण्ड सुधार एवं लाभ की दृष्टि से होगा, ऐसा यथार्थवादी विचारक मानते हैं किन्तु यथार्थवादी बालकों को पूर्णतया प्राकृतिक परिणामों के अधीन नहीं छोड़ना चाहते, अपितु उनमें सामाजिक नियमों के अनुसार अनुशासन की स्थापना के पक्षधर हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइये।

5) अनुशासन के सम्बन्ध में यथार्थवादी दर्शन का विचार क्या है?

9.7 भारतीय शिक्षा तथा यथार्थवाद

भारतीय शिक्षा पर एक विहंगम दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि यथार्थवाद शिक्षा में उपेक्षित नहीं रहा। सामान्यतः यह कहा जाता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा पूर्णरूपेण धार्मिक एवं आदर्शात्मक थी और संसार से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था, जबकि यह असत्य है क्योंकि प्राचीन भारत में जहाँ एक ओर कर्मकाण्ड, यज्ञ विधान इत्यादि की शिक्षा दी जाती थी, वहीं दूसरी ओर आयुर्वेद एवं धनुर्वेद जैसे व्यावसायिक विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी। एक ओर ब्रह्मचारी ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद इत्यादि दार्शनिक ग्रन्थों का पारायण करते थे तो दूसरी ओर वे अपने परिश्रम से आश्रम के आस–पास की भूमि को शस्य श्यामला बनाते थे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन काल में भी व्यावाहारिक विषयों पर बल दिया जाता था।

प्राचीन काल की इस परम्परा को मध्य युग में भी निभाने का प्रयत्न किया गया। आधुनिक युग की शिक्षा व्यवस्था में भी यथार्थवाद का पुट दिखाई देता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि अन्य देशों की भाँति भारतीय शिक्षा में भी यथार्थवाद का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, शिक्षक, शिक्षार्थी, विद्यार्थी, विद्यालय, अनुशासन इत्यादि की यथार्थवादी व्याख्या एक क्रान्तिकारी परिवर्तन है। इन परिवर्तनों के कारण ही आज शिक्षा अधिक से अधिक मानव एवं समाज के जीवन की उन्नति में सहायक हो सका है। आज अधिकांश भारतीय विश्वविद्यालयों में व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था है। समय की माँग के अनुरूप देश में कानून, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, अध्यापक प्रशिक्षण, कृषि इत्यादि की उच्च शिक्षा प्रदान की जा रही है। बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना यथार्थवादी शिक्षा के मार्ग में एक प्रभावशाली कदम है। ये विद्यालयों तथा छात्रों को समाज के उपयोगी बनाने का प्रयास करते हैं। आज अधिकांश विद्यालयों में पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में यथार्थवादी दृष्टिकोण ही अपनाया जाता है क्योंकि आज छात्रों के सम्मुख विषयों की अधिकता एवं निर्वाचन क्षेत्र का विस्तार इस बात की पुष्टि करता है कि भारतीय विश्वविद्यालयो में समाज की आवश्यकता के अनुरूप छात्रों को बहुधन्धी बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

शिक्षण विधि में भी वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण किया जाने लगा है जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न प्रकार के विज्ञानों को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाने लगा और अध्ययन मे आगमन पद्धति का अत्यधिक प्रयोग किया जाने लगा। साथ ही जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं मानव को अधिकाधिक सुखमय बनाने के लिए वैज्ञानिक शोधों को विशेष प्रोत्साहन दिया जाने लगा। इस प्रोत्साहन के फलस्वरूप विज्ञान के क्षेत्र में भारत ने इतनी उन्नति की कि आज के युग को विज्ञान के युग के नाम से संबोधित किया जाने लगा।

9.8 यथार्थवाद की समीक्षा

हम इसकी समीक्षा करने के लिए इसके गुण–दोषों की चर्चा करते हैं –

गुण :

1. यथार्थवाद प्रत्यक्ष जगत से सम्बन्धित होने के कारण अस्पष्टता और जटिलता के स्थान पर स्पष्टता और सरलता लाने में सहायक हो सकता है।
2. यथार्थवाद शिक्षा हमें काल्पनिक सत्य से हटाकर पदार्थजन्य संसार के सत्य का परिज्ञान कराती है।
3. यथार्थवाद में शिक्षार्थी को शिक्षा का केन्द्र माना गया है। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो बालक की मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। पाठ्यचर्या का निर्माण भी बालक में रूचि एवं योग्यता आदि को ध्यान में रखकर होना चाहिए। अनुशासन में भय नहीं अपितु स्वाभाविक रूप

से अनुशासन पर बल दिया गया है। इस प्रकार इस विचारधारा द्वारा पूरी शिक्षा व्यवस्था में बालक की स्वाधीनता पर बल दिया गया है जो अच्छा कदम है।

4. यथार्थवाद विद्यालय की महत्ता को तो स्वीकार करते ही हैं साथ ही साथ बच्चे की रूचि के अनुसार विद्यालय खोलने की बात करके विद्यालय की महत्ता को और अधिक बढ़ा देते हैं जो समाज के विकास के लिए बहुत बड़ी सोच है।
5. यथार्थवादी शिक्षा हमें काल्पनिक सत्य से हटाकर पदार्थजन्य संसार के सत्य का परिज्ञान कराती है।
6. यथार्थवादियों द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्‌देश्य इतने अच्छे लगते हैं कि अन्य विचारधारा द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्‌देश्य उसके सामने महत्वहीन प्रतीत होने लगते हैं।
7. यथार्थवादियों ने बालक तथा बालिका दोनों के लिए समान शिक्षा की व्यवस्था पर जोर देकर लिंगभेद को समाप्त करने का प्रयास किया हैं।
8. यथार्थवादियों ने समाज में व्याप्त अन्धविश्वास को दूर कर हमें यथार्थवादी जीवन में प्रवेश कराया जो एक बड़ा सामाजिक उपकार है।
9. यथार्थवादी प्रकृति की महत्ता को स्वीकार करते हैं जिससे हमें भी प्रकृति से प्रेम करने की प्रेरणा मिलती है।

दोष :

1. यथार्थवाद केवल भौतिक जगत की ही यथार्थसत्ता को स्वीकार करता है, जबकि इस जगत में किसी अन्य शक्ति की सत्ता को भी नकारा नहीं जा सकता ।
2. यथार्थवादी शिक्षा में तथ्यों को ही मूल्यवान समझा जाता है। जीवन को उदात्त बनाने के लिए उदात्त विचारों की स्वीकारोक्ति पर ध्यान नहीं दिया जाता है।
3. यथार्थवादियों द्वारा विज्ञान पर अत्यधिक ध्यान दिया गया है। साहित्य तथा संगीत के महत्व पर ध्यान नहीं दिया गया है। व्यावसायिक शिक्षा पर ज्यादा जोर दिया गया है जो दोषपूर्ण प्रतीत होता है।
4. यथार्थवाद ने मनुष्य के सामाजिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक विकास पर जोर दिया, लेकिन उसके आध्यात्मिकता पर विश्वास न करने के कारण उसे भौतिक सुख से भी वंचित कर दिया। मानव को आत्म–परमात्मा के अस्तित्व की अनुभूति होनी चाहिए।

9.9 प्रयोजनवाद

प्रयोजनवाद दर्शन की वह शाखा है, जो किसी पूर्व–सिद्ध सत्य को स्वीकार नहीं करती है। इसे व्यवहारवाद, अनुभववाद, पुनर्रचनावाद, फलवाद, प्रयोगवाद, कारणवाद, क्रियावाद, अर्थ क्रियावाद, व्यवहारितावाद आदि की संज्ञा दी जाती है। इसने आदर्शवाद एवं प्रकृतिवाद दोनों विचारधाराओं को चुनौती दी। इसने (प्रयोजनवाद) जगत पूर्व निर्धारित तथा पूर्ण है और सत्य सार्वभौमिक है, इस आदर्शवादी मान्यता को चुनौती दी और नवीन स्थापना प्रस्तुत करके यह प्रतिपादित किया। संसार तथा सत्य दोनों परिवर्तनशील है। इसने प्रकृतिवाद की इस अवधारणा का भी विरोध किया कि मनुष्य प्रकृति का एक खिलौना मात्र है।

प्रयोजनवाद को सामान्यतया देशी या मूल अमेरिकी दर्शन भी कहा जाता है परन्तु इसकी जड़ें प्राचीन यूनानी दर्शनों में पायी जाती हैं। शब्द ''प्रेग्मैटिज्म'' (जो प्रयोजनवाद का अंग्रेजी तुल्य है) यूनानी भाषा के ''प्राग्मा'' शब्द से बना है। इसका अर्थ है, जिससे कोई समस्या हल हो जाती है अथवा 'कार्य' सम्पन्न हो जाता है। चार्ल्स पियर्स ने अपनी पुस्तक में सर्वप्रथम ''प्रैग्मेटिज्म'' शब्द का प्रयोग किया है।

प्रयोजनवाद को और अधिक स्पष्ट करने के लिये विद्वानों ने इसकी कुछ परिभाषाएँ दी हैं।

1. विलियम जेम्स के अनुसार, ''प्रयोजनवाद मस्तिष्क का स्वभाव व दृष्टिकोण हैं। यह सत्य और विचारों की प्रकृति का भी सिद्धान्त है। अन्तिम रूप में यह वास्तविकता का भी सिद्धान्त है।''
2. 'रोजन' के अनुसार, ''प्रयोजनवाद सत्य तथा अर्थ के सिद्धान्त को प्रधानता देने के कारण मूलतः ज्ञानवादी विचारधारा है। इस विचारधारा के अनुसार सत्य को केवल उसके व्यावहारिक परिणामों से जाना जा सकता है अतः, सत्य निरपेक्ष की अपेक्षा वैयक्तिक या सामाजिक वस्तु है।''
3. प्रैंट के अनुसार, '' प्रयोजनवाद हमें अर्थ का सिद्धान्त, सत्य का सिद्धान्त, ज्ञान का सिद्धान्त और वास्तविकता का सिद्धान्त देता है।''

   उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर प्रयोजनवाद को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

''प्रयोजनवाद अर्थ का सिद्धान्त, सत्य का सिद्धान्त, ज्ञान का सिद्धान्त और वास्तविकता का सिद्धान्त देने वाली वह दार्शनिक विचारधारा है जो कि यह बताता है कि चूँकि सत्य को केवल उसके व्यावहारिक परिणामों से जाना जा सकता है, इसलिये सत्य निरपेक्ष की अपेक्षा वैयक्तिक या सामाजिक वस्तु है।''

9.10 प्रयोजनवाद का दार्शनिक दृष्टिकोण

(1) तत्वमीमांसा में प्रयोजनवादः– प्रयोजनवाद तत्वमीमांसा को दार्शनिक खोज के एक तर्कसंगत या वैध क्षेत्र के रूप में अस्वीकार करता है। प्रयोजनवादी ऐसा सोचते हैं कि 'सत्ता' मात्र व्यक्तित्व के इन्द्रियाश्रित अनुभवों द्वारा ही निर्धारित की जा सकती है, मानव अपने अनुभव से परे कुछ भी नहीं जान सकता है। अतः उन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जा सकता जो मानव तथा ब्रह्माण्ड की अन्तिम या परम प्रकृति को जानने से संबंधित होते हैं क्योंकि ये प्रश्न या समस्याएँ उत्तर की दृष्टि से अनुभवातीत हैं। उदाहरण के लिए किसी भी जीवधारी के लिए यह मालूम कर सकने का कोई मार्ग नहीं है कि मृत्यु के पश्चात भी जीवन है अर्थात पुनर्जन्म होता है अथवा नहीं। इसका स्पष्ट कारण है कि जीवित रहते हुए कोई व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् के जीवन की अनुभूति नहीं कर सकता। यदि हम मृत्यु के पश्चात् जीवन सम्बंधी कोई भी निष्कर्ष निकालते हैं तो यह मात्र हमारी निराधार कल्पना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होगा। प्रयोजनवादियों का विचार है कि 'सत्ता' एक निरन्तर प्रवाह या परिवर्तन का नाम है। ब्रह्माण्ड में कोई भी ऐसी चीज नहीं है, जो स्थिर हो, स्थायी हो या नित्य हो, शाश्वत हो अथवा अनादि व अनन्त हो।

(2) ज्ञानमीमांसा में प्रयोजनवादः– प्रयोजनवाद के अनुसार, अनुभव आधारित ज्ञान ही सत्य, असली प्रामाणिक तथा ग्रहण करने योग्य ज्ञान होता है। इसका कारण है कि परिघटनाएँ निरन्तर रूप से परिवर्तित होती रहती है। फलतः ज्ञान तथा सत्य भी परिवर्तनशील है। जो ज्ञान आज की समस्याओं को सुलझाने में सहायक हैं, वही ज्ञान वास्तव में सर्वाधिक ग्राह्य है। प्रयोजनवादी क्रियात्मक ज्ञान तथा बोध को महत्वपूर्ण मानते हैं उन्होंने इस विध से ज्ञान प्राप्ति के पाँच स्तर निर्धारित किये हैं जो निम्न है–

1. क्रिया या समस्यात्मक परिस्थिति का निर्माण।
2. समस्या।
3. सूचना या प्रदत्त।
4. परिकल्पना या संभव समाधान।
5. परीक्षण एवं प्रयोग।

प्रयोजनवादियों के अनुसार सत्य इस पंचपद् प्रक्रिया द्वारा इच्छित परिणामों का प्रतिफल है। इस सम्बन्ध में 'ड्यूबी' का कथन है – ''जो परिकल्पना व्यावहारिक रूप में कार्य करती है, वह सत्य है और सत्य भाववाचक संज्ञा है जिसका प्रयोग उन, वास्तविक पूर्व अनुमानित और वांछित लक्ष्यों के संकलन के लिए किया जाता हैं, जिनकी अपने परिणामों द्वारा पुष्टि होती है।''

इस प्रकार प्रयोजनवादी सत्य को परिस्थितियों से सम्बंधित या सापेक्षिक मानते हैं
।

(3) मूल्य मीमांसा में प्रयोजनवादः— नैतिक मूल्य मानव व समाज के मध्य होने वाली आदान—प्रदान की प्रक्रिया के प्रतिफल है। सद् अथवा अच्छाई वह है जो सर्वोत्तम ढंग में अनिश्चित परिस्थितियों का समाधान करती है। इस दृष्टि से प्रयोजनवादी समस्याओं के समाधान में बुद्धि के प्रयोग को अच्छाई या सद् मानते हैं। प्रयोजनवाद के अनुसार मूल्यों पर पुनः प्रयोग करके उनकी पुनर्रचना की जा सकती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी— (क) नीचे दिये गये स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

6) प्रयोजनवाद क्या है?

____

____

____

9.11 प्रयोजनवाद के रूप

(1) मानवतावादी प्रयोजनवादः— यह प्रयोजनवाद सबसे अधिक लोकप्रिय है। इनका कहना है, ''जो बात मेरे उद्देश्यों को पूरा करती है, मेरी इच्छाओं को संतुष्ट करती है, और मेरे जीवन का विकास करती है, वही सत्य है।''

(2) प्रयोगवादी प्रयोजनवादः— इस वाद का आधार विज्ञान की प्रयोगशाला विधियाँ हैं। इस वाद का कथन है, ''जिस बात को प्रयोग से सत्य सिद्ध किया जा सकता है, वही सत्य है या जो बात ठीक कार्य करती है, वही सत्य है।''

(3) जीव—विज्ञानवादी प्रयोजनवादः— आधुनिक समय में इस वाद को प्रभाव बढ़ाया जा रहा है। इसका प्रमुख प्रतिनिधि अमरीका का प्रोफेसर 'जान ड्यूवी' था। ड्यूवी के अनुसार, ''इस प्रयोजनवाद की जाँच मानव की अपने वातावरण से अनुकूलन करने की विचार प्रक्रिया से की जाती है।''

नोटः— क्योंकि यह प्रयोजनवाद विचार को 'अनुकूलन' का साधन मानता है इसलिए इसको प्रायः साधनवाद के नाम से जाना जाता है। चूँकि इस वाद को ड्यूबी ने शिकागो विश्वविद्यालय में प्रतिपादित किया था, इसलिए इसे शिकागो सम्प्रदाय के नाम से भी पुकारा जाता है।

9.12 प्रयोजनवाद के सिद्धान्त

इसके मुख्य सिद्धान्त निम्न हैं—

1. जगत् निरंतर परिवर्तन की क्रिया से गुजर रहा है। इसमें कोई वस्तु स्थिर नहीं है।
2. जगत् अपूर्ण है। यह अभी निर्माण की अवस्था से होकर गुजर रहा है।
3. जगत् अनेक तत्वों से बना है।
4. आदर्श और मूल्य शाश्वत नहीं है।
5. मानव परिवर्तनशील है। जगत् के साथ उसका भी विकास होता चल रहा है, जिसके लिये उसे प्रयास करना पड़ता है।
6. ज्ञान क्रिया का प्रतिफल है।
7. अनुभव की पुनर्रचना ही ज्ञान है। ज्ञान जीवन को जीने के लिये साधन मात्र है, वह स्वयं साध्य नहीं है।
8. अनुभव नाना प्रकार के हैं और बदलते रहते हैं।
9. जो सिद्धान्त कार्य करते हैं, वे सत्य हैं।
10. जीवन के मूल्य बदलते रहते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) नीचे दिये गये स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

7) प्रयोजनवाद की तत्वमीमांसा का वर्णन करें।

____

8) प्रयोजनवाद की मूल्य मीमांसा का वर्णन करें।

____

9.13 प्रयोजनवाद व शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोजनवाद परम्परागत और अनुवाद ज्ञान के विरुद्ध क्रान्ति हैं। उन्होंने शिक्षा की कुछ विशेषतायें बताई हैं जो निम्न हैं–

(1) शिक्षा एक सामाजिक कार्यः– प्रयोजनवादियों का कहना है कि शिक्षा की प्रमुख विशेषता उसका सामाजिक कार्य है। वे कहते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिये उसका विकास सामाजिक सन्दर्भ में होना चाहिए। दूसरे शब्दों में उसे सामाजिक कुशलता का गुण प्राप्त कराना चाहिए–

(2) बालक का वास्तविक जीवन अनुभवः– शिक्षा को बालक को वास्तविक जीवन अनुभव प्रदान करना चाहिए। प्रयोजनवादी 'ज्ञान' के लिए 'ज्ञान' प्राप्त करने को कोई महत्व नहीं देते हैं। उनके अनुसार करके सीखना ही शिक्षा है।

(3) बालक का महत्वः– प्रयोजनवादी शिक्षा में बालक को बहुत महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। उनके अनुसार शिक्षा बालक के लिए है न कि बालक शिक्षा के लिए।

(4) शिक्षा की लोकतंत्रीय प्रक्रियाः– प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया लोकतंत्रीय है। शिक्षा और लोकतंत्र में बहुत सी बातें एक सी है क्योंकि दोनों व्यक्ति और उसके गुणों पर बल देते हैं।

9.13.1 प्रयोजनवाद में शिक्षा के उद्देश्य :

प्रयोजनवादी शिक्षा का कोई उद्देश्य निर्धारित नहीं करते उनका कहना है कि शिक्षा के उद्देश्य स्थायी रूप से नहीं बनाये जा सकते हैं। उनमें समय और मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। इस विषय में ड्यूवी ने लिखा है– ''शिक्षा के उद्देश्य नहीं होते हैं। वे विभिन्न बालकों के लिये भिन्न–भिन्न होते हैं, जैसे–जैसे बालकों और उनके शिक्षकों का विकास होता जाता है वैसे–वैसे उद्देश्य बदलते जाते हैं। ड्यूबी ने शिक्षा के उद्देश्यों की तीन प्रमुख विशेषताएँ बताई हैं–

1. ये छात्रों का सहयोग प्राप्त करते हैं।
2. ये छात्रों की क्रियाओं और आवश्यकता पर आधारित होते हैं।
3. ये विशिष्ट और तात्कालिक होते हैं, सामान्य और अन्तिम नहीं।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर प्रयोजनवादियों ने शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये है–

1. बालक को अपने मूल्यों और आदर्शों का निर्माण करने के योग्य बनाना।
2. 'रॉस' ने लिखा है, ''शिक्षा का उद्देश्य यह है– गतिशील और लचीले मस्तिष्क का विकास, जो सब परिस्थितियों में साधनपूर्ण और साहसपूर्ण हो और जिस अज्ञात भविष्य के लिये मूल्यों का निर्माण करने की शक्ति हो।''
3. छात्र का विकास।
4. छात्रों का गतिशील निर्देशन करना है।
5. प्रत्येक व्यक्ति की शक्तियों एवं क्षमताओं को इस प्रकार से विकसित करना कि वह सामाजिक रूप से कुशल व्यक्ति हो जाय।
6. वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना।
7. आदर्श नागरिक के गुणों का विकास करना।

9.13.2 प्रयोजनवाद में शिक्षण विधियाँ :

प्रयोजनवाद में निम्नलिखित शिक्षण विधियों का इस्तेमाल किया जा सकता है –

1. प्रोजेक्ट मेथड (योजना विधि) यह 'किलपैट्रिक' द्वारा प्रतिपादित है।

2. निरीक्षण विधि।

3. प्रयोग विधि।

4. वार्तालाप विधि।

5. संगोष्ठी विधि।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) नीचे दिये गये स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

9) प्रयोजनवाद के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन करें।

____

____

____

10) प्रयोजनवाद के अनुसार शिक्षा का क्या तात्पर्य है?

____

____

____

11) प्रयोजनवादी शिक्षा के मुख्य तथ्य क्या हैं?

____

____

____

9.13.3 प्रयोजनवाद में पाठ्यक्रम

प्रयोजनवाद में पाठ्यक्रम का आधार निम्नलिखित सिद्धान्त हैं–

(1) उपयोगिता का सिद्धान्तः– पाठ्यक्रम में ऐसे विषय होने चाहिए जो बालक को उसके वर्तमान और भावी जीवन के लिये तैयार करें।

(2) बालक की रूचि का सिद्धान्तः– प्रयोजनवादियों के अनुसार बालक की रूचियाँ– उसके विकास के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न होती हैं। अतः पाठ्यक्रम की रचना करते समय इस बात का ध्यान रखा जाय।

(3) बालक के अनुभव का सिद्धान्तः– प्रयोजनवादियों का मानना है कि अनुभव व क्रिया पर आधारित पाठ्यक्रम होना चाहिये। इस प्रकार प्रयोजनवाद अनुभव केन्द्रित व क्रिया केन्द्रित पाठ्यक्रम देता है।

(4) एकीकरण का सिद्धान्तः– प्रयोजनवादियों का यह मानना है कि बालकों को ज्ञान अखण्ड दिया जाय, टुकड़ों में न दिया जाय।

इस प्रकार प्रयोजनवादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषयों को शामिल किया जा सकता है– भाषा, स्वास्थ्य विज्ञान, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान, शारीरिक प्रशिक्षण, गृह विज्ञान, कृषि विज्ञान, स्काउट एवं गाइड, खेल–कूद, सैन्य शिक्षा, पर्यटन, व्यावसायिक शिक्षा आदि।

नोटः– डिवि ने अपनी पुस्तक 'लोकतंत्र तथा शिक्षा' में तीन स्तरों पर पाठ्यक्रम चर्चा को संगठित करने की सिफारिश की है, ये हैं –

1. बनाना तथा करना।
2. इतिहास तथा भूगोल।
3. संगठित विज्ञान।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) नीचे दिये गये स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

12) प्रयोजनवादी शिक्षा के मुख्य उद्देश्य क्या है?

____

____

____

13) प्रयोजनवादी के पाठ्यचर्या का वर्णन करें।

____

____

____

14) प्रयोजनवादी शिक्षण विधि की चर्चा करें।

____

____

____

9.13.4 प्रयोजनवाद में बालक :

प्रयोजनवाद बालक को एक सामाजिक प्राणी मानता है। वह बालक के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक पक्ष पर बल देता है। प्रयोजनवाद बालक को अनुभव का केन्द्र मानता हैं। 'ड्यूवी' के अनुसार बालक की वास्तविक शिक्षा तब होती है जब सामाजिक परिस्थितियों की चुनौतियों के फलस्वरूप उसकी शक्तियाँ उद्दीप्त होती हैं।

प्रयोजनवाद में शिक्षकः– यद्यपि प्रयोजनवादी अपनी शिक्षा में बालक और उसकी क्रियाओं, रूचियों रूझानों आदि को प्रमुख स्थान देते हैं पर इसके बावजूद वे शिक्षक के दायित्वों को कम नहीं करते हैं। उनकी शिक्षा योजना में अध्यापक का स्थान पथ–प्रदर्शक और सलाहकार का है। उनके अनुसार, एक प्रयोजनवादी शिक्षक का मुख्य कार्य अपने अध्येताओं को कुछ समस्याएँ सुझाना तथा उनके समाधान के लिये उन्हें प्रेरित करना है।

एक प्रयोजनवादी अध्यापक को धैर्यवान, स्नेही, सहयोगी तथा उत्साही होना चाहिए। अध्यापक का अधिगम स्थिति पर नियंत्रण वस्तुतः प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष होना चाहिये।

एक संसाधक के रूप में अध्यापक को अहस्तक्षेपी या जिसे डिवी महोदय अनुज्ञात्मक कहा है; होना चाहिये।

9.13.5 प्रयोजनवाद में अनुशासन :

प्रयोजनवादी अनुशासन की स्थापना के लिये बालक की रूचियों और क्रियाओं पर बल देते हैं। उनका मत है कि ये क्रियाएँ सहयोगी और सामाजिक होनी चाहिए। इस प्रकार की क्रियाएँ आत्म–अनुशासन को जन्म देती है और इस प्रकार का अनुशासन नैतिक या चारित्रिक प्रशिक्षण की ओर अग्रसर करता है। 'बी0डी0 भाटिया' का कथन है कि, ''प्रयोजनवादी स्कूल में मिली–जुली क्रियाओं द्वारा सामाजिक अनुशासन के पक्ष में है।

9.13.6 प्रयोजनवाद में विद्यालय :

प्रयोजनवादी का कहना है कि विद्यालय समाज का छोटा रूप है, पर यह सरल शुद्ध और विभिन्न तत्वों के बीच संतुलन स्थापित करने वाला होना चाहिए। जब विद्यालय ऐसा होगा तभी बालक को समाज में रहना, कार्य करना और आधुनिक सामाजिक जीवन की विषमताओं के बीच अपनी क्षमताओं का उपयोग करना सिखाया जा सकेगा। प्रयोजनवादी विद्यालय को सामुदायिक जीवन का केन्द्र भी बनाना चाहते हैं। 'ड्यूबी' का कथन, ''विद्यालय को समाज का वास्तविक प्रतिनिधि होना चाहिए।''

9.14 प्रयोजनवाद का मूल्यांकन

इसके मूल्यांकन के लिये हम इसके गुण दोषों की विवेचना करेगें।

गुणः– इसके मुख्यतः निम्न गुण हैं –

1. यह बालकों को व्यवहारिक जीवन के लिए तैयार करता हैं।
2. यह सामाजिक और जनतांत्रिक शिक्षा है, क्योंकि यह स्वतंत्रता, समानता आदि गुणों का विकास करता है।
3. इसने विचार की अपेक्षा क्रिया को प्रधानता दी है।
4. इसने शिक्षा में जो योगदान दिया है, उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है। इसकी सबसे महत्वपूर्ण देन 'प्रोजेक्ट पद्धति' है।

दोषः– इसके मुख्यतः निम्न दोष हैं –

1. प्रयोजनवाद आध्यात्मिक गुणों की अवहेलना कर केवल वर्तमान जगत् पर बल देता है।
2. यह केवल उपयोगिता और परिणामों के आधार पर सत्य का निर्धारण करता है।
3. यह पूर्व–निश्चित आदर्शों और मान्यताओं को अस्वीकार करता है।
4. यह सत्य को परिवर्तनशील मानता है।
5. इसने शिक्षा का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं बताया है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि यद्यपि प्रयोजनवाद में बहुत सारी कमियाँ हैं तथापि इसने शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये हैं। प्रयोजनवाद के तारीफ में रस्क ने लिखा है, ''प्रयोजनवाद नवीन आदर्शवाद के विकास में एक चरण मात्र हैं। यह नवीन आदर्शवाद ऐसा होगा जो सदैव जीवन की वास्तविकता का ध्यान रखेगा और व्यवहारिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का समन्वय करेगा। इसके साथ ही यह ऐसी संस्कृति का निर्माण करेगा जो कुशलता का पुष्प होगा।''

9.15 अस्तित्ववाद

संकट के दर्शन रूप में मान्य अस्तित्ववाद मनुष्य द्वारा अपने प्रति अजनबी व 'स्व' के प्रति उदासीनता संकट का कारण मानता है। इस प्रकार यह दर्शन मनुष्य को 'स्व' के प्रति चेतना को जागृत करने का प्रयास करता है। परम्पराओं और मूल्यों से विहीन वर्तमान समाज की अस्मिता इस जगत के मूल्य को ध्वस्त कर देती है। इस कारण निश्चित रूप

से नैतिक निर्णय कर पाना सम्भव नहीं है। लोकतान्त्रिक मान्यताएँ, सम्प्रदायवाद, आतंकवाद की भावना से सामाजिकता के नैतिक पतन से संकट उपस्थित होते जा रहे हैं। अस्तित्ववाद में उपर्युक्त नैतिक मूल्यों के पतन का विरोध किया गया है अस्तित्ववाद मानव संकट की सफल एवं स्पष्ट अभिव्यक्ति करता है। यह संकट अलगाववाद व विच्छिन्नता की भावना उत्पन्न होती है। अस्तित्ववाद इस प्रकार के कारकों की विस्तार से चर्चा करता है। व्यक्तियों, समाजों, राष्ट्रों एवं धर्मों के आपसी कलह से सर्वत्र संकट व्याप्त है। अस्तित्ववाद मानव की समस्याओं का पुनर्मूल्यांकन करता है। अस्तित्व के संकट की चर्चा का सूत्रपात उन्नीसवीं शताब्दी से ही हो चुकी थी। सोरेन किर्कगार्द, फ्रेडरिक नीत्शे जैसे दार्शनिकों की रचनाओं में यह भावना प्रबल थी। तत्पश्चात् संकट के इस दर्शन को फ्रेन्च साहित्यकारों ने एक आन्दोलन का रूप दिया। इसके मूल में द्वितीय विश्वयुद्ध की वीभिषिका थी जिससे फ्रान्सीसी समाज क्षत–विक्षत हो चुका था। इसमें फ्रेन्च कलाकार की भाव प्रधान इस संकट की अनुभूति अनुकूल भूमिका का निर्वहन कर रही थी। अस्तित्ववाद की कुछ परिभाषाएँ नीचे दी जा रही है जो निम्न है –

(1) कांट के अनुसार– ''अस्तित्व वास्तव में एक वास्तविक विधेय अथवा किसी वस्तु का प्रत्यय नहीं है जिसे किसी दूसरी वस्तु के प्रत्यय में जोड़ा जा सके।'' कांट के इस कथन में अस्तित्ववाद के तथ्य विद्यमान है। किन्तु यह बहुत स्पष्ट नहीं है।

(2) देकार्द के अनुसार– ''मैं सोचता हूँ, अतः मैं हूँ।'' देकार्द का यह कथन व्यक्ति की आत्मचेतना को जागृत किया इसके आगे इसकी कोई भूमिका अस्तित्ववाद में नहीं है। यूरोप के जर्मन दार्शनिक हेगेल के विचारों से प्रभावित किर्कगार्द (1813–1855 ई0) को अस्तित्ववाद का जनक माना जाता है। हेगेल ने विश्व को एक सुनियोजित चेतनात्मक व्यवस्था माना था। उसने बाद, प्रतिवाद और संवाद को प्रस्तुत करते हुए उस विकासक्रम की व्यवस्था की थी जिसके माध्यम से परम सत्ता अपने को अभिव्यक्त करती है। किर्कगार्द ने हेवेल के मत का खण्डन करते हुए यह परिभाषा दी कि ''व्यक्ति की आन्तरिकता ही यथार्थ सत्य है।'' उसके इस कथन को यास्पर्स ने भी समर्थन किया। यास्पर्स के अनुसार ''अस्तित्व का अर्थ है– ''व्यक्ति की स्वयं की मौलिक स्वतन्त्रता और अभीष्ट का चुनाव करने का विकल्प।'' व्यक्ति की आत्मचेतना पर बल देने से वह बाह्य जगत से अलग पड़ सकता है। इसका आभास यास्पर्स को था। अतः उसने व्यक्ति और जगत के बीच 'सम्पर्क संचार' की कल्पना करते हुए उसे संसार से जुड़े रहने का परामर्श दिया आत्मचेतना वाह्यजगत से टकराव के लिए बाध्य करती है, जिससे निराशा की भावना प्रबल होती है। यास्पर्स का कथन है कि व्यक्ति इससे बच नहीं सकता। चुनाव (वरण) की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में यास्पर्स ईश्वर का

आश्रय लेकर यह मत व्यक्त करता है कि ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को विवेक एवं बुद्धि से परिपूर्ण किया है उसके सहारे वह अपने चुनाव (वरण) के लिए स्वतन्त्र है। ईश्वर की सत्ता को वह व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों रूपों में स्वीकार किया है। यास्यर्स के सम्पर्क संचार सम्बन्धी विचारों के तर्क में हेड़ेगर ने अपने मत के सन्दर्भ में यह उल्लेख किया है कि मानव अस्तित्व अनियत है। मनुष्य एक सम्भावना है मानव जीवन का अर्थ है – 'व्यक्ति का होना।' मनुष्य के अस्तित्व का अर्थ है – जगत तथा व्यक्तियों के सम्पर्क से उत्पन्न स्थितियों में उसका होना। उसका सोचना, काम करना, रूचि व धारणा बनाना, सम्बन्ध स्थापित करना– ये सब उसके अस्तित्व के विविध पक्ष हैं। भाषा का धर्म है– सत्य की अभिव्यक्ति करना, किन्तु प्रतिदिन के व्यवहार से भाषा का सम्बन्ध उस वस्तु से छूट जाता है, इसकी वह अभियक्ति करती है। इस प्रकार अवास्तविकता, विच्छिन्नता एवं अलगाव की स्थापना हो जाती है। किन्तु इसी विच्छिन्नता से ही वास्तविक अस्तित्व के उद्घाटन की संभावना है। फ्रेडरिक नीत्शे (1844–1900) का मत है कि ''सभी महान पुरूष अपने–अपने आदर्शों के अभिनेता हैं।'' अस्तित्ववाद के सर्वाधिक समर्थ दार्शनिक ज्यॉ पाल सार्त्र (1905–1980) हैं। वाममंथी विचारों से प्रभावित उन्होंने वामपंथी आन्दोलनों का सर्वदा समर्थन किया। उनके अनुसार आधुनिक विश्व की निराशापूर्ण स्थिति का मूल कारण ''यथास्थिति का मोह है।'' सार्त्र की धारणा है कि मनुष्य अपनी स्वचेतना के माध्यम से पूर्ण रूप से अर्थहीन विश्व को अपने रहने योग्य बनाता है। पीड़ा का जन्म है मानव के प्रति अमानवीय व्यवहार और सामाजिक न्याय की खोज। मनुष्य स्वतन्त्रता के संत्रास से भयभीत रहता है। सार्त्र के अस्तित्ववादी दर्शन को तीन प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है। 1) मनुष्य की स्वतंत्रता, 2) उसकी प्रतिबद्धता, और 3) उसकी कर्मठता।

अस्तित्ववादी दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित आदर्शों के अध्ययन से पता चलता है कि कुछ अस्तित्ववादी ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते हैं। सोरेन किर्कगार्द सर्वप्रसिद्ध ईश्वरवादी अस्तित्ववाद के समर्थक थे। इसके विपरीत ज्यॉ पाल सार्त्र अनीश्वरवादी परम्परा के पोषक थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि अस्तित्ववाद में उपर्युक्त दोनों परम्पराएँ विद्यमान थीं।

9.16 अस्तित्ववाद का शैक्षिक निहितार्थ

अस्तित्ववादी विचारधारा के अध्ययन से पता चलता है कि, इनकी मूल रूचि व्यक्ति में है। ऐसा लगता है कि आस्तित्ववादियों ने शिक्षा की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया है। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है शिक्षा की अवधारणा आते ही संस्था की धारणा आ जाती है। आस्तित्ववाद ने संस्थाओं का विरोध किया है। संभवतः इसी कारण

उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में रूचि न ली हो। इस प्रसंग में यह भी संभावना व्यक्त की जा सकती है कि यह दर्शन अभी अपने प्रारम्भिक अवस्था में ही है। जिसके कारण अस्तित्ववादियों ने जीवन के अन्य निहितार्थों पर अपने विचारों को पूर्ण नहीं कर पाये हैं। फिर भी आस्तित्ववाद के प्रमुख सिद्धान्तों के अध्ययन से शैक्षिक प्रवृत्तियों का अध्ययन कुछ सीमा तक सम्भव है– जो निम्नलिखित हैं –

9.16.1 अस्तित्ववाद में शिक्षा के लक्ष्य :

अस्तित्ववादी किसी सर्वमान्य शैक्षिक उद्देश्य की बात नहीं करता उनके अनुसार– शैक्षिक लक्ष्य की कल्पना कृत्रिम है। शिक्षा द्वारा छात्र को किस योग्य बनाया जाय, इसे कहने का हमें कोई अधिकार नहीं है। शिक्षा के क्षेत्र में किसी निश्चित लक्ष्यों के सन्दर्भ में अस्तित्ववादी दर्शन की चर्चा के प्रमाण बहुत कम हैं ऐसा लगता है कि अस्तित्ववादियों ने शिक्षा के लक्ष्य हेतु गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया है। उनके अनुसार यदि शिक्षा का कोई सामान्य लक्ष्य निर्धारित करने पर छात्र का स्वयं का अस्तित्व बाधित हो सकता है। अतः स्वयं के लिए अस्तित्व की प्रामाणिकता की खोज हेतु छात्र को उन्मुक्त छोड़ देना चाहिए, न कि झूठे लक्ष्यों के अनुरूप छात्र को बनाने का प्रयास करना चाहिए।

शैक्षिक लक्ष्य के सन्दर्भ में अस्तित्ववादी विचारधारा छात्र के चारो ओर ऐसे वातावरण की रचना करने से है जिससे उसकी स्वतन्त्रता की चेतना के विकास में सहायक हो सके यह चेतना उन सारे बन्धनों और समस्त रक्षा को तोड़ दे, जिसका उद्देश्य विद्यार्थी को स्व निर्णय लेने तथा योजना बनाने में सहायक हो सकें।

9.16.2 अस्तित्ववाद में छात्र संकल्पना :

अस्तित्ववाद तथ्यतावादी दर्शन है अतः छात्र को वह एक तथ्य के रूप में स्वीकार करता है। सर्वप्रथम हम तत्यता से क्या प्राप्त करते हैं? विद्यार्थी भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में विशेष माता–पिता के यहाँ जन्म लेते हैं। वे विशेष परिस्थितियों में रहते हैं, परिणामस्वरूप उन्हें उसी प्रकार की वास्तविकताओं से अपने ज्ञान (आत्मत्व) प्राप्त होते हैं। जिन्हें इनकी शिक्षा से सम्बन्ध रखना है उन्हें इनकों इन्हीं वास्तविकताओं के संदर्भ में समझना चाहिए और इसे इस रूप में विचार करना चाहिए जैसा उनके जीवन की वास्तविक परिस्थितियाँ और दशाओं ने उनको बनाया है।

परन्तु इस तत्यता के अतिरिक्त और इसके विरुद्ध आत्म की एक सम्भाव्यता भी है। किसी विद्यार्थी की आत्मा एक निश्चित तथ्य से युक्त होती है उसमें कुछ सम्भाव्यतायें भी होती हैं। जिनका सम्बन्ध उनसे है जो वह स्वयं के लिए बनेगी। चिन्तन की दृष्टि से अस्तित्ववादी शिक्षक शिक्षण अधिगम को विद्यार्थियों की मनोदशा

के अनुरूप करने का प्रयास करता है। ताकि जो कुछ भी वह बनना चाहता है वह स्वयं के लिए बन जाय। वास्तव में इसका अभिप्राय आवश्यक एवं आन्तरिक दृष्टियों को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है। शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों को दी जाने वाली मदद विद्यार्थियों के प्रकृति और उनकी जागरूकता को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा निर्धारित रूप में हो तथा उसे ऊपर से थोपने जैसा नहीं होना चाहिए। इसके साथ ही शिक्षा का लक्ष्य सामान्य और स्वीकार्य लक्षण के साथ विद्यार्थियों के सुरक्षित मार्ग को प्रशस्तिकरण के रूप में हो ताकि बच्चा वही चुनाव करे जो वह करना चाहता है और इस बात का निर्धारण कर सके कि वह क्या है जो वह बनना चाहता है।

अस्तित्ववादी दर्शन के अनुसार हमें विद्यार्थी के अस्तित्व के बारे में सोचना चाहिए न कि उसके सारतत्व के बारे मे। उनका मानना है कि बालक अनजान होता है। जिसका संसार में न कोई मित्र है न कोई सम्बन्धी। वह समूह का अंग भी नहीं है। उसे सामाजिक कुशलता तथा सामूहिक गत्यात्मकता को सिखाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि समूह का निर्णय उसके वैयक्तिक निर्णय से उपर नहीं है।

कुछ अस्तित्ववादी बालक को स्व अध्ययन विधि का अधिकार नहीं देते वे बालक को कुछ मूलभूत बातें भी सीखने का सलाह देते हैं तथा उसे वैसा ही करने की शिक्षा देते हैं, जैसा दूसरे करते हैं, परन्तु उनका यह भी कहना है कि बालक को दूसरों के अनुरूप वहीं बनना चाहिए।

बालक स्वयं का स्वामी है अपनी क्रियाओं और सफलताओं के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। अस्तित्ववाद के अनुसार बालक अपने में स्वतन्त्र है। यह विचारधारा व्यक्तिवाद का समर्थन करती है। उनके अनुसार शिक्षा बालकेन्द्रित होनी चाहिए। अस्तित्ववाद के अनुसार सामुहिक शिक्षा संभव ही नहीं है। इस दर्शन के अनुसार बालक में समूह प्रवृत्ति जैसी कोई वस्तु नहीं होती। अतः उसके अद्वितीय व्यक्तित्व की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि उस पर सामाजिक बन्धनों को लागू न किया जाय तथा बालक को स्वतन्त्र निर्णय के अवसर उपलब्ध कराये जाये। अस्तित्ववाद बालक की कार्य सम्बन्धी बाध्यता का विरोध करता है। इस वाद के अनुसार शिक्षा दर्शन के विषय में विद्यार्थी पूर्ण रूप से चुनाव करने तथा अन्तः शक्ति के साथ अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। इसके साथ ही समस्या समाधान हेतु पूर्णतः स्वतन्त्र है।

9.16.3 अस्तित्ववादी शिक्षक :

विद्यार्थी के साथ शिक्षक भी स्वयं आत्मा और स्वयं के लिए आत्मा है। बहुत कुछ निर्जीव वस्तुओं की भाँति विद्यार्थी अपने स्वयं अस्तित्व में शिक्षक के लिए एक वस्तु हो सकता है। अस्तित्ववादी विचारधारा सजग अनुशासन के अभाव में शिक्षक आसानी

से विद्यार्थियों में मित्रवत व्यवहार रख सकता है। इस प्रकार वह बहुत आसानी से स्वयं के लिए अस्तित्व की स्थापना विद्यार्थियों के लिए स्थापित कर सकता है जो उसकी तथ्यता या उसकी सम्भाव्यताओं से मेल न खाता हो। अस्तित्ववाद शिक्षकों के लिए यह चेतावनी देता है कि वे शिष्य के लिए लक्ष्य निर्धारण करने के इच्छुक रहें। कम से कम सामान्य रूप से ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना करते रहें जिसके लिए हमारी कामना थी कि उसकी शिक्षा के परिणामस्वरूप वह कुछ बन सकें।

अस्तित्ववाद के अन्तर्गत शिष्य में सामूहिक प्रवृत्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। उनके अनुसार सामूहिक शिक्षा हो ही नहीं सकती। सभी छात्र अलग रूप से अपने शिक्षकों के साथ कार्य करते हुए अध्ययन सामग्री का मूल्यांकन करते हैं। शिक्षक का कार्य अत्यन्त कठिन है। एक तरफ शिक्षक को जीवन के मूल्यों पर बल देना पड़ता है तथा दूसरी ओर मृत्यु की असीम शक्ति पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। इस प्रकार अस्तित्ववादी शिक्षक अपने छात्रों को मृत्यु को दृष्टिकोण में रखकर शिक्षण अधिगम करता है। इसी दृष्टिकोण का विकास वह अपने विद्यार्थियों में करता है जिससे वह मृत्यु का सामना कर सकें।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) नीचे दिये गये स्थान में अपने उत्तर को लिखें।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

15) अस्तित्ववादी ईश्वरवादी है या अनीश्वरवादी?

____

____

____

16) अस्तित्ववाद में शिक्षक का शिक्षा के प्रति क्या दृष्टिकोण होना चाहिए?

____

____

____

9.16.4 अस्तित्ववाद और विद्यालय :

अस्तित्ववादियों को यह डर है कि शिक्षण संस्थाएँ विद्यार्थियों को पूर्व निश्चित लक्ष्य के अनुरूप शिक्षा दे पायेंगी या उनका जीवन उसमें बर्बाद हो जायेगा। परिणामतः वह समय में खो जायेगा और अपने अस्तित्व को न पा सकेगा। अस्तित्ववादी प्रमाणिकता के लिए परेशान रहते हैं उनके अनुसार अन्य वस्तुओं के साथ–साथ

शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रमाणिकता अवश्य होना चाहिए। विद्यार्थियों की तथ्यता और उसकी सम्भाव्यता के मध्य स्वयं के लिए वह आत्मा है जो वह बन सकता है। यह आत्मा प्रमाणित है। क्योंकि वह तथ्यता और सम्भाव्यता से सम्बन्धित होती है।

अस्तित्ववादियों के अनुसार नैतिक मूल्यों का कोई स्वीकृत सिद्धान्त नहीं है जो प्रशिक्षण परिवर्तित परिवेश मे विद्यार्थी का दिशा–निर्देश कर सकें। वर्तमान युग नैतिक मूल्यों के पतन का है। इस मशीनी युग में विद्यार्थी अकेलेपन, अजनवीपन से परेशान है ऐसे समय में नैतिकता का संकट उत्पन्न हो जाता है। अस्तित्ववाद द्वारा प्रतिपादित नैतिक समस्याएँ मुख्य हैं, किन्तु यह दर्शन नैतिक निर्णय के लिए कोई दिशा–निर्देश नहीं देता। मनुष्य के समक्ष अनेक विकल्प हैं। इन विकल्पों में से किसी एक को उसे चुनना है। किन्तु किस विकल्प का वह चुनाव करे छात्र के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है। इसका निर्णय करना कठिन कार्य है। अस्तित्वाद इस विषय में मौन है। छात्र अपने अन्र्तज्ञान का प्रयोग भी नहीं कर सकता क्योंकि अन्र्तज्ञान का प्रयोग उन समाजों में सम्भव है जहाँ स्थिरता हो और मूल्यों की निश्चितता हो। आधुनिक युग मूल्यों एवं परम्पराओं के मान्य सिद्धान्तों के विघटन का काल है।

अतः नैतिक निर्णय एक कठिन कार्य है। इस दृष्टि से बालक को नैतिक शिक्षा भी नहीं दी जा सकती है।

पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में दुखान्त के तत्व को शिक्षा में उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसका सम्बन्ध विद्यार्थी के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। लेकिन एक संस्था के रूप में विद्यालय के अपेक्षाकृत अधिक व्यापक दृष्टिकोण पर भी प्रभाव डालता है। इस दुःखद तत्व का निष्कर्ष हम उस महत्वपूर्ण तथ्य से प्राप्त करते हैं जहाँ अस्तित्ववादी मृत्यु और अवस्तुता पर देते हैं।

इसके प्रतिवाद में विद्यालय को एक सुखद स्थान माना जाता है जहाँ जीवन निरन्तर गतिशील होता रहता है। अस्तित्ववादियों की मान्यता है कि मृत्यु जीवन का सर्वत्र है अतः मृत्यु का सामना हमें निरन्तर करना होता है। निरीश्वरवादी अस्तित्ववादी इसे अवस्तुतता की निरन्तर धमकी मानते हैं। सर्वत्र समय में हम जीवनयापन कर रहे हैं इसमे से कुछ मरते भी जा रहे हैं इसका आशय शिक्षा के लिए यह है कि हमें उस दुखान्त तत्व का सामना अधिक खुलेपन में और सीधे करना चाहिए। अपने शिक्षण में हमें यह जानना चाहिए कि जीवन में दुःखान्त तत्व है। सभी के जीवन में यह किसी न किसी समय यह तत्व विद्यमान है। अगर हम दुःखान्त के लिए सभी व्यक्तियों को शिक्षित नहीं करते हैं तो क्या वास्तव में हम उन्हें ऐसी शिक्षा दे रहे हैं जिससे उनका सम्बन्ध है।

9.16.5 अस्तित्ववाद में शिक्षण विधि :

अस्तित्ववादी दर्शन के अध्ययन से पता चलता है कि यह वाद सहज ज्ञान में विश्वास करता है। उसके अनुसार व्यक्ति स्वयं अपने प्रयासों से ज्ञान प्राप्त करता है। मनुष्य अपने जीवन काल में जो भी अध्यवसाय करता है अथवा जो भी अर्जित करता है जिसके फलस्वरूप उसकी चेतना एवं भावना में जो कुछ समाविष्ट हो जाता है वही उसका अपना ज्ञान है। व्यक्ति के ज्ञान की वैधता उसके मूल्यों से आँकी जाती है। अतः शिक्षकों को केवल तर्कपूर्ण निष्कर्षों तक सीमित न रहकर ऐसी भावना का विकास करना चाहिए जिससे विद्यार्थी भिन्न–भिन्न परिस्थितियों का सामना तर्कपूर्ण दृष्टियों से कर सके।

डी.वी. ने शिक्षा के क्षेत्र में जिस वैज्ञानिक विधि का प्रतिपादन किया उसका प्रभाव यथार्थवाद तथा अन्य दर्शनों पर भी पड़ा। इसके विपरीत अस्तित्ववादी वैज्ञानिक विधि को नहीं मानता उनके अनुसार यह विधि निर्वैयक्तिक है। यह विचारधारा मनुष्य के भावात्मक जीवन का विकास करना चाहता है। प्रयोनवाद वस्तुनिष्ठ तथ्यों का संकलन करता है। परन्तु अस्तित्ववादी इन तथ्यों से मनुष्य का सम्बन्ध स्थापित करता है। अस्तित्ववाद तर्कपूर्ण विधियों को मनुष्य की स्वतन्त्र चिन्तन एवं व्यवहार में बाधक मानता है। उनके अनुसार पूर्व नियोजित नमूनों से विद्यार्थी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। किसी समस्या के साथ तादात्म्य रखने के लिए आत्म विस्मृति की जरूरत है। अतः तादात्म्य की स्थिति के बिना समस्या सम्बन्धी ज्ञान अधूरा रहता है।

अस्तित्ववाद सामूहिक शिक्षण विधि से अलग व्यक्ति केन्द्रित शिक्षा का समर्थन करता है। क्योंकि समूह केन्द्रित शिक्षा प्रणाली वैयक्तिकता का विकास नहीं कर सकती। अस्तित्ववाद समस्या केन्द्रित शिक्षण प्रणाली का भी विरोध करता है क्योंकि यह प्रणाली भी वैयक्तिक विकास में बाधक है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (क) नीचे दिये गये स्थान में अपने उत्तर को लिखें।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

17) अस्तित्ववादी शिक्षा–संस्था और पाठ्यक्रम के विषय मे क्या कहता है?

____

____

____

18) अस्तित्ववाद की शिक्षण विधि के विषय में आप क्या जानते हैं?

____

____

____

9.17 भारतीय परम्परा में अस्तित्ववाद

प्राचीन भारतीय दार्शनिक परम्परा में अस्तित्ववाद के संकेत देखने को मिलते हैं। क्योंकि भारतीय दर्शन दुखःमय जगत की चर्चा करता रहा है और दुःख तथा मृत्यु की चेतना के मध्य जीवन व्यतीत करना तथा मोक्ष प्राप्ति ही जीवन का मुख्य उद्देश्य है। आस्तिक एवं नास्तिक दोनों दर्शनों में दुखःमय जीवन के रक्षा की बात कही गयी है। द्वैतवाद विशिष्टा द्वैत एवं अद्वैतवाद में भी जगत की दुखःमयता के स्वर दिखाई देते हैं। गौतम बुद्ध ने तो दुःख का प्रसिद्ध दर्शन प्रदान किया। उपर्युक्त वर्णित तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि भारतीय दर्शन में दुःखान्त – तत्व की चर्चा तो है लेकिन यह समझना तर्कयुक्त नहीं होगा कि अस्तित्ववाद भारतीय विचारधारा की उपज है। इन दर्शनों में दुःख व मृत्यु की चेतना तो रही है किन्तु उसके आधार पर दार्शनिक मान्यता का बीजारोपण यूरोपीय साहित्य की देन है।

9.18 अस्तित्ववाद की समीक्षा

अस्तित्ववाद अन्य दर्शनों की तुलना में शिक्षा पर कम विचार किया है। सर्जनात्मक साहित्य के रूप में दर्शन पर आधिपत्य करना चाहा है, किन्तु शिक्षा की इसने उपेक्षा की है।

कुछ अस्तित्ववादी ईश्वर में आस्था रखते हैं तो कुछ अनीश्वरवादी हैं। धर्म और नैतिकता के अन्तर्द्वन्द में फँसकर यह दर्शन भ्रामक तस्वीर प्रस्तुत करता है। कुछ अस्तित्ववादियों में मार्क्सवाद का समर्थन किया है इनमें से कुछकुछ दक्षिणपंथी विचारक भी हैं।

अस्तित्ववादियों ने सत्य को व्यक्तिगत अनुभव की वस्तु माना है। मानव अस्तित्व पर समाज, धर्म, दर्शन तथा नैतिकता के जो परम्परागत निर्भरता थी उसका इसने निषेध किया है और व्यक्ति की निजी विशिष्टता को सर्वोपरि माना है।

अस्तित्ववाद के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन करना एक कठिन कार्य है क्योंकि शिक्षा के सम्बन्ध में यह दर्शन कम विचार किया है। अतः एक व्यवस्थित शिक्षा दर्शन का इसमें अभाव सा दिखाई देता है। यह दर्शन विद्यालय सुधार हेतु कोई निश्चित योजना नहीं प्रस्तुत करता है। जहाँ तक अस्तित्ववादी शिक्षण विधि का प्रश्न है इस दर्शन के अनुयायी सुकराती विधि का समर्थन करते हैं।

शिक्षक और छात्र के आपसी सम्बन्धों पर यह दर्शन बल देता है क्योंकि वहाँ 'मैं–तुम' का सम्बन्ध है न कि 'यह–वह' का। शिक्षक और छात्र के मध्य सीधा,

व्यक्तिगत, निजी सम्बन्धों का विद्यमान होना अस्तित्व का द्योतक है। छात्र के अस्तित्व का शिक्षक आदर करता है। इसी प्रकार छात्र के लिए शिक्षक भी आदरणीय है।

9.19 सारांश

यथार्थवादी विचारधारा इन्द्रिय, गोचर वस्तु, भौतिक जगत को यथार्थ मानती है। यथार्थवाद का शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ा जिसके परिणामस्वरूप यथार्थवादी शिक्षा के अनेक रूपों का विकास हुआ जिनमें से मानवतावादी यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद, ज्ञानेन्द्रिय यथार्थवाद तथा वैज्ञानिक यथार्थवाद का प्रमुख स्थान है। यद्यपि यथार्थवादी शिक्षा के विभिन्न रूपों के समर्थकों ने शिक्षा के विभिन्न अंगों की भिन्न रूप से व्याख्या की है। किन्तु सभी शिक्षा को व्यावहारिक जीवन को सुखी एवं समृद्ध बनाने पर बल देते हैं और इसीलिए वे पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक विषयों को केन्द्रीय स्थान प्रदान करते हैं। वास्तव में आज के वैज्ञानिक युग में यथार्थवादी विचारधारा का अपना विशेष महत्व है क्योंकि इसने न केवल पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास कर विज्ञान की उन्नति में सहायता प्रदान की अपितु आज विश्व का कोई ऐसा देश न होगा जिसकी सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली यथार्थवाद से प्रभावित न हो। प्रयोजनवाद क्रिया एवं क्रिया से प्राप्त अनुभवों पर विशेष बल देती है। यह विचारधारा इस प्रकार का शिक्षा दर्शन प्रस्तुत करती है जो बालक के व्यावहारिक जीवन को सफल बनाने के लिए तैयार करने पर विशेष बल देता है। प्रयोजनवादी शिक्षा सामाजिक मूल्यों और शिक्षा की लोकतांत्रिक प्रक्रिया में विश्वास करती है। प्रयोजनवादी शिक्षा का कोई विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित नहीं करते। उनके अनुसार शिक्षा के उद्देश्य बदलते रहते हैं। पाठ्यक्रम के निर्धारण के सम्बन्ध में यह दर्शन उपयोगिता एवं व्यावहारिकता के सिद्धान्त पर अधिक बल देता है। जहाँ तक शिक्षण विधियों का प्रश्न है यह 'दर्शन करके सीखने' तथा 'स्वानुभव से सीखने' का समर्थन करती है। इसके अतिरिक्त 'योजना पद्धति' पर यह दर्शन विशेष महत्व देता है। प्रयोजनवादी मानते हैं। कि विद्यालय सामाजिक अनुभवों की प्रयोगशाला है इसलिए विद्यालयों में सामाजिक अनुशासन स्थापित किया जाना चाहिए। प्रयोजनवाद के शिक्षा में इन नवीन योगदानों के कारण उसे आधुनिक युग के शिक्षा का मुख्य दर्शन कहा जाता है।

यथार्थवाद और प्रयोजनवाद की अपेक्षा अस्तित्ववाद एक नवीन दर्शन है। इसने शिक्षा पर पूर्ण रूप से विचार नहीं किया है। इसने यह अनुभव कराने में सफलता प्राप्त की है कि यह अपने पूर्ववर्ती दर्शन से आगे है और यह पूर्व दर्शनों की आधुनिक परिणति है। अपने से पूर्ववर्ती दर्शनों को प्रयोजनहीन एवं अर्थशून्य करने की भी चेष्टा की है। पाठ्यक्रम निर्धारण के सम्बन्ध में यह दर्शन सर्वमान्य शैक्षिक उद्देश्य की बात नहीं करता। उनके अनुसार शिक्षा का लक्ष्य बनाना कृत्रिम होगा जिससे छात्र का स्वयं

के लिए अस्तित्व बाधित हो जायेगा। यह दर्शन छात्र को उन्मुक्त वातावरण में शिक्षा ग्रहण करने पर जोर देता है।

9.20 अभ्यास कार्य

1. 'प्रयोजनवाद, आदर्शवाद तथा प्रकृतिवाद की मध्यावस्था है।' विवेचना करें।
2. शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोजनवाद से हम भारत की प्रचलित शिक्षा–प्रणाली के सुधार करने में किस प्रकार लाभ उठा सकते हैं।
3. 'प्रयोजनवाद शाश्वत मूल्यों में विश्वास नहीं करता'। क्या आप सहमत हैं? तर्क दीजिए।
4. प्रयोजनवादी विधि में वैयक्तिक अनुशासन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। स्पष्टीकरण दीजिये।
5. शिक्षा में यथार्थवाद का उदय कैसे हुआ? विवेचना कीजिए।
6. यथार्थवाद की सार्वभौमिक शिक्षा को स्पष्ट कीजिए।

9.21 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. यथार्थवाद पाश्चात्य दर्शन की वह विचारधारा है, जो संसार को वैसा ही मानती है जैसा कि वह हमें दिखाई देता है। अर्थात संसार केवल नैसर्गिक घटना मात्र है तथा यह प्रतिपादित करता है कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य सुखपूर्वक जीना है। जो पदार्थों के वास्तविक ज्ञान द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।
2. यथार्थवाद के पाँच आधारभूत सिद्धान्त निम्न हैं–
   1) प्रत्यक्ष जगत ही वास्तविक है।
   2) वर्तमान जीवन की आवश्यकता ही प्रमुख मूल्य है।
   3) स्थूल जगत व्यक्ति और समाज में विश्वास।
   4) बहुतत्ववादी भावना।
   5) वस्तु का अस्तित्व ही सत्य है।
3. यथार्थवादी शिक्षा के चार उद्देश्य निम्न

   हैं– 1) जीवन को सुखी एवं सफल बनाना।
   2) जीवन के आवश्यकताओं की पूर्ति।
   3) व्यावहारिक कुशलता प्राप्त करना।
   4) बालक को मानव समाज का पूर्ण ज्ञान देना।
4. शिक्षक के सम्बन्ध में यथार्थवादी दृष्टिकोण निम्न हैं।

1) शिक्षक पथ प्रदर्शक एवं सहायक के रूप में।

2) स्वतन्त्र वातावरण के निर्माणक के रूप में।

3) व्यक्तित्व निर्माणक के रूप में।

4) शिक्षकों का प्रशिक्षित होना।

5. अनुशासन के सम्बन्ध में यथार्थवादी दर्शन के विचार निम्न हैं–

1) प्रभावात्मक एवं मुक्त्यात्मक अनुशासन से सम्बन्धित स्वरूप का समर्थन।

2) दमनात्मक अनुशासन का विरोध।

3) आत्मानुशासन पर बल

6. प्रयोजनवाद पाश्चात्य दर्शन की वह विचारधारा है, जो मनुष्य के केवल व्यावहारिक पक्षों पर जोर देती है। यह दर्शन किसी अन्तिम सत्य में विश्वास नहीं करता, यह केवल उसी को सत्य मानता है, जो मानव के लिए उपयोगी है। जिससे उसके प्रयोजन की सिद्धि हो।

7. प्रयोजनवाद की तत्वमीमांसा निम्नलिखित है।

1) ये मनुष्य के वास्तविक पक्ष पर ही विचार करते हैं।

2) इनके अनुसार ब्रह्माण्ड अनेक वस्तुओं और क्रियाओं से बनता है, ये वस्तुओं और क्रियाओं के व्याख्या के चक्कर में नहीं पड़ते हैं।

3) इस इन्द्रियनिग्रह संसार के अतिरिक्त अन्य किसी संसार के अस्तित्व को नहीं मानते।

4) ये आत्मा परमात्मा के अस्तित्व को नहीं मानते।

5) इनके अनुसार मन का दूसरा नाम आत्मा है।

6) ये प्रत्यक्ष को ही लक्ष्य मानते हैं।

7) ये इस ब्रह्माण्ड के किसी अन्तिम सत्य की खोज नहीं करते।

8. प्रयोजनवाद की मूल्य मीमांसा निम्नलिखित है–

1) प्रयोजनवादी पूर्व निश्चित सत्य, आदर्श और मूल्यों में विश्वास नहीं करते है , इसलिए ये मनुष्य के लिए कोई निश्चित आचार संहिता नहीं बनाते।

2) इनके अनुसार मनुष्य जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इसलिए कोई शाश्वत मूल्य हो ही नहीं सकता।

3) ये बच्चों में केवल सामाजिक कुशलता का विकास करना चाहते हैं। सामाजिक कुशलता से इसका तात्पर्य मानव उपयोग की वस्तु एवं

क्रियाओं की खोज करने और नई–नई समस्याओं के समाधान की शक्ति से है।

9. प्रयोजनवाद के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं –

1) यह संसार अनेक तत्वों एवं क्रियाओं का परिणाम है।

2) यह भौतिक संसार ही सत्य है। इसके अतिरिक्त कोई आध्यात्मिक संसार नहीं है।

3) आत्मा एवं पदार्थजन्य क्रियाशील तत्व है, परमात्मा मनुष्य की कल्पना मात्र है।

4) मनुष्य संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है।

5) मानव का विकास एक सामाजिक प्रक्रिया है।

6) मनुष्य जीवन का उद्देश्य सुखपूर्वक जीना है।

7) सुखपूर्वक जीने के लिए, सामाजिक विकास आवश्यक होता है।

10. प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा मनुष्य के विकास की प्रक्रिया है। जो सामाजिक पर्यावरण में चलती है। इसके द्वारा समाज के संस्कृति का संरक्षण, संवहन और विकास किया जाता है, मनुष्य में वे सब क्षमताएँ उत्पन्न की जाती है, जिनसे कि वह अपने प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण में समायोजन करता है और अपने अनुभवों द्वारा उनमें परिवर्तन करता है।

11. प्रयोजनवादियों की शिक्षा के मुख्य तथ्य निम्नलिखित हैं–

1) शिक्षा ही जीवन है।

2) शिक्षा विकास की प्रक्रिया है।

3) शिक्षा अनुभवों की सतत् पुनर्रचना है।

4) शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है।

5) शिक्षा एक सामाजिक उत्तरदायित्व है।

12. प्रयोजनवादी शिक्षा के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं–

1) बच्चों में अपने सामाजिक वातावरण को समझने, अनुभवों को प्राप्त करने और आदर्शों को निश्चित करने की क्षमता का विकास करना।

2) गतिशीलता का विकास

3) सामाजिक कुशलता का विकास

4) लोकतन्त्रीय जीवन की शिक्षा प्रदान करना।

13. प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य परिवर्तनशील हैं। अतः पाठ्यचर्या भी निश्चित नहीं हो सकती, लेकिन किस समय पाठ्यचर्या का निर्धारण किस प्रकार

करना चाहिए, उनके ये विचार बहुत मूल्यवान हैं। उनके ये विचार आज पाठ्यचर्या निर्माण के सिद्धान्त बन गये हैं–

1) उपयोगिता का सिद्धान्त, 2) रूचि का सिद्धान्त, 3) क्रिया का सिद्धान्त, 4) अनुभव का सिद्धान्त तथा 5) एकीकरण का सिद्धान्त।

14. प्रयोजनवादियों ने निम्नलिखित शिक्षण विधियों की बात की है–

1) विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षा।
2) क्रिया–कलाप आधारित शिक्षण।
3) समस्या केन्द्रित शिक्षण विधि।
4) उद्देश्यपूर्ण और प्रगतिशील शिक्षण विधि।
5) एकीकरण शिक्षण विधि।

15. अस्तित्ववाद में दो भिन्न–भिन्न परम्परायें हैं जो दो प्रकार के अस्तित्ववाद में विभक्त हो जाते हैं। इनमें से कुछ अनीश्वरवादी अस्तित्ववादी हैं और कुछ ईश्वरवादी अस्तित्ववादी।

16. अस्तित्ववाद में शिक्षक का शिक्षा के प्रति मृत्यु को दृष्टिकोण में रखकर शिक्षण करना है।

17. अस्तित्ववादी शिक्षण संस्थाओं की आवश्यकता पर गम्भीर नहीं हैं उनके अनुसार प्रामाणिकता आवश्यक है। जो विद्यार्थियों में होना चाहिए। यह सहज ज्ञान में विश्वास करते हैं अतः व्यक्ति स्वयं अपने प्रयत्न से ज्ञान प्राप्त करता है। अपने जीवन काल में मनुष्य जो भी अध्यवसाय करता है अथवा प्राप्त करता है उसके फलस्वरूप उसकी चेतना या भावना में जो कुछ समायोजित होता है वही उसका ज्ञान है।

18. अस्तित्ववाद शिक्षण में वैज्ञानिक विधि को नहीं मानता उसके अनुसार यह विधि निर्वेयक्तिक है। अस्तित्ववादी नैतिक तथा भावात्मक 'स्व' के समाधानों को पसन्द करते हैं। यह मनुष्य के भावात्मक जीवन का विकास करना चाहता है। प्रयोगवादी वस्तुनिष्ठ तथ्यों के संकलन पर बल देता है। अस्तित्ववाद सामूहिक शिक्षण विधि का विरोध करता है। अतः शिक्षण को वे व्यक्ति केन्द्रित बनाने के समर्थक हैं। उनके अनुसार सामूहिक प्रणाली वैयक्तिकता के विकास में बाधक हैं।

9.22 कुछ उपयोगी पुस्तकें

पाण्डेय राम शकल : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि
पाण्डेय राम शकल : शिक्षा दर्शन

पाण्डेय राम शकल	:	शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त
चौबे एस.पी.	:	भारतीय शिक्षा दर्शन
लाल रमन बिहारी	:	शिक्षा दार्शन
लाल रमन बिहारी	:	शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय आधार
ओड़ एल.के.	:	शिक्षा का दार्शनिक पृष्ठभूमि
रथ आर.आर.	:	शिक्षा का दार्शनिक आधार
शुक्ला रमा	:	शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त शिक्षा
भारतेन्दु, डा० सत्य नारायण दुबे	:	की नवीन दार्शनिक पृष्ठभूमि
Breed, F.S.	:	Education & New Realism
Clayton. A.S.	:	Emergent Mind & Education
Holt, B.E.	:	The New Realism
Whitehead	:	Aims of Education & other Essay
Reichenbeek	:	The Riese of Scientific Philosophy
Wild	:	Introduction to Realistic Philosophy
Broudy, H.S.	:	Building a Philosophy of Education
Brubacher, J.S.	:	Modern Philosophies of Education
Butler	:	Four Philosophies
Lodge, R.	:	Philosophy of Education
Rusk, R.	:	Philosophical Bases of Education
Chaube, S.P.	:	Some Foundations of Education

खण्ड : चार

शिक्षा के समसामयिक मुद्दे

इकाई - 10 261
सार्वभौमिक प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा

इकाई - 11 299
उत्तरदायी नागरिकता के विकास के लिए शिक्षा

इकाई - 12 315
पर्यावरण संरक्षण हेतु शिक्षा

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	पूर्व निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 के0एस0मिश्र	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 अखिलेश चौबे	पूर्व आचार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो0 विद्या अग्रवाल	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 शैलेश कुमार यादव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई-1,3 एवं 14)
डॉ0 सरोज यादव	असि. प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 2 एवं 10)
डॉ0दिनेश सिंह	असि0 डायरेक्टर/असि0 प्रो0 शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई-4,5 एवं 6)
डॉ0 उपेन्द्र नाथ तिवारी	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 7,8 एवं 9)
डॉ0 मीनू गुप्ता	एसो0प्रो0बी0एड0विभाग,एम0डी0पी0जी0कालेज प्रतापगढ़ (इकाई-11)
डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 12,13 एवं 15)

सम्पादक

प्रो0 विद्या अग्रवाल	शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

परिमापक

प्रो0पी0के0 साहू	शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

समन्वयक

डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रकाशक

डॉ0 राजेश कुमार पाण्डेय	कुलसचिव,उ0प्र0राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN 978-93-83328-01-7

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

B.Ed.E-02 : समसामयिक भारत एवं शिक्षा

खण्ड—एक शैक्षिक विकास

इकाई—1 शिक्षा का अर्थ एवं अवधारणा : प्राचीन से वर्तमान तक

इकाई—2 शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था : राज्य तथा केन्द्र की भूमिका

इकाई—3 शिक्षा में संवैधानिक प्रावधान

खण्ड—दो भारतीय शैक्षिक विचारक

इकाई—4 महात्मा गॉधी एवं रवीन्द्र नाथ टैगोर के शैक्षिक विचार

इकाई—5 महर्षि श्री अरविन्द एवं स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचार

इकाई—6 जे0 कृष्णामूर्ति एवं गिज्जू भाई के शैक्षिक विचार

खण्ड—तीन शिक्षा दर्शन के सम्प्रदाय

इकाई—7 भारतीय दार्शनिक विचार

इकाई—8 आदर्शवाद और प्रकृतिवाद

इकाई—9 यथार्थवाद, प्रयोजनवाद और अस्तित्ववाद

खण्ड—चार शिक्षा के समसामयिक मुद्दे

इकाई—10 सार्वभौमिक, प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा

इकाई—11 उत्तरदायी नागरिकता के विकास के लिए शिक्षा

इकाई—12 पर्यावरण संरक्षणहेतु शिक्षा

खण्ड—पॉच शिक्षा में गुणवत्ता

इकाई—13 शिक्षा में गुणवत्ता : अर्थ, संकेतांक तथा उपलब्धि के मानक

इकाई—14 उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण एवं शिक्षा

इकाई—15 माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन

खण्ड–चार : शिक्षा के समसामयिक मुद्दे

खण्ड परिचय

इकाई– 10 में सार्वभौमिक प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा की चर्चा की गयी है।

प्रगतिशील समाज के विकास में शिक्षा एक निश्चित भूमिका का निर्वहन करती है। अतः एक ऐसे विकासशील समाज जो सीखने की अवस्था में है वहाँ शिक्षक सामाजिक परिवर्तन के मुख्य कारक के रुप में कार्य करता है। यह पाठ्यक्रम सामाजिक तथा शैक्षिक सुधारों के विभिन्न मुद्दों से सम्बन्धित है। इस खण्ड में शिक्षा के दार्शनिक विचारों को विशेष रुप से भारत के सन्दर्भ में वर्णित किया गया है।

शिक्षा को भौतिक अधिकार का दर्जा प्राप्त गया है। इस अधिकार के अन्तर्गत प्राथमिक के साथ–साथ माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण को सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखा गया है। इस मौलिक अधिकार के अन्तर्गत अनेक क्रान्तिकारी उपाय भी किये है। जिनमें प्रमुखतः निजी स्कूलों में गरीबों एवं वंचितों के बच्चों के लिए 25 फीसदी सीटों का आरक्षण और बच्चों को हर साल की प्रवेश परीक्षाओं से मुक्ति शामिल है। यद्यपि कि मानव संसाधन विकास मंत्री ने स्वीकार किया कि यह लक्ष्य पाना आसान नहीं है और कानून बनते ही सब कुछ ठीक हो जायेगा, लेकिन उन्होंने भरोसा दिलाया कि इसे अंजाम तक ले जाने के लिए केन्द्र अपनी पूरी जिम्मेदारी निभायेगा जिसमें धन की कमी नहीं होगी। अधिनियम में हर तरह की विकलांगता से प्रभावित बच्चों की शिक्षा का प्रावधान भी किया गया है। उन्होंने कहा कि जो बच्चे सामान्य स्कूलों में शिक्षा नहीं ले सकते हैं उन्हें वहॉ मौका मिलेगा, जबकि विशेष स्कूलों की आवश्यकता होने पर वैसे बच्चों के अध्ययन की भी व्यवस्था की जायेगी। कोई भी लोकतंत्र तभी सशक्त हो सकता है जब देश का प्रत्येक नागरिक देश में बराबर का साझीदार हो और यह सिर्फ प्रारम्भिक शिक्षा सबको उपलब्ध कराकर सम्भव नहीं होगा। अतः युवा वर्ग को गुणवत्तापरक माध्यमिक शिक्षा उपलब्ध कराना भी प्रत्येक देश का कर्तव्य है। इस संदर्भ में राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की उपयोगिता अत्यधिक बढ़ जाती है। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा (RMSA) 15–16 आयु वर्ग के युवा को गुणवत्तापरक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए कटिबद्ध है।

इकाई – 11 उत्तरदायी नागरिकता के विकास के लिये शिक्षा के सम्बन्ध में विस्तार से बताया गया है। उदारवादी सिद्धान्त ने नागरिकता का अधिकार समाज में समानता तथा सामाजिक न्याय में विश्वास को माना था। आज नागरिक से तात्पर्य है संगठित समाज का वह सदस्य जो राज्य से कुछ सुविधाओं को प्राप्त करने का अधिकारी है और जो कुछ कर्तव्यों द्वारा समाज से बंधा हुआ है एक नागरिक को जन कल्याण से प्रेरित, संचरित्र, उदार, सहिष्णु, कर्तव्यपरायण, परीश्रमी, चैतन्य, शिक्षित व उचित निर्णय लेने वाला व साहसी होना चाहिए।

आदर्श नागरिकता की प्राप्ति के मार्ग में स्वार्थपरता, अज्ञानता, अशिक्षा, आर्थिक विषमता, अकर्मण्यता, साम्प्रदायिकता, रूढ़िवादिता, भ्रष्टाचार, दलीय स्वार्थ, बाधा डालते हैं। लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए नागरिकों को अपने मताधिकार का सही प्रयोग करना चाहिए, अनुचित सरकारी निर्णयों व भ्रष्टाचार का विरोध शांन्तिपूर्वक करना चाहिए, अपने दायित्वों

इकाई–12 पर्यावरण संरक्षण हेतु शिक्षा के सम्बन्ध में है। प्रकृति ने हमें प्राकृतिक संसाधन अत्यधिक प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराये हैं, परन्तु प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक शोषण, जनसंख्या, वृद्धि, औद्योगीकरण तथा विकास योजनाओं के कार्यान्वयन से पर्यावरण की उपेक्षा के कारण पर्यावरण सम्बन्धी समस्यायें दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। प्राकृतिक संतुलन के बिगड़ने से प्रदूषण रूपी समस्या वैश्विक समस्या बनकर हमार`सामने आ गई हैं । प्रदूषण को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है जैसे वायु प्रदूषण जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, रेडियोधर्मिता प्रदूषण आदि।

इकाई—10 : सार्वभौमिक प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा

संरचना—

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा का अर्थ एवं विकास

10.4 प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के चरण

10.5 प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु प्रयास

10.6 प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण में बाधाएँ

10.7 प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण में बाधाओं से सम्बन्धित समाधान के सुझाव

10.8 माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का तात्पर्य

10.9 माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के मुद्दे एवं चुनौतियां

10.10 लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रमुख योजनाएं

10.11 सारांश

10.12 अभ्यास कार्य

10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

संविधान द्वारा प्रदत्त नीति निदेशक तत्वों में सरकार को यह निर्देश दिया गया था कि वह दस वर्षो के भीतर सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य रूप से शिक्षा देने का प्रबन्ध करे किन्तु यह लक्ष्य स्वतन्त्रता प्राप्त करने के 6 दशकों तक पूरा न हो सका फलस्वरूप 86वें संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा को 1 अप्रैल 2010 के मौलिक अधिकार का दर्जा दे दिया गया। इसमें प्रावधान किया गया कि 'सरकार राज्य द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार 6 से 14 वर्ष के मध्य आयु के बच्चों को शिक्षा के उचित अवसर प्रदान किये जायेंगें। इस मौलिक अधिकार के अन्तर्गत अनेक क्रान्तिकारी उपाय भी किये गये हैं। जिनमें प्रमुखतः निजी स्कूलों में गरीबों एवं वंचितों के बच्चों के लिए 25 फीसदी सीटों का आरक्षण और बच्चों को हर साल की प्रवेश परीक्षाओं से मुक्ति शामिल है। यद्यपि कि मानव संसाधन विकास मंत्री ने स्वीकार किया कि यह लक्ष्य पाना आसान नहीं है और कानून बनते ही सब कुछ ठीक नहीं हो जायेगा, लेकिन

उन्होंने भरोसा दिलाया कि इसे अंजाम तक ले जाने के लिए केन्द्र अपनी पूरी जिम्मेदारी निभायेगा जिसमें धन की कमी नहीं होगी। कोई भी लोकतंत्र तभी सशक्त हो सकता है जब देश का प्रत्येक नागरिक देश के विकास में बराबर का साझीदार हो और यह सिर्फ प्रारम्भिक शिक्षा सबको उपलब्ध कराकर सम्भव नहीं होगा अतः युवा वर्ग को गुणवत्तापरक माध्यमिक शिक्षा उपलब्ध कराना भी प्रत्येक देश का कर्तव्य है। इस संदर्भ में राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की उपयोगिता अत्यधिक बढ़ जाती है। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) 15–16 आयु वर्ग के युवा को गुणवत्तापरक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए कटिबद्ध है।

2020 तक विकसित राष्ट्र का सपना देख रहा भारत वर्ष अपने लक्ष्य को तब तक नहीं प्राप्त कर सकता जब तक वह माध्यमिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं कर लेता है। इसी लक्ष्य की प्राप्ति शिक्षा के मौलिक अधिकार विधेयक–2008 के तहत सन् 2010 में शिक्षा को मूल अधिकार बना दिया और 6–14 वर्ष के बालकों के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया तथा मूल कर्तव्यों में शिक्षा प्रदान करना प्रत्येक अभिभावक का मौलिक कर्तव्य बना दिया गया। किन्तु माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के अनुपालन में निम्न समस्याएं बाधक हो सकती हैं। जैसे– आर्थिक संसाधनों की कमी, अभिभावकों की जागरूकता का अभाव, शैक्षिक योजनाओं का समुचित क्रियान्वयन न हो पाना, प्रशासनिक उदासीनता, स्कूलों में भेद, सीटों का बंटवारा, फीस पर कोई नियंत्रण नहीं, अपर्याप्त मानदण्ड, शिक्षकों की कमी, शिक्षकों के गैर–शिक्षणेत्तर काम आदि। किन्तु फिर भी आशा है कि सरकार द्वारा माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण जैसे महत्वपूर्ण कदम से देश में शैक्षिक क्रान्ति उत्पन्न होगी तथा इन चुनौतियों का समुचित निदान भी किया जा सकेगा।

10.2 उददेश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

1. सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा का अर्थ बता सकेंगें,
2. प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के चरण बता सकेगें।
3. प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु किए जाने वाले प्रयासों के बारे में बता सकेगें।
4. प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण में उत्पन्न बाधाओं के बारे में बता सकेगें।
5. प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण में बाधाओं के समाधान के सम्बन्ध में सुझाव बता सकेगें।

6. माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का अर्थ समझ सकेंगे।

7. माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के मार्ग की कठिनाइयों तथा समस्याओं से परिचित हो सकेंगे।

8. माध्यमिक शिक्षा की प्राप्ति से सम्बन्धित मुद्दों एवं चुनौतियों से परिचित हो सकेंगे।

9. सार्वजनीकरण की प्राप्ति में सहायक विभिन्न योजनाओं को जान सकेंगे।

10.3 सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा का अर्थ एवं विकास

बच्चों के उपयुक्त शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक व वैयक्तिक विकास के लिए प्राथमिक शिक्षा का उत्तम होना अत्यन्त आवश्यक है। प्राथमिक शिक्षा छात्रों के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि प्राथमिक शिक्षा को देश के जन साधारण के उस वर्ग की ओर उन्मुख किया जाय जो गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन कर रहे हैं। इससे भारत की साक्षरता दर को बढ़ाने में सहायता मिलेगी।

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रारम्भ सर्वप्रथम 19वीं शताब्दी के मध्य में पश्चिमी देशों में हुआ, स्वीडन ने सबसे पहले सन 1842 में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने का प्रयास प्रारम्भ किया, इसके बाद सन 1852 में अमेरिका में, 1860 में नार्वे में, सन 1870 में इग्लैण्ड में, तथा सन 1905 में हंगरी, पुर्तगाल, स्विट्जरलैण्ड में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया, भारत में भी निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की संकल्पना बहुत पुरानी है। सन 1882 में दादा भाई नौरोजी ने भारतीय शिक्षा आयोग के समक्ष प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने की माँग रखी थी, उनकी यह माँग पूरी नहीं हुई, परन्तु इस माँग से भारतीयों के मन में निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की आव यकता महसूस हुई, बड़ौदा के राजा सियाजी राव गायकवाड़ ने सन 1893 में अपनी रियासत के नौ गांवों में निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की शुरूआत की। इस योजना के अनुसार 7–12 वर्ष की आयु के बालक–बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क एवं अनिवार्य थीं। सन् 1911 में इण्डियन लेजिस्लेटिव काउन्सिल में श्री गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा इसके सम्बन्ध में विधेयक प्रस्तुत किया गया। भारतीय संविधान के 45वें अनुच्छेद में दस वर्ष के अन्दर 6–14 वर्ष के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने की बात कही गई, इसमें कहा गया था कि ''संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर राज्य अपने क्षेत्र

के सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु होने तक निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। इस संवैधानिक उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए अनेक राज्यों में प्राथमिक शिक्षा अधिनियम बनाए गए जिनमें प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने के कार्यक्रमों की योजना एवं उनके क्रियान्वयन की नीति निर्धारित की गई, परन्तु संवैधानिक निवेश एवं राज्यों द्वारा पारित अधिनियमों के बावजूद भी प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क बनाने के प्रयास विगत पचहत्तर सालों में भी पूरा नहीं किया जा सका। इस खराब स्थिति को देखकर सन 2002 में 86वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 45 में अनुच्छेद 21क को जोड़कर प्राथमिक शिक्षा को नागरिकों का एक मूल अधिकार बना दिया गया, अनुच्छेद 21क के अनुसार राज्य अपने अवधारित रीति के अनुसार छः से चौदह वर्ष की आयु के सभी बालकों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करेगा, इसके साथ–साथ अनुच्छेद 51क (ट) के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह छः से चौदह वर्ष की आयु के अपने बालक–बालिका को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करें, परन्तु इन सभी प्रयासों के बावजूद अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य काफी दूर है। वर्तमान में 6–11 वर्ष आयु वर्ग में लगभग 98 प्रतिशत बालक व 80 प्रतिश ा त बालिकाएं तथा 11–14 वर्ष आयु में लगभग 80 प्रतिशत बालक व 60 प्रतिशत बालिकाएं ही शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इन आँकड़ों से पता चलता है कि 14 वर्ष तक के बालक–बालिकाओं को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का संकल्प अभी वास्तविकता से दूर है।

प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण या सार्वभौमिकता से तात्पर्य यह है कि प्राथमिक शिक्षा का प्रसार समस्त भारत में हो और देश के सभी बालकों को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त हो सके। शिक्षा किसी व्यक्ति विशेष या समूह विशेष की न होकर जनसाधारण की वस्तु होनी चाहिए। जन–जन तक शिक्षा का प्रसार होना चाहिए अतःप्राथमिक स्तर पर यह प्रयास किया जा रहा है कि देश के शत–प्रतिशत बालक इससे लाभान्वित हों।

भारत में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए अगस्त 2009 में भारत सरकार द्वारा पारित शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 (Right to Education Act, 2009) लागू हुआ, इससे एक बार फिर निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य पूरा होता दिखाई दे रहा है। यह अधिनियम एक तरफ जहां प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सरकारों, स्थानीय निकायों तथा अभिभावकों के कर्तव्य को दर्शाता है वहीं दूसरी ओर शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए भौतिक एवं मानवीय संसाधनों से सम्बन्धित मानकों को भी दर्शता है। इसके अन्तर्गत पाठ्यक्रम, शिक्षक, विद्यालय भवन, न्यूनतम

कार्यदिवस, शिक्षण कालां पुस्तकालय, शिक्षण–सहायक सामग्री, खेल कूद से सम्बन्धित सामग्री आदि के मानक तय करता है।

बोध प्रश्न : टिप्पणी–

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिये गये आदर्श उत्तरों से करें।

(1) प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण से क्या तात्पर्य है?

(2) भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में बालकों की निःशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने की बात कही गई है?

(3) संविधान के किस अनुच्छेद के द्वारा प्राथमिक शिक्षा को नागरिकों का मूल अधिकार घोषित किया गया?

10.4 प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के चरण

भारतीय संविधान में 6–14 वर्ष की आयु वर्ग के बालक–बालिकाओं के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान है, भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश के लिए यह एक बड़ी चुनौती है। इतने वर्षो के उपरान्त भी सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सका है। इस दिशा में छोटे–बडे सभी स्तरों पर प्रयास जारी है। 6–14 वर्ष की आयु के लगभग डेढ़ करोड़ बच्चों को साक्षर बनाना है जिनमें लगभग 60 प्रतिशत बालिकाएं हैं। भारत में क्षेत्रीय असन्तुलन, सामाजिक व आर्थिक असमानताएं, भाषाओं में विभिन्नता, ग्रामीण क्षेत्रों की अधिकता, सामाजिक कुरीतियां आदि इस लक्ष्य को प्राप्त करने में बाधक है। भारत में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्य निम्न है–

- असाक्षरता में कमी
- बाल्यावस्था परिचर्या एवं विकास क्रियाओं का प्रसार
- शैक्षिक अवसरों का लाभ उठाने का प्रावधान
- शिक्षा का उपयोग समानता के एक साधन के रूप में करना
- शैक्षिक प्रक्रिया व पाठ्यवस्तु में सुधार करना

प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए सरकारी एवं गैर–सरकारी स्तर पर सक्रिय एवं सुनियोजित प्रयास की आवश्यकता हैं सरकारी नीतियों के नियोजन एवं उनके सही ढंग से क्रियान्वयन की अत्यन्त आव यकता है। शैक्षिक नीतियों एवं कार्यक्रमों का उपयुक्त ढंग से क्रियान्वयन होना चाहिए, प्राथमिक शिक्षा का विकास इस ढंग से किया जाना चाहिए कि सभी बच्चों को इसका वास्तविक लाभ प्राप्त हो सके, प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने के प्रयास में निम्न प्रमुख चरण निर्धारित किए गए हैं–

(1) प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओं को सर्वव्यापी बनाना

प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओं को सर्वव्यापी बनाने का अर्थ है कि प्राथमिक विद्यालय सभी बच्चों के घर के निकट हो जिससे वे पढने के लिए आसानी से स्कूल जा सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक छोटे–बड़े गाँव में प्राथमिक विद्यालय खोले जाएं, विद्यालय ऐसे स्थान पर होने चाहिए जहां छात्र–छात्राओं को पहुंचने में कोई परेशानी न हो, छात्राओं के लिए महिला शिक्षिकाओं की नियुक्ति होनी चाहिए। इससे छात्राओं का नामांकन दर प्राथमिक विद्यालयों में बढ़ेगा।

(2) प्राथमिक शिक्षा में नामांकन को सर्वव्यापी बनाना

प्राथमिक शिक्षा में नामांकन के सर्वव्यापीकरण से तात्पर्य यह है कि 6–14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों को प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश हो, कई कारणों से बच्चे प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश ही नहीं लेते है। लगभग 2 प्रतिशत बालक एवं 20 प्रतिशत बालिकाएं प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश नहीं लेते है। प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओं के सर्वव्यापीकरण के अतिरिक्त बच्चों द्वारा विद्यालय में प्रवेश लेना भी आवश्यक है। इसके लिए सरकारी तथा गैर–सरकारी स्तर पर बच्चों को नामांकन के लिए प्रेरित करना चाहिए राज्यों द्वारा भी इस सम्बन्ध में अनेक अधिनियम बनाए जा रहे हैं। ग्रामीण एवं अशिक्षित लोगों को भी अपने बच्चों को विद्यालय में
प्रवेश दिलाने के लिए प्रेरित किया जा रहा है।

(3) प्राथमिक शिक्षा में बच्चों के धारण (Retention) का सर्वव्यापीकरण

इसका अर्थ यह है कि प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश लेने के बाद प्राथमिक शिक्षा की समाप्ति तक बच्चे का विद्यालय में बने रहना है। प्राथमिक शिक्षा में बच्चों के टिके रहने का सर्वव्यापीकरण आवश्यक है तभी प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण सम्भव है। आमतौर पर देखा जाता है कि कई छात्र प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश तो लेते है परन्तु प्राथमिक शिक्षा पूरी किए बिना ही विद्यालय छोड़ देते है। लगभग 35 प्रतिशत बालक तथा 48 प्रतिशत बालिकाएं कक्षा–5 से पहले तथा 57 प्रतिशत बालक तथा 78 प्रतिशत बालिकाएं कक्षा–8 से पूर्व ही अपनी पढ़ाई छोड़ देते हैं। इस प्रकार कक्षा–1 में प्रवेश लेने वाले 65 प्रतिशत बालक एवं 52 प्रतिशत बालिकाएं ही कक्षा–5 में पहुंच पाते हैं तथा केवल 43 प्रतिशत बालक एवं 39 प्रतिशत बालिकाएं ही कक्षा–8 में पहुंच पाते हैं। प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए विद्यालय छोड़ देने वाले इन बच्चों की संख्या को कम करना आवश्यक है।

(4) प्राथमिक शिक्षा में सभी बच्चों को गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान करने को सर्वव्यापी बनाना

प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा की गुणवत्ता भी उत्तम होनी चाहिए, प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा से सम्बन्धित आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध होने चाहिए, इसके अन्तर्गत विभिन्न भौतिक संसाधन जैसे विद्यालय भवन, ब्लैकबोर्ड, पीने का पानी, शैक्षिक उपकरण, खेल के मैदान, शौचालय आदि होने चाहिए। शिक्षण अधिगम सामग्री उपयुक्त ढंग से निर्मित होनी चाहिए, छात्रों को मनोवैज्ञानिक एवं उपयुक्त शिक्षण विधियों के प्रयोग से पढ़ाना चाहिए, पाठ्यक्रम के अनुरूप शिक्षण होना चाहिए इनके पाठ्यक्रम में पढ़ाई के साथ–साथ खेलकूद, व्यायाम, सामूहिक नृत्य, व्यक्तिगत स्वास्थ्य, शिष्टाचार आदि को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिससे छात्रों की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा भावात्मक विकास सही ढंग से हो सके।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी– (क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिये गये आदर्श उत्तरों से करें।

(4) प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के कोई दो लक्ष्य बताइए?

____

____

____

(5) प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के कौन–कौन से चरण हैं?

____

____

____

(6) प्राथमिक शिक्षा में नामांकन के सार्वभौमिकरण से क्या तात्पर्य है?

____

____

____

10.5 प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु प्रयास

प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए एवं इसकी व्यवस्था को सुनिश्तित करने के लिए राष्ट्रीय प्राथमिक शिक्षा मिशन की स्थापना की गई, शिक्षा को केन्द्रीय सूची से हटाकर समवर्ती सूची में शामिल किया गया जिससे शिक्षा में राज्य भी समुचित भागीदारी निभा सकें। केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा निरन्तर ही प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु अनेकों प्रयास किए जा रहे हैं। अगस्त 2009 में केन्द्र सरकार द्वारा पारित ''बालकों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा अधिकार अधिनियम–2009'' इस दिशा में एक सशक्त कदम है। केन्द्र सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु किए जाने वाले प्रमुख प्रयास निम्न हैं–

(1) प्राथमिक शिक्षा के व्यय में वृद्धि

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में प्राथमिक शिक्षा में किए जा रहे व्यय में काफी वृद्धि की गई है। आठवीं पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय योजना का 47 प्रतिशत भाग प्राथमिक शिक्षा के ऊपर खर्च किया गया, नौवीं योजना में 50 प्रतिशत भाग तथा दसवीं में 58 प्रतिशत के लगभग खर्च किया गया। 2014–15 के केन्द्रीय बजट में शिक्षा के लिए 68,728 करोड रुपये दिए गए हैं।

(2) प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से ही प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है सन 1950–51 में निम्न प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 2 लाख थी जो 2000–2001 में बढ़कर लगभग 6.50 लाख हो गयी। 2002–03 में इसकी संख्या 8 लाख 97 हजार हो गई तथा 2014–15 प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 13 लाख से भी अधिक हो गयी।

(3) प्राथमिक शिक्षकों की संख्या में वृद्धि

1950–51 में प्राथमिक शिक्षकों की संख्या 6.24 लाख थी जो 2002–03 में बढ़कर 34.88 लाख हो गयी। सन 2015 में 72 हजार प्राथमिक शिक्षकों की नियुक्ति हेतु प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

(4) प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु विभिन्न कार्यक्रम

प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्य की शत–प्रतिशत प्राप्ति के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा विगत वर्षो से कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं इनमें से कुछ प्रमुख कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण निम्न है –

(क) अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम– देश की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु 1979–80 से इस कार्यक्रम को चलाया जा रहा है। इसके अन्तर्गत 6–11 आयु वर्ग के उन बच्चों को औपचारिक शिक्षा के समान अनौपचारिक शिक्षा उपलब्ध कराना है जो–

- किसी कारणवश विद्यालय नहीं जा सकें।
- ऐसे बच्चे जिनके क्षेत्र में प्राथमिक विद्यालय न हों
- जिन बच्चों को किसी कारणवश बीच में ही विद्यालय छोड़ना पड़ा हो।
- कुछ बाधाओं के कारण विद्यालय न जा सकने वाली बालिकाएँ

(ख) आपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना– स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत में अनेकों प्राथमिक विद्यालय खोले गए तथा इनकी संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है, परन्तु प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि का उनकी गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है प्राथमिक विद्यालय खोलते समय आवश्यक सुविधाओं को उपलब्ध कराने पर ध्यान नहीं दिया गया, अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में शौचालय, पीने का पानी, भवन, ब्लैकबोर्ड, शैक्षिक सामग्री, खेल के मैदान आदि का अभाव है। 1979 में हुए अखिल भारतीय शिक्षा सर्वेक्षण से पता चला कि लगभग 9 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों के भवन भी नहीं थे। 41.5 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में ब्लैकबोर्ड नहीं थे। 72 प्रतिशत विद्यालयों में पुस्तकालय सुविधाएं नहीं थी, 53.4 प्रतिशत विद्यालयों में खेल के मैदान नहीं थे। ग्रामीण क्षेत्रों के 89 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में शौचालय नहीं थे, कई विद्यालयों में पीने के पानी की भी सुविधा नहीं थीं इन अभावों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में प्राथमिक शिक्षा में सुधार करने की आवश्यकता को महसूस किया गया। फलस्वरूप मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा एक कार्यान्वयन कार्यक्रम 1986 तैयार किया गया, इसमें नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अन्तर्गत शैक्षिक विकास एवं क्रियाकलापों की योजना बनाई गयी।

1987—88 में प्राथमिक विद्यालयों में आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए आपरेशन ब्लैकबोर्ड नामक योजना प्रारम्भ की गई। इसका उद्‌देश्य प्राथमिक विद्यालयों में न्यूनतम आवश्यकताओं की व्यवस्था कराना था जो निम्न है—

- दो बड़े कमरे
- आवश्यक खेल सामग्री
- ब्लैक बोर्ड
- मानचित्र
- चार्ट
- अन्य सहायक सामग्री की सुविधाएँ

आपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना को सन् 1992 में उच्च प्राथमिक विद्यालयों के लिए भी लागू कर दिया गया, क्रियान्वयन कार्यक्रम में इस योजना को अधिक प्रभावशाली तरीके से लागू करने का संकल्प लिया गया, विद्यालय भवन उपलब्ध कराने का दायित्व राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम को सौंपा गया था, स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग करके कम खर्च में विद्यालय भवन की रूपरेखा तैयार की गईं ।

शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यालय में कम से कम दो शिक्षक हो जिनमें से एक महिला शिक्षिका हो।

(ग) सबके लिए शिक्षा— 1990 में थाईलैण्ड में हुई ''सबके लिए शिक्षा'' विषय पर विश्व कान्फ्रेन्स में सभी व्यक्तियों की मूलभूत अधिगम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बल दिया गया जिससे सभी शिक्षा का लाभ उठाने में सक्षम हो सके। प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए 1990 में ''सभी के लिए शिक्षा'' परियोजना की शुरूआत की गई। इस परियोजना के प्रमुख लक्ष्य निम्न है—

- प्रारम्भिक शिक्षा में नामांकन का सार्वजनीकरण
- शिक्षा की अवधि की पूर्णता
- असाक्षारता में कमी
- शैक्षिक अवसरों का लाभ उठाने का प्रावधान
- समानता के एक साधन के रूप में शिक्षा का उपयोग
- शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार लाना
- शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन का विकेन्द्रीयकरण तथा उसकी प्रभावशीलता में वृद्धि करना

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न राज्यों में भिन्न–भिन्न कार्यक्रम जैसे–राजस्थान में लोक जुम्बिश, उत्तर प्रदेश में ''उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परियोजना, बिहार में 'बिहार एजुकेशन प्रोजेक्ट'' आदि चलाए जा रहे हैं।

(घ) जिला प्राथमिक शिक्षा का कार्यक्रम (DPEP) – सन् 1994 से शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए राज्यों जैसे–बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, आन्ध्र पदेश, गुजरात, राजस्थान आदि के चुने हुए जिलों में इस योजना को शुरू किया गया, विश्व बैंक की सहायता से इस योजना को चलाया जा रहा हैं इस योजना में विद्यालय त्याग की दर को 10 प्रतिशत तक कम करने तथा अधिगम स्तर को 25 प्रतिशत बढ़ाने की बात कही गई है। इसका प्रमुख उददेश्य प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण है जिससे प्राथमिक शिक्षा तक सभी की पहुंच को सुनिश्चित किया जा सके।

(ड.) मध्यान्ह भोजन योजना (Mid-day Meal) – बच्चों तथा उनके माता–पिता में शिक्षा के प्रति आकर्षण पैदा करने तथा उनके पोषाहार के लिए 1995 से पूरे देश के प्राथमिक विद्यालयों में मध्यान्ह भोजन योजना चलाई जा रही है।

(च) सर्व शिक्षा अभियान (SSA) – इस अभियान को संविधान के 86वें संशोधित अधिनियम 2002 के आधार पर चलाया गया, इसका प्रारम्भ 600 जिलों के 11 लाख घरों के 19.2 करोड़ बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए किया गया। इसके प्रमुख लक्ष्य निम्न है–

- 6–14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों की 5 वर्ष की प्रारम्भिक शिक्षा पूरी हो जाय
- सन 2010 तक 8 वर्ष की शिक्षा पूरी हो जाए
- जीवन के लिए शिक्षा (Education वित सपमिद्ध पर जोर देने के लिए गुणवत्तायुक्त प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था हो।
- 2010 तक प्रारम्भिक शिक्षा स्तर पर बालक–बालिकाओं एवं सामाजिक वर्ग के आधार पर शिक्षा स्तर के अन्तर को समाप्त करना।
- 2010 तक पढाई बीच में छोड देने वाले बच्चों की संख्या शून्य हो जाना।

सर्वशिक्षा अभियान के कार्यक्रम– इस कार्यक्रम में पूरे भारत के 600 जिलों के 19. 2 करोड़ बच्चे लाभ प्राप्त कर रहे हैं। इसके संचालन की जिम्मेदारी केन्द्र व राज्य सरकार दोनों को ही दी गई है। विशेष रूप से शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए राज्यों जैसे– बिहार उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा में इसका क्रियान्वयन हो रहा है। उत्तर प्रदेश के पांच जिलों, अलीगढ़, इलाहाबाद, फिरोजाबाद, कानपुर, मुरादाबाद को 'सर्वशिक्षा अभियान प्रोजेक्ट डिस्ट्रिक्ट'' बनाया गया है।

'शिक्षा गारंटी योजना', वैकल्पिक एवं अभिनव शिक्षा, ब्रिजकोर्स आदि इसके प्रमुख औपचारिकेतर शिक्षा कार्यक्रम (Non-formal Education Programms) है। शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े राज्यों में शिक्षा गारंटी योजना चलाई गयी जो शिक्षा के लिए सरकार और समुदाय के मिलेजुले प्रयासों पर जोर देती हैं यह गुणवत्ता युक्त न्यूनतम शैक्षिक सुविधाएं प्रदान करने पर बल देती है। ब्रिजकोर्स में प्रायः स्कूल से बाहर के बच्चों का आवासीय शिविर लगाया जाता है इसमें बाल श्रमिक, बंधुआ मजदूर आदि बच्चों को 3–6 महीने रखा जाता हैं इसमें इन्हें साक्षर बनाया जाता है तथा गणितीय कौशल सिखाया जाता है। इससे ये कक्षा–1 में प्रवेश योग्य हो जाते हैं।

(छ) शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 (Right to Education Act-2009) – इसे 4 अगस्त 2009 को पारित किया गया। ''शिक्षा का अधिकार'' अधिनियम के अन्तर्गत सभी के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का अधिकार निहित है। संविधान के 86वें संशोधन अधिनियम, 2002 में एक नया अनुच्छेद 21–ए जोड़ा गया।

इस अधिनियम में कक्षा 1 से 5 तक की कक्षा में छात्रों की संख्या के लिए शिक्षकों की न्यूनतम संख्या होने की बात कही गई है जो निम्न प्रकार से है–

60 तक की संख्या में छात्र	– 02 अध्यापक
61–90 तक की संख्या में छात्र	– 03 अध्यापक
91–120 तक की संख्या में छात्र	– 04 अध्यापक
121–200 तक की संख्या में छात्र	– 05 अध्यापक

कक्षा 6–8 तक की कक्षा के लिए विज्ञान व गणित, सामाजिक विज्ञान, भाषाओं आदि के एक–एक शिक्षक होने अनिवार्य है। कक्षा–1 से 5 तक के लिए कार्यालय व 800 घन्टे का शिक्षण तथा कक्षा 6 से 8 के लिए 200 दिन का कार्यदिवस एवं 700 घन्टे का शिक्षण अनिवार्य किया गया है।

इस अधिनियम में निम्न भौतिक संसाधनों के उपलब्ध होने की बात कही गई है–

- विद्यालय भवन में प्रत्येक अध्यापक के लिए एक–एक कक्षा–कक्ष
- एक कार्यालय
- मुख्याध्यापक का एक बहुउद्देश्यीय कक्ष
- भण्डार कक्ष
- बालक व बालिकाओं के लिए अलग–अलग शौचालय
- स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था
- मध्यान्ह भोजन के लिए रसोई कक्ष
- खेल का मैदान एवं चहारदीवारी

- पुस्तकालय
- शिक्षण सहायक सामग्री एवं खेलकूद की सुविधा यह अधिनियम 6–14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों का प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन उपस्थिति तथा प्राथमिक शिक्षा के समापन को सुनिश्ति करेगा, यह 1 अप्रैल 2010 से प्रभावी हुआ तथा इसके निम्न प्रमुख शैक्षिक प्रावधान है।–
- राज्य के द्वारा निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान है।
- किसी बच्चे को विद्यालय में न तो रोका जा सकता है, न तो विद्यालय से निकाला जा सकता है और न ही उसे बोर्ड परीक्षा में सफल होना जरूरी है जब तक कि वह प्राथमिक शिक्षा पूरी न कर ले।
- विद्यालय छोड़ने वाले (Dropouts) बच्चों के शिक्षण के लिए विशेष प्रावधान हो।
- बच्चों का नामांकन, उपस्थिति तथा प्राथमिक शिक्षा की पूर्णता सुनिश्चित हो।
- सरकार एवं स्थानीय निकाय आस–पड़ोस में विद्यालय स्थापित करें।

(ज) बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन (Encourgagement for Girls Education)

कृ केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए निरन्तर कई प्रकार की योजनाएं बनाई एवं क्रियान्वित की जा रही है। प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु चलाए जा रहे सभी कार्यक्रमों में बालिका शिक्षा को प्राथमिकता दी जा रही है। सभी सरकारी व गैर–सरकारी प्रयासों में विद्यालय न जाने वाली एवं विद्यालय बीच में ही छोड़ देने वाली बालिकाओं को लक्षित किया जा रहा है।

विभिन्न राज्यों में बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए निम्न दो बिन्दुओं पर प्रयास किया जा रहा है–

- बालिकाओं की शिक्षा तक पहुंच (Access) तथा ठहराव (Stagnation) को विभिन्न उपाय करके बढ़ाना।
- बालिकाओं की शिक्षा की मांग को संशजित करने के लिए प्रशिक्षण एवं अभिप्रेरणा देना।

बालिकाओं की शिक्षा को बढावा देने के उददेश्य से सर्व–शिक्षा अभियान के अन्तर्गत निम्न योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है–

- कक्षा–8 तक सभी बालिकाओं को निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध कराना
- विद्यालय छोड़ चुकी बालिकाओं के लिए विद्यालय की तरफ से अभियान चलाना।

- विद्यालयों में न्यूनतम 50 प्रतिशत महिला अध्यापकों की नियुक्ति
- जन—समर्थन एवं सहयोग प्राप्त करने के लिए विशेष अभियान चलाना
- अधिक आयु वाली बालिकाओं के लिए ब्रिज कोर्स चलाना
- विद्यालयों में बालिकाओं की उपस्थिति एवं ठहराव को सुनिश्चित करने के लिए नवीन उपाय अपनाना
- बालिकाओं के लिए समरूप अधिगम अवसर बढाने के लिए विभिन्न उपाय करना एवं शिक्षकों को इसके लिए प्रोत्साहित करना
- बालिकाओं के लिए अलग से शौचालय बनवाना

सर्वशिक्षा अभियान के साथ—साथ बालिकाओं की शिक्षा के लिए प्रारम्भिक स्तर पर चलाए गए कुछ कार्यक्रम निम्न है—

1. **महिला समाख्या कार्यक्रम** — इस योजना को अप्रैल 1989 से प्रारम्भ किया गया, इस योजना में प्रत्येक गांव में महिला संघों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा के लिए प्रेरित किया जाता है।

2. **कन्या शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम—** कन्या शिक्षा के राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत अनेको कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों की स्थापना की गई इसका मुख्य उददेश्य दुर्गम क्षेत्रों में मुख्यतः अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछडा वर्ग एवं अल्पसंख्यक वर्ग की बालिकाओं की शिक्षा के लिए गुणवत्तायुक्त आवासीय शिक्षा उपलब्ध कराना।

3. **पूर्व बाल्यकाल परिचर्या एवं शिक्षा कार्यक्रम** — इस कार्यक्रम में प्रशिक्षत कार्यकर्ताओं द्वारा पूर्व बाल्यकाल परिचर्या के साथ—साथ शिक्षा प्रदान की जाती है जिससे उनका सम्पूर्ण विकास हो सके, इसमें स्वास्थ्य एवं पोषण तत्वों को भी जोड़ा गया।

4. **स्वीकृत बाल—विकास सेवा कार्यक्रम** — इसके द्वारा आंगनबाड़ी कार्यकत्रियों, प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों एवं स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करके पूर्व विद्यालय शिक्षा को बढ़ावा दिया जाता है।

प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु केन्द्र सरकार के साथ—साथ विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा भी विशेष प्रयास किये जा रहे हैं। जैसे— सचल विद्यालय जो राजस्थान में घुमन्तु जनजाति के परिवारों के बच्चों को शिक्षा उपलब्ध कराने के लिये खोला गया, चरवाहा विद्यालय जिसे बिहार सरकार द्वारा चरवाहों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिये खोला गया, इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में आश्रम पद्धति

विद्यालय, शिक्षा घर, शिक्षा मित्र योजना, शिक्षा गारन्टी योजना आदि कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। विभिन्न सरकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों के साथ–साथ स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा भी प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए प्रयास किए जा रहे हैं।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी–

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिये गये आदर्श उत्तरों से करें।

(7) वर्तमान समय में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या लगभग कितनी है?

(8) 2014–15 के केन्द्रीय बजट में शिक्षा के लिए कितनी राशि दी गयी?

(9) सबके लिए शिक्षा परियोजना की शुरूआत कब से हुई?

10.6 प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण में बाधाएँ

सबके लिए प्राथमिक शिक्षा एक संवैधानिक निर्देश है। 83वें संविधान संशोधन में प्राथमिक शिक्षा के अधिकार को सुस्पष्ट कर दिया गया है। इतने वर्षो के बाद भी प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सका है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में निम्न बाधाएं सामने आ रही हैं–

1. जनसंख्या का तीव्र गति से बढना प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्य की प्राप्ति में एक बडी बाधा है इतनी विशाल जनसंख्या के लिए निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना एक बडी चुनोती है।
2. प्राथमिक शिक्षा पूर्ण रूप से निःशुल्क नहीं है। राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि के चुने हुए जिलों में सर्वेक्षण के आधार पर पता चला कि बच्चों को सरकारी विद्यालय में भेजने के लिए अभिभावकों को धन खर्च करना

पडता हैं निर्धन व्यक्ति इसी कारण अपने बच्चों को प्राथमिक विद्यालय में नहीं भेज पाते हैं।

3. बाल मजदूरी भी इसमें एक बाधा है गरीब माता पिता अपने बच्चों को मजदूरी में लगा देते हैं उन्हें लगता हैकि विद्यालय भेजने पर बच्चों को मजदूरी करके पैसा कमाने का समय नहीं मिलेगा इस प्रकार बाल मजदूरी भी एक बडी बाधा है।

4. प्राथमिक विद्यालयों में आकर्षण का अभाव– अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों का वातावरण मनोवैज्ञानिक एवं रोचक नहीं होता है। शिक्षण–सहायक सामग्री का अभाव होने के कारण भी बच्चों का पढ़ाई के प्रति आकर्षण नहीं होता है।

5. प्राथमिक विद्यालयों का दूर होना भी एक बाधा हैं देश के ग्रामीण एवं दूर–दराज के क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालय बच्चों के घर के आस–पास नहीं है जिससे उन्हें विद्यालय आने जाने में कठिनाई होती है। इस कारणभी बच्चों का नामांकन कम होता है एवं वे पढाई के बीच में ही विद्यालय छोड देते हैं।

6. बच्चों द्वारा पैतृक व्यवसाय में संलग्न होने के कारण भी वे विद्यालय में प्रवेश नहीं लेते है या विद्यालय नहीं जाते हैं। अभिभावकों को लगता है कि जब बड़े होने पर बच्चों को पैतृक व्यवसाय से ही आजीविका प्राप्त करनी है तो पढाई से क्या लाभ होगा।

7. विद्यालयों में अमनोवैज्ञानिक एवं दूषित शिक्षण विधियों को प्रयुक्त करना भी एक बड़ी समस्या हैं बच्चे औपचारिक ढंग से पढाए गये ज्ञान को समझ नहीं पाते है तथा अनावश्यक रूप से उन्हे डॉटते फटकारते एवं मारते पीटते रहते है जिसके कारण बच्चे विद्यालय जाना पसन्द नहीं करते है।

8. अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में देखा जाता है कि शिक्षक धनी परिवार के बच्चों से प्रेमपूर्वक व्यवहार करते है एवं गरीब परिवार के बच्चों को तिरस्कृत करते हैं। भेदभाव पूर्ण व्यवहार के कारण भी बच्चे विद्यालय से विमुख होते हैं। जिसके कारण वे विद्यालय नहीं जा पाते हैं।

9. विद्यालय का समय बच्चों के अनुकूल न होने के कारण भी वे विद्यालय नहीं जा पाते हैं।

10. घुमक्कड़ जनजाति के लोग एक स्थान पर निवास नहीं करते है वे अपनी आजीविका के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते है जिसके कारण उनके बच्चे विद्यालय नहीं जा पाते हैं।

11. शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से अक्षम बच्चों की शिक्षा के लिए अतिरिक्त सुविधाओं की आवशकताएं होती हैं आजकल समेकित शिक्षा (Inclusive Education)

द्वारा सामान्य बच्चों के साथ ही उनकी शिक्षा की व्यवस्था की जा रही हैं

अभिभावकों द्वारा अक्षम बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरूकता का अभाव भी शिक्षा प्राप्ति में बाधा है।

12. पहाडी तथा दुर्गम इलाकों, दूर–दराज के क्षेत्रों, रेगिस्तान तथा जंगलों से घिरे सुदूरवर्ती जनजातीय क्षेत्रों में विद्यालय नहीं है या बहुत कम है जिससे बच्चे विद्यालय नहीं जा पाते हैं।

13. आज भी हमारा समाज शिक्षा के लिए बहुत जागरूत नहीं है, वे शिक्षा के महत्व को नही समझ पा रहे है, समाज को शिक्षा के प्रति अभिप्रेरित करने की आवश्यकता है।

14. कुछ राज्यों में किए गए सर्वेक्षण से पता चला है कि प्राथमिक शिक्षा वास्तविक रूप से निःशुल्क नहीं है। बच्चों के अभिभावकों को प्राथमिक शिक्षा के लिए धन खर्च करना पडता हैं धन के अभाव में भी वे बच्चों को विद्यालय नहीं भेज पाते हैं।

15. सरकार निरन्तर ही वास्तविकता को भुलाकर आदर्शपूर्ण आधारों पर शैक्षिक नीतियां बनाती हैं। पुरानी नीतियों की असफलता के कारणों व लक्ष्य की पूर्ति को प्रभावित करने वाली दशाओं पर विचार करके नीतियां बनाने की आवश्कता है।

16. आज शैक्षिक संस्थाएं चलाना एक व्यवसाय बन गया है। सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में भी भ्रष्टाचार व्याप्त है।

17. भारत के अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में आधारभूत सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्यालयों के तो भवन भी नहीं है, कई प्राथमिक विद्यालयों में शौचालय, पीने का पानी,शैक्षिक सामग्री, ब्लैकबोर्ड आदि का अभाव है।

18. कुछ अशिक्षित माता–पिता को शिक्षा के महत्व के बारे में पता नहीं होता है। जागरूकता के अभाव में वे अपने बच्चों को भी विद्यालय नहीं भेजते हैं।

19. कुछ शिक्षा के नियोजकों एवं अभिभावकों के मन में यह धारणा है कि अनौपचारिक शिक्षा विद्यालयी शिक्षा का विकल्प नहीं हो सकता है।

20. देश के कई राज्यों के कुछ क्षेत्रों में अनेक प्राकृतिक कठिनाईयां जैसे अधिक वर्षा, ठंड, गर्मी आदि होती हैं जिससे बच्चे विद्यालय नहीं जा पाते हैं।

21. राजनैतिक समस्याएं जैसे– राजनैतिक उथल–पुथल, सत्ता परिवर्तन आदि भी लक्ष्य प्राप्ति में बाधक हैं भारत में साम्प्रदायिकता आतंकवाद, जातिवाद आदि भी समस्याएं हैं। विभिन्न राजनैतिक दल अपने लाभ के लिए विभिन्न नीतियां बनाते हैं।

22. प्राथमिक शिक्षा के उददेश्यों को कठिन शब्दावली जैसे राष्ट्रीय समंजन, मानव शक्ति का विकास, संस्कृति का हस्तान्तरण एवं संवर्धन, धर्म निरपेक्षता, संज्ञानात्मक अधिगम को बढाना आदि के रूप में व्यक्त किया जाता है इसके कारण शिक्षक अपने शिक्षण में इसका व्यापक प्रयोग नहीं कर पाते हैं अतः स्पष्ट उददेश्यों के अभाव में शिक्षण, अधिगम एवं मूल्यांकन की प्रभावशीलता घट जाती है तथा छात्र रूचिपूर्वक पढ़ाई नहीं करते है।

23. अनुपयुक्त शिक्षा प्रक्रिया– प्राथमिक विद्यालय में अवरोधक एवं अनुपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग बच्चों में शिक्षा के प्रति रूचि जागृत नहीं कर पाता है जिसके परिणामस्वरूप बच्चे स्कूल छोडकर भागते है। शिक्षण सहायक सामग्री के अभाव में शिक्षण प्रायः नीरस होता है। बच्चों को मुख्यतः पाठयपुस्तक पठन विधि एवं व्याख्यान विधि से ही पढाया जाता है विषय वस्तु को रटने पर बल दिया जाता है जिसके कारण बच्चों का पढाई में मन नहीं लगता है।

24. शिक्षकों पर अधिक कार्यभार– शिक्षकों को शिक्षण कार्य के अतिरिक्त जनगणना चुनाव आदि के कार्यो में भी लगा दिया जाता है। जिसके कारण वे अपना पूरा ध्यान शिक्षण कार्यो में नहीं लगा पाते हैं।

25. भाषा की समस्या– भाषा की समस्या भी प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण में बाधक है। एक ही क्षेत्र में अनेक भाषा बोलने वाले लोग रहते है उन्हें उनकी मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा देना कठिन होता है उनके लिए अलग–अलग विद्यालयों की व्यवस्था करना असम्भव है। भाषा की समस्या के कारण भी बच्चे स्कूल छोड देते हैं।

26. अपव्यय एवं अवरोधन– शिक्षा में अपव्यय से तात्पर्य शिक्षा से वांछित अथवा अपेक्षित लाभ प्राप्त न होना है। यदि बालक की शिक्षा पर व्यय किए गए धन तथा मानव श्रम के बावजूद बालक शिक्षा से लाभ नहीं उठा पाता है तो उसकी शिक्षा पर व्यय किए गए धन समय एवं मानवीय श्रम को अपव्यय कहेगे, भारतीय संविधान की धारा 21क में स्वीकृत अनिवार्य शिक्षा की आयु सीमा 6–14 वर्ष को स्वीकार किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि 14 वर्ष की आयु से पहले बालक का विद्यालय से हट जाना ही शैक्षिक अपव्यय है। लगभग 35 प्रतिशत बालक एवं 48 प्रतिशत बालिकाएं कक्षा–5 से पहले तथा 57 प्रतिशत बालक एवं 78 प्रतिशत बालिकाएं कक्षा–8 से पूर्व ही विद्यालय छोड देते हैं इस प्रकार कक्षा–1 में प्रवेश ा लेने वाले 5 प्रतिशत बालक एवं 52 प्रतिशत बालिकाएं ही कक्षा–5 में पहुंच पाते हैं तथा केवल 43 प्रतिशत बालक एवं 32 प्रतिशत बालिकाएं ही कक्षा–8 में पहुंच पाते हैं। बालकों की तुलना में बालिकाओं में अपव्यय की मात्रा अधिक है तथा निम्न प्राथमिक स्तर पर अपव्यय की मात्रा उच्च प्राथमिक स्तर की अपेक्षा बहुत अधिक है।

प्राथमिक शिक्षा में इतनी अधिक मात्रा में अपव्यय के लिए शैक्षिक आर्थिक, सामाजिक, पशासनिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी कारण जिम्मेदार हैं। प्राथमिक कक्षाओं में काफी संख्या में छात्रों का अनुत्तीर्ण होना सामान्य बात है। किसी बालक का एक ही कक्षा में बार–बार अनुत्तीर्ण होना उस छात्र की शैक्षिक प्रगति में अवरोधन का कार्य करता है। इसके कारण वह अपनी पढाई निर्धारित न्यूनतम समय में पूरी नहीं कर पाता है। परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के कारण बालक को एक ही कक्षा में एक से अधिक वर्षो तक रहना पडता है। इस प्रकार छात्रों का एक ही कक्षा में दो या अधिक वर्षो तक बने रहना ही शैक्षिक अवरोध है क्योंकि इससे छात्रों की स्वाभाविक शैक्षिक प्रगति में बाधा पडती है। अतः प्राथमिक शिक्षा को निर्धारित न्यूनतम समय अर्थात 8 वर्ष से अधिक समय में पूरी करना ही अवरोधक है। भारत में कक्षा 1 से 8 तक की प्रत्येक कक्षा में लगभग 4 प्रतिशत से 12 प्रतिशत तक छात्र अनुत्तीर्ण होते है। अवरोधन के प्रमुख शैक्षिक कारण अनुपयुक्त पाठ्यक्रम कक्षा में अधिक छात्रों का होना, अनुपयुक्त एवं नीरस शिक्षण विधियां, शिक्षण–साहयक सामग्री का अभाव, कक्षा में छात्रों की कम उपस्थिति, दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली आदि है। सामाजिक कारणों में अनुसूचित जाति तथा जनजाति के बच्चों अल्पसंख्यक वर्ग के बच्चों तथा बालिकाओं की शिक्षा को हीनदृष्टि से देखना तथा अभिभावकों का अशिक्षित होना है। कुछ भौगोलिक एवं प्रशासनिक कारक भी अवरोधन के लिए जिम्मेदार है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी– (क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिये गये आदर्श उत्तरों से करें।

(10) प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण में आने वाली कोई चार बाधांए बताइए?

(11) बालिकाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में कोई दो बाधाएं बताइए?

(12) अवरोधन से आप क्या समझते हैं?

10.7 प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण से सम्बन्धित बाधाओं के समाधान के लिए सुझाव

पिछले छः दशकों में केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के सम्बन्ध में जो भी नीतियां बनाई गयी उनके क्रियान्वयन में अरबों रूपए खर्च किये गये अनेक नए–नए प्रयोगों एवं कार्यक्रमों को क्रियान्वित करके लक्ष्य प्राप्ति का प्रयास किया गया परन्तु व्यय किए गए धन, समय एवं परिश्रम के अनुरूप ठोस परिणाम प्राप्त नहीं हुए, अतः वर्तमान समय मं आव यकता इस बात की है कि अब पुराने प्रयासों, अनुभवों और कमियों से सीख लेते हुए कुछ ठोस प्रयास किए जाय, प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण से सम्बन्धित बाधाओं के समाधान के लिए कुछ सुझाव निम्न है–

(1) समन्वित दृष्टिकोण– प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए योजनाओं और कार्यक्रमों को बनाते समय सम्बधित दृष्टिकोण रखना जरूरी है। इसके लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

i. प्राथमिक शिक्षा को पूर्व प्राथमिक शिक्षा, निरौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के साथ समन्वित एवं एकीकृत होना चाहिए।

ii. विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों का राष्ट्रीय एवं स्थानीय मुददों के साथ सम्बन्ध होना चाहिए, जैसे–पोषण, सुरक्षा, पर्यावरण, परिवार नियोजन, जीवन मूल्य, स्वास्थ्य आदि ।

iii. कथित क्षेत्रों में विकास के लिए चल रहे कार्यक्रमों के साथ भी प्राथमिक शिक्षा को सम्बन्धित करना चाहिए।

(2) प्राथमिक विद्यालयों की सर्वसुलभता– देश के दूर–दराज के क्षेत्रों, पहाड़ी व दुर्गम इलाकों रेगिस्तान जंगलों से घिरे सुदूरवर्ती जनजातीय क्षेत्रों आदि में भी प्राथमिक विद्यालय खोलने चाहिए। सरकार द्वारा यह प्रयास किया जाना चाहिए कि बच्चों को प्राथमिक विद्यालयों की सुलभता उनके घरों के आसपास ही की जानी चाहिए।

(3) **समुदाय की भागीदारी**– विद्यालय खोलने तथा उसे सुव्यवस्थित चलाने के कार्य में समुदाय की भागीदारी को भी सुनिश्चित करनी चाहिएं समुदाय के जो व्यक्ति साधन ज्ञान एवं कुशलता की दृष्टि से विद्यालय स्थापित करने एवं चलाने के लिए उपयुक्त हों, उन्हें इसकी जिम्मेदारी सौंपनी चाहिए, समुदाय को विद्यालय की प्रगति शिक्षा की गुणवत्ता एवं शिक्षकों के कार्य को देखने का अधिकार होना चाहिए।

(4) शिक्षा की गुणवत्ता को सुनिश्चित करना– विद्यालयों की संख्या में वृद्धि होने के साथ–साथ उसकी गुणवत्ता में कमी आई हैं प्राथमिक शिक्षा की न्यूनतम गुणवत्ता को बनाए रखने के प्रयास करने चाहिए, इसमें राष्ट्रीय सहसम्बद्धता एवं अन्तःक्षेत्रीय गतिशीलता को भी ध्यान में रखते हुए उपयुक्त पाठ्यचर्या को अपनाना चाहिए, पाठ्यचर्या को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप भी बनाने का प्रयास करना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार होने से न केवल नामांकन बढेगा बल्कि शाला त्याग की समस्या भी कम होगी इसके लिए निम्न क्षेत्रों में कार्य करने की आवश्यकता है–

i. शिक्षा की प्रक्रिया में गुणात्मक सुधार करना

ii. पाठयक्रम में सुधार करना

iii. पूर्व सेवाकालीन एवं सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सुधार करना

iv. आवश्यक भौतिक संसाधन उपलब्ध कराना

v. शिक्षकों की सेवा शर्तो को उनके अनुकूल बनाना एवं उन्हें प्रोत्साहित करना

vi. शिक्षण संस्थाओं के प्रबन्धन को मजबूती प्रदान करना

vii. नवीन शैक्षिक तकनीकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना एवं शिक्षकों को नवीन तकनीकी के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करना

viii. वैधा एवं निशपक्ष मूल्यांकन की व्यवस्था करना।

(5) प्रचार–प्रसार के माध्यम– प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए यह अत्यन्त आव यक है कि अभिभावकों को जागरूक एवं प्रेरित किया जाय जिससे वे अपने बच्चों को विद्यालय पढने के लिए भेजे। सरकारी तथा गैर–सरकारी प्रयासों के बारे में उचित प्रचार–प्रसार होना चाहिए विभिन्न प्रचार माध्यम इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है विगत वर्षो में शिक्षा के प्रति लोगों में काफी जागरूकता बढी है परन्तु इस दिशा में और प्रयास की आवश्यकता है निम्न तरीकों के प्रयोग से प्रसार माध्यमों का अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकते है–

i. प्रचार–प्रसार के कार्यक्रमों की गुणवत्ता में सुधार करना

ii. कार्यक्रमों के प्रचार–प्रसार के लिए उपयुक्त योजनाएं बनाना

iii. रोचक तरीके से शिक्षा का प्रचार–प्रसार करना

iv. नवीन तकनीकों एवं मशीनों का प्रयोग करना

(6) वित्तीय व्यवस्था– देश के ग्रामीण एवं दूर–दराज के सभी क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना एवं उसके आवश्यक भौतिक सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए सरकार को अतिरिक्त धन की आवश्यकता है निम्न तरीकों के प्रयोग से वित्तीय संसाधनों में वृद्धि की जा सकती है–

i. प्रत्येक राज्य अपने कुल राजस्व का कम से कम 10 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा पर व्यय करे।

ii. शिक्षा के अधिकार के लिए एक सार्वजनिक कोष का निर्माण किया जाय जिसमें देश के राजनीतिज्ञ सरकारी अधिकारी व्यवसायी, स्वयंसेवी संस्थाएं आदि अपने सामर्थ्य के अनुसार योगदान करें।

iii. प्राथमिक शिक्षा सभी के लिए निःशुल्क न करके उन निर्धन लोगों के लिए ही निःशुल्क रखी जानी चाहिए जो वास्तव में विद्यालय का खर्च उठाने में सक्षम न हो।

(7) शिक्षा व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण– प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेदारी पंचायती राज संस्थाओं को दे देनी चाहिए इससे स्थानीय लोगों के प्रति जबावदेही को सुनिश्चित किया जा सकेगा ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों में न जाने वाले एवं शिक्षण कार्य न करने वाले शिक्षकों के विरूद्ध प्रभावी कार्यवाही हो सकेगी। इस प्रकार ग्राम पंचायतों को प्राथमिक शिक्षा का सम्पूर्ण प्रबन्ध, व्यवस्था एवं उत्तरदायित्व सौंपा जाना लाभप्रद होगा।

(8) विशेष समूह की शिक्षा (Education of Special groups)- भारत में कुछ ऐसे जनसंख्या समूह एवं भौगोलिक क्षेत्र है जो विभिन्न शैक्षिक सुविधाओं का पूर्णतः लाभ प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इस वंचित वर्ग में मुख्यतः महिलाएं व बालिकाएं अनुसूचित जाति एवं जनजाति के बच्चे बालश्रमिक अक्षम बालक आदि आते हैं इनकी समानता के परिप्रेक्ष्य में कुछ अतिरिक्त प्रयास भी करने की आवश्यकता है।

(9) गैर सरकारी संस्थाओं को प्रोत्साहन (Encounragement to NGO's)- प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्य को पूरा करने में विभिन्न गैर–सरकारी एवं स्वयं सेवी संगठनों की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इन स्वयंसेवी संगठनों द्वारा चलाए जा रहे विद्यालयों को सरकारी विद्यालयों के समान मान्यता दी जानी चाहिए। सरकार द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में स्वयंसेवी संगठनों की सहायता ली जानी चाहिए स्वयंसेवी संगठनों द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों को सरकार द्वारा उचित निरीक्षण के उपरान्त अनुदान दिया जाना चाहिए इनके द्वारा चलाये जा रहे विद्यालयों एवं कार्यक्रमों की सरकारी अधिकारियों द्वारा समय–समय पर

निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण होना चाहिए तथा उनकी जवाबदेही भी सुनिश्चित करनी चाहिएं।

(10) शिक्षा के व्यावसायीकरण पर नियंत्रण (Control on the Commercialization of Education)- अधिकांश कान्वेट तथा पब्लिक स्कूल अभिभावकों तथा शिक्षकों का आर्थिक शोषण करने में लगे हुए हैं इन विद्यालयों द्वारा विकास भवन, शिक्षण शुल्कों आदि के नाम पर अनियत्रित फीस वसूल की जाती है। अतः इनके प्रशासन एवं शुल्क व्यवस्थाओं पर नियंत्रण रखने की आवश्यकता है।

(11) शिक्षकों को सुविधाएं (Facilities to Teachers)- शिक्षकों को ग्रामीण एवं

दूर–दराज के क्षेत्रों में जाने के लिए प्रेरित करना जरूरी है इसके लिए उनके वेतन, आवास की सुविधाएं तथा अन्य प्रकार के प्रोत्साहन उनके कार्यो के आधार पर दिए जाने चाहिए।

(12) बाल–केन्द्रित अधिगम (Student Centred Learning)- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को बाल केन्द्रित किया जाना चाहिए तथा उनकी आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए, शिक्षण को क्रिया आधारित बनाने पर जोर देना पडेगा जिससे छात्र पढाई में रूचि लेगे। शारीरिक दंड पर पूर्ण निषेध हो। विद्यालय के समय को बच्चों की सुविधा के अनुकूल किया जाना चाहिए।

(12) निरौपचारिक शिक्षा व्यवस्था को प्रोत्साहन– प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु औपचारिक शिक्षा के साथ–साथ निरौपचारिक शिक्षा व्यवस्था को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए बीच बीच में विद्यालय छोड देने वाले बच्चों प्राथमिक विद्यालय विहीन स्थानों पर रहने वाले बच्चों तथा पूर्ण दिवस विद्यालयों में न जा सकने वाले कार्यरत बच्चों के लिए निरौपचारिक शिक्षा का क्रमबद्ध कार्यक्रम होना चाहिए। नवीन तकनीकी के प्रयोग से इनकी गुणवत्ता को औपचारिक शिक्षा के समान ही बनाने का प्रयास करना चाहिए निम्न प्रकार की निरौपचारिक व्यवस्थाएं इसमें सहायक हो सकती हैं–

i. पूर्व प्राथमिक खुला विद्यालय

ii. अंशकालिक निरौपचारिक शिक्षा

iii. स्वयंसेवी संगठनों द्वारा संचालित निरौपचारिक विद्यालय

iv. कुछ प्रमुख गैर–सरकारी संगठन जैसे– एकलव्य (मध्य प्रदेश), एम0बी0 फाउण्डोन (आन्ध्र प्रदेश), उरमुल ट्रस्ट (राजस्थान) आदि इस दिशा में प्रयासरत हैं।

उपरोक्त सुझावों के अतिरिक्त यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि जो भी सरकारी योजनाएं बनाई जा रही है वे केवल कागजी कार्यवाही तक ही सीमित न हो उन योजनाओं एवं कार्यक्रमों का सही ढंग से क्रियान्वयन भी अत्यन्त आवश्यक हैं। प्राथमिक शिक्षा में किए जाने वाले व्यय का पूरा–पूरा लाभ बच्चों को मिलना चाहिए, इसके लिए केन्द्र व राज्य सरकारों, राजनेता, शिक्षा जगत से जुडे अधिकारी, शिक्षक, प्रचार तन्त्र से जुडे हुए लोग, समुदाय के लोग भी पूर्ण निष्ठा इमानदारी, लगन जबावदेही, मानवता व सहयोग की भावना से ओत–प्रोत होकर अपने दायित्वों का निर्वाह करें, तभी प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्य को पूरी तरह से प्राप्त करना सम्भव हो सकेगा।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी– (क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अन्त में दिये गये आदर्श उत्तरों से करें।

(13) प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए कोई दो सुझाव दीजिए?

___

___

___

(14) प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेदारी पंचायती राज व्यवस्था को देने से क्या लाभ होगा?

___

___

___

(15) निरौपचारिक शिक्षा किन बच्चों के लिए लाभकारी है?

___

___

___

10.8 माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का तात्पर्य

भारतीय शिक्षा नीति का मुख्य उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के उपरान्त माध्यमिक शिक्षा को सब तक पहुँचा कर देश के युवा को शिक्षित करना है। इससे तात्पर्य है कि शत–प्रतिशत बच्चे कक्षा 9–10 की शिक्षा पूरी करें। तभी हमारा

लोकतंत्र सफल हो सकता है। वास्तव में 20वीं शताब्दी को प्राथमिक शिक्षा सार्वजनीकरण से जोड़ा जाता है जबकि 21वीं शताब्दी सें यह आशा की जाती है कि सर्वव्यापी शिक्षा की धारणा का विस्तार माध्यमिक शिक्षा स्तर तक किया जायेगा। औपाचरिक शिक्षा मुख्यतः शैक्षिक संस्थाओं में दी जाती है। शैक्षिक संस्थाएं, शिक्षा जिस स्तर पर दी जाती है उसके अनुसार ही स्थापित की जाती है। इस प्रकार प्राथमिक, माध्यमिक तथा स्नातक स्तरों की शिक्षा प्राप्त करने के लिए अलग–अलग संस्थायें होती हैं। यह शिक्षा के स्तर अपनी अलग पहचान रखते हैं क्योंकि प्रत्येक शिक्षा स्तर की अपनी विशिष्टतायें होती हैं। इस कारण इनके अनेक उद्देश्य भी विशिष्ट होते हैं जो सामान्य उद्देश्यों के अतिरिक्त होते हैं। शिक्षा के प्रत्येक स्तर के सामान्य तथा विशिष्ट दोनों प्रकार के शिक्षा के उद्देश्य होते हैं। सामान्य उद्देश्य तो सब स्तरों के लिए लगभग एक समान ही होते हैं किन्तु विशिष्ट उद्देश्यों में प्रत्येक स्तर पर विभिन्नता होती है। जैसे प्राथमिक शिक्षा के विशिष्ट उद्देश्य पढ़ना, लिखना और गणित में प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करना हो सकते हैं। माध्यमिक शिक्षा को प्राथमिक और उच्च शिक्षा के मध्य की कड़ी माना जाता है। माध्यमिक शिक्षा सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सार्वभौमिक शिक्षा को माध्यमिक स्तर तक बढ़ाने की आवश्यकता निम्न तत्वों पर निर्भर है :

- उच्च स्तर की कुशलताएं और योग्यताएं जो रोजगार प्राप्त करने के लिए व्यावसायिक विकास के लिए उद्यमकर्ता होने के लिए तथा स्वतंत्र व्यापार के लिए आवश्यक है।
- उच्च स्तरीय शिक्षा स्वयं सीखने एवं स्वनिर्देशित होने की योग्यता के लिए जो कि जीवनपर्यन्त चलने वाली सतत सामान्य शिक्षा एवं व्यवसायिक शिक्षा के लिए हो।

  ज्ञान का विस्फोट, नवीन एवं अच्छी व्यवसायिक कुशलताओं का विकास तथा स्वतंत्र व्यवसाय की आवश्यकता, स्वयं सीखने की आवश्यकता एवं जीवनपर्यन्त चलने वाली शिक्षा के सन्दर्भ में माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य को समझना होगा। 21वीं शताब्दी तकनीकी और वैज्ञानिक युग है। हम कह सकते हैं कि 21वीं शताब्दी में मानव अपने अस्तित्व को और गहराई से समझेगा और बीमारियों पर भी प्रभुत्व प्राप्त कर लेगा। अतएव एक साधारण मानव जिसे पर्याप्त शिक्षा नहीं मिली है वह एक नवीनी सांसारिक व्यवस्था में अपने को व्यवस्थित नहीं कर पायेगा। यह नवीन व्यवस्था उच्च स्तर के वैज्ञानिक अन्वेषणों और खोजों के कारण विकसित होगी जो व्यक्ति के आत्म विकास के

साथ सामुदायिक जीवन के विभिन्न पक्षों के विकास से होगी। माध्यमिक शिक्षा युवा केउसमें 'कैसे सीखें' के सीखने की योग्यताएं विकसित करेगी।

माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के उद्देश्य :

माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण द्वारा निम्न उद्देश्य प्राप्त किये जा सकेंगे।

- माध्यमिक स्तर को औपचारिक शिक्षा का समापन स्तर भी समझा जाना चाहिए। इस कारण इस स्तर पर ऐसी शिक्षा होनी चाहिए जो प्रत्येक व्यक्ति को देश का ऐसा नागरिक बना दे जो ज्ञानी हो, विवेकशील हो और देश के प्रति पूर्ण आस्था रखता हो। माध्यमिक स्तर की शिक्षा को विद्यार्थियों में स्पष्ट चिन्तन तथा नवीन विचारों को स्वीकार करने की योग्यता विकसित करनी चाहिए। शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों को सत्य तथा असत्य में विभेद करना तथा प्रचार और वास्तविकता में अन्तर करना सिखाने की चेष्टा करनी चाहिए। विद्यार्थियों में वैज्ञानिक ढंग से चिन्तन करने और यथार्थता को सामने रखकर निर्णय लेने की क्षमता विकसित की जानी चाहिए।

- माध्यमिक स्तर पर ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जो विद्यार्थियों में बन्धुत्व की भावना उत्पन्न करे। देश का युवा सामाजिक प्राणाी बनें और दूसरों के साथ प्रेमपूर्ण ढंग से रहना सीखें। जिन गुणों को माध्यमिक शिक्षा को विकसित करना चाहिए; वह हैं– अनुशासन, सहयोग, सामाजिकता, सहनशीलता, निर्णय लेने की योग्यता और उपयुक्त विकल्पों का चयन, देश–प्रेम, सहानुभूति एवं मानवता एवं समाज–सेवा आदि माध्यमिक शिक्षा को देश–प्रेम की भावना को विकसित करना चाहिए किन्तु यह संकीर्ण दृष्टिकोंण को बढ़ावा देने वाला देश–प्रेम नहीं होना चाहिए। मानववादी दृष्टिकोंण को भी शिक्षा देते समय ध्यान में रखना चाहिए।

- माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का प्रमुख उद्देश्य युवाओं में व्यावसायिक योग्यता का विकास है। इस स्तर विद्यार्थी को व्यावसायिक कौशल सीखना चाहिए। उसको यह भी समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक व्यवसाय महत्वपूर्ण है और समाज को अनेकों प्रकार के व्यवसायों की आवश्यकता होती है, इसलिए विद्यार्थियों में व्यवसायिक कुशलता को विकसित करना माध्यमिक शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास है।

- माध्यमिक शिक्षा को व्यक्ति की सृजनात्मक शक्तियों को उभारने में सहायता देनी चाहिए। युवाओं को सुन्दर की सराहना करनी चाहिए, सत्य बोलना चाहिए

और अच्छा व्यवहार करना चाहिए। इससे देश का विकास एवं उत्थान द्रुत गति से हो सकेगा।

- माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के अन्तर्गत नेतृत्व के गुणों के विकास के उद्देश्य को भी सम्मुख रखना चाहिए। एक प्रजातंत्र में नेतृत्व की आवश्यकता सब स्तरों पर होती है। हमारे देश में मध्य स्तर पर नेत त्व की बहुत कमी है। माध्यमिक शिक्षा को इस स्तर पर नेतृत्व के लिए युवाओं को तैयार करना चाहिए।

- माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण द्वारा बौद्धिक योग्यता में वृद्धि एवं विकास, नागरिक के कर्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान, सामाजिक सेवा की भावना उत्पन्न करना, अपने हितों को दूसरों की भलाई के लिए कुर्बान कर देना, दूसरों को सही रास्तों की ओर ले जाना और विफलता में भी अपने मन का संतुलन नहीं खोना आदि को विकसित करने का उद्देश्य रखना चाहिए।

- माध्यमिक शिक्षा देते समय विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान देना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य ''स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क'' होना चाहिए। अतएव माध्यमिक संस्थाओं में शरीर शिक्षा, खेलकूद, कसरत इत्यादि को विशिष्ट स्थान देना चाहिए। विद्यार्थियों को पौष्टिक एवं सन्तुलित आहार का ज्ञान होना चाहिए। उन्हें सिखाना चाहिए कि कैसे वह अपने अवकाश का समय स्वस्थ तथा उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं में व्यतीत कर सकते हैं।

- माध्यमिक स्तर पर इन सब विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिए। वह संस्था द्वारा आयोजित किन क्रियाओं में भाग लेना चाहेंगे। इस सम्बन्ध में भी निर्णय लेने का विकल्प उन्हें मिल जाता है। अत एव यह आवश्यक है कि वह यह समझ लें कि विद्यालय में कौन सी शैक्षिक क्रियाएं उपलब्ध हैं। यह समझ उन्हें सही विकल्प चुनने के योग्य बना देगी और सही निर्णय लेना वह सीख जायेंगे जो देश तथा व्यक्ति दोनों के लिए आवश्यक है।

- शिक्षित व्यक्ति का उद्देश्य नैतिकता का विकास भी है को एक नैतिकता का ज्ञान होना चाहिए। उसमें यह योग्यता होनी चाहिए कि अच्छाई और बुराई, सत्य और असत्य, सही और गलत, उच्च नैतिकता तथा निम्न नैतिकता में विभेद कर सके।

- माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण एक अन्य उद्देश्य वस्तुनिष्ठता से विश्लेषण करने की क्षमता का विकास करना है। 21वीं सदी के समाज में परिवर्तित करने

के लिए नवीन पीढ़ी को वैज्ञानिक ढंग से चिन्तन करना और न्यायपूर्ण ढंग से कार्य करना सीखना होगा।

- माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का उद्देश्य युवाओं को प्रभावशाली ढंग से तकनीकी का प्रयोग करना भी सिखाना चाहिए। आज तकनीकी हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश कर गयी है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–(क) अपने उत्तरों को नीचे दिये गये स्थान पर लिखिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

16. सर्वव्यापी शिक्षा की धारणा का विस्तार कहा तक किया जायेगा ?

____

____

____

17. माध्यमिक स्तर पर किन विषयों की शिक्षा देनी चाहिए ?

____

____

____

10.9 माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के मुद्दे एवं चुनौतियां

भारत में माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण से तात्पर्य है 14 से 16 आयु वर्ग के सभी बच्चों को माध्यमिक शिक्षा (कक्षा–9 से 10 तक) की सुविधा सुलभ हो, शत–प्रतिशत बच्चे उसमें प्रवेश लें और शत–प्रतिशत बच्चे अपनी माध्यमिक शिक्षा पूरी करें, बीच में न छोड़ें। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि अब तक प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण पूर्णरूप से नहीं हो पाया है। आज हमारे देश के सामने प्राथमिक शिक्षा के उपरान्त माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण की एक बड़ी चुनौती है। जैसे–जैसे देश की जनसंख्या बढ़ेगी वैसे–वैसे और अधिक माध्यमिक विद्यालयों की व्यवस्था करनी होगी अतः इसकी योजना अभी से बनाना आवश्यक है । माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य को पूरा करने में निम्न चुनौतियां हैं :–

- हमारे देश में संसाधनों की कमी है, केन्द्रीय बजट में रक्षा के बाद दूसरा स्थान शिक्षा का ही होता है, परन्तु देश की जनसंख्या को देखते हुए बहुत कम होता है। राज्य सरकारें भी प्रायः शिक्षा पर अपेक्षाकृत बहुत कम व्यय करती हैं और

जो व्यय करती है उसका भी उपयुक्त भाग प्रारम्भिक शिक्षा पर व्यय नहीं करती। सरकारी आंकड़े बताते हैं कि शिक्षा बजट का लगभग 95 प्रतिशत भाग केवल शिक्षा के प्रशासन तन्त्र और शिक्षकों के वेतन पर व्यय होता है। तब शेष 5 प्रतिशत से शिक्षा का प्रसार एवं उन्नयन कैसे किया जा सकता है। माध्यमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण का लक्ष्य कैसे प्राप्त होगा। अन्य कारण यह है कि जो भी संसाधन है उनका भी सही ढंग से प्रयोग नहीं किया जाता। चारों ओर भ्रष्टाचार का साम्राज्य है।

- माध्यमिक शिक्षा की प्रमुख चुनौती जन–सहयोग की कमी है। जन सहयोग के नाम पर जन–शोषण करने वाली संस्थाएं अधिक हैं, जन सेवा करने वाली संस्थाएं कम हैं। ये प्रायः वहीं विद्यालय खोलती हैं, जहां इन्हें आर्थिक लाभ होता है। गुणवत्ता परक माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था करने में इनका सहयोग नगण्य है।
- समाज का पिछड़ापन, अशिक्षा और निर्धनता जहां माध्यमिक स्कूल है भी वहां भी पिछड़े, अशिक्षित और निर्धन अभिभावक अपने बच्चों को विद्यालय में प्रवेश नहीं दिला पाते। ये माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य को पूरा करने की प्रमुख समस्या है।
- देश की भौगोलिक परिस्थितियां भी इसमें बाधक हैं, दूर–दराज के पहाड़ी, रेगिस्तानी और जंगली क्षेत्रों की छोटी–छोटी बस्तियों में माध्यमिक विद्यालय खोलने और चलाने की समस्या है। देश की तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या एक प्रमुख चुनौती है। आज जितने माध्यमिक विद्यालय खोले जाते हैं , कल उनसे अधिक की मांग बढ़ जाती है।

माध्यमिक शिक्षा की समस्याएं

हमारे संविधान में शिक्षा के अधिकार के अन्तर्गत माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण का निर्देश भी है। अनौपचारिक शिक्षा की योजना उन बच्चों के लिए शुरू की गयी जो किसी कारण औपचारिक शिक्षा का लाभ नहीं उठा पाते, जो काम–धन्धों में लगे रहते हैं और जो बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं। सरकार ने बहुत जनसंख्या वाले क्षेत्र में एक माध्यमिक विद्यालय खोलने का निर्णय लिया। साथ ही अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के क्षेत्रों में और अधिक माध्यमिक स्कूल स्थापित करने का निर्णय लिया। पंचवर्षीय योजनाओं में माध्यमिक शिक्षा के विकास एवं गुणवत्ता पर करोड़ों रूपये व्यय किये जाने की योजना है। यदि हम सार रूप से

देखे तो माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की सफलता के लिए निम्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है :–

- वित्तीय व्यवस्था
- निजी शिक्षण संस्थान एक व्यवसाय के रूप में
- शिक्षकों की कमी
- परीक्षा की विश्वसनीयता
- मंहगाई कैपिटेशन फीस
- भाषा विवाद
- ग्रामीण एवं शहरों में विद्यालयों से असंतुलन
- गरीबी एवं कुपोषण, अंधविश्वास
- विद्यालय में बुनियादी संसाधनों का अभाव
- सामाजिक, सांस्कृतिक परम्पराएं

यदि हम व्यवहारिक जीवन में देखे तो समाज में विद्यालय दो वर्गो में बंटा हुआ है– (i) सरकारी स्कूल, (ii) प्राइवेट/पब्लिक स्कूल। पब्लिक स्कूलों ने शिक्षा को एक व्यवसाय का रूप दे दिया है। इन संस्थानों द्वारा बच्चों के अभिभावकों से मनमाना शुल्क वसूला जाता है। इस आधार पर यह प्रश्न विचार करने योग्य हैं कि निजी क्षेत्र का शिक्षण क्षेत्र में सहभागिता से ग्रामीण स्कूली बच्चों को कितना लाभ मिलेगा? यह एक महत्वपूर्ण समस्या है ।

माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में एक बहुत बड़ी समस्या है, शिक्षकों की कमी। गुणवत्ता परक माध्यमिक शिक्षा के लिए शिक्षकों की कमी दूर करना पड़ेगा। शिक्षकों के अभाव में माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण करने का लक्ष्य नहीं प्राप्त किया जा सकता। कहीं–कहीं तो देखने को मिलता है कि सरकारी विद्यालय केवल कुछ शिक्षकों के भरोसे रहता है। इससे शिक्षा की गुणात्मकता का स्तर क्या होगा यह सहज ही अन्दाजा लगाया जा सकता है। निजी स्कूलो द्वारा एडमिशन के लिए कैपिटेशन फीस लेने पर 10 गुने जुर्माने की व्यवस्था का निर्धारण किया गया है, लेकिन विद्यालयों द्वारा मंहगी फीस लेने पर कोई प्राविधान नहीं किया गया है। माध्यमिक स्तर पर भाषा विवाद एक महत्वपूर्ण समस्या है। यदि व्यवहारिक जीवन में देखा जाय तो शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा ज्यादा प्रभावकारी साबित होती है लेकिन मैकाले अभी भी भारतीय मानसिकता पर हावी है। हमें स्कूली शिक्षा में हिन्दी या प्रान्तीय भाषाओं को

प्राथमिकता देनी चाहिए। समाज में अभी भी बाल एवं बंधुआ मजदूर पाये जाते हैं, हालांकि सरकार ने इस प्रकरण में शोषण करने वाले पर सजा का भी निर्धारण किया है लेकिन इस अधिनियम में इसके बारे में कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं की है। भारत जैसे विकासशील देश में अभी भी कुपोषण, भुखमरी एवं गरीबी जैसे रोग उपस्थित हैं। ये ऐसे रोग हैं जो इस लक्ष्य की पूर्ति में बहुत बड़े बाधक साबित हो सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संगठन का अनुमान है कि विश्व में सबसे ज्यादा गरीब लोग भारत में ही हैं जिनकी संख्या लगभग 24 करोड़ हैं।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी–(क) अपने उत्तरों को नीचे दिये गये स्थान पर लिखिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलाइए

18. माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का क्या तात्पर्य है ?

____

____

____

19. माध्यमिक शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों को सूचीबद्ध करें ।

____

____

____

20. माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में वित्तीय व्यवस्था प्रबन्ध क्यों कठिन कार्य है?

____

____

____

10.10 लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रमुख कार्य योजनाएं

माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण राष्ट्रीय ध्येय के रूप में स्वीकार किया गया है। संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति में संकल्प व्यक्त किया गया है कि 21वीं शताब्दी में देश में 14 से 16 वर्ष की आयु तक के बच्चों को गुणवत्ता की दृष्टि से संतोषजनक माध्यमिक शिक्षा उपलब्ध करायी जायेगी। 12वीं पंचवर्षीय योजना में

सबके लिए माध्यमिक शिक्षा के लक्ष्य के बारे में निम्नलिखित मानदण्ड निर्धारित किये गये हैं :–

(अ) माध्यमिक शिक्षा की सार्वभौम पहुॅंच (Universal Acess in Secondary Education)

- सार्वभौम पहुँच से तात्पर्य सभी 14 से 16 वय वर्ग के कक्षा 9–10 में पढ़ने वाले बच्चों के लिए उनकी पहुॅंच में माध्यमिक विद्यालय उपलब्ध होना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा को सार्वजनीकरण हेतु इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयास किये जा रहे हैं। परन्तु जनसंख्या के विस्फोट के समस्त प्रयासों एवं उपलब्धियों को अर्थहीन बना दिया है। सीमित साधनों के कारण हम जनसंख्या वृद्धि की गति के साथ हम माध्यमिक विद्यालयी सुविधाओं को प्रदान करने में असमर्थ रहे हैं।
- बारहवीं योजना में पहुॅंच के सम्बन्ध में निम्नलिखित राष्ट्रीय लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं जिनकी प्राप्ति के लिए कार्य किया जा रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया कि माध्यमिक विद्यालयों की व्यवस्था की जाये अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए आवासीय माध्यमिक विद्यालयों की व्यवस्था की जाये।
- बालिकाओं और अनुसूचित जातियों/जनजातियों के व्यक्तियों सहित सभी बच्चों का नामांकन माध्यमिक शिक्षा में सुनिश्चित किया जाये ।
- 5 किलोमीटर की पैदल दूरी की परिधि में सभी बच्चों के लिए माध्यमिक स्कूल उपलब्ध कराना तथा पढ़ाई बीच में छोड़ने वालों, ऐसे कार्यरत बच्चे तथा बालिकाएँ जो स्कूलों में नहीं जा सकते हैं के लिए अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों की सुविधा ।

(ब) **माध्यमिक शिक्षा में सार्वभौम नामांकन (Universal Enrolment in Secondary Education)**

सार्वभौमिक नामांकन का अभिप्राय है। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त सभी बच्चों को माध्यमिक स्कूलों में प्रवेश दिलाने से है। सामान्यतः यह पाया गया है कि अनेक बच्चे माध्यमिक स्कूल में प्रवेश ही नहीं लेते हैं। अतः सार्वभौमिक नामांकन से अभिप्राय है कि प्रारम्भिक शिक्षा सभी बच्चे माध्यमिक स्कूल में प्रवेश लें। विशेषतः लड़कियाँ, जनजातियों के बच्चों, तथा निम्न स्तर के लोगों के बच्चों के नामांकन का कार्य प्रभावशाली ढंग तथा द्रुत गति से किया जाये।

नामांकन का सार्वभौमीकरण न होने का प्रमुख कारण बच्चों की आर्थिक दशा का खराब होना है जो अपने माता–पिता के जीविकोपार्जन में सहायता करते हैं। वे विद्यालय

जाने की बजाय अपने परिवार की आय की पूर्ति के लिए फार्म एवं खेतों, दुकानों तथा कारखानों में काम करते हैं। लड़कियाँ जीविकोपार्जन में प्रत्यक्ष रूप से सहायता न देकर घर के कामकाज तथा छोटे भाई–बहिनों की देखभाल करते हैं। ऐसे बच्चे विद्यालय जाने में असमर्थ रहते हैं क्योंकि इनको परिवार की दृष्टि से किसी न किसी कार्य के लिए आवश्यक समझा जाता है। साथ ही माता–पिता की उदासीनता तथा अप्रासंगिक एवं नीरस विद्यालय पाठ्यक्रम और सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएँ माध्यमिक स्तर पर नामांकन के सार्वभौमीकरण के मार्ग में बहुत बड़ी बाधाएँ हैं।

केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने नामांकन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शत–प्रतिशत बच्चों को माध्यमिक शिक्षा सुलभ कराना अपना लक्ष्य निर्धारित किया है।

(स) माध्यमिक शिक्षा में सार्वभौम धारणा (Universal Relation in Secondary Education)

प्रत्येक नामांकित बच्चे को विद्यालय में तब तक रोके रखा जाये जब तक वह निश्चित आयु का न हो जाये या विहित (निश्चित) पाठ्यक्रम न पूरा कर ले। दूसरे शब्दों में विद्यार्थी माध्यमिक शिक्षा की समाप्ति तक विद्यालय में बना रहे। सामान्यतः यह देखा गया है कि अनेक बच्चे माध्यमिक शिक्षा को पूर्ण किये बिना ही विद्यालय छोड़ देते हैं। एक अनुमान के अनुसार 60 प्रतिशत बच्चे कक्षा 8 से पूर्व अध्ययन कार्य छोड़ देते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि कक्षा एक में प्रवेश लेने वाले प्रत्येक 100 बच्चों में से 40 बच्चे माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार शेष बच्चे बीच में शाला त्याग कर देते हैं कि माध्यमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाया जाये। अतः इसके लिए प्रवेश लेने वाले सभी बच्चों को विद्यालय में कक्षा–10 तक रोके रखने के लिए हर सम्भव उपाय किये जाने चाहिए। विश्व बैंक की रिपोर्ट में कहा गया है कि बच्चों को दाखिला दिलाने के लिहाज से भारत ने अच्छी उपलब्धियां हासिल की है लेकिन सबसे जरूरी बात यह है कि बच्चे पूरी पढ़ाई करने स्कूल में निर्धारित आयु तक टिकें तथा पढ़ाई बीच में न छोड़ें। भारत में केन्द्र, राज्य सरकारों तथा स्थानीय प्रशासन को चाहिए कि वे बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा के साथ–साथ माध्यमिक शिक्षा का चक्र पूरा करने के लिए प्रेरणा दें। इसके लिए विद्यालयों को बच्चों के करीब लाया जाये तथा पढ़ाई स्तरीय शिक्षा प्रदान की जाये। जिन बच्चों को स्कूल तक ला पाना सम्भव हो उनके लिए अनौपचारिक शिक्षा (Non-formal Education) या वैकल्पिक शैक्षिक कार्यक्रम तैयार किये जायें।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी–(क) अपने उत्तरों को नीचे दिये गये स्थान पर लिखिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

21. माध्यमिक शिक्षा में सार्वभौम पहुंच से क्या तात्पर्य है ?

____

____

____

22. माध्यमिक शिक्षा में सार्वभौम नामांकन (Universal Enrolment) का अर्थ बताइए।

____

____

____

23. माध्यमिक शिक्षा में सार्वभौम धारणा (Universal Relation) का अर्थ बताइए?

____

____

____

10.11 सारांश

शिक्षा को भौतिक अधिकार का दर्जा प्राप्त गया है। इस अधिकार के अन्तर्गत प्राथमिक के साथ–साथ माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण को सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखा गया है। इस मौलिक अधिकार के अन्तर्गत अनेक क्रान्तिकारी उपाय भी किये हैं। जिनमें प्रमुखतः निजी स्कूलों में गरीबों एवं वंचितों के बच्चों के लिए 25 फीसदी सीटों का आरक्षण और बच्चों को हर साल की प्रवेश परीक्षाओं से मुक्ति शामिल है। यद्यपि कि मानव संसाधन विकास मंत्री ने स्वीकार किया कि यह लक्ष्य पाना आसान नहीं है और कानून बनते ही सब कुछ ठीक हो जायेगा, लेकिन उन्होंने भरोसा दिलाया कि इसे अंजाम तक ले जाने के लिए केन्द्र अपनी पूरी जिम्मेदारी निभायेगा जिसमें धन की कमी नहीं होगी। अधिनियम में हर तरह की विकलांगता से प्रभावित बच्चों की शिक्षा का प्रावधान भी किया गया है। उन्होंने कहा कि जो बच्चे सामान्य स्कूलों में शिक्षा नहीं ले सकते हैं उन्हें वहाँ मौका मिलेगा जबकि विशेष स्कूलों की आवश्यकता होने पर वैसे बच्चों के अध्ययन की भी व्यवस्था की जायेगी। कोई भी लोकतंत्र तभी सशक्त हो सकता है जब

देश का प्रत्येक नागरिक देश में बराबर का साझीदार हो और यह सिर्फ प्रारम्भिक शिक्षा सबको उपलब्ध कराकर सम्भव नहीं होगा। अतः युवा वर्ग को गुणवत्तापरक माध्यमिक शिक्षा उपलब्ध कराना भी प्रत्येक देश का कर्तव्य है। इस संदर्भ में राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की उपयोगिता अत्यधिक बढ़ जाती है। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा (RMSA) 15–16 आयु वर्ग के युवा को गुणवत्तापरक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए कटिबद्ध है।

भारतीय शिक्षा नीति का मुख्य उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के उपरान्त माध्यमिक शिक्षा को सब तक पहुंचा कर देश के युवा को शिक्षित करना है। तभी हमारा लोकतंत्र सफल हो सकता है। वास्तव में 20वीं शताब्दी को प्राथमिक शिक्षा सार्वजनीकरण से जोड़ा जाता है जबकि 21वीं शताब्दी से यह आशा की जाती है कि सर्वव्यापी शिक्षा की धारणा का विस्तार माध्यमिक शिक्षा स्तर तक किया जायेगा। शिक्षा औपचारिक रूप से तीन स्तरों पर दी जाती है। माध्यमिक स्तर तथा उच्च शिक्षा तथा माध्यमिक शिक्षा के बीच औपचारिक शिक्षा मुख्यतः शैक्षिक संस्थाओं में दी जाती है। शैक्षिक संस्थाएं, शिक्षा जिस स्तर पर दी जाती है उसके अनुसार ही स्थापित की जाती है।

माध्यमिक शिक्षा को प्राथमिक और उच्च शिक्षा के मध्य की कड़ी माना जाता है। माध्यमिक शिक्षा सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। माध्यमिक शिक्षा सामाजिक एवं राष्ट्रीय उत्थान में मदद करती है। माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में अनेक बाधायें हैं जैसे संसाधनों की कमी समाज का पिछड़ापन, अशिक्षा, निर्धनता देश की भौगोलिक स्थिति भी इसमें बाधक है। बढ़ती हुई जनसंख्या, शिक्षकों की कमी, भाषा विवाद आदि प्रमुख चुनौतियां हैं। इस अधिनियम की सफलता के लिए वित्तीय व्यवस्था करना कठिन कार्य है। 12वीं पंचवर्षीय योजना में माध्यमिक शिक्षा में सार्वभौम पहुँच, सार्वभौम नामांकन, सार्वभौम धारण की कार्य योजना बनायी गयी है। इनकी सफलता पर ही माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का लक्ष्य पूरा हो
सकेगा। वास्तव में राष्ट्रीय माध्यमिक षिक्षा अभियान (RMSA) 15–16 आयु वर्ग के युवा को गुणवत्तापरक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए कटिबद्ध है।

10.12 अभ्यास कार्य

- प्रशिक्षण के दौरान माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के प्रमुख मुद्दों पर चर्चा कीजिए।
- प्रशिक्षणार्थियों से माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की समस्याओं के निराकरण हेतु लिखित सुझाव आमंत्रित करें ।

10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण से तात्पर्य यह है कि प्राथमिक शिक्षा का प्रसार समस्त भारत में हो और देश के सभी बालक को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त हो सके।

2. भारतीय संविधान के 45 वें अनुच्छेद में बालकों की निशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने की बात कही गयी है।

3. संविधान के अनुच्छेद 21–क के द्वारा प्राथमिक शिक्षा को नागरिकों का मूल अधिकार घोषित कर दिया गया।

4. प्राथमिक शिक्षा में सार्वभौमिकरण के दो लक्ष्य निम्न हैं–

   (क) असाक्षरता में कमी

   (ख) शैक्षिक प्रक्रिया व पाठ्यवस्तु में सुधार करना

5. प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के निम्न चार चरण हैं–

   (अ) प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओं को सर्वव्यापी बनाना

   (ब) प्राथमिक शिक्षा में नामांकन को सर्वव्यापी बनाना

   (स) प्राथमिक शिक्षा में बच्चों के टिके रहने का सर्वव्यापीकरण

   (द) प्राथमिक शिक्षा में सभी बच्चों को गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान करने को सर्वव्यापी बनाना।

6. प्राथमिक शिक्षा में नामांकन के सर्वव्यापीकरण से तात्पर्य यह है कि 6–14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों का विद्यालय में प्रवेश ा हो।

7. वर्तमान समय में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या लगभग 13 लाख है।

8. 2014–15 के केन्द्रीय बजट में शिक्षा के लिए 68,728 करोड रुपये दिए गए हैं।

9. 'सबके लिए शिक्षा' परियोजना का प्रारम्भ 1990 में हुआ।

10. प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण में आने वाली चार बाधाएं– (क) विश ा ाल जनसंख्या (ख) गरीबी (ग) बाल मजदूरी (घ) अभिभावकों में जागरूकता का अभाव

11. बालिकाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में दो बाधाएं– (क) घरेलू कामकाज (ख) बालिकाओं की शिक्षा के लिए अभिभावकों का गलत दृष्टिकोण

12. छात्रों का एक ही कक्षा में दो या अधिक वर्षो तक बने रहना ही शैक्षिक अवरोधन है

13. प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता को बढाने के दो उपाय–

(अ) पाठ्यक्रम तथा शिक्षा प्रक्रिया में सुधार लाना।

(ब) पूर्ण–सेवाकालीन एवं सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सुधार करना।

14. प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेदारी पंचायती राज संस्थाओं को देने से यह लाभ होगा कि स्थानीय लोगों के प्रति जबाबदेही को सुनिश्चित किया जा सकेगा।

15. निरौपचारिक शिक्षा बीच–बीच में विद्यालय छोड देने वाले बच्चों, प्राथमिक विद्यालय विहीन स्थानों पर रहने वाले बच्चों तथा पूर्ण दिवस विद्यालयों में न जा सकने वाले कार्यरत बच्चों के लिए लाभकारी है।

16. सर्वव्यापी शिक्षा की धारणा का विस्तार, माध्यमिक शिक्षा तक किया जायेगा।

17. माध्यमिक स्तर पर भाषा विज्ञान, समाजशास्त्र, वातावरण, स्वास्थ्य शिक्षा, स्वच्छता प्रबन्ध इत्यादि विषयों की शिक्षा देनी चाहिए।

18. माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण से तात्पर्य 14 से 16 आयु वर्ग के सभी बच्चों को माध्यमिक शिक्षा (कक्षा 9 से 10 तक) की सुविधा सुलभ हो, शत–प्रतिशत बच्चे उसमें प्रवेश ले और शत–प्रतिशत बच्चे अपनी माध्यमिक शिक्षा पूरी करें, बीच में न छोड़े।

19. देश की तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण आज जितने विद्यालय खोले जाते हैं कुल उनसे अधिक की मांग बढ़ जाती है।

20. माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में वित्तीय व्यवस्था प्रबन्धन कठिन कार्य है क्योंकि सर्व शिक्षा अभियान का अनुभव हमारे सामने है।

21. सार्वभौम पहुंच (Universal Access) से तात्पर्य सभी 14 से 16 वय वर्ग के कक्षा 9 से 10 में पढ़ने वाले बच्चों के लिए पहुंच में माध्यमिक विद्यालय उपलब्ध होना चाहिए।

22. सार्वभौमिक नामांकन (Universal Enrolment) का अभिप्राय है कि प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले शत–प्रतिशत बच्चे माध्यमिक कक्षाओं में प्रवेश लें।

23. माध्यमिक शिक्षा में सार्वभौम धारण (Universal Retention) से तात्पर्य है कि विद्यार्थी माध्यमिक शिक्षा की समाप्ति तक विद्यालयों में बना रहे।

10.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- **शर्मा, गणपति राय (2011) :** उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
- **सिंह, रामपाल (2011) :** उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षा, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
- **त्यागी, गुरूसरन (2012) :** भारत में शिक्षा का विकास, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
- **गुप्ता, एस0 पी0 एवं गुप्ता, अलका (2012) :** भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

इकाई – 11 उत्तरदायी नागरिकता के विकास के लिए शिक्षा

संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 नागरिकता का विकास

11.4 नागरिक कौन

11.4.1 नागरिकता की परिभाषा

11.4.2 नागरिकता के प्रमुख तत्व

11.4.3 उत्तरदायी नागरिक की विशेषतायें

11.4.4 उत्तरदायी नागरिकता प्राप्ति के मार्ग में बाधक तत्व

11.4.5 लोकतंत्र में नागरिकों की भूमिका

बोध प्रश्न

11.5 उत्तरदायी नागरिकता के विकास के लिए शिक्षा

11.5.1 नागरिकता की शिक्षा का अर्थ

11.5.2 नागरिकता की शिक्षा की आवश्यकता

11.5.3 नागरिकता की शिक्षा प्रदान करने के साधन

(i) परिवार

(ii) विद्यालय

11.6 सारांश

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.8 अभ्यास प्रश्न

11.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण तथा तकनीकी विकास के कारण आज विश्व में क्रांति आ गयी है दृ हमारे रहन सहन, सोचने/विचारने, सीखने/सिखाने तथा कार्य करने की शैलियों में अत्यधिक परिवर्तन आ गया है। वैज्ञानिक आविष्कारों ने आज विश्व के विभिन्न देशों के मध्य भौगोलिक दूरियां समाप्त कर दी हैं जिससे लोगों का एक देश से दूसरे देश में आवागमन भी सरल हो गया है जिसके परिणामस्वरूप एक देश के लोग दूसरे देश में बहुतायत में दिखायी देते हैं। यह लोग दूसरे देश में पर्यटन, शिक्षा, व्यवसाय आदि

कार्यों के लिए जाते हैं तथा कभी कभी वहां निवास करने लगते हैं। इन लोगों को, जो एक देश में दूसरे देश से आते हैं उन्हें विदेशी तथा मेजबान देश के निवासियों को उस देश का नागरिक कहा जाता हे। क्या आपने कभी सोचा है कि यह अंतर क्यों होता है? व्यक्ति एक देश का नागरिक कब कहलाता है? एक नागरिक में क्या गुण होने चाहिये? लोगों को उत्तरदायी नागरिक कैसे बनाया जा सकता है? उत्तरदायी नागरिक बनने के मार्ग में बाधक तत्व कौन से हो सकते हैं? आदि।

इस इकाई में हम ऐसे ही कुछ प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने का प्रयास करेगें आइये सर्वप्रथम हम नागरिकता का अर्थ समझ लें क्योकि हमारा भारत देश जो एक लोकतांत्रिक गणराज्य है, की नींव व सफलता, सजग, सक्रिय व उत्तरदायी नागरिकों पर निर्भर करती है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- ➢ नागरिकता के विकास के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- ➢ नागरिक को परिभाषित कर सकेगें।
- ➢ उत्तरदायी नागरिक की विशेषताएं समझ कर बता सकेगें।
- ➢ उत्तरदायी नागरिकता के मार्ग में बाधा पहुंचाने वाले तत्वों को पहचान सकेगें।
- ➢ लोकतंत्र में नागरिकों की भूमिका के विषय में बता सकेगें
- ➢ उत्तरदायी नागरिकता के विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता समझ सकेगे।
- ➢ नागरिकता की शिक्षा को परिभाषित कर सकेगें।
- ➢ नागरिकता की शिक्षा कैसे दी जा सकती है समझकर बता सकेगें।

11.3 नागरिकता का विकास

नागरिकता का विचार प्रारम्भ से रोमन तथा यूनानी राजनीतिक व्यवस्थाओं में देखने को मिलता है। प्राचीन यूनान में अधिकांश लोग दास, स्त्रियां या विदेशी थे जिन्हें नागरिक नहीं माना जाता था। अतः उन्हें शासन से कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं थे। परन्तु यूनानी राज्यों के पतन के पश्चात इस स्थिति में कुछ अन्तर आया। युद्ध में पराजित लोगों को तो नागरिक माना जाने लगा परन्तु स्त्रियों व निम्न स्तर के व्यक्तियों को नहीं क्योंकि वहां नागरिकता का अर्थ कानून से संरक्षण प्राप्त होने से था।

पन्द्रहवीं व सोलहवीं शताब्दी में आधुनिक चिन्तन के उदय ने इटली में नागरिकता के विचार को पुनः स्थापित किया ओर इसका पूर्ण विकास फ्रांस की क्रांति तथा मानव एवं नागरिकों के अधिकारों की घोषणा के साथ हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी में नागरिकता की नई धारणा को बढ़ावा दिया उदारवादी सिद्धान्त ने जिसके अनुसार नागरिकता का अधिकार समाज में समानता तथा सामाजिक न्याय में विश्वास करना था। अतः नागरिकता अपने पूर्ण विकसित रूप में वस्तुओं, सेवाओं व लाभों के पुनर्वितरण से सम्बन्धित है।

जॉन लॉक ने जीवन, स्वतंत्रता एवं सम्पत्ति के प्राकृतिक अधिकारों का विचार दिया तथा इन्हीं अधिकारों की रक्षा के लिए नागरिकों ने राज्य का निर्माण किया। अतः इन्हीं विचारों की प्रेरणा से उन्नीसवीं शताब्दी में नागरिकता को केवल कानूनी शान्ति का सूचक माना गया।

11.4 नागरिक कौन

नागरिक का शाब्दिक अर्थ है नगर में रहने वाला। व्यापक अर्थ में नागरिक वह व्यक्ति है जो गांव, कस्बे या नगर में निवास करता है तथा उसे उस राज्य से कुछ सुविधायें प्राप्त करने का अधिकार है एवं उसे राज्य के प्रति कुछ उत्तरदायित्वों का पालन करना होता है। इससे स्पष्ट होता है कि एक नागरिक के निवास स्थान से अधिक महत्वपूर्ण है उसके अधिकार एवं उत्तरदायित्व। एक नागरिक को प्राप्त ये अधिकार एवं देश के प्रति उसके कर्तव्य उसे विदेशी से भिन्न बनाते हैं। एक विदेशी को किसी देश का नागरिक बनने से पहले, उसे मेजबान देश के कुछ नियमों व कानूनों का पालन करना होता है।

इस प्रकार नागरिक से तात्पर्य है ''संगठित समाज का वह सदस्य जो राज्य से कुछ सुविधाओं को प्राप्त करने का अधिकारी है और जो कुछ कर्तव्यों द्वारा समाज से बंधा हुआ है।''

हमारे भारतीय संविधान के अनुसार भारत का नागरिक वह व्यक्ति है जिसका भारत के राज्य क्षेत्र में अधिवास है और

- जो भारत के राज्य क्षेत्र में जन्मा था, या
- जिसके माता–पिता में से कोई भारत के राज्य क्षेत्र में जन्मा था, या
- जो ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले कम से कम पांच वर्ष तक भारत के राज्य क्षेत्र में मामूली तौर से निवासी रहा है।

यदि किसी व्यक्ति ने स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता ग्रहण कर ली है तो अनुच्छेद–5 के आधार पर उसकी भारतीय नागरिकता समाप्त हो जायेगी।

11.4.1 नागरिक की परिभाषा

आइये अब हम नागरिक के विषय में दी हुई कुछ परिभाषाएं देखें। अरस्तू के अनुसार– एक नागरिक वह है जिसे राज्य के शासन में कुछ भाग प्राप्त हो और जो राज्य द्वारा प्रदान किये गये सम्मान का उपयोग करता हो।

लास्की के अनुसार – नागरिक केवल समाज का एक सदस्य ही नहीं है वरन् वह कुछ कर्तव्यों का यांत्रिक रूप से पालन करने वाला और आज्ञाओं को बुद्धिमत्तापूर्वक ग्रहण करने वाला भी है।

वाटल के शब्दों में – नागरिक समाज के वे सदस्य होते हैं जो कुछ विशेष कर्तव्यों द्वारा समाज से बंधे हों, जो समाज के नियंत्रण में रहते हों, जो समाज द्वारा प्रस्तुत सुविधाओं का निरन्तर उपयोग करते हों।

सीले ने नागरिक को परिभाषित करते हुए कहा है – नागरिक उस व्यक्ति को कहते हैं, जो राज्य के प्रति भक्ति रखता हो, जिसे सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त हों और जो जनसेवा की भावना से प्रेरित हो।

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि नागरिक वह व्यक्ति है –

- जो एक राज्य का सदस्य हो
- राज्य की सीमा के अन्दर रहता हो
- उसे सभी राजनीतिक अधिकार प्राप्त हों
- उसका उद्देश्य व्यक्तिगत तथा सामूहिक हितों की रक्षा करना हो, तथा
- वह राज्य की सम्प्रभुता को स्वीकार करता हो

11.4.2 नागरिकता के प्रमुख तत्व

नागरिक कौन होता है के विषय में जानने के पश्चात अब हम नागरिकता के प्रमुख तत्व कौन से हैं, के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगें। लास्की के शब्दों में मानव बुद्धि को लोकहित के लिए प्रयोग करना ही नागरिकता है। नागरिकता के प्रमुख तत्व हैं –

- राज्य की सदस्यता,
- राज्य द्वारा सामाजिक एवं राजनीतिक अधिकार प्रदान करना,
- राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करना।

आपने जाना कि नागरिकता के लिए अधिकार एवं कर्तव्य आवश्यक तत्व हैं। समाज में प्रत्येक व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए अधिकारों की आवश्यकता होती है क्योंकि इनके अभाव में वह स्वतंत्र रूप से विकास करने में सफल नहीं हो पाता है। अतः इन्हें मूल अधिकार कहते हैं क्योंकि ये हमारी आधारभूत सुविधाओं से सम्बन्धित है। भारतीय संविधान के अनुसार मूल अधिकार मानव को समाज तथा राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त वे अधिकार हैं जिनको मानना हमारी सरकारों के लिए आवश्यक है। देश में स्थापित स्वतंत्र न्यायपालिका इन अधिकारों की रक्षा करती है। दूसरे शब्दों में ये मूलभूत आदर्श नियम हैं जो लोगों को कुछ करने अथवा पाने का हक देते हैं।

अधिकारों का वास्तविक अर्थ तभी है जब व्यक्ति, समाज व राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन निष्ठापूर्वक करते हैं। अतः अधिकार एवं कर्तव्य जब एक दूसरे के पूरक

होते हैं तब लोकतंत्र सफल होता है। कर्तव्यों के अभाव में अधिकारों की कल्पना नहीं की जा सकती है क्योंकि कर्तव्य ही अधिकारों का मार्ग प्रशस्त करते हैं। एक व्यक्ति अधिकारों का प्रयोग तभी कर सकता है जब दूसरा व्यक्ति उसके अधिकारों का आदर करे। दूसरे शब्दों में एक व्यक्ति का अधिकार दूसरे के कर्तव्य पर निर्भर करता है। इस संदर्भ में गांधी जी ने कहा था ''कर्तव्यों का पालन कीजिए, अधिकार स्वतः ही आपको मिल जायेगें।''

11.4.3 उत्तरदायी नागरिक की विशेषतायें

सभ्य समाज में लोकतंत्रीय व्यवस्था में नागरिकों का महत्व बहुत है क्योंकि राज्य नागरिकों से बने होते हैं। अतः इन्हीं पर किसी भी देश का विकास व प्रगति निर्भर करती है। यहां पर अरस्तू का यह कथन प्रासंगिक है जिसमें वह कहता है – ''श्रेष्ठ नागरिक ही श्रेष्ठ राज्य का निर्माण करते हैं।''

वास्तव में नागरिक ही राज्य का आधार होते हैं। यदि नागरिक अनुशासित, चरित्रवान तथा कर्तव्यपरायण होगें तो वह देश शीघ्र ही उन्नति के शिखर पर पहुॅच जायेगा। लार्ड ब्राइस ने नागरिकों की बुद्धि व विवेक पर बल दिया है। एक आदर्श नागरिक के गुणों को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है – ''एक लोकतंत्रीय नागरिक में बुद्धि, आत्म–संयम तथा उत्तरदायित्व होना चाहिए।'' उनकी मान्यता थी कि नागरिकों को निःस्वार्थ भाव से अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। डा0 व्हाइट ने भी इन गुणों के साथ ज्ञान को भी श्रेष्ठ नागरिकता के गुणों में जोड़ा है। लास्की ने आदर्श नागरिकता के विषय में लिखा है – ''नागरिकता मानव के शिक्षित निर्णय का जन कल्याण में प्रयोग है।''

वेबस्टर के अनुसार नागरिकता व्यक्ति में वे अपेक्षित विशेषताएं हैं जो एक समुदाय के उत्तरदायी नागरिक में होनी चाहिए क्योंकि,

ईमानदारी के अभाव में व्यक्ति एक दूसरे पर विश्वास नहीं कर सकता

संवेदनशीलता लोगों के मध्य एक भावात्मक सम्बन्ध है जिसके अभाव में जीवन सुखद नहीं होता है।

जआइये अब हम नागरिक के विषय में दी हुई कुछ परिभाषाएं देखें। अरस्तू के अनुसार– एक नागरिक वह है जिसे राज्य के शासन में कुछ भाग प्राप्त हो और जो राज्य द्वारा प्रदान किये गये सम्मान का उपयोग करता हो।

ने के लिए प्रेरणा देता है।

शौर्य के अभाव में कोई भी व्यक्ति समाज द्वारा स्वीकार्य मानकों के विरूद्ध जाने का प्रयास नहीं करेगा जिससे समाज में विकास व परिवर्तन सम्भव नहीं है।

मित्रता समाज में स्वीकार्य होने के लिए आवश्यक है।

आइये अब हम एक आदर्श व उत्तरदायी नागरिक में कोन सी विशेषताएं होनी चाहिए कि विषय में ज्ञान प्राप्त कर लें। इन गुणों की सूची बहुत विस्तृत है, परन्तु इनमे से कुछ निम्नलिखित हैं : –

➢ **जन–कल्याण से प्रेरित** – देशभक्त, परोपकारी व निःस्वार्थ भाव से समाज के हित में कार्य करने वाला व्यक्ति जो सामाजिक रूढ़ियों व कुरीतियों की उपेक्षा करके उन्हें दूर कर सके।

➢ **सच्चरित्रता** – ईमानदार, सच्चाई पर चलने वाला, अनुशासित, आत्म–संयमी, विवेकशील, बुद्धिमान तथा दृढ़ संकल्प व चरित्रवान व्यक्ति अपने कर्तव्यों का उचित ढंग से निर्वहन करता है, क्योंकि उसमें उचित एवं अनुचित में अन्तर समझ कर निर्णय लेने की क्षमता होती है।

➢ **उदारता व सहिष्णुता** – भारत विविधता में एकता का देश हे। अतः समाज में शान्ति व समरसता के लिए आवश्यक है कि लोगों में एक दूसरे के लिए सहनशीलता, प्रेम, दयालुता व व्यापक दृष्टिकोण होना चाहिए जिससे वे मिल–जुल कर एक कुटुम्ब की भांति रहें तथा आपसी मतभेद, विवाद व झगड़े न उत्पन्न हों।

➢ **कर्तव्यपरायणता** – आदर्श नागरिक राज्य की आज्ञाओं, नियमों व कानूनों का निष्ठापूर्वक पालन करता है तथा दूसरों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनता है।

➢ **परिश्रमशीलता** – वैयक्तिक व सामाजिक प्रगति की आधारशिला परिश्रम है क्योंकि इससे व्यक्ति में स्वावलम्बन की भावना उत्पन्न होती है। परिश्रमी व्यक्ति अपना तथा समाज, दोनों ही का कल्याण करता है।

➢ **नागरिक चेतना** – आदर्श नागरिक अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहता है। वह सरकारी योजनाओं, नीतियों व कानूनों के विषय में जानकारी रखता है व दूसरों को जानकारी भी देता है तथा उनके उचित व सफल क्रियान्वयन में अपना योगदान भी देता है।

➢ **मताधिकार का उचित प्रयोग**– निष्पक्षता व समझ के साथ अपने मताधिकार का सही प्रयोग करके, योग्य व्यक्ति के चयन में अपना सक्रिय योगदान देकर एक आदर्श नागरिक देश का हित करता है।

➢ **शिक्षा** – शिक्षा प्रगति की नींव है। एक शिक्षित व्यक्ति अपने ज्ञान का प्रकाश फैला कर अज्ञानता का अंधकार दूर करने का प्रयास करता है। इस संदर्भ में गांधी जी का यह कथन प्रासंगिक है – ''शिक्षा, जो आत्मा की रोटी है, स्वस्थ नागरिकता की प्रथम शर्त है।''

11.4.4 उत्तरदायी नागरिकता प्राप्ति के मार्ग में बाधक तत्व

आदर्श नागरिकता आदर्श शासन व्यवस्था की आधारशिला है। इसकी प्राप्ति के मार्ग में अनेकों बाधायें आती हैं जिनका लोकतंत्र की सफलता के लिए निराकरण करना

आवश्यक है। ये बाधायें कौन सी हैं, आइये उनसे अवगत हों।

स्वार्थपरता – स्वार्थी व्यक्ति अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए उचित–अनुचित कार्य करने में नहीं हिचकते हैं जिससे दूसरों को हानि होती है। आदर्श नागरिकता के लिए निज स्वार्थों से हट कर अपने कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक है।

अज्ञानता एवं अशिक्षा – एक अशिक्षित व्यक्ति देश की समस्याओं, नीतियों व योजनाओं को समझने में व उन पर कार्य करने में सक्षम नहीं होता है। वह देश की राजनीति में सक्रिय भाग नहीं ले सकता है। अक्षम व्यक्ति अपने विवेक के स्थान पर दूसरों के बहकावे में आकर गलत कार्य करता है। अतः अज्ञानता व अशिक्षा आदर्श नागरिकता की शत्रु होती है।

आर्थिक विषमता– निर्धनता के कारण मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित होने से व्यक्ति उन्हें जुटाने में ही लगा रहता है और चाहकर भी अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर पाता है। कभी–कभी वह अनुचित व समाज–विरोधी कार्य करने के लिए विवष हो जाता है। ऐसे व्यक्ति से देश के हित में कार्य करने की आशा नहीं की जा सकती है।

अकर्मण्यता – आलस्य अवनति का मूल कारण है। यह सोचने–विचारने व सही निर्णय लेने व कार्य करने में बाधक है क्योंकि यह मनुष्य की बुद्धि का नाश करता है। सक्रियता के अभाव में यह दरिद्रता भी लाती है।

साम्प्रदायिकता – यह भावना देश की शान्ति व व्यवस्था को नष्ट कर देती है जिससे घृणा, द्वेष, संघर्ष, अराजकता आदि फैलने से सामाजिक जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है।

रूढ़िवादिता – रीति–रिवाज व रूढ़ियां कई बार आदर्श नागरिकता के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं क्योंकि इनसे जकड़ा व्यक्ति अपने आदर्श कर्तव्य चाह कर भी नहीं निभा पाता है।

भ्रष्टाचार – यदि शासन में भ्रष्टाचार है तो योजनाओं का लाभ आम जनता तक नहीं पहुंच पाता है जिससे उन्हें निराशा होती है और कभी–कभी वे भी भ्रष्टाचार का सहारा लेते हैं।

दलीय स्वार्थ – कई बार राजनीतिक दल, सत्ता प्राप्ति के लोभ में राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा करके अपने हितों को साधने में लग जाते हैं।

दुर्भाग्यवश आज अनेकों विसंगतियों के उत्पन्न होने के कारण नागरिकों में उत्तरदायित्व निर्वहन करने की भावना लुप्त होती जा रही है। आज केवल अधिकारों की बात होती है, कर्तव्यों की नहीं। इन परिस्थितियों में शिक्षा तथा सामूहिक प्रयास ही आदर्श नागरिकता प्राप्ति के मार्ग में बाधक तत्वों को दूर करके अधिकारों व कर्तव्यों

के बीच संतुलन ला सकते हैं। इस इकाई के अगले भाग में हम यह जानेगें कि शिक्षा किस प्रकार से नागरिकों में वांछित व समाजयोपयोगी गुणों का विकास कर सकती है।

11.4.5 लोकतंत्र में नागरिकों की भूमिका

हम भारत के नागरिक हैं, पर क्या हम इस लोकतंत्र में अपनी भूमिका को सही अर्थों में जानते व निभाते हैं? अधिकांश लोग यह समझते हैं कि हमने जो प्रतिनिधि सरकार चलाने के लिए चुने हैं, उन्हीं का कार्य है देश के उत्थान के लिए व समस्याओं का निराकरण करने के लिए कार्य करना। हम लोग निष्क्रिय होकर बैठ जाते हैं। परन्तु अब इस सोच में परिवर्तन आ रहा है। अब लोगों का मानना है कि हमारी भी शासन में भागीदारी व जवाबदेही है। हमें इस नई सोच को सभी नागरिकों के मन में बैठाना है जिससे वे सरकार को सुचारू रूप से चलाने में अपना सक्रिय योगदान दे कर इस लोकतंत्र को सफल बना सकें। कैसे?

- ✓ चुनाव के समय अपने मताधिकार का बुद्धि व विवेक के साथ सही प्रयोग करें।
- ✓ सरकार के अनुचित निर्णयों तथा कार्यों पर सवाल उठाकर, अपनी राय देकर, शांतिपूर्वक असहयोग व विरोध प्रकट करें।
- ✓ परिवार, समाज व देश के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन करें।
- ✓ कानून का आदर तथा हिंसा का परित्याग करें।
- ✓ दूसरों की सहायता करें।
- ✓ दूसरों के विचारों को सुन कर, सही निर्णय दें।
- ✓ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहें तथा दूसरों के अधिकारों की रक्षा करें।

बोध प्रश्न

टिप्पणी – नीचे दिये गये स्थान में उत्तर लिखें तथा इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों की जांच करें।

1. नागरिक किसे कहते हैं?

   ____

   ____

2. नागरिकता के प्रमुख तत्व बताइये?

   ____

   ____

3. उत्तरदायी नागरिक की पॉच मुख्य विशेषताएं बताइये?

   ____

   ____

4. किन कारणों से लोग देश के प्रति अपना उत्तरदायित्व नहीं निभा पा रहे हैं?

____

____

5. लोकतंत्र को सफल कैसे बना सकते हैं। तीन कारण दीजिए।

____

____

11.5 उत्तरदायी नागरिकता के विकास के लिए शिक्षा

उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम साधारण भाषा में कह सकते हैं कि अपने अच्छे आचरण, मनोवृत्ति व कौशलों के द्वारा अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए मिलजुल कर रहने के लिए जो शिक्षा दी जाये, वह सही अर्थों में उत्तरदायी नागरिकों के विकास में सहायक होती है।

11.5.1 नागरिकता की शिक्षा की परिभाषा व अर्थ

आइये अब हम नागरिकता की शिक्षा पर लोगों के विचारों के अध्ययन के आधार पर इसका अर्थ समझने का प्रयास करें।

बट्स (1988) के अनुसार नागरिकता की शिक्षा का अर्थ है उन आधारभूत सिद्धान्तों तथा मूल्यों का सतत व सुस्पष्ट अध्ययन जो लोकतांत्रिक राजनैतिक समुदाय तथा संवैधानिक आदेश का आधार है।

बार्बर (1992) के अनुसार प्रभावशाली नागरिकता की शिक्षा में विभिन्न शासकीय मुद्दों पर आलोचनात्मक ढंग से सोचना, निर्णय लेना तथा शासन में सहभागिता का होना है।

इक्वमेलू (1994) नागरिकता की शिक्षा को वह शिक्षा मानते हैं जो एक व्यक्ति को नागरिक में परिवर्तित करती है। इसका अर्थ है कि नागरिकता की शिक्षा व्यक्ति में सही प्रकार के मूल्यों का विकास करती है जो राष्ट्रीय विकास में सहयोग देते हैं।

ओलिवर (2000) के अनुसार नागरिकता की शिक्षा का लक्ष्य नागरिक व राजनैतिक जीवन में स्थानीय, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर योग्य एवं उत्तरदायी सहभागिता है जिसके लिए आवश्यक है ज्ञान व समझ की प्राप्ति, बौद्धिक व सहभागी कौशलों का विकास, चारित्रिक गुण एवं मनोवृत्तियों की तथा संवैधानिक लोकतंत्रीय सिद्धान्तों एवं आधारभूत मूल्यों के प्रति वचनबद्धता की।

इबेज़िम (2001) ने इसका उद्देश्य व्यावहारिक अभ्यास द्वारा जन कल्याण की भावन, ऐच्छिक सेवा, ईमानदारी, न्यायोचित व्यवहार की भावना, दूसरों के हित के लिए त्याग करना, विपरीत विचारों एवं राय का आदर करना माना है।

यह कहा जा सकता है कि उत्तरदायी नागरिकता की शिक्षा के लिए आवश्यक है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था छात्रों में आदर्श व उत्तरदायी नागरिकता के विकास के लिए अपेक्षित गुणों, प्रवृत्तियों व कौशलों का विकास करे। इसके लिए विभिन्न शैक्षिक क्रियाएं इनको ध्यान में रखते हुए विद्यालय के विभिन्न स्तरों की पाठ्यचर्या में रखी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम में भी लोकतंत्र सम्बन्धी आधारभूत प्रत्यय, सिद्धान्त, मूल्य आदि तथा संविधान के विषय में भी पाठ होने चाहिए।

11.5.2 उत्तरदायी नागरिकता की शिक्षा की आवश्यकता

आज राजनैतिक हिंसा, आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, धार्मिक कट्टरवाद, जातिवाद, भ्रष्टाचार, निरक्षरता, लैगिंक भेदवभाव, भ्रूण हत्या, रूढ़िवादिता, अपहरण, बलात्कार, गरीबी, जनसंख्याधिक्य जैसी भयावह चुनौतियॉ हमारे सामने खड़ी हैं, जिनका हम स्वतंत्रता प्राप्ति के 67 वर्षों के पश्चात भी निराकरण कर पाने में अक्षम रहे हैं तथा देश का भी अपेक्षित विकास नहीं कर पाये हैं। क्या अपने कभी इसके विषय में कुछ सोचा है? ये समस्यायें आज जबकि हमारा साक्षरता दर बढ़ा है फिर भी ये कम क्यों नहीं हो पायी है? आइये इसके पीछे क्या कारण है हम उनको ज्ञात करने का प्रयास करें।

आज हमारे ऊपर पाश्चात्य सभ्यता का रंग चढ़ा हुआ है कि हम अपने पुराने मूल्यों व संस्कृति को छोड़ते जा रहे हैं जिसके कारण हमारा नैतिक व चारित्रिक पतन हो रहा है और अपराधी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। हममें संवेदनशीलता, आत्म–सम्मान एवं आत्म गौरव जैसे भावों की कमी हो गयी है। हम अपने दायित्वों को केवल दण्ड के भय से निर्वहन करने के अभ्यस्त हो गये हैं तथा अधिकारों की ही मॉग करते रहते हैं।

यदि हमें इन समस्याओं को दूर करके अपने देश को उन्नति के उच्च शिखर तक ले जाना है तो हमें शिक्षा का सहारा लेना होगा। हमें अपनी शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन लाना होगा जिससे हम अपने बच्चों को सुयोग्य व उत्तरदायी नागरिक बना सकें जो अपने अच्छे आचरण, अभिवृत्ति तथा कौशलों के द्वारा अपने आत्म–विश्वास के साथ अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए सभी के साथ मिलजुल कर रहना सीखें।

आइये अब हम यह जानते का प्रयास करें कि शिक्षा नागरिकों को कैसे आदर्श व उत्तरदायी बना सकती है। इसके लिए हमें घर–परिवार से नागरिकता की शिक्षा देना प्रारम्भ करना पड़ेगा। इससे पूर्व हम यह समझें कि नागरिकता की शिक्षा की आवश्यकता क्यों है।

देश के निर्माण में, क्योंकि ये नेतृत्व के गुणों का विकास करने में सहायक होती हैं।

बच्चों में आदर्श नागरिक के गुणों का विकास करने में सहायक होती है।

नागरिकों में कौशलों का विकास करने में सहायक है।

नागरिकों को सही निर्णय लेने के योग्य बनाती है।

अपने देश के विषय में जानने में सहायक होती है।

नागरिकों को उनके दायित्वों व अधिकारों का बोध कराती हैं।

आदर्श समाज के निर्माण में सहायक है।

11.5.3 नागरिकता की शिक्षा प्रदान करने के साधन

आप जानते हैं कि एक लोकतंत्र की सफलता उसके योग्य व उत्तरदायी नागरिकों पर निर्भर करती है। अतः हमारी शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए जो बालकों में उत्तरदायी नागरिकता के गुणों, कौशलों व मूल्यों का विकास करे, उन्हें लोकतंत्र सम्बन्धी प्रत्ययों व सिद्धान्तों से परिचित कराते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करने योग्य बनाये, उनमें महत्वपूर्ण विषयों पर स्वतंत्र व उचित निर्णय लेने के योग्य बनाये, उन्हें व्यक्तिगत स्वार्थ से उपर उठकर निःस्वार्थ रूप से समाज व देश का कल्याण करने योग्य बनाये, उनमें नेतृत्व के गुण व स्व–अनुशासन का विकास करने में सहायक हो।

आइये अब हम यह जानने का प्रयास करें कि विभिन्न आयु वर्ग व विभिन्न स्तर के बालकों को किस प्रकार उत्तरदायी नागरिक बनाया जा सकता है तथा इसमें विभिन्न अभिकरण अपना योगदान किस प्रकार देते हैं।

(i) **परिवार** – हम सभी जानते हैं कि परिवार बालक की प्रथम पाठशाला होती है जहां मां तथा परिवार के अन्य सदस्यों से उसे अनौपचारिक रूप से शिक्षा मिलनी प्रारम्भ हो जाती है तथा उसमें आदतों का भी निर्माण होने लगता है। छोटे बच्चे अनुकरण द्वारा अधिक सीखते हैं। अतः परिवार के सदस्यों को बच्चों के सम्मुख स्वयं को आदर्श रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। जीवन के प्रारम्भिक काल में बालकों में विकसित अच्छी आदतें उत्तरदायी नागरिक बनने में सहायक होती है। अतः छोटे बालकों में निम्न आदतों का विकास करना आवश्यक हैः–

- शारीरिक स्वच्छता रखना,
- स्वच्छ व संतुलित भोजन लेना,
- व्यायाम व योग करना,
- पर्यावरणीय स्वच्छता रखना,
- जल का अपव्यय न होने देना,
- बिजली का अपव्यय न होने देना,
- खाने का अपव्यय न करना,
- पेड़–पौधे लगाकर उनकी देखभाल करना,
- बड़ों का आदर करना व आज्ञा पालन करना,
- दूसरों की सहायता करना,
- सच बोलना,
- अपनी वस्तुओं को बांटना सीखना,
- निर्भीकता का विकास करना।

अनुकरण के अलावा छोटे बच्चों में अच्छी आदतों व गुणों का विकास निम्न विधियों द्वारा किया जा सकता है –

कहानी द्वारा – साहस, वीरता, त्याग, सहानुभूति, सहायता आदि गुणों से सम्बन्धित कहानियां व दृश्टांत सुनाने व दिखाने चाहिए। इनसे उन्हें क्या शिक्षा प्राप्त होती है उसके विषय में उनसे पूछना व बताना भी चाहिए।

भ्रमण – उन्हें विभिन्न उद्यानों, स्मारकों व अन्य स्थानों पर भ्रमण पर ले जाना चाहिए तथा स्मारकों के महत्व को बताना चाहिए। उद्यानों में ले जाकर उन्हें प्रकृति से परिचित कराकर पेड़–पौधों व जीव–जन्तुओं के महत्व को बताना चाहिए।

अभिनय, संगीत, खेल–कूद, बच्चों के आत्माभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करते हैं। उनके साथ अभिभावक बातचीत करें व्यायाम करें, खेलें व उनसे छोटे–छोटे कार्य करायें।

विभिन्न तकनीकी माध्यमों की सहायता से बालकों में विभिन्न गुणों का विकास किया जा सकता है।

(ii) **विद्यालय** – उत्तरदायी नागरिक बनाने में विद्यालय कैसे अपना योगदान देता है, आइये अब हम इसके विषय में अध्ययन करें : –

बट्स (1988), ड्रिस्को (1993), लेविट व लॉगस्ट्रीट (1983) के अनुसार आदर्श नागरिक विभिन्न संवैधानिक मूल्यों को समझते हैं एवं उनके लिए प्रतिबद्ध होते हैं। अतः पाठ्यक्रम को संविधान में दिये गये मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित किया जाना चाहिए तथा विद्यालय में इस प्राप्त ज्ञान के प्रयोग के लिए अवसर दिये जाने चाहिए।

लेविट व लॉगस्ट्रीट (1983) कहते हैं कि विवादास्पद विषयों पर कक्षा में परिचर्चा करना आवश्यक है क्योंकि इससे छात्रों में समानता, स्वतंत्रता, आत्म–संयम तथा मानवाधिकार जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों के विकास में सहायता मिलती है।

कॉलविल तथा क्लर्केन (1992) के अनुसार विभिन्न राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार विमर्श आवश्यक है क्योंकि इससे छात्रों की आलोचनात्मक सोच, चिन्तन–मनन तथा तर्क–वितर्क की क्षमता विकसित होती है। इसके साथ विद्यालयी पाठ्यक्रम में नैतिकता पर भी महत्व दिया जाये जिससे छात्रों में सबके हित में कार्य करने की आदत विकसित हो जाये (प्रैट, 1988)।

मुलिंस (1990) के अनुसार छात्रों में राजनैतिक ढांचे तथा सम्बन्धित प्रत्यय एवं सिद्धान्तों का ज्ञान एवं समझ का विकास सक्रिय सीखने के उपागम जैसे वाचन, लेखन, निरीक्षण, अनुकरण, वाद–विवाद, अभिनय, निर्णय लेना, समस्या समाधान एवं सांख्यकी का प्रयोग से सम्भव है।

उच्च स्तरीय चिन्तन कौशल तथा देशभक्ति की अनुभूति का विकास विद्यालय के खुले वातावरण में राजनीतिक प्रक्रिया में सहभागिता एवं स्वतंत्र अभिव्यक्ति से होता है। इसके लिए विद्यालय में माक पार्लियामेन्ट का आयोजन हो। शोधों के सर्वेक्षण से पाया गया है कि जिन कक्षाओं में सहयोगी क्रियाएं, स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर वैचारिक

विभिन्नताओं को आदर तथा लोकतांत्रिक वाद–विवाद व निर्णय लेने में छात्रों को भाग लेने के अवसर प्राप्त होते हैं वहां वांछित परिणाम प्राप्त होते हैं।

अतः नागरिकता की शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक है –

ढॉचा – जिसमें हो नागरिकता शिक्षा संघ, सम्बन्धित पाठ्यक्रम, पत्र–पत्रिकायें, स्वतंत्र पाठ्यचर्या निर्माण इकाई, नागरिकता शिक्षा का मूल्यांकन करने के लिए समिति, नागरिक शिक्षा सम्बन्धी सेवायें देने वाली संस्थाएं जो इससे सम्बन्धित कार्यक्रम तथा सुझाव दे सकें तथा इसके लिए सरकारी वित्तीय सहायता इससे सम्बन्धित पाठ्यक्रम निर्माण सम्बन्धी सामग्री के निर्माण के लिए।

सूचनाओं का विकीर्णन – नागरिक शिक्षा से सम्बन्धित सूचनाओं व ज्ञान के प्रचार के लिए विवरणिका, सामुदायिक सूचना–पत्र, विज्ञापन, गाने, नाटक, कविता, पोस्टर, अभिभावक मंच आदि आवश्यक है।

पद को महत्व देना – नागरिकता की शिक्षा प्रदान करने के लिए विद्यालय के वरिष्ठ शिक्षक को इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिए नियुक्त किया जाये। इनका कार्य हो समय–समय पर विभिन्न कक्षाओं के लिए स्तरानुकूल विभिन्न प्रकार की क्रियायें जैसे खेल–कूद, व्यायाम व योग, नृत्य, गायन, कविता–पाठ, वाद–विवाद, निबंध व कहानी लेखन, अभिनय, कैम्प व भ्रमण, विभिन्न प्रदर्शनियों आदि का आयोजन करें, जिससे छात्रों को अभिव्यक्ति का अवसर मिले। विभिन्न प्रकार की सामाजिक क्रियायें जैसे समाज सेवा, स्काउटिंग व गाइडिंग, प्राथमिक चिकित्सा, एन0एस0एस0, श्रमदान, स्वच्छता सम्बन्धी कार्य भी छात्रों से करायी जाये। इसके अतिरिक्त विद्यालय परिषद भी बनायी जाये जिससे छात्रों को संसद की कार्य प्रणाली के विषय में ज्ञान हो।

इस प्रकार विद्यालय की पाठ्यचर्या में रखे विभिन्न विषयों के अतिरिक्त विभिन्न पाठ्येत्तर क्रियायें बालकों में एक आदर्श नागरिक के गुणों का विकास करने में सहायक होते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी नीचे दिये गये स्थान में उत्तर लिखें तथा इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों की जॉच करें।

6. नागरिकता की शिक्षा से आप क्या समझते हैं?

____

____

7. उत्तरदायी नागरिकता की शिक्षा की क्या आवश्यकता है?

____

____

8. परिवार के सदस्य बच्चों में किस प्रकार से अच्छी आदतों का विकास कर सकते हैं?

____

____

11.6 सारांश

उदारवादी सिद्धान्त ने नागरिकता का अधिकार समाज में समानता तथा सामाजिक न्याय में विश्वास को माना था। आज नागरिक से तात्पर्य है संगठित समाज का वह सदस्य जो राज्य से कुछ सुविधाओं को प्राप्त करने का अधिकारी है और जो कुछ कर्तव्यों द्वारा समाज से बंधा हुआ है। एक नागरिक को जन कल्याण से प्रेरित, सचरित्र, उदार, सहिष्णु, कर्तव्यपरायण, परिश्रमी, चैतन्य, शिक्षित व उचित निर्णय लेने वाला व साहसी होना चाहिए।

आदर्श नागरिकता की प्राप्ति के मार्ग में स्वार्थपरता, अज्ञानता, अशिक्षा, आर्थिक विषमता, अकर्मण्यता, साम्प्रदायिकता, रूढ़िवादिता, भ्रष्टाचार, दलीय स्वार्थ, बाधा डालते हैं। लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए नागरिकों को अपने मताधिकार का सही प्रयोग करना चाहिए, अनुचित सरकारी निर्णयों व भ्रष्टाचार का विरोध शांतिपूर्वक करना चाहिए, अपने दायित्वों का निर्वहन करना चाहिए तथा अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहते हुए दूसरों के अधिकारों की भी रक्षा करनी चाहिए।

उत्तरदायी नागरिकता की शिक्षा वह शिक्षा है जो लोगों में अपेक्षित गुणों, प्रवृत्तियों व कौशलों का विकास करे जिससे वे देश के निर्माण में सहायक हो। इस प्रकार की शिक्षा सर्वप्रथम परिवार में फिर विद्यालय में बालक प्राप्त करता है। परिवार के मध्य उसमें अच्छी आदतों व चरित्र का निर्माण होता है। विद्यालय में जाकर विभिन्न विषयों व पाठ्येत्तर क्रियाओं द्वारा वह उत्तरदायी नागरिक बनता है।

11.7 अभ्यास प्रश्न

1. नागरिक व विदेशी में अन्दर बताइये।
2. नागरिक की परिभाषा देते हुए उसका अर्थ समझाइये।
3. व्यक्ति एक देश का नागरिक कब कहलाता है?
4. भारतीय संविधान के अनुसार भारत का नागरिक कौन कहलायेगा?
5. मूल अधिकार से आप क्या समझते हैं?
6. जन कल्याण की भावना से प्रेरित होने का क्या अर्थ है?
7. एक नागरिक में सहिष्णुता का गुण होना क्यों आवश्यक है?
8. अशिक्षा किस प्रकार से आदर्श नागरिकता की शत्रु है?

9. लोकतंत्र में नागरिकों की भूमिका पर चर्चा कीजिए।
10. नागरिकता की शिक्षा का क्या उद्देश्य है?
11. परिवार बच्चों को अच्छा नागरिक बनाने में किस प्रकार अपना योगदान देता है। चर्चा कीजिए
12. विद्यालय की पाठ्य सहगामी क्रियायें नागरिकता की शिक्षा में अपना योगदान किस प्रकार से देती है विवेचना कीजिए।

11.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

1. नागरिक वह व्यक्ति होता है जो एक राज्य का सदस्य हो, उसे सभी राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो, जिसका उद्देश्य व्यक्तिगत तथा सामूहिक हितों की रक्षा करना हो।
2. नागरिकता के प्रमुख तत्व हैं राज्य की सदस्यता, राज्य द्वारा सामाजिक एवं राजनीतिक अधिकार प्रदान करना तथा राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करना।
3. उत्तरदायी नागरिक को संवेदनशील, कर्तव्यपरायण, सच्चरित्र, शिक्षित व चैतन्य होना चाहिए।
4. स्वार्थपरता, अशिक्षा, निर्धनता, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, सही निर्णय न ले पाने के कारण लोग देश के प्रति अपना उत्तरदायित्व नहीं निभा पा रहे हैं।
5. लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए आवश्यक है अपने दायित्वों का निर्वहन, मताधिकार का उचित प्रयोग करके तथा सरकार के अनुचित कार्यों व निर्णयों पर आवाज उठाकर।
6. नागरिकता की शिक्षा का अर्थ है वह शिक्षा जो एक व्यक्ति को नागरिक में परिवर्तित करती है – उसमें सही मूल्यों, मनोवृत्ति, आचरण व कौशलों का विकास करके।
7. उत्तरदायी नागरिकता की शिक्षा आवश्यक है देश के निर्माण के लिए, उसके विषय में जानने के लिए, बच्चों में उन गुणों का विकास करने में जो उन्हें मिलजुल कर रहना सिखायें।
8. परिवार के सदस्य कहानियों के माध्यम से तथा अपने अच्छे आचरण से बच्चों में अच्छी आदतों का विकास कर सकते हैं।

11.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Ezegbe, B.N., Eskay, M., Anyanwn, J. & Abiyogu, G.C. (2014): Role of Social studies in Citizenship Training: Implication

for National Development. IJSR - **International Journal of Scientific Research** Vol. 3, Issue 8.

Punia, T., Prasad, C. & Ajmat, N. ed. (2015): Samajik Vigyan-2. National Institute of Open Schooling, Noida.

Pal, S.K.; Gupta, L.N. and Madan M: Shiksha Ke Siddhant Aur Adhaar, Kailash Prakashan, Allahabad.

Singh, A. & Mall, V.P. (2013): Rajneeti Vigyan Ke Mool Siddhant. Agrawal Publications, Agra.

Shoeman, S. (2006): A Blueprint for Democratic Citizenship Education in South African Public Schools: African Teachers' Perceptions of Good Citizenship. **South African Journal of Education,** Vol. 26 (1)

Wertheimer, J. & Kahne, J. (2004); What Kind of Citizen? The Politics of Teaching for Democracy. **American Educational Research Journal,** vol. 41 (2).

इकाई–12 : पर्यावरण संरक्षण हेतु शिक्षा

संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 पर्यावरण का स्वरूप एवं प्रकार

12.4 पर्यावरण प्रदूषण एवं उसके प्रकार

12.4.1 वायु प्रदूषण (Air Pollution)

12.4.2 जल प्रदूषण (Water Pollution)

12.4.3 मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

12.4.4 ध्वनि प्रदूषण (Sound Pollution)

12.4.5 रेडियोधर्मिता प्रदूषण (Radio Active Pollution)

12.5 पर्यावरण संरक्षण का अर्थ

12.6 पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता

12.7 पर्यावरण संरक्षण हेतु शिक्षा

12.8 पर्यावरण संरक्षण के प्रमुख घटक

12.8.1 जल संरक्षण

12.8.2 वायु संरक्षण

12.8.3 मृदा संरक्षण

12.8.4 खनिज संसाधन संरक्षण

12.9 सारांश

12.10 अभ्यास कार्य

12.11 चर्चा के बिन्दु

12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.13 कुछ उपयोगी पुस्तिकें

12.1 प्रस्तावना

'पर्यावरण के विषय में आप प्राथमिक कक्षाओं से जानते हैं। पर्यावरण प्रदूषण का आपने विभिन्न कक्षाओं में अध्ययन किया होगा तथा इस समस्या को जाना भी होगा। इस इकाई में पर्यावरण संरक्षण हेतु शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई है, क्योंकि पर्यावरण को प्रदूषण से बचा कर संरक्षित करना वर्तमान तथा भविष्य दोनों

के लिए अति आवश्यक है। आप अध्यापक बनने जा रहे हैं। पर्यावरण को संरक्षित करना क्यों आवश्यक है और कैसे उसका संरक्षण किया जाये यह जानना अति आवश्यक है। इस इकाई में आप पर्यावरण संरक्षण में शिक्षा की भूमिका के विभिन्न पहलुओं से परिचित हो सकेंगे।

इस इकाई में आप पर्यावरणीय शिक्षा के स्वरूप के साथ–साथ, पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता, पर्यावरण संरक्षण के घटकों के बारे में भी विस्तार से जान सकेंगे। यहां पर पर्यावरणीय शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर भी चर्चा की गई है। पर्यावरण संरक्षण में अध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के माध्यम से आप पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी पाठ्यक्रम, मुद्दे आदि पर भी पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

प्रकृति ने हमें प्राकृतिक संसाधन अत्याधिक प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराये हैं, परन्तु प्राकृतिक संसाधनों के अत्याधिक शोषण, जनसंख्या वृद्धि एवं औद्योगीकरण तथा विकास योजनाओं के कार्यान्वयन में पर्यावरण की उपेक्षा के कारण पर्यावरण सम्बन्धी समस्यायें दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। इन समस्याओं की गम्भीरता तथा पर्यावरण संरक्षण तथा उसके सुधार की आवश्यकता के प्रति जनता को जागरूक बनाना अति आवश्यक है, क्योंकि तभी इन समस्याओं का निराकरण तथा पर्यावरण सुधार की योजनाओं के लिए अपेक्षित जन सहयोग प्राप्त हो सकेगा। पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है। परि और आवरण, परिका अर्थ चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है ढकने वाला। पर्यावरण मानव तथा समस्त प्राणी जगत के चारों ओर फैला हुआ है वह प्राकृतिक, जैविक तथा सामाजिक आवरण है, जिसमें मनुष्य तथा समस्त जीव रहते हैं। पर्यावरण एक समष्टि है और मानव इस समष्टि का एक अंग है। दोनों का ही अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है, बल्कि दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। सामान्य रूप से पर्यावरण की प्रकृति से समता की जाती है। पर्यावरण के अन्तर्गत वह सब कारक सम्मिलित किये जाते हैं, जो मनुष्य की जीवन पर्यन्त कार्यशैली तथा जीवन शैली को प्रभावित करते हैं। वस्तुतः पर्यावरण एक व्यापक शब्द है, जिसके अन्तर्गत 'आस–पास या पास पड़ोस की उन सभी परिस्थितियों को सम्मिलित किया जाता है, जो मानव जन्तुओं या पौधों के विकास, रहन–सहन तथा कार्य करने की परिस्थितियों को प्रभावित करता है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- पर्यावरण के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- पर्यावरण प्रदूषण के कारणों को जान सकेंगे।

- पर्यावरण संरक्षण के अर्थ तथा आवश्यकता को समझ सकेंगे।
- 'पर्यावरण शिक्षा' की आवश्यकता को जान जायेंगे।
- पर्यावरण संरक्षण में शिक्षक की भूमिका को समझ सकेंगे।
- पर्यावरण संरक्षण के लिए पाठ्यक्रम की संरचना कर सकेंगे।
- पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी प्रमुख मुद्दों को समझ सकेंगे।

12.3 पर्यावरण का स्वरूप एवं प्रकार

मनुष्य तथा सभी जीव जन्तुओं के अस्तित्व के लिए जिन तत्वों की आवश्यकता होती है वे ही मिल कर पर्यावरण का निर्माण करते हैं। ये तत्व प्रकृति में भरे हुए हैं। प्रकृति के तत्व संकलित होकर पर्यावरण का निर्माण करते हैं। प्रकृति मनुष्य के विकास एवं प्रगति में सहायक होती है।

पर्यावरण में कुछ तत्व नैसर्गिक रूप से विद्यमान रहते हैं। कुछ तत्वों का निर्माण मनुष्य स्वयं अपनी शक्ति एवं ऊर्जा से करता है। पर्यावरण अपने आप में एक जटिल संकल्पना है। पर्यावरण कई तंत्रों का सामूहिक नाम है, जो सम्पूर्ण जगत को नियंत्रित करते हैं तथा जिनका प्रभाव सामूहिक रूप से होता है। पर्यावरण से आशय उन समस्त भौतिक व जैविक व्यवस्थाओं, दशाओं, संगठनों एवं प्रभावों से है, जो किसी जीव व प्रजाति के उद्भव विकास एवं मृत्यु को प्रभावित करती है। पर्यावरण विभिन्न अन्तःनिर्भर घटकों – सजीव व निर्जीव के मध्य सामंजस्य एवं पूर्णता की अवधारणा को अभिव्यक्त करता है। पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है तथा भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों वाले पारस्परिक क्रियाशील तत्वों से इसकी रचना होती है। सार रूप में पर्यावरण से तात्पर्य जगत के समस्त प्राणियों के चारों तरफ व्याप्त प्रकृति के सघन आवरण से है, जो सदैव हमें घेरे रहता है।

पर्यावरण को विभिन्न प्रकार से वर्गीकत करने का प्रयास किया गया है। कायस्थ व कुभ्रा (1986) ने पर्यावरण के चार प्रकार बताये हैं।

1. भौगोलिक पर्यावरण
2. क्रियात्मक पर्यावरण
3. बोधात्मक पर्यावरण
4. व्यवहारगत पर्यावरण

नेगी (1994) ने पर्यावरण के घटकों को तीन मुख्य भागों में विभाजित किया है–

1. जैविक पर्यावरण– इसमें सभी जीवधारी सम्मिलित हैं।
2. भौतिक पर्यावरण– इसमें निर्जीव तत्व जैसे मिट्टी जल तथा वायु आदि सम्मिलित हैं।

3. सांस्कृतिक पर्यावरण– इसमें मानव और पर्यावरण के मध्य के सम्बन्धों जैसे– बस्तियां, आर्थिक गतिविधियाँ आदि सम्मिलित हैं।

सिंह (1994) ने पर्यावरण के तीन संघटकों – भौतिक संघटक, जैविक संघटक, ऊर्जा संघटक का उल्लेख किया है। सामान्य रूप से पर्यावरण के निम्न प्रकारों का उल्लेख विद्वानों ने किया है।

1. भौतिक पर्यावरण
2. जैविक पर्यावरण
3. सामाजिक पर्यावरण
4. आर्थिक पर्यावरण

पंत (2003) ने पर्यावरण के दो घटकों –भौतिक तथा जैविक का उल्लेख किया है।

12.4 पर्यावरण प्रदूषण एवं उसके प्रकार

वायु, जल, भूमि, वनस्पति, पेड़, पौधे पशु मानव सब मिलकर पर्यावरण बनाते हैं। प्रकृति में इन सबकी मात्रा और इनकी रचना कुछ इस प्रकार से व्यवस्थित है कि पृथ्वी पर एक संतुलित जीवन चलता रहे, परन्तु जब से मानव ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए अनेक वैज्ञानिक उपलब्धियां अर्जित की, सुख सुविधा के साधन जुटाये, बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु औद्योगिक क्रान्ति का सहारा लिया तभी से प्रकृति का संतुलन डगमगा गया। इस सन्तुलन के बिगड़ने से प्रदूषण रूपी एक वैश्विक समस्या उत्पन्न हो गयी, जिसका सामना आज का मानव कर रहा है। मनुष्य का जीवन और रहन सहन का स्तर मिट्टी, पानी और वायु वनस्पति पर आधारित है। यदि वे समाप्त हो जायें या इनमें दोष उत्पन्न हो जाये तो मनुष्य का जीवन प्रभावित होता है।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार (Types of Environmental Pollution) :

पर्यावरण प्रदूषण को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है।

12.4.1 : वायु प्रदूषण (Air Pollution) मनुष्य के जीवन के लिए शुद्ध वायु आवश्यक है इसका कारण वाहनों से निकलने वाला धुआं, फैक्ट्रियों से निकलने वाला धुआं तथा कीटनाशक दवाओं की इकाइयों से निकलने वाला धुआं आदि है। इस कारण वातावरण में कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन आदि विषैली गैसों में मिल चुकी है, जिसके कारण वायुमण्डल प्रदूषित हो चुका है, जिससे मानव जीवन को भयानक खतरा उत्पन्न हो गया है। वायु प्रदूषण के प्राकृतिक कारणों में से प्रमुख हैं– जंगल में आग, ज्वालामुखी, धूल भरे तूफान आदि इनके अतिरिक्त गाड़ियों, कल–कारखानों, घरों से निकलने वाली गैसें, धुआं आदि। जनसंख्या की अत्याधिक प्रसार, वाहनों से निकलने वाला धुआं, उर्वरक, कीटनाशक दवाएं इसके प्रमुख स्रोत हैं।

12.4.2 जल प्रदूषण (Water Pollution) मानव शरीर में जल की मात्रा बहुत अधिक होती है। मनुष्य के जीवन के लिए दूसरा महत्वपूर्ण तत्व जल है। मनुष्य प्यास बुझाने के लिए पानी पीता है, लेकिन पानी भी शुद्ध नहीं रह गया है। जल में आवश्यकता से अधिक खनिज, लवण, कार्बनिक, अकार्बनिक पदार्थ अम्ल संयंत्रों से निकले कचरे, सीवर का गंदा पानी नदियों में विसर्जित हो रहा है, जिस कारण पानी विषैला हो चुका है इससे पेट सम्बन्धी बीमारियां हो रही हैं। सबसे अधिक बीमारियां जल प्रदूषण के कारण हो रही हैं।

12.4.3 : मृदा प्रदूषण (Soil Pollution) जहां एक ओर तेजी से जनसंख्या वृद्धि हो रही है वहीं दूसरी ओर खेती करने लायक जमीन नहीं बढ़ी है, इसलिए अधिक मात्रा में खाद्यान्न उत्पादन के लिए रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाओं का प्रयोग हो रहा है। इनके अधिक प्रयोग से अनाज तथा सब्जियां विषाक्त हो रही हैं। इनके प्रयोग से मृदा प्रदूषित हो रही है।

12.4.4 : ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution) अत्यधिक तीव्र ध्वनि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। महानगरों में अत्याधिकशोर है। फैक्ट्रियों का शोर, स्पीकर आदि के तीव्र आवाज वातावरण को प्रदूषित कर रहा है। इससे रक्तचाप बढ़ता है। व्यक्ति बहरेपन का शिकार होता है।

12.4.5 : रेडियोधर्मिता प्रदूषण (Radio Active Pollution)

आज देश में आणविक केन्द्र स्थापित हो रहे हैं। इससे निकलने वाली एल्फा, बीटा, गामा किरणें शरीर की कोशिकाओं को नष्ट कर देती हैं। इसके प्रभाव से सन्तान उत्पादन की क्षमता कम होती है तथा विकलांग बच्चों का जन्म होता है। रेडियो एक्टिव गन्दगी के दो प्रमुख स्रोत हैंः–

कारखानों का शोर (Industrial Noise)

समुदाय का शोर (Community Noise)

बोध प्रश्न–

नोट क.– अपने उत्तर को नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए।

ख.– अपने उत्तर को इकाई में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

1. पर्यावरण के प्रमुख प्रकार बताइये। ______________________________

____

----

2. पर्यावरण का निर्माण कैसे होता है?

____

____

3. पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख प्रकार बताइये ?

____

____

4. ध्वनि प्रदूषण क्या है?

____

____

12.5 पर्यावरण संरक्षण का अर्थ

सन 1983 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने पर्यावरण और इसके संरक्षण पर एक विश्व आयोग गठित किया। इसने 20 मार्च 1987 को अपने प्रतिवेदन के 12वें अध्याय में पर्यावरण को संरक्षित करने हेतु कानून बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया। विशेषज्ञों का मानना है कि कानून बनाकर ही पर्यावरण असंतुलन को दूर करने में सहायता मिल सकती है। इस संदर्भ में जन जागरण के भी व्यापक महत्व को पहचाना गया। वास्तव में कानून द्वारा जनजागरण अभियान सुदृढ़ और सशक्त होकर प्रभावी ढंग से कार्य करता है।

भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण के महत्व को स्थान दिया गया है। राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अन्तर्गत वनस्पति सम्पदा एवं वन्य जीव सम्पत्ति की सुरक्षा अनिवार्य कर दी गयी है। आज यह अनुभव किया जाने लगा है कि मानव ने प्रगति का मूल्य पर्यावरण की वृहद् समस्याएं उत्पन्न करके चुकाया है, जो जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, विकिरण के प्रभाव द्वारा प्राकृतिक सम्पदा के दुरूपयोग, जनसंख्या की असामान्य वृद्धि के रूप में परिलक्षित है। यह सब व्यक्तिगत तथा सामाजिक पर्यावरण को न समझ पाने तथा मानव एवं पर्यावरण की परस्पर क्रिया–प्रतिक्रिया को न समझ पाने के कारण हुआ है।

संसाधनों का घटता भण्डार आज चिन्ता का विषय बन गया है। गत–वर्षों में इनके दुरूपयोग के फलस्वरूप एक ओर तो पर्यावरणीय संकट बढ़ा है और दूसरी ओर भावी पीढ़ी के लिए इनके अभाव की समस्या उत्पन्न हो गई है। अतः इनके संरक्षण को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। संसाधन संरक्षण का अर्थ है– संसाधन की गुणवत्ता के अनुसार उनका विवेकपूर्ण उपयोग जिससे उनकी उपलब्धता बनी रहे और पर्यावरणीय संतुलन बना रहे। संसाधनों का परिरक्षण उस समय किया जाता है जब उनके विनाश की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जैवीय विविधता का परिरक्षण आज तात्कालिक आवश्यकता है, क्योंकि वनस्पतियां तथा जीव जन्तु तीव्र गति से विनाश की ओर बढ़ रहे हैं। इसका दुष्प्रभाव पर्यावरण के संतुलन पर पड़ रहा है।

12.6 पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता

पर्यावरण से सम्बन्धित समस्याओं पर सरकार का ध्यान गया है। मानव इतिहास के प्रारम्भ से ही अपने चारों ओर के पर्यावरण में रूचि रखता आया है। आदिम समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपने अस्तित्व हेतु पर्यावरण को संरक्षित करने की कला आती थी। जीवों के चारों ओर की वस्तुएं जो उनकी जीवन क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। वातावरण का निर्माण करती हैं। यथार्थ में जीव और पर्यावरण में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध हैं। एक की दूसरे से पृथक सत्ता की कल्पना करना असम्भव है। सभी जीवों का अस्तित्व चारों ओर के पर्यावरण पर निर्भर करता है। पर्यावरण न सिर्फ जीवों को आधार प्रदान करता है वरन् उनकी विभिन्न क्रियाओं के संचालन के लिए माध्यम का भी कार्य करता है। अन्य जीवों के समान मानव भी पर्यावरण का एक अंग है, परन्तु अन्य जीवों की तुलना में मानव ने प्राकृतिक संसाधनों का अत्याधिक दोहन किया है अतः पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए पेड़ लगाना, वन संरक्षण, औद्योगिकीकरण के दुष्प्रभावों से पर्यावरण को संरक्षित करना आवश्यक है।

विगत सौ वर्षों में मानव ने आर्थिक, भौतिक तथा सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष में प्रगति की है। इस प्रगति का उद्देश्य मानव का स्वयं का विकास था। वास्तव में इस प्रगति की अन्धी दौड़ में पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर तनिक ध्यान नहीं दिया गया। फलस्वरूप विभिन्न समस्याओं का सामना मानव को करना पड़ रहा है। फलस्वरूप आज सर्वत्र पर्यावरण संरक्षण की चर्चा हो रही है। यह सर्वविदित है कि संवर्धनीय संसाधनों की तुलना में असम्वर्धनीय संसाधनों का संरक्षण अधिक महत्वपूर्ण है।

12.7 पर्यावरण संरक्षण हेतु शिक्षा

पर्यावरण की शुद्धता, संरक्षण तथा संतुलन की आवश्यकता को देखते हुए 'पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा' को शिक्षा के अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। सामान्यतः मानव में प्राकृतिक एवं भौतिक वातावरण के प्रति जागरूकता विकसित करने की शिक्षा को पर्यावरण शिक्षा कहा जाता है। पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा एक ऐसी व्यवहारिक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से मनुष्य को पर्यावरण सुधार हेतु जरूरी ज्ञान, कौशल प्राप्त होते हैं। पर्यावरण संरक्षण शिक्षा व्यक्ति एवं समुदाय की मुख्य समस्याओं के साथ अन्तःक्रिया के प्रति अवबोध विकसित करती है, जिससे व्यक्ति उत्तम स्वास्थ्य के साथ जीवन यापन कर सके। व्यास (1998) के अनुसार पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा तीन महत्वपूर्ण कार्य करती है–

1. पर्यावरण संरक्षण के प्रति चेतना जागृत करना।

2. पर्यावरण संरक्षण के प्रति समझ विकसित करना।
3. संरक्षण हेतु मनुष्य और जगत के बीच अन्तर्सम्बन्धों को व्यवस्थित करना।

पर्यावरण संरक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसका सम्बन्ध प्रकृति और मानव निर्मित परिवेश के साथ मनुष्य की सम्बद्धता से है। स्कूली पाठ्यक्रम में पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा विषय पर यूनेस्को ने यह टिप्पणी की कि पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा दायित्वों को जानने तथा विचारों को स्पष्ट करने की वह प्रक्रिया है, जिससे मनुष्य अपनी संस्कृति और जैव भौतिक परिवेश के मध्य अपनी सम्बद्धता को पहचानने और समझने के लिए आवश्यक कौशल तथा अभिवृत्ति का विकास कर सके। पर्यावरण शिक्षा पर्यावरण की गुणवत्ता से सम्बन्धित प्रकरणों के लिए व्यवहार सहित निर्णय लेने की आदत को भी व्यवस्थित करती है।

मिनिस्ट्री आफ एजूकेशन एण्ड सोशल वेलफेयर के अनुसार पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा का अर्थ ऐसी शिक्षा से है, जो पर्यावरण के बारे में एवं पर्यावरण के लिए है। पर्यावरण शिक्षा एक ऐसी एकीकृत प्रक्रिया है, जो प्राकृतिक एवं मानव निर्मित वातावरण से मानव के अन्तर्सम्बन्धों पर विचार करती है। पर्यावरणीय शिक्षा का केन्द्र पर्यावरणीय ज्ञान को बढ़ाकर पर्यावरणीय व्यवहार में परिवर्तन लाना है। पर्यावरणीय शिक्षा यह जागरूकता विकसित करेगी कि इन समस्याओं को कैसे हल किया जाये? जीवन में गुणात्मक विकास लाना पर्यावरणीय शिक्षा का उद्‌देश्य है।

यूनेस्को के तत्वावधान में पर्यावरणीय शिक्षा पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में पर्यावरण शिक्षा के विभिन्न उद्‌देश्य निर्धारित किये गये थे।

- वातावरण की समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता अर्जित करने में सामाजिक समूहों की सहायता करना।
- पर्यावरण समस्याओं की आधारभूत समझ विकसित करना।
- पर्यावरण सुधार एवं संरक्षण में सक्रिय प्रतिभागिता के लिए अभिप्रेरित करना।
- शैक्षिक कार्यक्रमों का मूल्यांकन करने की योग्यता विकसित करना।

एन0सी0ई0आर0टी0 ने जनवरी 1999 में पर्यावरण शिक्षा के निम्न उद्‌देश्य निर्धारित किये:—

- पेय जल समस्या निवारण।
- वायु प्रदूषण नियंत्रण के लिए हरित पट्‌टी का विकास करना।
- संसाधनों का विकास

बोध प्रश्न–

नोट क.– अपने उत्तर को नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए।

ख.– अपने उत्तर को इकाई में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

5. क्या पर्यावरण शिक्षा को शिक्षा के प्रमुख अंग के रूप में स्वीकार किया गया है? ____

____

____

6. पर्यावरण और उसके संरक्षण पर कब प्रथम बार विश्व आयोग गठित किया गया।

____

____

____

7. पर्यावरण संकट प्रमुख रूप से क्यों बढ़ता जा रहा है?

____

____

____

12.8 पर्यावरण संरक्षण के प्रमुख घटक

पर्यावरण के संरक्षण हेतु इसके घटकों के संरक्षण की तात्कालिक आवश्यकता है।

12.8.1 : जल संरक्षण (Water Conservation)

हम सभी जानते हैं कि जल की कमी विश्व के लिए गम्भीर समस्या बनती जा रही है। जल का स्तर लगातार गिरता जा रहा है। जल जीवन का आहार है। इसकी शुद्धता बनाये रखना मानव का मौलिक कर्तव्य है। विभिन्न कारणों से धरातलीय एवं भूमिगत दोनों प्रकार का जल प्रदूषित हो रहा है। जल की शुद्धता, गुणवत्ता और स्तर का बनाये रखना आज की महती आवश्यकता है।

जल संरक्षण के दो पक्ष हैं–

- जल का नियंत्रण एवं संरक्षण
- प्रदूषण से रक्षा

जल नियंत्रण में वर्षा के जल को विभिन्न साधनों से सुरक्षित किया जाता है तथा बांध बनाकर जल को नियंत्रित किया जाता है। भूमि के नीचे जल के घटते स्तर को देखते हुए वर्षा जल को संरक्षित करने हेतु संयंत्र उपलब्ध है, जिन्हें घरों, फैक्ट्रियों

में लगाकर वर्षा के जल को संरक्षित किया जाता है। जल संरक्षण एवं नियंत्रण आज की प्राथमिक आवश्यकता है। जल की शुद्धता बनाये रखने के लिए जल को प्रदूषित होने से बचाना परमावश्यक है। नदियों, तालाबों में गन्दगी, कारखानों के अपशिष्ट आदि से जल को प्रदूषित होने से बचाना आवश्यक है। इसके साथ जल को शुद्ध करने के लिए जैविक प्रक्रिया को लागू करना अति आवश्यक है। नदियों में प्रायः जानवरों को नहलाया जाता है, मृत जीव जन्तु फेंके जाते हैं। इससे जल प्रदूषित हो जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जल के स्तर को गिरने से बचाने एवं प्रदूषण से रोकने के लिए शुद्ध जल संरक्षण की आवश्यकता है और यह कार्य प्रमुख रूप से जन सामान्य में चेतना जागृत करके किया जा सकता है।

12.8.2 : वायु संरक्षण (Air Conservation)

वायु जीवन के लिए आवश्यक है वायु की शुद्धता पर हमारा जीवन निर्भर करता है। वायु की शुद्धता तथा संरक्षण के लिए सीसा रहित पेट्रोल का प्रयोग किया जाता है। फैक्ट्री को आबादी से दूर स्थापित करना चाहिए। नाइट्रोजन आक्साइड को कम करने के लिए कैटलेटिक कनवर्टरों का विकास किया जाना चाहिए। उद्योगों से उत्पन्न होने वाले धुएं को रोकने के लिए विद्युत संयंत्रों का प्रयोग किया जाना चाहिए। वाहनों की ट्यूनिंग पर ध्यान देना चाहिए। कूड़े को री–साइकिल किये जाने की आवश्यकता है। वायु प्रदूषण को कम करने के लिए प्लास्टिक, एस्वस्टस तथा अन्य पदार्थ जिनसे वायु प्रदूषित होती है आदि के प्रयोग को नियंत्रित करना अति आवश्यक है।

12.8.3 : मृदा संरक्षण (Soil Conservation)

मृदा एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। भूमि की ऊपरी उपजाऊ परत मृदा कहलाती है। मृदा में खनिज तत्व तथा कार्बनिक पदार्थ मिश्रित होते हैं। मृदा, जल वायु की तरह ही जीवन के लिए अति आवश्यक है। इसकी रक्षा जीवन की रक्षा है। यह अत्यन्त उपयोगी है, किन्तु अन्य प्राकृतिक संसाधनों की भांति मृदा भी प्रदूषण और अपरक्षण (Erosion) से आक्रान्त होती है।

इसके लिए आवश्यक है मृदा को प्रदूषण से बचाया जाये उसके अपरक्षण (Erosion) को रोका जाये, जिसके लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं।

- फसल चक्रीकरण (Crop rotation)
- विभिन्न खादों का प्रयोग।
- शीटर बेल्ट का प्रयोग।
- वनस्पति आवरण (Vegetation cover) का प्रयोग
- जल को रोकना।

जर्मनी के वैज्ञानिकों ने एक विशेष बैक्टीरिया का विकास किया है, जो मृदा के प्रदूषक तत्वों को ग्रहण कर लेता है। मृदा प्रदूषण प्रमुख रूप से वनों के उन्मूलन, कीटनाशक दवाओं के अधिकाधिक प्रयोग, वर्षा की तीव्रता, वायु वेग आदि कारणों से होता है। नये पेड़–पौधे लगाकर, वन को सुरक्षित रख कर मृदा का संरक्षण सम्भव है। Terrace farming का प्रयोग से भी मृदा को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है।

12.8.4 : खनिज संसाधन संरक्षण

खनिजों के अत्याधिक उपयोग से खनिज भण्डार तेजी से घट रहा है। भावी आवश्यकताओं को देखते हुए इसका संरक्षण भी आवश्यक है। कोयला, पेट्रोल, खनिज ईंधनों की सुरक्षा अति आवश्यक है। बिजली, सौर ऊर्जा, नाभिकीय ऊर्जा जैसे संसाधनों का संरक्षण आवश्यक है। खनिज सम्पदा के संरक्षण के निम्न प्रयास करने की आवश्यकता है।

- उपलब्ध खनिजों का उपयोग उचित ढंग से किया जाये।
- कोयला, पेट्रोल के स्थान पर सौर ऊर्जा के प्रयोग के तरीके ढूंढने चाहिए।
- नवीन खनिज क्षेत्रों को ढूंढने के प्रयास को सुदृढ़ करना चाहिए।
- खनिज क्षेत्रों के पुनर्वास की योजना होनी चाहिए।

बोध प्रश्न–

क.– अपने उत्तर को नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए।

ख.– अपने उत्तर को इकाई में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

8. पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता बताइए।

____

____

____

9. पर्यावरण संरक्षण के प्रमुख घटक क्या हैं?

____

____

____

10. मृदा किसे कहते हैं?

____

____

____

11. मृदा अपरक्षण (Soil Erosion) को रोकने के प्रमुख उपाय क्या हैं?

____

____

12.9 : सारांश

प्रकृति ने हमें प्राकृतिक संसाधन अत्याधिक प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराये हैं, परन्तु प्राकृतिक संसाधनों के अत्याधिक शोषण, जनसंख्या, वृद्धि औद्योगीकरण तथा विकास योजनाओं के कार्यान्वयन से पर्यावरण की उपेक्षा के कारण पर्यावरण सम्बन्धी समस्यायें दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। प्राकृतिक संतुलन के बिगड़ने से प्रदूषण रूपी समस्या वैश्विक समस्या बनकर हमारे सामने आ गई है। प्रदूषण को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, रेडियोधर्मिता प्रदूषण आदि।

पर्यावरण संरक्षण के प्रति चेतना जागृत करने के लिए शिक्षा अति आवश्यक है। इसे पर्यावरण शिक्षा को शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। भारतीय संविधान में पर्यावरण के महत्व को स्थान दिया गया है। प्रबन्धन संसाधनों का घटता भण्डार आज चिन्ता का विषय बन गया है। गत वर्षों में उनके दुरूपयोग के फलस्वरूप एक ओर तो पर्यावरणीय संकट बढ़ा है दूसरी ओर भावी पीढ़ी के लिए अभाव की समस्या उत्पन्न हो गई है अतः इसके संरक्षण को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। पर्यावरण के विभिन्न घटकों को संरक्षित रखा जाना आवश्यक है। जैसे जल संरक्षण, वायु संरक्षण, मृदा संरक्षण, खनिज संसाधन संरक्षण। यह सर्वविदित है कि संवर्धनीय संसाधनों की तुलना में असंवर्धनीय संसाधनों का संरक्षण अति आवश्यक है।

12.10 अभ्यास कार्य

1. पर्यावरण संरक्षण का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
2. 'पर्यावरण प्रदूषण' से आप क्या समझते हैं? प्रदूषण के कारणों की चर्चा कीजिए।
3. पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार बताइए।
4. पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
5. पर्यावरण संरक्षण के प्रमुख घटकों की विवेचना कीजिए।

12.11 चर्चा के बिन्दु

- वाहनों से निकलने वाले धुएं से कैसे पर्यावरण प्रदूषित होता है? इसकी माप कैसे की जा जाती है?
- 'पर्यावरण संरक्षण' पर विचार गोष्ठी आयोजित करायें।

- पानी, बिजली की दिन–प्रतिदिन के जीवन में बचत करने के लिए कहानी या कविता बनायें।

12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. पर्यावरण को विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत करने का प्रयास किया है। सामान्य रूप से पर्यावरण के चार प्रकारों का उल्लेख किया गया है।

   1. भौतिक पर्यावरण   2. जैविक पर्यावरण

   3. सामाजिक पर्यावरण   4. आर्थिक पर्यावरण

2. वायु, जल, भूमि, वनस्पति, पेड़, पौधे पशु मानव सब मिलकर पर्यावरण का निर्माण करते हैं।

3. पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख प्रकार निम्न हैं–

   - वायु प्रदूषण,
   - जल प्रदूषण,
   - मृदा प्रदूषण,
   - ध्वनि प्रदूषण,
   - रेडियोधर्मिता प्रदूषण,

4. अत्यधिक तीव्र ध्वनि जो मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो ।

5. पर्यावरण शिक्षा को शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया।

6. पर्यावरण और उसके संरक्षण पर सन् 1983 में विश्व आयोग गठित किया गया।

7. प्राकृतिक संसाधनों के दुरूपयोग के कारण पर्यावरण संकट बढ़ता जा रहा है।

8. जीव और पर्यावरण में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। एक की दूसरे से पृथक सत्ता की कल्पना करना असम्भव है। सभी जीवों का अस्तित्व पर्यावरण पर निर्भर करता है अतः पर्यावरण को संरक्षित करना अति आवश्यक है।

9. पर्यावरण संरक्षण के प्रमुख घटक निम्न हैंः–

   - जल संरक्षण
   - वायु संरक्षण
   - मृदा संरक्षण

- खनिज संरक्षण

10. भूमि की ऊपरी परत को मृदा कहते हैं।

11. मृदा अपरक्षण (Soil Erosion) को रोकने के प्रमुख उपाय निम्न हैं:–

- फसल चक्रीकरण
- विभिन्न खादों का प्रयोग।
- जल को रोकना।
- वनस्पति आवरण (Vegetation Cover) का प्रयोग।
- शेल्टर बेल्ट का प्रयोग।

12.13 : कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.	दूबे मनीष एवं	:	भारत में शैक्षिक पद्धति का इतिहास, प्रकाशक
	दूबे विभा	:	शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
2.	रूहेला सत्यपाल एवं	:	उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, अग्रवाल
	नायक राजकुमार		पब्लिकेशन, आगरा।
3.	त्यागी एवं नन्द	:	उदीयमान भारत में शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा

खण्ड : पाँच

शिक्षा में गुणवत्ता

इकाई - 13 333
शिक्षा में गुणवत्ता : अर्थ, संकेतांक तथा उपलब्धि के मानक

इकाई - 14 354
उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण एवं शिक्षा

इकाई - 15 368
माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	पूर्व निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 के0एस0मिश्र	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 अखिलेश चौबे	पूर्व आचार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो0 विद्या अग्रवाल	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 शैलेश कुमार यादव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई-1,3 एवं 14)
डॉ0 सरोज यादव	असि. प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 2 एवं 10)
डॉ0दिनेश सिंह	असि0 डायरेक्टर/असि0 प्रो0 शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई-4,5 एवं 6)
डॉ0 उपेन्द्र नाथ तिवारी	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 7,8 एवं 9)
डॉ0 मीनू गुप्ता	एसो0प्रो0बी0एड0विभाग,एम0डी0पी0जी0कालेज प्रतापगढ़ (इकाई-11)
डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (इकाई- 12,13 एवं 15)

सम्पादक

प्रो0 विद्या अग्रवाल	शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

परिमापक

प्रो0पी0के0 साहू	शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

समन्वयक

डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रकाशक

डॉ0 राजेश कुमार पाण्डेय	कुलसचिव,उ0प्र0राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN 978-93-83328-01-7

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

B.Ed.E-02 : समसामयिक भारत एवं शिक्षा

खण्ड—एक शैक्षिक विकास

इकाई—1 शिक्षा का अर्थ एवं अवधारणा : प्राचीन से वर्तमान तक

इकाई—2 शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था : राज्य तथा केन्द्र की भूमिका

इकाई—3 शिक्षा में संवैधानिक प्रावधान

खण्ड—दो भारतीय शैक्षिक विचारक

इकाई—4 महात्मा गॉधी एवं रवीन्द्र नाथ टैगोर के शैक्षिक विचार

इकाई—5 महर्षि श्री अरविन्द एवं स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचार

इकाई—6 जे0 कृष्णामूर्ति एवं गिज्जू भाई के शैक्षिक विचार

खण्ड—तीन शिक्षा दर्शन के सम्प्रदाय

इकाई—7 भारतीय दार्शनिक विचार

इकाई—8 आदर्शवाद और प्रकृतिवाद

इकाई—9 यथार्थवाद, प्रयोजनवाद और अस्तित्ववाद

खण्ड—चार शिक्षा के समसामयिक मुद्दे

इकाई—10 सार्वभौमिक, प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा

इकाई—11 उत्तरदायी नागरिकता के विकास के लिए शिक्षा

इकाई—12 पर्यावरण संरक्षणहेतु शिक्षा

खण्ड—पॉच शिक्षा में गुणवत्ता

इकाई—13 शिक्षा में गुणवत्ता : अर्थ, संकेतांक तथा उपलब्धि के मानक

इकाई—14 उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण एवं शिक्षा

इकाई—15 माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन

खण्ड परिचय

इकाई– 13 में वर्णित है – वैश्वीकरण, उदारीकरण, अन्तर्राष्ट्रीयता के संदर्भ में शिक्षा की गुणवत्ता की नवीन संकल्पना विकसित हो रही है। विगत दशकों में शिक्षा को गुणवत्तापरक बनाने के लिए प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया है। शिक्षा की गुणवत्ता कई कारकों के सम्मिलित प्रभाव को कहते हैं। आज शिक्षण संस्थाओं से ये अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी भौतिक संरचना, शिक्षक प्रशिक्षण, अभिभावक सहभागिता, छात्रों की आवश्यकताओं तथा अपेक्षाओं की पूर्ति तथा उनकी संतुष्टि आदि पर विशेष ध्यान देकर शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने का कार्य करें।

इकाई – 14 में चर्चा की गई है – बीसवीं शताब्दी के अनितम दशकों में आवागमन सम्प्रेषण तथा उत्पादन के आधुनिक साधनों ने विश्व के एक स्थान से दूसरे स्थान तक मानव उत्पाद व सेवा की पहुॅच अत्यधिक सहज ढंग से सुलभ करा दी है जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व एक गॉव के रूप में देखा जाने लगा एवं आर्थिक पक्षों में एंक नया युग प्रारम्भ हो गया है। उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमण्डलीकरण इसी आर्थिक संक्रमण की परिणिति हैं। शिक्षा का क्षेत्र भी इन प्रवृत्तियों से अछूता नहीं रहा है तथा आज शिक्षा सम्बन्धी चर्चा में इन तीन शब्दों का बहुतायत से प्रयोग होने लगा है। उदारीकरण से तात्पर्य सरकारी या नियामक संस्था के नियन्त्रण से पूर्ण अथवा आंशिक छूट प्रदान करने से है। उदारीकरण का विचार व्यापक समाज के स्थान पर लघु समाज या संस्था या व्यक्तियों के किसी समूह की आस्था वाली नीतियों को पोषित करता है। शिक्षा के क्षेत्र में यह शिक्षा संस्थाओं की स्थापना, नियोजन तथा संचालन में वयैक्तिक संस्थाओं को अधिक अधिकार देकर सरकारी लाल फीताशाही से बचाना है। छात्र केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था, सम्प्रेषणसाधनों का प्रयोग तथा मुक्त शिक्षा प्रणाली इसी विचारधारा के फलस्वरूप सामने आई है। परन्तु उदारीकरण को गुण्पवत्ता में कमी लाने का तरीका कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

इकाई–15 गुणवत्ता उन्नयन के सम्बन्ध में है – माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए अत्यन्त आवश्यक है। माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन द्वारा शैक्षणिक विषमता को दूर किया जा सकता है। प्राथमिक शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान देने के पश्चात अब सरकार माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के साथ गुणवत्ता सुनिश्चयन पर पर्याप्त ध्यान दे रही है। माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में गुणवत्ता उन्नयन के संदर्भ में अनुसंधान कार्यों का नितान्त अभाव है। माध्यमिक शिक्षा में आज अध्यापक को आधुनि संचार तकनीकि के प्रयोग में भी प्रशिक्षित होना चाहिए। इस कम में पाठ्य सहभागी कियाओं में भी छात्रों की सकिय भागीदारी को सुनिश्चित करना चाहिए। मूल्यांकन प्रकिया को अधिक प्रभावी बनाना तथा राष्ट्रीय स्तर पर समरूपता लाने का प्रयास भी आवश्यक है।

इकाई—13: शिक्षा में गुणवत्ता: अर्थ, संकेतांक तथा उपलब्धि के मानक

संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 गुणवत्तापरक शिक्षा का अर्थ

13.4 गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के निर्धारक कारक एवं सिद्धान्त

13.5 गुणवत्तापरक शिक्षा हेतु विशेष कार्यक्रम

13.6 गुणवत्तापरक शिक्षा की विशेषताएं

13.7 गुणवत्तापरक शिक्षा के संकेतांक

13.7.1 सुनिश्चित उद्देश्यों का निर्धारण

13.7.2 जीवनोपयोगी पाठ्यक्रम

13.7.3 आधुनिक शिक्षण विधियां

13.7.4 शिक्षकों की उपलब्धता एवं स्तरीय शिक्षक प्रशिक्षण

13.7.5 उचित शैक्षणिक परिवेश

13.7.6 सूचना एवं संचार माध्यमों का प्रयोग

13.7.7 गुणवत्तापूर्ण मूल्यांकन व्यवस्था

13.8 उपलब्धि के मानक

13.9 सारांश

13.10 अभ्यास कार्य

13.11 चर्चा के बिन्दु

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.13 संदर्भ पुस्तिकाएं

13.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण, उदारीकरण, अर्न्राष्ट्रीयता के संदर्भ में शिक्षा की गुणवत्ता की नवीन संकल्पना विकसित हो रही है। परम्परागत मान्यताएं खण्डित हो रही हैं और राष्ट्रीय विकास से सम्बद्ध प्रत्येक पक्ष नये अर्थ को प्राप्त कर रहा है। कल तक 'सा

विद्या या विमुक्तियों' का लक्ष्य रखने वाली शिक्षा आज सामाजिक–आर्थिक प्रगति की अधिष्ठाता है और शिक्षा के लक्ष्य रूपान्तरण ने विगत दशकों में शिक्षा को गुणवत्तापरक बनाने के लिए प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया है। आप जानते हैं कि शिक्षा को व्यक्ति और समाज के विकास की धुरी माना गया है, जो न केवल मानवीय संसाधन का गुणात्मक विकास करती है, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक गुणों का विकास करती है। आज कल परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करना या अच्छी नौकरी प्राप्त करने से प्रायः शिक्षा की गुणवत्ता को मापा जाता है, परन्तु वास्तव में जैसे किसी वस्तु का स्वास्थ्य या उसकी सुन्दरता कई कारकों के सम्मिलित प्रभाव को कहते हैं। उसी प्रकार शिक्षा की गुणवत्ता विभिन्न कारकों के सम्मिलित प्रभाव को कहते हैं। आज शिक्षण संस्थाओं से ये अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी भौतिक संरचना, शिक्षक प्रशिक्षण, अभिभावक सहभागिता, छात्रों की आवश्यकताओं तथा अपेक्षाओं की पूर्ति तथा उनकी संतुष्टि आदि पर विशेष ध्यान देकर शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने का कार्य करे।

गुणवत्तापरक शिक्षा के लिए आवश्यक है कि वह राष्ट्र की वार्षिक आवश्यकताओं को जो उच्च शिक्षित मानव शक्ति के राष्ट्रीय संग्रह में वृद्धि करने के लिए चाहिए उसका पूर्वानुमान बारीकी से कर ले। सम्भव हो तो इस प्रकार की व्यवस्था करनी चाहिए कि जो मानव शक्ति की एवं ज्ञान का समुचित उपयोग हो सके।

यह भी व्यवस्था होनी चाहिए कि उच्च शिक्षित जनशक्ति बेरोजगार या अल्प रोजगार न रह जाये। रोजगार जहां तक सम्भव है उन योग्यताओं के आधार पर मिलना चाहिए जो उसने अपनी शिक्षा द्वारा अर्जित की है। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे माध्यमिक स्तर पर शिक्षित व्यक्तियों को जिनमें प्रगति करने की क्षमता है उनके लिए प्रसार सेवाओं का आयोजन किया जाये, ताकि वह अधिक उपयोगी जनशक्ति बन सके।

गुणवत्तापरक शिक्षा के लिए आवश्यक है कि उपलब्धि के मानक निर्मित किये जाये तथा मानव शक्ति की योजना ऐसी होनी चाहिए जो यह पूर्वानुमान कर सके कि कितने रोजगार उपलब्ध हैं? रोजगारों की प्रकृति क्या है और विभिन्न रोजगारों के लिए क्या योग्यताएं चाहिए? शिक्षा प्रणाली का पुनःसंगठन उन योग्यताओं को ध्यान में रखकर करना चाहिए, जो उपलब्ध रोजगारों के लिए चाहिए। संख्यात्मक दृष्टिकोण से शैक्षिक प्रणाली को विभिन्न कार्य क्षेत्रों की आवश्यकताओं से सम्बन्धित होने चाहिए।

भारतवर्ष में रोजगार की कमी तथा अल्प रोजगार के कारण बहुत–से प्रतिभाशाली व्यक्ति इस देश को छोड़कर दूसरे सम्पन्न देशों में चले जाते हैं जहां उन्हें अच्छा रोजगार और अच्छा वेतन मिल जाता है। यह स्थिति ऐसे व्यक्तियों और उन देशों के तो हित में है जो उन्हें रोजगार देते हैं, किन्तु भारतवर्ष के लिए हानिकारक है। भारतवर्ष करोड़ों रूपया अपने युवकों को उच्च तकनीकी और चिकित्सक शिक्षा प्रदान में खर्च करता है

और जब यह युवक किसी अन्य देश में जाकर बस जाते हैं तो उन पर किया गया खर्च व्यर्थ चला जाता है। प्रत्येक वर्ष भारतवर्ष से सैकड़ों प्रतिभाशाली व्यक्ति प्रवासी बनकर चले जाते हैं।

प्रतिभा निष्कासन न केवल रोजगार की कमी के कारण ही होता है वरन् सेवाओं की दशाओं पर भी यह केन्द्रित है। सेवाओं की दशा से तात्पर्य यह है कि जो भी व्यवसाय अपनाया जा रहा है उसका वातावरण कैसा है, दोनों रूप से भौतिक और मानवीय। भौतिक वातावरण से तात्पर्य है क्या आय है? क्या उन्नति के अवसर हैं? क्या सुविधाएं हैं? इत्यादि। मानवीय से तात्पर्य है। कितनी प्रतिष्ठा वाला रोजगार है? व्यक्ति के मान–सम्मान को कितना महत्वपूर्ण समझा जाता है।

अब यह मान लिया गया है कि आर्थिक वृद्धि का शिक्षा की गुणवत्ता पर और शिक्षा का आर्थिक वृद्धि पर बहुत अधिक प्रभाव है। आर्थिक विकास और शैक्षिक गुणवत्ता समानान्तरण चलते हैं। शैक्षिक गुणवत्ता के लिए उपलब्धि के मानकों का निर्माण तथा अनुपालन आव यक है। शिक्षा की गुणवत्ता पर व्यय लाभ प्रदान करता है। यह लाभ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हो सकते हैं। ऐसी शिक्षा जो रोजगार से सम्बन्धित नहीं है आर्थिक रूप से लाभ नहीं दे सकती। भारतवर्ष में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। बेरोजगारी का सबसे मुख्य कारण यह है कि शिक्षा व्यवस्था में और मानव शक्ति की आवश्यकताओं में कोई तालमेल नहीं है। हमारे देश में मुख्य आवश्यकता यह है कि शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार किया जाये। शिक्षा और रोजगार का सीधा सम्बन्ध होना चाहिए।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अर्थ से परिचित हो सकेंगे।
- शैक्षिक गुणवत्ता के सिद्धान्तों को जान सकेंगे।
- गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हेतु लागू कार्यक्रमों से परिचित हो सकेंगे।
- गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के संकेतांक से परिचित हो सकेंगे।
- उपलब्धि के मानकों से परिचित हो सकेगें।

13.3 गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अर्थ

भारत एक विकासशील देश है और इसके समुचित विकास के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का प्रचार प्रसार नितांत आवश्यक है। देश को पूर्ण विकसित राष्ट्र बनाने के

उद्देश्य शिक्षा के अधिकार को मूल अधिकारों में सम्मिलित किया गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 30 के अन्तर्गत शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, हमारा मूल अधिकार घोषित किया गया है और हमारे मूल अधिकारों की रक्षा करना एवं उनकी पूर्ति करने का उत्तरदायित्व राज्य को सौंपा गया है। प्रत्येक राष्ट्र समृद्ध मानव संसाधन को राष्ट्रीय प्रगति का प्रमुख उपकरण मानते हुए शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देने के लिए बाध्य है।

वस्तुतः शिक्षा में गुणवत्ता का प्रसंग उच्च शिक्षा के अन्तर्राष्ट्रीयकरण का परिणाम है। वैश्वीकरण ने राष्ट्रों की भौगोलिक सीमाओं को ध्वस्त करते हुए दुनिया को लघु कुटुम्ब बना दिया। प्रत्येक राष्ट्र थिंक ग्लोबली, एक्ट लोकली के सूत्र को सर्वश्रेष्ठ साबित करने के लिए विकास प्रक्रिया से सम्बद्ध समस्त गतिविधियों को उपादेयता तथा स्वीकार्यता की दृष्टि से देख रहा है। आज शिक्षा की गुणवत्ता के तराजू पर तौलने की आवश्यकता भी है, क्योंकि सूचना प्रौद्योगिकी क्रान्ति के उपरान्त आज की आवश्यकताओं को सिर्फ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से युक्त लोग ही पूरा कर सकेंगे।

विभिन्न विद्वानों की राय में शिक्षा की गुणवत्ता कई कारकों पर निर्भर करती है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अर्थ को निम्न संदर्भों में समझा जा सकता हैः–

- शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार एक सतत अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। यह कभी नहीं कहा जा सकता कि शिक्षा सुधार की पराकाष्ठा पर पहुंच गई और अब और सुधार उसमें सम्भव नहीं।
- शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार एक धीमी, आवश्यक और क्रमिक प्रक्रिया है।

13.4 गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के निर्धारक कारक एवं सिद्धान्त

शिक्षा तथा समाज के कल्याण में गहरा सम्बन्ध है। शिक्षा द्वारा समाज परिवर्तित होता है। यह परिवर्तन गुणवत्तापरक शिक्षा द्वारा समाज के कल्याण के लिए ही होता है। सामाजिक कल्याण के लिए शिक्षा को विभिन्न आवश्यक कृत्यों को निष्ठापूर्वक पूर्ण करना चाहिए। शैक्षिक व्यवस्था का यह उत्तरदायित्व है कि वह सामाजिक संस्थान का आलोचनात्मक विश्लेषण करे, ताकि इसके अन्दर के विरोधाभासों की ओर ध्यान केन्द्रित किया जा सके और समाज में परिवर्तनों की आवश्यकताओं को स्पष्ट किया जा सके। शिक्षा इस प्रकार क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहित करने की भूमिका निभा लेगी और दूसरे निर्णय लेने में भी सहायक होगी।

हम राष्ट्रीय कल्याण की धारणा का स्पष्टीकरण ऐसे विकसित समाज के सम्बन्ध में करते हैं जिसमें समतावाद हो, ऊंच नीचे में विभेद न हो, सबको शिक्षा के और आर्थिक प्रगति के समान अवसर उपलब्ध हों, सामंतवाद को अन्त किया गया हो। राष्ट्रीय

आय और उत्पादकता में वृद्धि हो। सबको भोजन, प्रवास तथा अच्छा रहन–सहन का स्तर प्राप्त हो। हमारी राष्ट्रीय कल्याण की धारणा को सकारात्मक रूप उस समय ही मिल सकेगा, जबकि वर्तमान समाज के कल्याण के लिए प्रयत्न किये जायें। हमने ऊपर स्पष्ट किया है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन कर ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित की जाये, जिसमें समतावाद पर बल हो और जो ऐसे समाज के निर्माण में सहायक हो जो जन कल्याण के ध्येय को सबसे अधिक महत्व देता है।

शिक्षा की गुणवत्ता प्रमुख रूप से निम्न कारकों पर निर्भर करती है।

- शैक्षिक उद्देश्यों की गुणवत्ता
- शैक्षणिक पाठ्यक्रम की गुणवत्ता
- शिक्षकों की योग्यता एवं स्तर
- शिक्षा संस्था में उपलब्ध संसाधन
- शिक्षा संस्था में मानवीय सम्बन्धों की गुणवत्ता।
- शिक्षकों का उत्तरदायित्व लगाव एवं भूमिका
- शिक्षकों की स्वतंत्रता
- अभिभावक की विद्यालय से अपेक्षाएं।
- संस्था में शैक्षिक नवाचार का प्रयोग।
- उच्च स्तरीय परीक्षा एवं मूल्यांकन प्रणाली
- शिक्षकों को शिक्षण कार्य की स्वाधीनता।
- उपलब्धि के मानकों का निर्माण।

शैक्षिक गुणवत्ता के निम्न सिद्धान्त हैं–

- शैक्षणिक गुणवत्ता विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है।
- शिक्षा की गुणवत्ता का आधार निश्चित रूप से प्रोत्साहन एवं प्रेरणा है।
- शैक्षणिक गुणवत्ता को अध्यापक, प्रशासक, बच्चे मिलकर बढ़ा सकते हैं।
- नवाचार, नवीन तकनीक का प्रयोग नवीन प्रयासों से शिक्षा में गुणवत्ता लायी जा सकती है।
- सामाजिक सहभागिता से गुणवत्ता में अभिवृद्धि होती है।
- शिक्षा को 'छात्र केन्द्रित' बनाने से गुणवत्ता में स्वतः वृद्धि होती है।
- अध्यापकों का शिक्षण कौशल, इच्छा शक्ति आदि शैक्षिक गुणवत्ता के प्रमुख आयाम हैं।

बोध प्रश्न– क.–अपने उत्तर को नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए।

ख.–अपने उत्तर को इकाई में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

1. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आवश्यकता किस संदर्भ में अनुभव की जा रही है?

____

____

2. शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार किस प्रकार की प्रक्रिया है?

____

____

3. शैक्षिक गुणवत्ता के दो प्रमुख कारक बताइये।

____

____

4. शैक्षिक गुणवत्ता के दो प्रमुख सिद्धान्त की चर्चा कीजिए।

____

____

13.5 गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हेतु विशेष कार्यक्रम

देश की स्वतंत्रता उपरान्त समय–समय पर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु योजनाएं बनायी गयीं और कार्यान्वित की गईं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अन्तर्गत भी शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के लिए विविध कार्यक्रम चलाये गये। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद ने भी समय समय पर गुणवत्ता लाने के लिए विभिन्न प्रयास किये। पाठय पुस्तकों की गुणवत्ता, प्रशिक्षण, मूल्यांकन आदि क्षेत्रों में सुधार कर शैक्षिक पुनर्रचना की आधारशिला रखी गई है। सर्व शिक्षा अभियान में भी गुणवत्ता पर ध्यान देने का प्रयास किया गया।

शैक्षिक गुणवत्ता का अर्थ हैं कि किसी राष्ट्र, समाज, समुदाय या संगठन के लिए ऐसे कार्मिक उपलब्ध हों, जो उनके उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता दे सकें। मानव संसाधन हमें यह सूचना प्रदान करता है कि विभिन्न सेवाओं के लिए कितने शिक्षित एवं प्रशिक्षित कार्मिक उपलब्ध हैं। शिक्षण एवं प्रशिक्षण शिक्षा का ही कार्य है। अतएव उपयुक्त मानव संसाधन को उपलब्ध कराना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य है। कितने कार्मिक किस रोजगार के लिए चाहिए यह कार्य अर्थव्यवस्था का है। देश के सम्बन्ध में यह कार्य योजना कमीशन करती है। अतएव मानव संसाधन विकास से तात्पर्य है ऐसे

प्रशिक्षित कार्मिकों को उपलब्ध कराना जिनकी उद्योग को, प्रशासन को तथा अन्य सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं को आवश्यकता है।

शैक्षिक गुणवत्ता का उद्‌देश्य यह है कि जितना धन एवं व्यक्तियों को रोजगार के लिए प्रशिक्षित करने पर व्यय किया जाये। उसका अधिक से अधिक प्रतिलाभ उठाया जाये और निवेश का दुरूपयोग नहीं हो।

मानव संसाधन विकास में ज्ञान का इस कारण ही बहुत महत्व है, किन्तु ज्ञान गुणवत्तापरक शिक्षा द्वारा प्राप्त किया जाता है। मानव संसाधन विकास में शिक्षा महत्वपूर्ण योगदान देती है, क्योंकि गुणवत्तापरक शिक्षा–

1. व्यक्तियों को अन्वेषणों और नवीनीकरण को ग्रहण करने की क्षमता बढ़ाती है।
2. श्रम के विभाजन और मशीनों के प्रयोग को प्रोत्साहित करती है।
3. लाभकारी उत्पादन के तत्वों को संयुक्त करने की अधिक छूट देती है।
4. नई तकनीक प्रयुक्त करने का प्रयास करती है।

शिक्षा ऐसा साधन है जो देश और समाज को उत्तम मानव धन प्रदान कर सकता है। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह मानव तत्व ही है, जो सब वस्तुओं और विचारों का स्रोत है। वह ही सृजनकर्ता है और उत्तरदायी है।

यदि हम अपनी शिक्षा प्रणाली के मूल में विभिन्न सुधार ले आयें तो भारत शीघ्र ही विकसित देशों की श्रेणी में अपना गौरवपूर्ण स्थान बना लेगा।

सर्वेक्षण में पाया गया है कि शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था में बहुत से बच्चे कुपोषित होते हैं। प्रारम्भिक बाल्यावस्था के दौरान घर पर संज्ञानात्मक प्रेरणा प्राप्त होती है। वह जीवन में आगामी वर्षों के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि महिला साक्षरता दर भी बहुत कम है इसी को ध्यान में रखकर समेकित विकास सेवाएं प्रारम्भ की गई। प्रारम्भिक बाल्यावस्था के दौरान तीव्र शारीरिक और मानसिक विकास के निर्णयात्मक महत्व को स्वीकार करते हुए ईसीसीई के कई कार्यक्रम विभिन्न स्थलों पर प्रारम्भ किये गये। इसीसीई को केन्द्र चलाने के लिए गैर सरकारी संगठनों की सहायता भी ली जा रही है। ये संगठन छोटे बच्चों के लिए बालवाड़ियां भी चला रहे हैं। मानव संसाधन विकास नीति में शिशु देख भाल और शिक्षा को एक महत्वपूर्ण निवेश माना गया है। ECCE प्राथमिक शिक्षा का एक पोषक और सहायक कार्यक्रम माना गया है।

इसके अतिरिक्त आंगनबाड़ियों को दिवा देख रेख केन्द्रों के रूप में विकसित कर प्राथमिक विद्यालयों के साथ संलग्न किया गया है। स्वैच्छिक संगठन बालवाड़ियों

के रूप में पूर्व प्राथमिक शिक्षा केन्द्र चलाते हैं। सार रूप में शिशु देखभाल कार्यक्रम बालवाड़ी, आईसीडीएस कार्यक्रम की व्यवस्था बच्चों के स्वास्थ्य तथा सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखकर की गई है।

शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए हमें चाहिए कि अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा को प्राथमिकता दें। एक राष्ट्र तभी सम्पन्न होता है, जबकि उसमें निहित मानव शक्ति की प्रतिभा पूर्ण रूप से खिलकर सामने आ सकें। यदि प्रतिभा को चमकने के अवसर नहीं मिलते तो राष्ट्र को बहुत हानि होती है। हमारे देश में प्रशासकीय सेवाओं की ओर सब प्रतिभाशाली व्यक्ति खिंच जाते हैं फलस्वरूप विज्ञान, तकनीकी एवं अन्य राष्ट्रीय उत्पादन में सहयोग देने वाले क्षेत्र प्रतिभाशाली व्यक्तियों के योगदान से वंचित रह जाते हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि अकेले एक प्रतिभाशाली व्यक्ति का योगदान भी कभी–कभी राष्ट्र की उन्नति के शिखर पर ले जाता है। गांधीजी, टैगोर, आइंस्टीन इत्यादि अकेले ही ऐसे व्यक्ति थे जो न केवल अपने राष्ट्र को बुलन्दियों की ओर ले गये वरन् सम्पूर्ण मानव जीवन में सत्यता एवं सुन्दरता उत्पन्न करने में सफल रहे।

- शिक्षा को मानव शक्ति से सम्बन्धित करने के लिए यह अनिवार्य है कि भविष्य के लिए मानव संसाधन तैयार किए जाए विकसित देशों में कुशलतापूर्वक बनाई हुई विधियां उपलब्ध हैं जो इस प्रकार की परियोजना बनाने के कार्य को सरल बना देती हैं, किन्तु अर्ध विकसित देशों में यह एक बहुत कठिन कार्य है, फिर भी भारतवर्ष में ऐसे प्रयास किये जा रहे हैं कि मानव शक्ति के सम्बन्ध में विश्वसनीय परियोजनाएं बनाई जा सकें।
- शिक्षा क्षेत्र में विद्यार्थियों की संख्या और मानव शक्ति की आवश्यकता में तालमेल पर बल दिया है। उसके अनुसार, ''यदि भारत को अपना आर्थिक वृद्धि का लक्ष्य प्राप्त करना है तो उसे पर्याप्त संख्या में प्रत्येक ऐसे व्यवसाय के वर्ग के लिए जो अपनाये जाने हैं शिक्षित विशेषज्ञों की उपलब्धता प्राप्त करनी होगी। इसके विपरीत यदि प्रशिक्षित व्यक्तियों की किसी वर्ग में ज्यादती होगी तो इसका आशय यह होगा कि शिक्षितों के लिए रोजगार की कठिन समस्याएं उत्पन्न हो जायेंगी।''
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति कार्य योजना के अन्तर्गत ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड नामक योजना को लागू किया गया। इसका उद्देश्य प्राथमिक स्कूलों में पाठ्य सामग्री तथा शिक्षा उपकरण जैसी न्यूनतम आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था को सुनिश्चित करना था।

- भारत सरकार के मानव विकास मंत्रालय ने 5 जनवरी 1990 को एक समिति प्राथमिक स्तर पर न्यूनतम अधिगम स्तरों को तय करने के आर0एच0दवे की अध्यक्षता में स्थापित की। न्यूनतम अधिगम स्तरों के निर्धारण की आवश्यकता का उदय सभी बच्चों को सफलता के समान अवसर और सुविधाएं दिये जाने के संदर्भ में की गई थी।
- आज हमारे देश में विद्यालय एक दृढ़ नित्यचर्या का अनुसरण करते हैं। डिग्री या डिप्लोमा की परीक्षा के लिए विद्यार्थियों को तैयार करते हैं।
- शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए हमें दरिद्र की आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना होगा। हमारे राजनीतिज्ञ दरिद्र, पिछड़े, वंचित वर्ग की मांगों की पूर्ति उनको लिए उच्च स्तरीय विद्यालयों और सेवाओं में आरक्षण के मार्ग को अपना रहे हैं, किन्तु केवल आरक्षण से ही समस्या हल नहीं हो सकती। आरक्षण एक सीमित दायरे में ही हितकारी है। इनका लाभ कुछ को ही मिल पाता है, जबकि अधिकतर पिछड़े वंचितों की दशा में कोई परिवर्तन नहीं आता। इसके अतिरिक्त जो पिछड़े या वंचित लाभ उठा लेते हैं वह मध्यम वर्ग की श्रेणी में आ जाते हैं और उनकी रूचि भी वही हो जाती है जो अन्य मध्यम वर्ग के व्यक्तियों की। वास्तव में नवीन शिक्षा के ऐसे कार्यक्रम की आवश्यकता है जो पिछड़े वर्ग को सामाजिक रूपान्तरण लाने के लिए तैयार कर दें।
- वर्तमान में हमारी शैक्षिक व्यवस्था तथा सामाजिक व्यवस्था उच्च वर्ग और मध्यम वर्ग के हितों के लिए एक–दूसरे को शक्ति प्रदान करते हैं।

13.6 गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की विशेषताएं

संसद में 4 अगस्त 2009 को बच्चों का निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (आर.टी.ई) संबंधी अधिनियम का पारित होना भारत के बच्चों के लिए एक ऐतिहासिक क्षण था। यह 86वें संविधान संशोधन (2002) द्वारा संविधान के भाग–3 में एक नया अनुच्छेद 21 (क) अन्तः स्थापित करते हुए प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाकर मौलिक अधिकार का दर्जा दे दिया गया और इसमें प्रावधान किया गया कि ''सरकार, परिवारों एवं समुदायों के सहयोग से राज्य द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार 6–14 वर्ष की आयु के बच्चों को मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था सुनिश्चित की गई। इस संशोधन के द्वारा संविधान के अनुच्छेद 45 को संशोधित किया गया है। जिसमें 6 वर्ष तक के सभी बच्चों को प्रारम्भिक बाल सुरक्षा तथा शिक्षा उपलब्ध कराने का उल्लेख था। बच्चों के लिए अनिवार्य एवं मुफ्त शिक्षा का अधिकार अधिनियम 1 अप्रैल 2010 से पूर्ण रूप से लागू किया गया।

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम से तात्पर्य है 6 से 14 साल की उम्र के सभी बच्चों को पास के स्कूल में निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा पाने के मौलिक अधिकार से है। भारत के इतिहास में पहली बार बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार दिया गया है जिसे राज्य द्वारा परिवार एवं समुदायों की सहायता से पूरा किया जाएगा।

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम मे भी उपबन्ध है कि किसी भी स्कूल की स्कूल प्रबन्धन समिति (एम.एस.सी.) स्थानीय अधिकरियों, माता पिता, अभिभावकों एवं शिक्षकों को मिलाकर बनायी जायेगी। प्रबन्धक समिति ही स्कूल के विकास की योजनाएं चलायेगी और सरकार से मिले अनुदानों के प्रयोग तथा स्कूल के पूरी वातावरण पर निगरानी रखेगी। स्कूल प्रबन्ध समिति में 50 प्रतिशत सदस्य महिलाएं तथा वंचित समूहों के बच्चों के माता पिता होंगे। यह समिति स्कूल में बाल हितैषी वातावरण के अलावा लड़के एवं लड़कियों के लिए पृथक शौचालय, स्वास्थ्य, जल, स्वच्छता तथा साफ सफाई जैसी सुविधाओं को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

इस विधेयक में एक समान शिक्षा व्यवस्था उपलब्ध कराने पर भी ध्यान दिया गया है, क्योंकि एक साधारण मध्यवर्गीय परिवार का बच्चा मंहगे निजी स्कूलों में शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकता है। ऐसे में इस अधिनियम में प्रावधान है कि प्रवेष के स्तर पर निजी स्कूलों में गरीबों एवं वंचितों के बच्चों के लिए 25 फीसदी सीटें आरक्षित रहेंगी और स्कूलों द्वारा किये गये खर्च की भरपाई सरकार करेगी। नामांकन के समय कोई डोनेशन या कैपिटेशन शुल्क नहीं लिया जायेगा और छंटनी प्रक्रिया के लिए प्रवेश के समय बच्चे या उसके अभिभावकों का साक्षात्कार भी नहीं होगा।

सभी स्कूलों को कारगर एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षण वातावरण प्रदान करने के लिए ढांचागत सुविधाओं तथा शिक्षकों के बारे में तय मानदण्डों का पालन करना होगा। इसके लिए स्कूल के मान और मानक भी तय किये गये हैं। मसलन – ''पहली से पांचवी कक्षा के लिए 60 छात्रों के लिए कम से कम दो शिक्षक 90, 120 और 200 छात्रों के लिए क्रमशः तीन चार एवं पांच शिक्षक अनिवार्य हैं। इसी क्रम में कहा गया है कि 150 से अधिक छात्र संख्या पर एक अतिरिक्त प्रधान अध्यापक होगा। कक्षा 6 से कक्षा 8 के लिए प्रति कक्षा कम से कम एक शिक्षक का प्रावधान है। साथ ही स्कूल का अर्थ सभी मौसम में सुरक्षा देने वाले ऐसे कैम्पस से है, जिसमें प्रत्येक शिक्षक के लिए एक कक्षा, खेल का मैदान एवं रसोंईघर के साथ–साथ लड़के एवं लड़कियों के लिए अलग अलग शौचालय का भी प्रावधान हो। इसके अलावा कार्य दिवसों एवं शिक्षण घण्टों का स्पष्ट उल्लेख करते हुए शिक्षा का अधिकार अधिनियम में कहा गया है कि पहली से पांचवी

कक्षा के लिए वर्ष में कम से कम 200 कार्य दिवस और 800 शैक्षणिक घण्टे तथा छठीं से आठवीं कक्षा के लिए 220 कार्य दिवस तथा 1000 शैक्षणिक घण्टे अपेक्षित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में बच्चों के सर्वांगीण विकास का पूर्ण ख्याल रखा गया है।

सार रूप में इस अधिनियम द्वारा गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा को सुनिश्चित करने का निम्न प्रयास किये गये हैं:—

- भारत में छः से 14 वर्ष आयु वर्ग के बीच आने वाले सभी बच्चों को मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा।
- प्राथमिक शिक्षा खत्म होने से पहले किसी भी बच्चे को रोका नहीं जायेगा या बोर्ड परीक्षा पास करने की जरूरत नहीं होगी।
- ऐसा बच्चा, जिसकी उम्र 6 साल से ऊपर है, जो किसी स्कूल में दाखिल नहीं है अथवा है भी तो अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी नहीं कर पाया/पायी है, तब उसे उसकी उम्र के लायक उचित कक्षा में प्रवेश दिया जायेगा, बशर्ते कि सीधे तौर से दाखिला लेने वाले बच्चों के समकक्ष आने के लिए उसे प्रस्तावित समय सीमा के भीतर विशेष ट्रेनिंग दी जानी होगी, जो प्रस्तावित हों। प्राथमिक शिक्षा हेतु दाखिला लेने वाला/वाली बच्चों/बच्ची को 14 साल की उम्र के बाद भी प्राथमिक शिक्षा के पूरा होने तक मुफ्त शिक्षा प्रदान की जाएगी।
- प्रवेश के लिए उम्र का साक्ष्य : प्राथमिक शिक्षा हेतु प्रवेश के लिए बच्चे की उम्र का निर्धारण उसके जन्म प्रमाण पत्र, मृत्यु तथा विवाह पंजीकरण कानून, 1856 या ऐसे ही अन्य कागजात के आधार पर किया जायेगा, जो उसे जारी किया गया हो। उम्र का प्रमाण नहीं होने की स्थिति में किसी भी बच्चे को दाखिला लेने से वंचित नहीं किया जा सकता।
- प्राथमिक शिक्षा पूरा करने वाले छात्र को एक प्रमाण पत्र दिया जायेगा।
- एक निश्चित शिक्षक छात्र अनुपात की सिफारिश,
- आर्थिक रूप से कमजोर समुदायों के लिए सभी निजी स्कूलों के कक्षा 1 में दाखिला लेने के लिए 25 फीसदी का आरक्षण,
- स्कूल शिक्षक को पांच वर्षों के भीतर समुचित व्यावसायिक डिग्री प्राप्त होनी चाहिए, अन्यथा उनकी नौकरी चली जाएगी।
- स्कूल का बुनियादी ढांचा 3 वर्षों के भीतर सुधारा जाए, अन्यथा उसकी मान्यता रद्द कर दी जायेगी।

- वित्तीय बोझ राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार के बीच साझा किया जायेगा।
- माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के प्रयास राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान कार्यान्वित कर किया जा रहा है।

बोध प्रश्न– क.–अपने उत्तर को नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए।

ख.–अपने उत्तर को इकाई में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1886 : कार्य योजना के प्रथम अध्याय में किस विषय पर चर्चा की गई?

____

____

6. शिक्षा का अधिकार अधिनियम कब लागू किया गया?

____

____

7. निजी स्कूलों में आर्थिक रूप से कमजोर परिवार के बच्चों के लिए कितने प्रतिशत आरक्षण हैं?

____

____

13.7 : गुणवत्तापरक शिक्षा के संकेतांक

शिक्षा को व्यक्ति और समाज के विकास की धुरी माना गया है, जो न केवल मानवीय संसाधन का विकास करती है, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक गुणों का भी विकास करती है। शिक्षा में गुणवत्ता का प्रसंग एक बहु आकृतिक अवधारणा को जन्म देता है, जिसे छात्र, अभिभावक, शिक्षक, प्रबन्धक, प्रशासक, समाज तथा सरकार अपने–अपने दृष्टिकोण से देखती है। शिक्षा की गुणवत्ता को अनुकूलता, शुद्धता, ग्राहक संतुष्टि, संसाधनों के समुचित प्रयोग को ध्यान में रखते हुए जन आकांक्षाओं तथा समयानुकूल आवश्यकताओं के अनुरूप देखा जाता है। यह स्वीकार किया जा चुका है कि निम्न गुणवत्ता वाली शिक्षा राष्ट्र के विकास को प्रभावित करती है। 'गुणात्मक सुनिश्चितता' का प्रत्यय विचार विमर्श एवं शोध का विषय है। गुणवत्तापरक शिक्षा के संकेतांक निर्धारित करने के लिए सर्वप्रथम रूढ़िवादी दृष्टि से मुक्ति प्राप्त करनी होगी। हमारी शिक्षा का नीतिगत ढांचा भी दोषपूर्ण है। आशा की जाती है उद्‌देश्यपरक, जीवनोपयोगी पाठ्यक्रम, आधुनिक शिक्षण विधियों, वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन प्रणाली, आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता, स्तरीय शिक्षक प्रशिक्षण, शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि कर

अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों पर भारतीय शिक्षा को स्थापित करने में सफल होंगे।

13.7.1 : सुनिश्चित उद्देश्यों का निर्धारण : शिक्षा प्रणाली की सफलता प्रभावशाली उद्देश्यों के निर्धारण पर भी निर्भर करती है। लक्ष्यों का निर्धारण उपलब्ध संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में किये जाने की आवश्यकता है। लक्ष्य ऐसे हों, जिन्हें प्राप्त किया जा सके तथा जिससे शिक्षा की गुणवत्ता एवं प्रतिफलों में यथेष्ट सुधार किया जा सके। प्रतिफल की दृष्टि से यह सुनिश्चित करना होगा कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर बच्चे निर्धारित अधिगम स्तर को प्राप्त कर सकें और इसके लिए उपयुक्त मूल्यांकन प्रणाली का निर्धारण भी आवश्यक है, जिससे सुनिश्चित किया जा सके कि बच्चों ने निर्धारित अधिगम स्तरों को प्राप्त कर लिया है। अपेक्षा यह है कि सुनिश्चित उद्देश्यों के निर्धारण से शिक्षा प्रणाली की कार्य करने की क्षमता में वृद्धि होगी।

13.7.2 : जीवनोपयोगी पाठ्यक्रम : पाठ्यचर्या की विषय वस्तु का निर्धारण 'उपयोगिता' के संदर्भ में किया जाना चाहिए। पाठ्यचर्या शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास में अत्याधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। पाठ्यक्रम के विषयों का चयन शिक्षार्थियों की अन्तर्क्षमताओं को विकसित करने और समाज के लिए उपयोगी जीवन व्यतीत करने में सहायक होना चाहिए। बोझिल एवं अनुपयोगी पाठ्यक्रम शिक्षक को अध्ययन अध्यापन प्रक्रिया के बुनियादी सिद्धान्तों की उपेक्षा करने के लिए बाध्य करता है। पाठ्यक्रम को पूरा करना इतना महत्वपूर्ण होता है कि बच्चे के सीखने की गति की उपेक्षा हो जाती है। पिछड़े बच्चों, उपचारात्मक एवं निदानात्मक शिक्षण की भी अवहेलना शिक्षक द्वारा हो जाती है।

वर्तमान पाठ्यक्रम की विषय वस्तु अरूचिकर तथा व्यवहारिक ज्ञान से दूर है, जिसके परिणामस्वरूप छात्र पाठ रटने के लिए विवश हो जाते हैं। इससे बच्चों में सीखने की अभिलाषा नहीं जागृत होती और न ही पाठ्यक्रम से आनन्दानुभूति होती है। इस परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक और जीवनोपयोगी पाठ्यक्रम गुणवत्ता का प्रमुख सूचक है। पाठ्यक्रमों को नया तथा प्रगतिशील बनाने तथा पाठ्यपुस्तकों को नया, संशोधित नये अनुभवों व ज्ञान की इकाइयों से युक्त करने से शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ती है। 3 नवम्बर 2005 को केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री अर्जुन सिंह ने भारतीय पाठशालाओं की गुणवत्ता में वृद्धि के लिए 105 करोड़ रूपये व्यय किये। पाठ्यक्रम में गुणवत्ता सुधारने की दृष्टि से पर्यावरण शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा, विज्ञान की शिक्षा को सम्मिलित किया गया एवं शैक्षिक प्रतियोगिताओं के आयोजन की व्यवस्था का प्रस्ताव रखा।

13.7.3 : आधुनिक शिक्षण विधियां : शिक्षक शिक्षार्थी के मध्य अन्तर्क्रिया आवश्यक है। शिक्षण की पारस्परिक पद्धति की आईसीटी के युग में उपयोगिता घटी है। वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा एवं अन्तर्राष्ट्रीयता के युग में ज्ञान शक्ति के रूप में उभर कर

आ रहा है। इसी के द्वारा आर्थिक समृद्धि और सम्पन्नता सम्भव है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने भारत को 'नालेज सोसायटी' में बदलने का अभियान प्रारम्भ किया था। इस संदर्भ में आईसीटी का शिक्षण में प्रयोग आवश्यक है। शिक्षण कौशल में सुधार करके ही शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ायी जा सकती है। कक्षाओं में 'रटने' पर बल देने की परम्परागत नीति की अवहेलना ही शिक्षा में सुधार ला सकती है। शिक्षण में क्रियात्मकता करके सीखने का सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी है। इससे गुणात्मकता में संवृद्धि होगी। प्रेरणा, प्रोत्साहन जैसे अभिप्रेरक गुणवत्ता संवर्द्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

13.7.4 : शिक्षकों की उपलब्धता एवं स्तरीय शिक्षक प्रशिक्षण : आज हमारे देश में विद्यालयों में शिक्षकों की कमी और उनके शिक्षण की गुणवत्ता से सभी परिचित हैं। स्थायी और प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी के कारण शिक्षामित्र, शिक्षाकर्मी, संविदा शिक्षक और शिक्षक सेवक आदि की नियुक्ति से काम चलाया जा रहा है। बहुत से विद्यालयों में शिक्षक छात्र के अनुपात में बहुत कम है।

उपलब्ध शिक्षक भी सही प्रकार से प्रशिक्षित नहीं हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भी गुणवत्ता का अभाव है। ऐसी दशा में शिक्षा की गुणवत्ता का प्रभावित होना स्वाभाविक है अतः शिक्षकों की कमी को दूर करना, उनकी प्रशिक्षण सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करना आदि ऐसे मुद्दे हैं, जिनके द्वारा शिक्षा में गुणवत्ता लायी जा सकती है।

13.7.5 : उचित शैक्षणिक परिवेश : हमारे देश में प्रारम्भिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के अनेक संस्थाएं हैं, जिनके शैक्षणिक परिवेश अलग–अलग हैं। कुछ सरकारी संस्थाएं हैं। कुछ प्राइवेट, कुछ मिश्रित पद की शैक्षिक संस्थाएं हैं। ऐसी स्थिति में निजी, सरकारी अर्द्ध सरकारी, सहायता प्राप्त संस्थाओं की कार्य प्रणाली, उत्पादन क्षमता में बहुत अधिक अन्तर है, जिससे इनकी गुणवत्ता पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। परिवेश के निर्माण के लिए प्रत्येक विद्यार्थी को आवश्यक शिक्षण सामग्री की व्यवस्था भी विद्यालय में करनी होती है। अतः संस्था के परिवेश पर भी गुणात्मकता निर्भर करती है।

13.7.6 : सूचना एवं संचार माध्यमों का अनुप्रयोग : सूचना तथा जनसंचार के माध्यमों का शिक्षा के संदर्भ में अनुप्रयोग को सुनिश्चित करना भी आज की महती आवश्यकता है। निजी तथा कुछ विशिष्ट श्रेणी वाली विद्यालयों में यह सुविधा तो प्रमुखता से उपलब्ध हो रही है। परन्तु सरकारी और कुछ सुविधारहित विद्यालयों में या तो यह सुविधा उपलब्ध नहीं हो पायी है या उपलब्ध हो भी गयी है तो उसके उचित ढंग से संचालन आदि का विशेष प्रावधान न होने के कारण इन माध्यमों का सही दिशा में उपयोग नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में इस प्रकार का प्रयास करना होगा कि यह

सुविधा आसानी से सबको सुलभ हो सके तभी शिक्षा के अधिकार और गुणवत्ता के बीच संतुलन कायम किया जा सकता है।

13.7.7 : मूल्यांकन गुणवत्तापूर्ण व्यवस्था : इस सम्बन्ध में यदि विचार किया जाय तो स्पष्ट है कि देश में प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करने के जितने अभिकरण हैं वे अलग अलग संगठन वाले हैं, जहां निजी और अंग्रेजी माध्यम वाले विद्यालयों में मूल्यांकन प्रक्रिया सतत एवं सुधारात्मक प्रवृत्ति की है वहीं सरकारी विद्यालयों में यह वर्ष में एक ही बार सम्पन्न हो पाती है। ऐसी स्थिति में गुणवत्तापरक अधिगम सुनिश्चित करने हेतु विशेषज्ञों के दिशा निर्देश में मूल्यांकन सम्बन्धी नीति निर्धारित करके काफी सीमा तक सफलता प्राप्त की जा सकती है।

इसके अलावा शिक्षण विधि, नवीन तकनीकों का प्रयोग कक्षा कक्ष परिवेश, कक्षा का अन्तर्क्रियात्मक स्वरूप, कक्षा का निर्देशन एवं उसका अनुश्रवण आदि ऐसे मुद्दे हैं, जिन पर विशेष ध्यान देकर शिक्षा के अधिकार और गुणवत्ता के मुद्दे को सार्थक दिशा प्रदान की जा सकती है।

बोध प्रश्न– क.–अपने उत्तर को नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए।

ख.–अपने उत्तर को इकाई में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

8. गुणात्मक सुनिश्चितता के प्रत्यय से आप क्या समझते हैं?

____

____

9. गुणवत्तापरक शिक्षा के संदर्भ में सुनिश्चित उद्देश्यों की अवधारणा स्पष्ट कीजिए

____

____

10. गुणवत्तापरक शिक्षा में मूल्यांकन की कौन सी व्यवस्था उपयोगी होगी?

____

____

13.8: उपलब्धि के मानक :

उपलब्धि के मानक निर्धारित करने का तात्पर्य है कि उपलब्धि परीक्षण का पुनर्गठन करके एक ऐसी विधि सुनिश्चित की जाये, जो छात्र–विकास का एक वैध तथा विश्वसनीय माप तथा शिक्षण व अधिगम के उन्नयन का एक शक्तिशाली साधन हो।

इसका अर्थ है–

1. विषय निष्ठता के अनुपयोगी तत्वों को समाप्त करना।
2. स्मरण को हतोत्साहित करना।
3. सतत् व व्यापक मूल्यांकन ।
4. अध्यापकों, छात्रों तथा अभिभावकों के द्वारा छात्रों की उपलब्धि प्रक्रिया का प्रभावशाली उपयोग।
5. परीक्षा–संचालन में सुधार।
6. अनुदेशन सामग्री में सहगामी परिवर्तनों को लागू करना।
7. माध्यमिक स्तर से अनुदेशन की सेमेस्टर प्रणाली को क्रमशः लागू करना।
8. अंकों के स्थान पर ग्रेडों का प्रयोग करना।

संस्थागत स्तर पर उपलब्धि परीक्षण को सरलीकृत किया जाय। राष्ट्रीय स्तर पर गुणवत्ता मानकों की संरचना तैयार किया जाये, जो परीक्षा संस्थाओं को अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अनुरूप नवाचार तथा संरचना के अनुकूल की स्वतंत्रता देते हुए, उनके लिए दिशा निर्देशक का कार्य करे।

राष्ट्रीय परीक्षण संरचना तैयार करने के लिए राष्ट्रीय अनुदान आयोग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं परीक्षण परिषद, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद तथा माध्यमिक शिक्षा परिषदों सहित राज्य स्तरीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों वाली एक अन्तर–संस्थानिक समिति बनाने की बात कही गई है। इसमें समाहित किये जाने वाले मुख्य बिन्दु निम्न है : –

अ. प्रारम्भिक स्तर– अधिगम के न्यूनतम–स्तरों का निर्धारण, उनको राज्य व जनपद–स्तर पर अपनाना, विभिन्न प्रकार की स्कूल दशाओं के लिए उपयुक्त नवीन मूल्यांकन प्राविधियों को निरूपित करना तथा शिक्षण व अधिगम में सतत् मूल्यांकन का प्रयोग करना।

ब. माध्यमिक स्तर– पाठ्य विषयों में उपलब्धि के अपेक्षित स्तरों का निर्धारण, सतत व व्यापक मूल्यांकन की नवीन योजना तैयार करना। माध्यमिक–स्तर पर सेमेस्टर प्रणाली के प्रयोग पर विचार करना।

स. उच्च शिक्षास्तर– सभी विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर विभागों को सेमेस्टर, ग्रेडिंग, सतत मूल्यांकन तथा क्रेडिट प्रणालियों में बदलना। स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तरों पर वैधता परीक्षणों के प्रारम्भ किये जाने की सम्भावना खोजना।

द. उच्च तकनीकी तथा व्यावसायिक स्तर– प्रत्येक विश्वविद्यालय द्वारा संस्थाओं के लिए शैक्षिक उपलब्धि के मूल्यांकन का दिशा निर्देश तैयार करना, वाह्य परीक्षणों को

आंतरिक संस्थागत मूल्यांकन से बदलना एवं तकनीकी व व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए अखिल भारतीय परीक्षा–कार्यक्रम आयोजित करना।

य. सभी स्तरों पर– विविध प्रशासनिक तथा तकनीकी सहायक–प्रणाली तथा विविध प्रावधानों की समीक्षा करना।

उपलब्धि परीक्षण हेतु मानकों में गुणात्मक सुधार से सम्बन्धित विभिन्न संकल्पों को लागू करने के लिए विस्तृत योजना भी बनायी जा रही है। इस कार्य योजना के मुख्य अंश निम्न हैं –

अ. प्रारम्भिक स्तर–

1. न्यूनतम अधिगम स्तर अपनाये जायेंगे।
2. मूल्यांकन की प्रकृति निदात्मक बनाकर उपचारात्मक सहायता छात्रों को दी जायेगी।
3. सतत व्यापक मूल्यांकन की नवीन एवं तकनीकी योजना बनायी जायेगी, जिसमें ज्ञानात्मक, भावात्मक व क्रियात्मक तीनों ही पक्षों को सम्मिलित किया जायेगा। उपलब्धि परीक्षण को विश्वसनीय, वैध, वस्तुनिष्ठ व पारदर्शक बनाया जायेगा।

ब. माध्यमिक स्तर–

1. प्रत्येक राज्य–परिषद कक्षा नौ से बारह तक के लिए निष्पत्ति के अपेक्षित स्तर निर्धारित करेगा तथा इन स्तरों के ज्ञान, बोध, सम्प्रेषण, कौशल, समझ, अनुप्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण आदि के रूप में प्राप्त करने के लिए उपयुक्त पाठ्यवस्तुएं प्रस्तुत करेगा।
2. प्रत्येक राज्य में माध्यमिक स्तर के लिए सतत व्यापक मूल्यांकन की नवीन योजना तैयार की जायेगी।

स. उच्च शिक्षा स्तर–

1. सभी वृत्तिक तथा तकनीकी पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए चार परीक्षायें अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित की जायेगी।
2. प्रत्येक विश्वविद्यालय ग्रेडिंग प्रणाली के लिए विस्तृत दिशा निर्देश तैयार करेगा तथा अध्यापकों के लिए ग्रेडिंग प्रणाली हेतु पुनश्चर्या पाठ्यक्रम तैयार किये जायेंगे।
3. उच्च शिक्षा–संस्थाओं में प्रवेश–परीक्षाओं के आयोजन को बढ़ावा दिया जायेगा।

बोध प्रश्न– क.–अपने उत्तर को नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए।

ख.–अपने उत्तर को इकाई में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

11. अच्छे मानकों की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं?

____

____

12. उपलब्धि परीक्षण के प्रमुख मानक क्या हैं ?

____

____

13.9 : सारांश

वैश्वीकरण, उदारीकरण, अन्तर्राष्ट्रीयता के संदर्भ में शिक्षा की गुणवत्ता की नवीन संकल्पना विकसित हो रही है। विगत दशकों में शिक्षा को गुणवत्तापरक बनाने के लिए प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया है। शिक्षा की गुणवत्ता कई कारकों के सम्मिलित प्रभाव को कहते हैं। आज शिक्षण संस्थाओं से ये अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी भौतिक संरचना, शिक्षक प्रशिक्षण, अभिभावक सहभागिता, छात्रों की आवश्यकताओं तथा अपेक्षाओं की पूर्ति तथा उनकी संतुष्टि आदि पर विशेष ध्यान देकर शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने का कार्य करे।

देश की स्वतंत्रता के उपरान्त समय समय पर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु योजनाएं बनायी गयीं और कार्यान्वित भी की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अन्तर्गत शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाये गये। एनसीईआरटी ने गुणवत्ता के लिए विभिन्न प्रयास किये।

शिशु की देखभाल और शिक्षा कार्यक्रम शिक्षा में गुणवत्ता लाने की दिशा का महत्वपूर्ण कदम है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था के दौरान तीव्र शारीरिक और मानसिक विकास के महत्व को स्वीकार किया गया आपरेशन ब्लैक बोर्ड, न्यूनतम अधिगम स्तर आदि योजनाओं द्वारा समय–समय पर शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने का प्रयास किया गया। गुणात्मक सुनिश्चितता का प्रत्यय विचार विमर्श एवं शोध का विषय है। गुणवत्ता के संकेतांक निर्धारित करने के अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों पर ध्यान रखना आवश्यक है। गुणवत्तापरक शिक्षा के प्रमुख संकेतांक निम्न हैं–

- सुनिश्चित उद्देश्यों का निर्धारण
- जीवनोपयोगी पाठ्यक्रम

- आधुनिक शिक्षण विधियां
- शिक्षकों की उपलब्धता एवं स्तरीय शिक्षक प्रशिक्षण
- उचित शैक्षणिक परिवेश
- सूचना एवं संचार माध्यमों का प्रयोग
- गुणवत्तापूर्ण मूल्यांकन व्यवस्था

शिक्षा की गुणवत्ता की व्याख्या शिक्षाविदों, प्रशासकों, नीति निर्धारकों ने अलग–अलग ढंग से की है। इस पर पर्याप्त शोध और विचार विमर्श की आवश्यकता है। उपलब्धि के मानक निर्धारित करके शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाना समय की आवश्यकता है।

13.10 : अभ्यास कार्य

- शिक्षा की गुणवत्ता के आयामों पर विचार करने के लिए छात्रों/अध्यापकों की विचार गोष्ठी आयोजित करे।
- छात्रों से शहर में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने वाले विद्यालयों की सूची तैयार करवाये।

13.11 : चर्चा के बिन्दु

- किसी विशिष्ट विद्यालय की शिक्षा में गुणात्मकता वृद्धि के उपाय तथा कार्य योजना बताइये।

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आवश्यकता अन्तर्राष्ट्रीयता एवं वैश्वीकरण के संदर्भ में अनुभव की जा रही है।
2. शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार एक सतत् अनवरत् चलने वाली प्रक्रिया है।
3. शैक्षिक गुणवत्ता के दो प्रमुख कारक निम्न हैं–

- शैक्षिक उद्देश्यों की गुणवत्ता
- शैक्षणिक पाठ्यक्रम की गुणवत्ता

4. शैक्षिक गुणवत्ता के दो प्रमुख सिद्धान्त
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 : कार्ययोजना के प्रथम अध्याय में 'शिशु की देखभाल और शिक्षा' पर चर्चा की गई है।
6. शिक्षा का अधिकार अधिनियम 1 अप्रैल 2010 में लागू किया गया।

7. निजी स्कूलों में आर्थिक रूप से कमजोर परिवार के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था है।

8. शिक्षा की गुणवत्ता एक बहु आयामी प्रत्यय है। शिक्षा की गुणवत्ता को अनुकूलता, शुद्धता, संसाधनों के समुचित प्रयोग, जन आकांक्षाओं तथा समय की आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।

9. शिक्षा प्रणाली की सफलता प्रभावशाली उद्देश्यों के निर्धारण पर निर्भर करती है। लक्ष्यों का निर्धारण उपलब्ध संसाधनों के परिप्रेक्ष्य एवं आवश्यकता के अनुकूल किये जाने की आवश्यकता है।

10. गुणवत्तापरक शिक्षा में सतत एवं सुधारात्मक प्रकृति की शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है।

11. अच्छे मानकों की प्रमुख विशेषताएं निम्न है :–

– नवीनता

– प्रतिनिधित्वता

– सार्थकता

– तुलनीयता

12. उपलब्धि परीक्षण हेतु आवश्यक मानक निम्न है –

– विषय निष्ठता के अनुपयोगी तत्वों को समाप्त करना।

– स्मरण को हतोत्साहित करना।

– सतत् व व्यापक मूल्यांकन ।

– अध्यापकों, छात्रों तथा अभिभावकों के द्वारा छात्रों की उपलब्धि प्रक्रिया का प्रभावशाली उपयोग।

– परीक्षा–संचालन में सुधार।

– अनुदेशन सामग्री में सहगामी परिवर्तनों को लागू करना।

– माध्यमिक स्तर से अनुदेशन की सेमेस्टर प्रणाली को क्रमशः लागू करना।

– अंकों के स्थान पर ग्रेडों का प्रयोग करना।

13.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Anastasi, A. (1968) Psychological Testing, New York.

2. Asthana, V. & Asthana, S. (2007) "Measurement and Evaluation in

3. Ebel, R.L. (1965), “Measuring Educational Achievement, Englewood Cliffs.
4. गुप्ता, एस0पी0 – (2010) आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा प्रकाशन, इलाहाबाद
5. माथुर एस0एस0 : ‘उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षक’ वर्ष 2009, अग्रवाल पब्लिकेशन्स
6. त्यागी एवं नन्द :उदीयमान भारत में शिक्षा, वर्ष 2009, अग्रवाल पब्लिकेशन्स

इकाई–14 उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण एवं शिक्षा

संरचना–

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 उदारीकरण एवं शिक्षा

14.3.1 उदारीकरण के संदर्भ शिक्षा नीति (2009) के अंतगर्त

14.4 निजीकरण का अर्थ

14.5 निजीकरण एवं शिक्षा

14.5.1 निजीकरण के लाभ

14.5.2 निजीकरण की हानियाँ

14.5.3 निजीकरण के लिए सुझाव

14.6 वैश्वीकरण से तात्पर्य

14.7 भारतीय संदर्भ में वैश्वीकरण

14.7.1 वैश्वीकरण के प्रभाव

14.8 वैश्वीकरण एवं शिक्षा

14.8.1 वैश्वीकरण का शिक्षा पर प्रभाव

14.8.2 वैश्वीकरण का शिक्षा पर ऋणात्मक प्रभाव

14.9 सारांश

14.10 अभ्यास प्रश्न

14.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.1 प्रस्तावना

नब्बे के दशक में आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमण्डलीकरण का प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र को भी अछूता नहीं रखा। वर्तमान समय में आर्थिक नवउदारवाद के कारण पूरे विश्व में उपभोक्तावाद की संस्कृतिक का प्रादूर्भव हुआ जिससे पूरे विश्व में बाजारीकरण की संस्कृति का उद्भव हुआ। इक्कीसवीं सदी में विकास की गाड़ी पर अग्रसर हो रहे विश्व ने पूँजीवादी तथा बाजारीकरण को एक नया आयाम प्रदान किया

है। इन्हीं कारणों से विश्व को एक वैश्विक गाँव की संज्ञा दी जाने लगी है। इस परिवर्तन से न केवल आर्थिक क्षेत्र प्रभावित हुआ है बल्कि शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक क्षेत्रों में भी आमूलचूल परिवर्तन ला दिया है। इस इकाई में हम शैक्षिक परिवर्तन भी चर्चा करेगें कि कैसे उदारीकरण, नीतिकरण एवं भूमण्डलीकरण ने शिक्षा के क्षेत्र को प्रभावित किया है। प्रस्तुत इकाई में इन तीनों प्रकरणों की चर्चा भारतीय शिक्षा व्यवस्था में विशेष परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत की जा रही है–

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् छात्र–

- उदारीकरण एवं शिक्षा के सम्बन्ध से अवगत हो सकेंगें,
- निजीकरण के अर्थ को समझ सकेगे,
- निजिकरण एवं शिक्षा के अन्तर्सम्बन्ध से परिचित हो सकेंगें,
- निजीकरण के लाभ एवं हानियों से परिचित हो सकेंगें,
- वैश्वीकरण के अर्थ को समझ सकेगें,
- भारतीय संदर्भ में वैश्वीकरण से परिचित हो सकेगें, तथा
- वैश्वीकरण का शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों से परिचित हो सकेगें।

14.3 उदारीकरण एवं शिक्षा

उदारीकरण का तात्पर्य नियमों या कानूनों को शिथिल करने से है। अर्थात् संस्थाओं या व्यक्तियों पर जो सरकारी नियंत्रण है उनमें आंशिक या पूर्ण रूप से छूट प्रदान करना है। आर्थिक क्षेत्र की इन वैश्विक अवधारणाओं ने शिक्षा के क्षेत्र को भी प्रभावित किया है। इसे आर्थिक संक्रमण की परिणित के रूप में देखा जा सकता है। मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा ने इन अवधारणाओं को व्यवहारिक रूप देने में पर्याप्त सहायता की है। यदि हम उदारीकरण के स्वरूप की चर्चा करे तो उदारीकरण स्वतंत्रता का पर्याय प्रतीत होता है। शिक्षा में स्वतंत्रता का अभिप्राय प्रवेश परीक्षा आदि के नियमों में स्वतंत्रता से है। इसे शैक्षिक जगत में सुधार और संशोधन के रूप में भी देखा जा सकता है। भारत वर्ष में आर्थिक उदारीकरण को 24 जुलाई, 1991 के आर्थिक संशोधनों से इंगित किया जाता है। इस आर्थिक उदारीकरण में नरसिंहा राव कमेटी की सिफारिशों को प्रस्तुत की। इनकी सहायता डॉ0 मनमोहन सिंह भूतपूर्व प्रधानमंत्री जो उस समय वित्त मंत्री थे।

14.3.1 उदारीकरण के संदर्भ शिक्षा नीति (2009) के अंतर्गत

अनुच्छेद 25 के अनुसार शैक्षिक संस्थाओं का संचालन ट्रस्ट, सोसाइटी या अनुदानित कम्पनी द्वारा किया जा सकता है किन्तु ये संगठन लाभ नहीं कमा सकते है। अर्जित आय को इन्हें पुनः संगठन के विकास पर खर्च करना होता है। यद्यपि विदेशी विश्वविद्यालयों के लिये जो भारत में अपना कैम्पस बना रहीं है उनके लिये नीति स्पष्ट नहीं है। नीति स्पष्ट न होने के कारण विभिन्न संस्थानों ने भारत में अपने कैम्पस खोलने में हिचकिचाहट सी हो रही है। अब तक 150 विश्वविद्यालय इस क्षेत्र में भारत में पदार्पण कर चुके है।

शिक्षा के क्षेत्र में उदारीकरण द्वारा आशा की जाती है कि वित्तीय प्रबन्धन इसके माध्यम से मजबूत हो सकेगा तथा शैक्षिक संस्थाओं के मध्य गुणवत्ता की स्पर्द्धा बढ़ेगी। क्रमश : भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में शिक्षा भी एक मजबूत स्तम्भ हो सकेगा। यह भारतीयों को उच्च शिक्षा के लिये विदेश जाने की अपेक्षा भारतवर्ष में ही विदेशी विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदत्त उच्च शिक्षा मुहैया करायेगा।

इस प्रकार का उदारीकरण स्वतः तकनीकी विकास को बढ़ावा देगा। शिक्षा के क्षेत्र में उदारीकरण के कुछ दुष्प्रभाव की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है। विदेशी Fake संस्थाओं को रोकना पहचानना मुश्किल काम हो सकता है। छात्रों को उच्च शिक्षा हेतु महँगी कीमतों को चुकाना होगा। उदारीकरण की प्रवृत्ति से तात्पर्य जीवन के किसी भी क्षेत्र में बाहरी हस्तक्षेप का विरोध करना है। उदारीकरण शक्ति के विक्रन्द्रीकरण का प्रतिनिधित्व करता है। सामाजिक राजनीतिक क्षेत्र में यह जातिवाद, धार्मिक कठोरता का विरोध कर धर्म निरपेक्षता का पोषण करता है। भारतीय संस्कृति के 'वसुधैव कुटुम्बकम' का सिद्धान्त उदारीकरण के फलस्वरूप ही अस्तित्व में आया। उदारीकरण का शिक्षा के क्षेत्र में गहरा प्रभाव पड़ा हैं। विद्वानों में इसके शिक्षा पर सकरात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों पर यत्र मान्तर है।

बोध प्रश्न– निर्देश

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

1. भारत में उदारीकरण की शुरूआत कब मानी गयी है?

____

____

2. भारतीय संविधान के अनुसार 'अनुच्छेद 25' में क्या सन्निहित है?

____

14.4 निजीकरण का अर्थ

निजीकरण का अभिप्राय सार्वजनिक स्वामित्वाधीन उद्यमों में निजी स्वामित्व का प्रवेश है, परन्तु विस्तृत रूप में निजी स्वामित्व के अतिरिक्त सार्वजनिक उद्यमों में निजी प्रबन्ध एवं नियंत्रण को आरम्भ करना है। जिन क्रियाओं या उद्यमों को पूर्व में सरकार द्वारा संचालित या प्रबन्धित किया जा रहा है, जब उनको किसी निजी कम्पनी या उद्यमी या संस्था को संचालित या प्रबन्धित करने के लिए सौंप दिया जाता है, इस हस्तान्तरण की प्रक्रिया को निजीकरण की प्रक्रिया कहते हैं। भारत में निजीकरण की प्रक्रिया अभी कुछ वर्ष पूर्व ही प्रारम्भी हुई है। सामान्य रूप से निजीकरण का आशय है– स्वामित्व में परिवर्तन अर्थात सरकारी स्वामित्व के स्थान पर निजी व्यक्ति या कम्पनी या व्यवसायी या उद्यमी का स्वामित्व। प्रायः लोगों में यह अवधारणा बन गई है कि निजीकरण से निष्पादन में अनिवार्य रूप से सुधार होता है। इसके माध्यम से लागत में कमी और गुणवत्ता को उन्नत बनाया जाता है। वस्तुतः निजीकरण का मूलमंत्र है– प्रतिस्पर्धा। उसका मुख्य उद्देश्य होता है मुनाफा।

14.5 निजीकरण एवं शिक्षा

शिक्षा का निजीकरण तथा शिक्षा का व्यावसायीकरण दो अलग–अलग धारणाएं हैं। शिक्षा के व्यावसायीकरण से अभिप्राय व्यवसाय तथा रोजगार के अधिकतम अवसर प्रदान करने के लिए विभिन्न व्यवसायों तथा उद्योगों से सम्बन्धित पाठ्यक्रमों में छात्रों को प्रवेश देना है। इससे छात्र, शास्त्रीय पाठ्यक्रमों के बजाय उन पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेते हैं जो उन्हें आजीविका का अवसर देते हैं। बढ़ती जनसंख्या ने नौकरियों के अवसर बहुत कम कर दिये हैं। इसलिये बढ़ती बेकारी को रोकने के लिए स्व–रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना आवश्यक हो गया है।

निजीकरण की धारणा के पीछे जो भावना है वह है– कुछ सम्पन्न तथा मुनाफाखोर व्यक्तियों का शिक्षा के क्षेत्र में धनोपार्जन करना। पहले शिक्षा संस्थाओं की स्थापना धनी व्यक्तियों द्वारा धर्मार्थ कार्य समझ कर की जाती थी, विद्या दान की भावना उसके पीछे थी। कुछ समाजसेवी भी संस्थाओं की स्थापना कर जनसहयोग से शिक्षण संस्थाओं का परिचालन करती थी। धार्मिक संस्थायें, यथा आर्य समाज, धर्म समाज, ब्रह्म समाज, देव समाज, सनातन धर्म, इस्लाम, पारसी, जैन, सिक्ख समुदाय हेतु शिक्षण संस्थाओं की स्थापना कर शिक्षा प्रसार का कार्य करते थे।

आज स्थिति बदल गयी है। भारत में निजीकरण का प्रश्न व्यापार तथा उद्योगों में प्रवेश कर चुका है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ दुनिया भर में बेरोकटोक व्यापार, उद्योग और कल–कारखानों का जाल बिछ रही हैं और सरकारों ने अपने तमाम बन्धनकारी

नियमों को निरस्त कर उन्हें कुछ भी करने की छूट दे रखी है। शिक्षा के क्षेत्र में भी निजीकरण ने अपने पैर पसार लिये हैं। सरकारों ने शिक्षा के दायित्व का निर्वाह करने में असमर्थता प्रकट की है। शैक्षिक अवसरों में कमी के निवारण के लिए भारत सरकार ने शिक्षा में निजीकरण का सहारा लिया है। देखा जाये तो शिक्षा में निजीकरण कोई नया नहीं है। सन् 1882 ई0 में भारतीय शिक्षा आयोग ने शिक्षा के वास्तविक प्रचार प्रसार के लिए राजकीय प्रयासों के साथ–साथ जनता के प्रयासों पर भी बल दिया। वर्तमान परिवेश में शिक्षा के निजीकरण से शिक्षा व्यवसाय में बढ़ोत्तरी हुई है। जिससे लोगों के मूल्यों में तीव्र गति से परिवर्तन आया है। जहाँ पहले शिक्षा सेवा परमार्थ के दृष्टिकोण से उपलब्ध कराई जाती थी परन्तु वहीं आज शिक्षा में निजीकरण से शिक्षा का उद्देश्य धनोपार्जन करना अधिक प्रतीत हो रहा है। परन्तु ऐसी स्थिति में आर्थिक स्थिति से सम्पन्न लोग डिग्रियों की खरीद फरोख्त कर रहे हैं और शिक्षा मध्यम एवं निम्न वर्ग के लोगों के हाथों से दिन पर दिन दूर होती चली जा रही है। यहाँ तक कि अर्द्ध शिक्षा नीति में निजी उपक्रम को शिक्षा के काम में सहयोग देने का आमंत्रण दिया जाने लगा।

उद्यमियों ने भी बड़ी–बड़ी फैक्ट्रियाँ लगाने के बजाय बड़े–बड़े पाँच सितारा स्कूलों की स्थापना पर ध्यान देना शुरू किया। अनिवासी भारतीयों की देश तथा संस्कृति के प्रति आस्था ने डालर तथा पौंड कमाने का रास्ता दिखाया। फलतः अंग्रेजी माध्यम के आवासीय विद्यालयों की संख्या में वृद्धि होने लगी। कुछ व्यावसायिक तथा वृत्तिक शिक्षा के संस्थान भी खुले, बड़ी–बड़ी कम्पनियों ने भी प्रबन्धक विज्ञान तथा उसकी शाखाओं में पाठ्यक्रम आरम्भ किये। आल इण्डिया कौंसिल फार टेक्नीकल एजेकेशन द्वारा निरन्तर मान्यता देने से शिक्षा के इस उद्योग को बढ़ावा मिलने लगा। कम्प्यूटर्स के विभिन्न पाठ्यक्रमों का संचालन भी ऐसे ही कम्पनियों द्वारा हो रहा है। शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् ने जिस उदारता के साथ बी0एड0 एवं बी0टी0सी0 पाठ्यक्रमों के लिये निजी संस्थाओं को वित्तहीन मान्यताएं प्रदान की है। वह स्पष्ट देखी जा सकती है।

विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद तथा इण्डियन कौंसिल फार सेकेण्डरी एजुकेशन ने भी वित्तविहीन मान्यता देकर निजी क्षेत्र में विकास किया है।

14.5.1 निजीकरण के लाभ

शिक्षा के निजीकरण से निम्नलिखित लाभ प्रकट हो रहे हैं–

1. शिक्षा का प्रसार हो रहा है।
2. जिन लोगों को प्रतियोगी परीक्षाओं में असफल होने के कारण प्रवेश नहीं मिल पाता, वे अधिक धन खर्चा करके वांछित शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

3. देश का धन सकारात्मक कार्यों में लग रहा है।
4. बेरोजगारी किसी सीमा तक दूर हो रही है।
5. शिक्षण संस्थाओं की स्थापना से सम्बन्धित रोजगार, छात्रावास, कैन्टीन सेवाएं, स्टेशनर्स, प्रिन्टर्स तथा पब्लिशर्स को विकास के अवसर मिल रहे है।
6. योग्य व्यक्तियों को अपनी प्रतिभा का विकास के अवसर मिल रहे हैं।

14.5.2 निजीकरण की हानियाँ

शिक्षा का उद्योग मान लेने से शिक्षा के प्रति सात्विक भाव समाप्त हो गया है। अतः शिक्षा के निजीकरण से निम्नलिखित हानियाँ हो रही है।

1. शिक्षा व्यापार हो गयी है। उपभोक्ता तथा नियोजक दोनों इसी दृष्टि का विकास करते हैं।
2. निजीकरण के कारण वे लोग शिक्षा से वंचित रह जाते है। जो निर्धनता के कारण प्रतिभा होते हुए भी प्रवेश नहीं ले पाते।
3. निजीकरण के कारण शिक्षा महंगी हो गयी है। पूर्व प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर कम से कम एक हजार रूपया प्रतिमाह औसतन शैक्षिक व्यय प्रति व्यक्ति आता है, जो सामान्य वेतनभोगी व्यक्ति के लिये समस्या है।
4. बड़े–बड़े उद्योगपतियों ने शिक्षा संस्थाओं को सहयोगी उद्योग के रूप में स्थापित किया है।
5. शिक्षकों का शोषण होता है। उन्हें पूरा वेतन तथा शैक्षिक सुविधायें प्राप्त नहीं होती।
6. अधिकतम संस्थानों में योग्य शिक्षक मंडल नहीं होता।
7. इन संस्थानों में शैक्षिक साधनों तथा सुविधाओं का अभाव होता हैं
8. शैक्षिक तथा बौद्धिक विकास के अवसर कम हो रहे है।
9. एकाधिकारी प्रबन्ध के कारण शिक्षकों में तनाव रहता है।

निजीकरण अपने विपक्ष में लोगों का कहना है कि शिक्षा के निजीकरण से सरकार अपने शैक्षिक दायित्व से अलग होना चाहती है। साथ ही वह देश में नवीन आभिजात्य वर्ग की स्थापना करना चाहती है। जो भारतीयों को पुनः दो वर्गों में विभक्त कर सके– नवीन आभिजात्य वर्ग जो उत्तम प्रकार की सुख– सुविधाओं का भोग करने में समर्थ हो और दूसरा जो इन सुविधाओं से विहीन रहे। प्रथम वर्ग पैसे के बलबूते अपने समस्त कार्य करा सकता है। परन्तु दूसरा वर्ग क्षमताओं के होते हुए भी अपनी क्षमताओं का विकास नहीं कर पाता क्योंकि वह उस शिक्षा को प्राप्त करने में असमर्थ है।

14.5.3 निजीकरण के लिए सुझाव

सरकारें निरन्तर बढ़ते बोझ की दुहाई देकर शिक्षा के दायित्व से मुँह मोड़ने के अवसरों को तलाश करती रहती है। यही कारण है कि हम अभी तक चौदह वर्ष तक आयु के बालाकों के लिए अनिवार्य निःशुल्क एवं सार्वभौम शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर पाये। सभी को उच्च शिक्षा के समान अवसर नहीं उपलब्ध करा पाये। ऐसी स्थिति में निःसन्देह निजीकरण ही एक ऐसा सहारा है जो शिक्षा को सार्वजनिक बना सकता है। निजीकरण में मुनाफाखोरी तथा आर्थिक शोषण पर नियंत्रण रखने के साथ साथ शैक्षिक स्तर के निर्माण तथा सर्वसुलभ बनाने के लिये इन सुझावों पर ध्यान देना आव यक है–

1. निजीकरण में मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति पर रोक लगाई जाये।
2. शिक्षा का धर्मार्थ स्वरूप विकसित हो।
3. मान्यता देते समय इस बात का ध्यान रखा जाये कि ऐसी संस्थाओं में प्रशासनिक विभाग, समाज, छात्रों तथा अध्यापकों का प्रतिनिधित्व हो। इन प्रतिनिधियों के सशक्त अधिकार हों।
4. शिक्षकों की सेवा शर्तों का संरक्षण सरकार द्वारा किया जाये।
5. प्रयोगशाला, वर्कशाप, खेल के मैदान, पुस्तकालय, लैब तथा अन्य सुविधायें हों।
6. शिक्षकों तथा अभिभावकों का आर्थिक शोषण न हो।
7. निजीकरण द्वारा शिक्षक संस्थायें, संस्थाओं के रूप में चलाई जायें, न कि दुकानों के रूप में
8. संस्थायें स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम तैयार करें।
9. प्रजातांत्रिक भावना विकसित की जाये।

अतः हमें विश्वास है कि यदि ये सुझाव अपनाये जायें तो निजीकरण शिक्षा के प्रसार में बाधक नहीं होगा।

बोध प्रश्न– निर्देश

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

3. निजीकरण से क्या आशय है?

____

____

4. वर्तमान समय में उद्यमियों द्वारा शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य क्या है?

____

____

5. बी0एड0 एवं बी0टी0सी0 कार्यक्रमों को कौन सी संस्था मान्यता प्रदान करती है?

____

____

6. शिक्षा में निजीकरण का विरोध क्यों हो रहा है?

____

____

14.6 वैश्वीकरण से तात्पर्य

शब्द ''वैश्वीकरण का उपयोग अर्थशास्त्रियों के द्वारा 1920 में किया जाता रहा है। टॉम जी पामर– ''वैश्वीकरण'' को ''सीमाओं के पर विनिमय पर राज्य प्रतिबंधों का ह्यस या विलोपन और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ उत्पादन और विनिमय का तीव्र एकीकृत और जटिल विश्व स्तरीय तंत्र'' के रूप में परिभाषित करते है। यह अर्थशास्त्रीयों के द्वारा दी गयी सामान्य परिभाषा है, अक्सर श्रम विभाजन के विश्व स्तरीय विस्तार के रूप में अधिक साधारण रूप से परिभाषित की जाती है। टी0एच0 एरिक्सेन के अनुसार– ''एक और वैश्वीकरण की प्रक्रिया चल रही है तो दूसरी ओर स्थानीकरण की प्रक्रिया प्रभावशाली है।'' हर्मल ई0 डेली का तर्क है कि कभी–कभी अंतर्राष्ट्रीय और वैश्वीकरण शब्दों का उपयोग एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है लेकिन औपचारिक रूप से इनमें मामूली अंतर है, शब्द ''अंतर्राष्ट्रीयकरण'' शब्द का उपयोग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, सम्बन्ध और रूचियों आदि के महत्व आदि के महत्व को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है अंतर्राष्ट्रीय का अर्थ है राष्ट्रों के बीच।

14.7 भारतीय सन्दर्भ में वैश्वीकरण

वैश्वीकरण का अर्थ विभिन्न सन्दर्भों में भिन्न–भिन्न होता है। भारत में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों में उसे विश्व की सबसे तीव्र गति से विकसित हो रही अर्थव्वस्था के रूप में पहचान दिलायी है। आज भारतीय समाज का स्वरूप वैश्वीकरण से निर्धारित हो रहा है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में विभिन्न संस्कतियाँ आपस में अन्तक्रिया करती हैं। विभिन्न राजनैतिक, व्यावसायिक

और बौद्धिक तत्व आपस में मिलते हैं तथा समेकित स्वरूप को हवा करते हैं। वस्तुओं, व्यक्तियों, विचारों, पूँजी तथा सेवाओं का मुक्त प्रवाह होता है। विश्व के देशों के पारस्परिकता बढ़ रही है तथा भौगोलिक एवं सामाजिक सीमायें टूट रही है। देशों के मध्य दूरियाँ समाप्त हो रही है।

यद्यपि वैश्वीकरण ने भारत में सूचना एवं तकनीकि क्षेत्र, स्वास्थ्य एवं शिक्षा सेवाओं तथा जीवन स्तर को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। किन्तु यह भी देखा जा रहा हैं कि आर्थिक एवं सामाजिक विषमतायें वही है। समृद्ध धनी अधिक धनी होते जा रहे हैं जबकि गरीब व्यक्ति अधिक गरीब होता जा रहा है। सुविधा सम्पन्न एवं सुविधाहीन वर्ग के मध्य खाई बढ़ती जा रही है लोगों में वैश्वीकरण के प्रभाव को लेकर आशंका है। कुछ लोग इसका विरोध भी करते हैं।

14.7.1 वैश्वीकरण के प्रभाव

वैश्वीकरण का आशय लोगों और विचारों के मुक्त प्रवाह से है ताकि कहीं भी हो रहे विकास का लाभ अन्य लोग भी उठा सके। वैश्वीकरण का अर्थ संस्कृति, सभ्यता, समाज का हर जगह होना है। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि यह प्रत्येक स्थान पर अपना प्रभाव डालता है। इसके द्वारा पड़ने वाले प्रभाव को संक्षेप में उधोलिखित रूप से समझा जा सकता हैः–

1. यह एक व्यापक प्रक्रिया है जो मानव के सांस्कृतिक जीवन के अनेक क्षेत्रों को प्रभावित कर रही है, जैसे–राजनीति, आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन आदि।
2. स्थानीयकरण पर वैश्वीकरण का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, अब प्रश्न यह उठता है कि क्या यह स्थानीय संस्कृति को प्रभावित करेगा।
3. इसका प्रभाव स्थानीय संस्कृति, परम्परा, मूल्य और कला पर पड़ रहा है।
4. इसके द्वारा एक राष्ट्र की संस्कृति दूसरे राष्ट्र तक पहुँच रही है, जिससे एक प्रकार से सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का जन्म हो रहा है।
5. इससे एक वैश्वी समाज का उद्गम हो रहा है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का जन्म उदारीकरण के फलस्वरूप हो रहा है।
6. वैश्वीकरण के प्रभाव के फलस्वरूप स्थानीय संस्कृति 'चुनौती और प्रत्युत्तर' की प्रक्रिया से गुजर रही है और यह शक्तिशाली होती जा रही है।
7. वैश्वीकरण के प्रभाव के फलस्वरूप, अन्तर्राष्ट्रीयता का जन्म हो रहा है और पृथक अपने अन्त की ओर अग्रसर है।

8. वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप अनेक समाजों के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है तथा समानता व न्याय की पृष्ठभूमि तैयार हो रही है।
9. आज मानव मस्तिष्क का वैश्वीकरण हो रहा है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्पष्ट नजर आ रहा है।
10. शिक्षा और तकनीकि के क्षेत्र में भी इसके प्रभाव को अनदेखा नही किया जा सकता है।

14.8 वैश्वीकरण एवं शिक्षा

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है और वह समाज में हो रहे किसी भी परिवर्तन से अछूता नहीं रह सकता। शिक्षा न केवल परिवर्तन से प्रभावित होती है बल्कि वह परिवर्तन को भी प्रभावित करती है। वैश्वीकरण आज के युग की आवश्यकता है। अतः यह भी आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा इस समय अपनी भूमिका को समझे। वैश्वीकरण के श्याम पक्षों को समझकर उन्हें दूर रखना तथा धवल पक्षों को समझकर उन्हें अपनाने की प्रक्रिया तीव्र करना शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिये।

14.8.1 वैश्वीकरण का शिक्षा पर प्रभाव

वैश्वीकरण का शिक्षा पर प्रमुख प्रभाव निम्नांकित है–

1. शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों यथा सूचना एवं जनसंचार तकनीकी, अंतरिक्ष विज्ञान, औद्योगिक उत्पादन, न्यूक्लियर तकनीकी, जैव तकनीकी तथा जेनेटिक इंजीनियरिंग इत्यादि में नवीनतम् खोजों एवं अनुसंधान के आधार पर भारत ने विश्व में एक सबसे बड़ी उच्च शिक्षा प्रणाली विकसित कर ली है।
2. उच्च शिक्षा एक बड़े बाजार के रूप में विकसित हो रहा है।
3. उच्च शिक्षा में भौगोलिक दूरियाँ समाप्त हो रही है। बहु–परिसर संस्थान, फ्रैंचाइज संस्थान, बहि–परिसर शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा, इण्टरनेट आधारित शिक्षा, विश्वविद्यालय इसके कुछ ज्वलन्त उदाहरण हैं।
4. एक भली–भाँति शिक्षित विद्यार्थी के सामने अनगिनत संभावनायें हैं। एक सम्पूर्ण विश्व बाजार के रूप में है जहाँ वह अपनी योग्यताओं एवं कुशलताओं का समुचित उपयोग कर सकता हैं तथा अधिकतम प्रतिफल धन तथा संतुष्टि के रूप में प्राप्त कर सकता है।
5. तकनीकी शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा, प्रबन्धन एवं व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में विश्वस्तरीय संसाधनों एवं सुविधाओं से युक्त संस्थानों की उपलब्धता के कारण आज विश्व भर के विद्यार्थी भारत में शिक्षा ग्रहण करने आ रहे हैं।

6. प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक के क्षेत्र में माँग बढ़ी है।

14.8.2 वैश्वीकरण के शिक्षा पर ऋणात्मक प्रभाव

आज हमें दो भिन्न भारत दिखायी देते हैं एक ओर चमकदार समृद्धशाली संस्कृति है दूसरी ओर गरीबी एवं निराशा की जिदंगी। एक ओर पंचसितारा होटलों की संस्कृति है तो दूसरी ओर गंदी बस्तियों की संख्या बढ़ती जा रही है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय समाज में कुछ नकारात्मक प्रभाव देखे जा सकते हैः–

1. वैश्वीकरण का प्रतिफल में समाज के सभी वर्गों की बराबर साझेदारी नहीं है। अमीर एवं गरीब के मध्य खाई बढ़ रही है।
2. विभिन्न संस्कृतियों के आगमन से भारतीय संस्कृति अस्थिर एवं विकृत होती जा रही है। युवा वर्ग आज अपनी जड़ों से दूर हो रहे हैं तथा पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता के दीवाने हो रहे हैं।
3. शिक्षा एक वस्तु बन गयी है जो बेची या खरीदी जा सकती है। विश्वस्तरीय संस्थानों की संख्या जरूर बढ़ी है किन्तु यहाँ छात्रों से प्रतिवर्ष लाखों रूपये का शुल्क लिया जाता है। स्पष्ट है कि केवल सम्पन्न वर्ग के विद्यार्थी ही यह विश्वस्तरीय शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। यह भारत के जनतांत्रिक मूल्यों के विपरीत है।
4. विश्वविद्यालय केवल सेवा प्रदान करने के केन्द्र बन गये हैं। ज्ञान का विकास तथा ज्ञान का मुक्त हस्तांतरण जो विश्वविद्यालयों की स्थापना का मुख्य कारण था, आज अपनी सार्थकता खो चुका है।
5. उच्च शिक्षा के विकास की दर जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप नहीं हैं। आज भी केवल 6.7 प्रतिशत लोगों को ही उच्च शिक्षा की सुविधा उपलब्ध है।

बोध प्रश्न– निर्देश

टिप्पणी– (क) अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को खण्ड के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

7. वैश्वीकरण के प्रमुख प्रभाव क्या–क्या है?

____

____

8. वैश्वीकरण की प्रक्रिया क्या है?

____

____

9. भारतीय संस्कृति अस्थिर एवं विकृत क्यों है?

10. आज कितने प्रतिशत लोगों को उच्च शिक्षा उपलब्ध है।

14.9 सारांश

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में आवागमन, सम्प्रेषण तथा उत्पादन के आधुनिक साधनों ने विश्व के एक स्थान से दूसरे स्थान तक मानव उत्पाद व सेवा की पहुँच अत्यधिक सहज ढंग से सुलभ करा दी है जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व एक गाँव के रूप में देखा जाने लगा एवं आर्थिक पक्षों में एक नया युग प्रारम्भ हो गया है। उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमंडलीकण इसी आर्थिक संक्रमण की परिणिति है। शिक्षा का क्षेत्र भी इन प्रवृत्तियों से अछूता नहीं रहा है तथा आज शिक्षा सम्बन्धी चर्चा में इन तीन शब्दों का बहुतायतः से प्रयोग होने लगा है। उदारीकरण से तात्पर्य सरकारी या नियामक संस्था के नियन्त्रण से पूर्ण अथवा आंशिक छूट प्रदान करने से है। उदारीकरण का विचार व्यापक समाज के स्थान पर लघु समाज या संस्था या व्यक्तियों के किसी समूह की आस्था वाली नीतियों को पोषित करता है। शिक्षा के क्षेत्र में यह शिक्षा संस्थाओं की स्थापना, नियोजन तथा संचालन में व्यक्तिक संस्थाओं को अधिक अधिकार देकर सरकारी लाल फीताशाही से बचाना है। छात्र केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था, सम्प्रेषण साधनों का प्रयोग तथा मुक्त शिक्षा प्रणाली इसी विचारधारा के फलस्वरूप सामने आई हैं परन्तु उदारीकरण को गुणवत्ता में कमी लाने का तरीका कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

निजीकरण से अभिप्राय स्वामित्व परिवर्तन से है। इसमें सरकारी स्वामित्व वाले विभिन्न उद्योगों अथवा सेवा उद्यमों को निजी स्वामित्व वाली संस्थाओं अथवा व्यक्तियों को हस्तान्तरित करने का भाव निहित रहता है। सरकारी व्यवस्था में व्याप्त अकर्मण्यता के कारण निजीकरण के विचार को गति मिल सकी है। आज प्रतिस्पर्धा के कारण गुणवत्ता व उत्पादन बढ़ने तथा लागत में कमी आने के स्पष्ट संकेत मिल रहे है। शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण ने निजी शिक्षा संस्थाओं की बाढ़ सी ला दी है। परन्तु इन निजी संस्थाओं में शिक्षा की गुणवत्ता बनाये रखने एवं अभिभावकों व अध्यापकों को आर्थिक शोषण से बचाने की आवश्यकता है।

भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण से तात्पर्य सम्पूर्ण विश्व को एक दृष्टि से देखने व परस्पर सक्रिय सहयोग देकर सब का हित करने से है। यह विचारधारा भारतीय संस्कृति में वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव के रूप में हजारों वर्षों से विद्यमान है जिसका पाश्चात्य देश अब अनुकरण कर रहे है। भूमंडलीकरण ने रोजगार, शिक्षा, चिकित्सा अभियांत्रिकी, व्यापार व उद्योग के क्षेत्र में अनेक नई सम्भावनाओं को तलाशा हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी अनेक संस्थाओं ने अन्य राष्ट्रों में अपनी पहुँच बनाई है तथा वहाँ के नागरिकों को शिक्षा सुविधाएँ उपलब्ध करानें में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। परन्तु भूमंडलीकरण के सम्प्रत्यय को पर्याप्त सावधानी से देखा जाना चाहिए।

14.10 अभ्यास प्रश्न

1. उदारीकरण से क्या तात्पर्य है? उदारीकरण एवं शिक्षा में सम्बन्धों की चर्चा कीजिए।
2. निजीकरण के स्वरूप की व्याख्या करते हुए निजीकरण एवं शिक्षा के सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।
3. निजीकरण से होने वाले लाभों तथा हानियों का विश्लेषण कीजिए।
4. वैश्वीकरण से क्या तात्पर्य है? इसके प्रभावों की चर्चा कीजिए।
5. वैश्वीकरण एवं शिक्षा के अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।
6. वैश्वीकरण के फलस्वरूप भारत की शिक्षा व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है, इसकी विस्तार से चर्चा कीजिए।

14.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 24 जुलाई, 1991
2. अनुच्छेद 25 के अनुसार शैक्षिक संस्थाओं का संचालन ट्रस्ट, सोसाइटी या अनुदानित कम्पनी द्वारा किया जा सकता है किन्तु ये संगठन लाभ नहीं कमा सकते है।
3. निजीकरण का अभिप्राय सार्वजनिक स्वामित्वाधीन उद्यमों में निजी स्वामित्व का प्रवेश है, परन्तु विस्तृत रूप में निजी स्वामित्व के अतिरिक्त सार्वजनिक उद्यमों में निजी प्रबन्ध एवं नियंत्रण को आरम्भ करना है।
4. लाभ या मुनाफा कमाना।
5. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE)।
6. शिक्षा के निजीकरण से सरकार अपने शैक्षिक दायित्व से अलग होना चाहती है। साथ ही वह देश में नवीन आभिजात्य वर्ग की स्थापना करना चाहती है। जो

भारतीयों को पुनः दो वर्गों में विभक्त कर सके– नवीन आभिजात्य वर्ग जो उत्तम प्रकार की सुख–सुविधाओं का भोग करने में समर्थ हो और दूसरा जो इन सुविधाओं से विहीन रहे। प्रथम वर्ग पैसे के बलबूते अपने समस्त कार्य करा सकता है।

7. 1920 में।

8. वैश्वीकरण की प्रक्रिया में विभिन्न संस्कृतियाँ आपस में अर्न्तक्रिया करता है। विभिन्न राजनैतिक, व्यावसायिक और बौद्धिक तत्व आपस में मिलते हैं तथा समेकित स्वरूप को हवा करते हैं। वस्तुओं, व्यक्तियों, विचारों, पूँजी तथा सेवाओं का मुक्त प्रवाह होता है। विश्व के दशों के पारस्परिकता बढ़ रही है तथा भौगोलिक एवं सामाजिक सीमायें टूट रही है। देशों के मध्य दूरियाँ समाप्त हो रही है।

9. विभिन्न संस्कृतियों के आगमन से भारतीय संस्कृति अस्थिर एवं विकृत होती जा रही है। युवा वर्ग आज अपनी जड़ों से दूर हो रहे हैं तथा पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता के दीवाने हो रहे हैं।

10. आज भी केवल 6.7 प्रतिशत लोगों को ही उच्च शिक्षा की सुविधा उपलब्ध है।

14.12 संदर्भ ग्रन्थसूची

1. गुप्ता एस.पी. एवं अलका (2008): भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें; शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

2. पाठक, पी.डी (2007): भारतीय शिक्षा एवं उसकी समस्यायें; विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

3. पाण्डेय राम शकल (2006): उदीयमान भारत में शिक्षक, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

इकाई—15: माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन

संरचना

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन का तात्पर्य
15.4 गुणवत्ता उन्नयन के आयाम
15.5 गुणवत्ता उन्नयन में शिक्षक की भूमिका
15.6 गुणवत्ता उन्नयन में संगठनात्मक वातावरण का महत्व
15.7 गुणवत्ता संवर्द्धन में पाठयेत्तर क्रियाओं की भूमिका
15.8 परीक्षा एवं मूल्यांकन के मानक
15.9 गुणवत्ता उन्नयन में विद्यालय संसाधनों का उपयोग
15.10 गुणवत्ता उन्नयन के बाधक तत्व
15.11 गुणवत्ता संवर्द्धन के प्रमुख उपागम
15.12 सारांश
15.13 अभ्यास कार्य
15.14 चर्चा के बिन्दु
15.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण, उदारीकरण, अन्तर्राष्ट्रीयकरण ने विश्व स्तर पर समस्त राष्ट्रीय प्रसंगों की अवधारणा का रूपान्तर कर दिया है। राष्ट्रीय विकास से सम्बद्ध प्रत्येक पक्ष नये अर्थ प्राप्त कर रहा है। राष्ट्रीय विकास का मापदण्ड 'शिक्षा' हो गयी है। प्रत्येक राष्ट्र समृद्ध मानव संसाधन को राष्ट्रीय प्रगति का प्रमुख आधार मानते हैं। वस्तुतः आज शिक्षा में गुणवत्ता का प्रसंग भविष्य के लिए अनिवार्य हो गया है। सभी शिक्षण संस्थाओं से यह आशा की जाती है कि ये अपनी भौतिक संरचना, विकास प्रक्रिया

शिक्षकों के प्रशिक्षण, अभिभावकों की भागेदारी, छात्रों की आवश्यकता, समाज की अपेक्षाओं के अनुकूल शिक्षा में गुणवत्ता लाने का प्रयास करे। वस्तुतः गुणवत्ता का प्रसंग एक बहु आकृतिक अवधारणा को जन्म देता है।

माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए अत्यन्त आवश्यक है। माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन द्वारा शैक्षणिक विषमता को दूर किया जा सकता है। माध्यमिक शिक्षा विभिन्न रूपों में, विभिन्न नामों से पल्लवित, पुष्पित हो रही है। उच्च और प्राथमिक शिक्षा के मध्य होने के कारण इसकी सार्थकता बहुत अधिक है। इसमें राष्ट्र के विकास की अपार सम्भावनाएं सन्निहित हैं। प्राथमिक शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान देने के पश्चात अब सरकार माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के साथ गुणवत्ता सुनिश्चयन पर पर्याप्त ध्यान दे रही है। आज के तीव्र गति से बदलते परिवेश से उदीयमान भारत का शैक्षिक भविष्य बहुत कुछ माध्यमिक शिक्षा पर अवलम्बित है।

माध्यमिक शिक्षा की विविधतापूर्ण प्रकृति के आधार पर इसमें शिक्षक विभिन्न साधनों की सहायता से विद्यार्थी को अधिगम में सहायता प्रदान करता है। माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन तथा ह्रास में विभिन्न कारकों में 'शिक्षक' भी एक प्रमुख कारक है। माध्यमिक शिक्षा में 'शिक्षक' की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षक पर सहयोगी, निर्देशक, परामर्शदाता आदि की भूमिका निभाने की जिम्मेदारी होती है। भारतीय समाज के भावी स्वरूप की दृष्टि में शैक्षिक जगत में माध्यमिक शिक्षा सबसे प्रभावी कड़ी है। माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन भावी भारत की आधार शिला है। इसमें कोई भी संदेह नहीं।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- माध्यमिक विद्यालयों में गुणवत्ता उन्नयन के अर्थ को समझ सकेंगे।
- गुणवत्ता उन्नयन के आयामों की व्याख्या कर सकेंगे।
- गुणवत्ता उन्नयन में शिक्षक की भूमिका को समझ सकेंगे।
- माध्यमिक विद्यालयों में गुणवत्ता उन्नयन में संगठनात्मक वातावरण के महत्व को पहचान सकेंगे।
- गुणवत्ता उन्नयन में पाठ्यक्रम एवं पाठ्येत्तर क्रियाओं की भूमिका को जान सकेंगे।

- गुणवत्ता उन्नयन में परीक्षा एवं मूल्यांकन के मानकों के अनुपालन की उपयोगिता जान सकेंगे।
- गुणवत्ता संवर्द्धन की बाधाएं समझ सकेंगे।

15.3 माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन का तात्पर्य

भारत एक विकासशील देश है और इसके समुचित विकास के लिए माध्यमिक शिक्षा के प्रचार, प्रसार के लिए गुणवत्ता उन्नयन अत्यन्त आवश्यक है। देश को पूर्णतः विकसित राष्ट्र बनाने के उद्देश्य से माध्यमिक शिक्षा को मूल अधिकारों में सम्मिलित किया गया है। वर्तमान समय में माध्यमिक शिक्षा की मांग अत्यधिक ज्यादा है, जिसे वर्तमान परम्परागत शिक्षा पद्धति पूर्ण नहीं कर पा रही है। माध्यमिक शिक्षा की मांग पूर्ण करने के लिए मुक्त विद्यालय भी खोले गये हैं। आज माध्यमिक स्तर पर प्रवेश व्यवस्था में लचीलापन लाकर माध्यमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण किया जा सकता है। इस स्तर पर न्यूनतम अधिगम स्तर की प्राप्ति पर भी गम्भीर रूप से विचार करने की आवश्यकता है। परीक्षा व्यवस्था में भी लचीलापन लाने पर विचार किया जाना चाहिए। यदि विद्यार्थी किसी एक विषय में अनुत्तीर्ण हो तो बाकी विषय में उसे उत्तीर्ण समझा जाये। अनुत्तीर्ण विषय की परीक्षा वह अगले सत्रों में दे सकता है। आज माध्यमिक शिक्षा को उच्च शिक्षा के स्तम्भ के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है।

15.4 गुणवत्ता उन्नयन के आयाम

माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में गुणवत्ता उन्नयन के संदर्भ में अनुसंधान कार्यों का नितान्त अभाव है। अनुसंधान माध्यमिक शिक्षा के गुणात्मक विकास तथा विश्वास में अभिवृद्धि के लिए पर्याप्त सहायक हो सकते हैं। माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन के निम्न आयाम विश्लेषण के आधार पर निरूपित किये गये हैं–

- सभी विद्यार्थियों को पाठ्य पुस्तकें समय से उपलब्ध हो जानी चाहिए।
- पाठ्य पुस्तकों की विषय–वस्तु सरल, स्पष्ट बच्चों के स्तर के अनुकूल होनी चाहिए।
- बच्चों की कक्षा में उपस्थिति को सुनिश्चित करने के उपाय करने चाहिए।
- बच्चों के स्तर के अनुरूप पुस्तकालय में पुस्तकों की व्यवस्था होनी चाहिए।
- शिक्षक के विषय का विशुद्ध ज्ञान होना आवश्यक है।

- अध्यापकों के समुचित प्रशिक्षण एवं विकास द्वारा माध्यमिक शिक्षा के अन्तर्गत बच्चों में ज्ञान कौशल, क्षमता के विकास की सम्भावनाओं को खोजा जा सकता है।
- अधिगम संसाधन केन्द्रों को उपयोगी बना माध्यमिक स्तर पर बच्चों को विकास के अवसर प्रदान किये जा सकते हैं।
- वैश्विक स्तर के अनुरूप पाठ्यक्रम एवं पाठयेत्तर क्रियाओं के मानकों में परिवर्तन करना समय की मांग है।
- माध्यमिक स्तर के प्रबन्धन कौशल स्तर में भी प्रशिक्षण द्वारा अधिक दक्षता अर्जित की जा सकती है।
- शिक्षक को शिक्षण कला का ज्ञान होना आवश्यक है अर्थात प्रशिक्षित अध्यापक ही माध्यमिक स्तर पर शिक्षण कार्य करे।
- शिक्षक को बच्चों के लिए परामर्शदाता के रूप में कार्य करने की आवश्यकता भी पड़ती है। ऐसी स्थिति में बच्चों के लिए उसे मितभाषी, सहयोगी तथा मित्रतापूर्वक व्यवहार भी करना चाहिए।
- माध्यमिक शिक्षा के अध्यापक को आधुनिक संचार तकनीकी के प्रयोग में भी प्रशिक्षित होना चाहिए।
- मूल्यांकन प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाने से भी गुणवत्ता उन्नयन होगा।
- पाठ्य सहगामी क्रियाओं में छात्रों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए।
- माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में राष्ट्रीय स्तर पर समरूपता लाने का प्रयास आवश्यक है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम, पाठयेत्तर क्रियाओं के प्रभावी मूल्यांकन द्वारा भी गुणवत्ता उन्नयन सम्भव है।

बोध प्रश्न– क.– अपने उत्तर को नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए।

ख.– अपने उत्तर को इकाई में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

1. माध्यमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण कैसे किया जा सकता है?

2. गुणवत्ता उन्नयन में किसका नितान्त अभाव है?

____

____

____

15.5 : गुणवत्ता उन्नयन में शिक्षक की भूमिका

आज अध्यापन वह नही है जो पहले था। अध्यापक के कार्य के विषय में काफी अपेक्षाएं बढ़ी हैं। उसके कार्य में अनेक व्यवस्था संबंधी अवयवों का समावेष भी हुआ है। अध्यापक को विद्यालय की अनेक प्रबंधन–प्रक्रियाओं की गम्भीर अन्तर्दृष्टि सहित सम्यक्–ज्ञान का होना अनिवार्य है। निर्णय लेना बहुत–सी प्रबंधन–प्रक्रियाओं में एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। निर्णय लेने में अध्यापकों की भागीदारी का अपना अलग महत्व है, क्योंकि वे नियोजकों एवं निर्माताओं की भांति प्रतिदिन लिए जाने वाले उन अनेक छोटे–बड़े व्यावहारिक निर्णयों से बराबर जुड़े रहते हैं, जिनका छात्रों, सहयोगियों तथा प्रबन्धकों के लिए बहुत अधिक महत्व है।

एक अध्यापक होने के नाते यह समझने की आवश्यकता है कि नियोजन के संबंध में एक सुव्यवस्थित एवं सुस्पष्ट कार्य शैली अनिवार्य है। यद्यपि नियोजन आगत एवं अनागत सभी समस्याओं का एक मात्र हल नहीं है तो भी यह सभी अध्यापकों द्वारा किया जाने वाला अत्यधिक उपयोगी कार्य है।

एक अध्यापक सतत् गतिशील अवस्था में रहता है। विद्यालय में किसी भी क्रियाकलाप को व्यवस्थित करने में एक अध्यापक की जिम्मेदारियों का निर्धारण करते समय लक्ष्य एवं उद्देश्यों को परिभाषित करना आवश्यक है। वर्तमान काल ने अध्यापक की भूमिका में बहुत से परिवर्तन ला दिए हैं। अध्यापक की भूमिका नए कार्यों एवं चुनौतियों से भरी होती है। पूर्व में अध्यापक की भूमिका अनिवार्य रूप से एक रूढ़िवादी अभिकर्ता के रूप में थी। यह बृहत रूप में परम्परागत ज्ञान एवं मूल्यों को सम्प्रेषित करने के लिए ही उत्तरदायी होता था। वर्तमान में उनकी भूमिका अधिक से अधिक जटिल एवं कठिन हो गई है। बच्चों के सामाजीकरण की जिम्मेदारी धीरे–धीरे परिवारों, समुदायों, धार्मिक संगठनों से शैक्षिक संस्थाओं पर स्थानान्तरित कर दी गयी हैं। विद्यालयों से अब यह आशा की जाती है कि वे किशोरों को सामाजिक बनाने एवं शिक्षित बनाने में एक मुख्य भूमिका निभाएं। अभिभावक एवं समुदाय शैक्षिक संस्थाओं से इस जिम्मेदारी की अपेक्षा कर रहे हैं कि वे शैक्षिक निर्णय लेने में सक्षम हों।

आधुनिक संचार क्रान्ति के युग में, अध्यापकों की भूमिका बहुत–से दबावों में है। ये हमारे परिवर्तनशील सामाजिक–राजनीतिक वातावरण के प्रभावों से बंधे हैं, आर्थिक नीति में परिवर्तन उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण ने शिक्षा प्रणाली के प्रबंधन–कार्यों पर गहरी छाप छोड़ी है और एक अध्यापक की भूमिका को अधिक तकनीकी एवं विशिष्ट बना दिया है।

शिक्षक से यह आशा की जाती है कि वह ज्ञान का भण्डार और कौशल का सम्प्रेषण अपने छात्रों को, उनकी योग्यताओं और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए करेगा। अब सामाजीकरण अध्यापक का एक और अधिक महत्वपूर्ण कार्य हो गया है, क्योंकि वह बच्चे को उसके सामाजिक जीवन पद्धति में भाग लेने के लिए तैयार करता है। किसी समाज के मूल्यों एवं मान्यताओं को स्थापित करना भी काफी हद तक उसके कार्यों में शामिल हैं। अध्यापक के कार्यों में मूल्यांकन का भी महत्व है, क्योंकि वह बच्चों के बौद्धिक एवं सामाजिक कौशल के आधार पर उनमें अंतर स्पष्ट करता है और उन्हे उस सामाजिक तथा व्यावसायिक भूमिका के लिए तैयार करता है। वह उन्नति के संबंध में फैसले देता है और वह अभिभावकों एवं छात्रों को उपयुक्त पाठ्यक्रमों और जीविका की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए परामर्श देता है। कक्षा के कमरे के प्रबंधन, जिसमें एक कक्षा को नियंत्रित करना सम्मिलित है, की आशा अध्यापक से की जाती है।

परम्परागत रूप से, पाठ्यचर्या का पढ़ाया जाना अध्यापक की स्पष्ट भूमिका थी, परन्तु आज अध्यापक को कौशलों तथा तथ्यात्मक सूचनाओं को छात्रों के सामने पुनरूत्पादित करके सिखाना होता है। आजकल कई तरीकों से शोधित एवं परिवर्धित पाठ्यचर्या और मूल्यांकन उसके कार्यों में प्रमुख स्थान रखते हैं, जो छात्रों एवं स्वयं उसके लिए चुनौतीपूर्ण है।

विद्यालयों की गुणवत्ता बहुत हद तक उसके अध्यापकों की योग्यता पर आधारित है। अध्यापक गुणवत्ता और शिक्षण के मुख्य स्तम्भ हैं। अध्यापक को कर्तव्यों का निर्वाह अपनी पूर्ण योग्यताओं के साथ करना चाहिए।

नवाचर के क्रियान्वयन में अध्यापक को प्रत्यक्ष रूप से संम्बन्धित होना चाहिए। उसे उन परिस्थितियों और वातावरणय का प्रबंधन करना चाहिए, जिससे कि नवाचारों का क्रियान्वयन सर्वाधिक प्रभावकारी ढंग से किया जा सके। उसे विकास के लिए विद्यालय के साधनों का प्रसार करना होगा। जैसे पुस्तकालय का प्रयोग, नई सामग्री का प्रकाशन, सहायक सामग्री, समय–सारणी की रचना आदि। अध्यापक को पर्याप्त प्रबंधकीय कार्यों का निष्पादन करना होता है।

बच्चों के व्यकितत्व विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप का अत्यन्त महत्व है। आज बच्चों के संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं की भूमिका को अनुभव किया जा रहा है। अध्यापक को पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप के उद्देश्यों और महत्व को समझने की आवश्यकता है। उसे विभिन्न प्रकार के पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप का ज्ञान होना चाहिए जैसे वाद–विवाद, भाषण प्रतियोगिताएं, प्रश्न मंच, नाटक, नृत्य, गायन इत्यादि। विज्ञान–क्लब, भाषा–क्लब, गणित–क्लब, राष्ट्रीय सेवा

योजना, राष्ट्रीय कैडिट कोर आदि का आयोजन करना आना चाहिए। अध्यापक के लिए शैक्षिक भ्रमण प्रदर्शनी, क्षेत्र भ्रमण एवं विद्यालय में प्रातःकालीन सभा का आयोजन करना भी आवश्यक है।

प्रत्येक कदम पर अध्यापकों को विभिन्न प्रकार के छोटे–बड़े निर्णय लेने में सम्मिलित होना पड़ता है। अध्यापक को विभिन्न प्रकार की मूल्यांकन तकनीकों की जानकारी होनी चाहिए। जैस – वैज्ञानिक आधार पर प्रश्नपत्रों को तैयार करना, परीक्षा प्रशासन के विभिन्न स्तरीय मानदण्डों का अनुसरण करते हुए परीक्षा संचालित करना आदि।

अध्यापक को विभिन्न नेतृत्व तकनीकों का विकास करना होता है। विभिन्न संस्कृतियों एवं विश्वासों की पृष्ठभूमि वाले छात्र समायोजन संबंधी समस्याओं का सामना करते हैं। एक अध्यापक को निष्पक्ष रूप से एक–दूसरे के दृष्टिकोण को सुनना और समझना चाहिए।

इस परिदृश्य में समय प्रबंधन की तकनीक विशेष महत्व रखती है। अध्यापक को समय–विश्लेषण का प्रयोग करना चाहिए। एक अध्यापक को सभी शैक्षिक एवं सहपाठ्यचारी क्रियाकलाप को उनके आनुपातिक महत्व की दृष्टि से व्यवस्थित करन चाहिए।

अध्यापक को पिछड़े छात्रों के लिए उपचारात्मक एवं अनुदेशात्मक कार्य शैली अपनाने के बारे में फैसला लेना चाहिए। अध्यापक को विद्यालय में संयुक्त निर्णय लेने में सम्मिलित होना चाहिए। अध्यापकों को नए नियमों व विनियमों का निर्माण करने में छात्रों की भागीदारी का ध्यान रखना चाहिए, लेकिन इस दिशा में कुछ सकारात्मक प्रयास किए गए हैं। बहुत–सी शैक्षिक संस्थाओं में जहां निर्णय लिए जाते हैं। वहां छात्र प्रतिनिधियों के दृष्टिकोण पर गंभीरता से विचार किया जाता है।

सार रूप में गुणवत्ता उन्नयन में विशेष रूप से माध्यमिक स्तर पर अध्यापक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एक व्यवस्थापक के रूप में अध्यापक को मानकों का ध्यान रखते हुए पाठ्यक्रम को तैयार करना, समय–सारणी का निर्माण तथा लागू करना,

पाठ्य सामग्री क्रियाओं का आयोजन तथा छात्रों की उनमें प्रतिभागिता को सुनिश्चित करना चाहिए। छात्रों को पुस्तकालय की पुस्तकें पढ़ने तथा उनकी समीक्षा के लिए प्रेरित करना, उपस्थिति, फीस आदि का रिकार्ड रखने के साथ छात्रों को परामर्श देकर उनकी उपलब्धियों को क्षमता के सापेक्ष मूल्यांकित करने जैसे गुरूतर उत्तरदायित्व के निर्वहन से माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अध्यापक का अनुसरण छात्र करते हैं अतः उनका रोल माडल बनने का प्रयास करना चाहिए उसे छात्रों के मार्गदर्शन के अतिरिक्त उनका मित्र भी बनना चाहिए।

15.6 : गुणवत्ता उन्नयन में संगठनात्मक वातावरण का महत्व

विद्यालय प्रभावकारिता में संगठनात्मक वातावरण का अत्यन्त महत्व है गुणवत्ता उन्नयन में नेतृत्व व्यवहार, अध्यापक का मनोबल, विश्वास का स्तर, संस्कृति एवं परिवेष, अभिभावकों का सहयोग, समुदाय का समर्थन, अध्यापकों की कार्य–कुशलता एवं प्रतिबद्धता, अध्यापकों की निष्ठा एवं संतुष्टि तथा छात्रों की शैक्षिक निष्पादन। अध्यापकों की संतुष्टि, साधनों का निपुणता के साथ उपयोग, नए आविष्कार, उद्देश्यों की उपलब्धि आदि का महत्व है। एक विद्यालय का अपना स्पष्ट व्यक्तित्व होता है। विद्यालय की गुणवत्ता को विद्यालय के परिवेश के संदर्भ में देखा जा सकता है। सर्वाधिक प्रभावकारी विद्यालयों में मुक्त परिवेश तथा कम प्रभावकारी विद्यालयों में बंधित परिवेश होता है। अधिकतर प्रभावकारी विद्यालयों में अधिक मुक्त परिवेश होते हैं और कम प्रभावकारी विद्यालयों के बंधित परिवेश होते हैं।

संगठनात्मक परिवेश विद्यालय के स्तरों को बनाए रखने और उन्नत करने के लिए एक महत्वपूर्ण निवेष है। कक्षा के कमरों को अध्यापन–अधिगम के प्रभावकारी केन्द्र बनाने के लिए, विद्यालयों की सहायता अवश्य की जानी चाहिए, ताकि वे मुक्त परिवेश दे सकें। इससे एक ऐसी स्थिति पैदा होती है, जिसमें अध्यापक इकट्ठे होकर बिना शिकायत किए, अच्छा काम करते हैं, मैत्री सम्बन्धों का आनन्द लेते हैं, कार्य–संतुष्टि होती है और वे स्वतः ही अन्दर से पर्याप्त रूप से अभिप्रेरित होते हैं।

विद्यालय परिवेष और छात्रों की उपलब्धियों सुस्पष्ट सह–सम्बन्ध होता है। ऐसा देखा जाता है कि जब विद्यालय परिवेश को छात्र से कुछ अपेक्षाएं होती हैं तो उन अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए छात्र अपना प्रयास करता है। एक प्रेरक एवं मुक्त परिवेश छात्रों को विचारों एवं अभिव्यक्ति की पूरी स्वतंत्रता प्रदान करता है और यह छात्रों के सकारात्मक दृष्टिकोण तथा कार्य–निष्पादन के सभी पक्षों में पर्याप्त रूप से प्रतिबिम्बित होती है।

संक्षेप में माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता उन्नयन के अध्यापकों के साथ स्वतंत्र बातचीत होनी चाहिए, जिससे कि उनकी पूर्ण सहमति प्राप्त हो सके। उन्हे सम्बन्धित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु निर्णय लेने में सहभागिता के लिए अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। प्रबंध समिति एवं प्रधानाचार्य को इस प्रकार से कार्य करना चाहिए कि अध्यापक अपने कार्य के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपना सके और उद्देश्यों की प्राप्ति में वास्तविक रूचि दर्शा सके।

विद्यालय का वातावरण ऐसा होना चाहिए जो बच्चों में रूचि जागृत करके उन्हे अधिगम के प्रति प्रेरित कर सके। एक अध्यापक की सफलता शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के आधार पर ही आंकी जानी चाहिए। अध्यापक को छात्रों के समूह का गतिशील नेता होना चाहिए। एक नेता के रूप में उसे छात्रों को बेहतर अधिगम के लिए अभिप्रेरित करना होता है। उसे छात्रों का मार्गदर्शन कई मामलों में करना होता है जैसे व्यवसायों और विषयों के ठीक–ठीक चयन में। उसे छात्रों के व्यक्तित्व का आदर करना होता है। उनके गुण–दोषों का पता लगाना होता है और अपने व्यवहार एवं दृष्टिकोण का समायोजन करना होता है, ताकि वह छात्रों को कठिन परिश्रम करने के लिए अभिप्रेरित कर सके।

एक अध्यापक के नाते उसे छात्रों को कार्य के प्रति ठीक दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता देनी होती है। उसे छात्रों के मन में नियमितता एवं समयबद्धता की आदत को बैठाना होता है। अध्यापक को छात्रों की सहायता करनी होती है, ताकि वे अपने कार्य को सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध तरीके से कर सकें। उनकी सहायता के लिए साथ रहना चाहिए तथा जहां और जब आवश्यकता पड़े तब अन्तःक्षेप करना चाहिए। एक अध्यापक को छात्रों में निर्देश, उदाहरण तथा प्रभाव द्वारा वांछित तथा रचनात्मक परिवर्तन लाने चाहिए।

15.7 गुणवत्ता संवर्द्धन में पाठ्येत्तर क्रियाओं की भूमिका

कुछ समय पूर्व माध्यमिक शिक्षा में शैक्षिक विषयों को अधिक महत्व दिया जा रहा था, लेकिन शीघ्र ही ऐसा अनुभव किया जाने लगा कि केवल शैक्षिक विषयों के माध्यम से शिक्षा के कुछ उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकती। सर्वांगीण विकास का अर्थ विद्यार्थियों के मानसिक, शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक और व्यावसायिक विकास है।

आज के विद्यालयों में बच्चे के स्वास्थ्य, स्वच्छता, सफाई और सुरक्षा पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, मनोरंजनात्मक खेलकूद और कार्यकलापों का भी

अधिकाधिक और सुव्यवस्थित तरीके से आयोजन किया जाना चाहिए। जिससे विद्यार्थियों का शारीरिक विकास हो, वे अच्छे नागरिक बन सकें, उनका चरित्र निर्माण हो और वे शिष्टाचार को अच्छे तरीके से सीखें। इनके अतिरिक्त विद्यालयों में भावात्मक, संवेगात्मक और प्रेरणात्मक विकास की शिक्षा भी प्रदान की जाती है।

विद्यालय और कक्षा के भीतर आयोजित किए जाने वाले क्रियाकलापों की तुलना में बाहर आयोजित किए जाने वाले कार्यकलाप भी समान रूप से महत्वपूर्ण होते हैं। साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि शिक्षा के प्रत्येक चरण पर पाठ्य सहगामी कार्यकलापों को शामिल करने से शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है।

आज आवश्यकता है विद्यालय कार्यक्रमों में अभिन्न अंग के रूप से पाठ्य सहगामी कार्यकलापों को शामिल किया जाये। क्योंकि लोकतांत्रिक जीवन–यापन, सामाजिक कौशलों, सहयोग भावना, विकास में मिलजुल कर कार्य करने और अपने आपको अनुशासन में रखने में, ये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में नागरिक के रूप में कर्य करने में भी इनका विशेष योगदान है। यह सभी विद्यार्थियों के पाठ्य सहगामी कार्यकलापों में भाग लेने के द्वारा ही संभव है। इसलिए विद्यालयों में पाठ्य सहगामी कार्यकलापों की आवश्यकता को अधिकाधिक महसूस किया जा रहा है।

संक्षेप में, पाठ्यचर्या से आशय केवल कक्षा में अध्यापन और अधिगम नहीं है। इस प्रक्रिया में पुस्तकालय, प्रयोगशाला और कार्यशाला में किया जाने वाला अध्ययन, क्रीड़ा स्थल में होने वाले खेलकूदों में भाग लेना और ऐसे स्थानों में अध्यापक और विद्यार्थी के बीच में स्थापित होने वाले बहुत से अनौपचारिक संबंधों में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का बहुत महत्व है।

कक्षाओं में प्रदान की जाने वाली शिक्षा सैद्धांतिक होती है, इसलिए पाठ्य सहगामी कार्यकलापों के माध्यम से व्यावहारिक ज्ञान का प्रदान किया जा सकता है। स्पष्ट है माध्यमिक शिक्षा के उन्नयन में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का अत्यन्त महत्व है।

15.8 परीक्षा एवं मूल्यांकन के मानक

विद्यार्थियों का मूल्यांकन ही काफी नहीं होता। अध्यापन–अधिगम प्रक्रिया को बेहतर बनाने के लिए परिणामों का संबंध विद्यार्थियों की प्रगति से जोड़ना चाहिए। ऐसे

अध्ययन परिणाम अध्यापन–अधिगम मूल्यांकन की प्रक्रिया के सुधार की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। अध्यापक को नियमित रूप से रिपोर्ट कार्डों और सभाओं आदि के आयोजन द्वारा अभिभावकों को बच्चों के गुण/दोषों से अवगत कराते रहना चाहिए। इस प्रकार बच्चों के शैक्षिक स्तर को उन्नत करने में, अभिभावकों का सहयोग भी प्राप्त करना चाहिए।

परीक्षा संचालित करने के लिए विस्तृत योजना अपेक्षित होती है। परीक्षा प्रणाली को सुव्यवस्थित बनाना व्यक्तिगत प्रयास नहीं होता है, बल्कि सभी अध्यापकों का सामूहिक प्रयास होता है। इसके अतिरिक्त, प्रश्न–पत्र तैयार करना और उसकी अनुलिपियां बनाना अत्यंत गोपनीय कार्य है।

विद्यार्थियों की उपलब्धि के मूल्यांकन के लिए लिखित परीक्षा के अतिरिक्त मौखिक परीक्षा, प्रयोग परियोजनाएं, इकाई परीक्षा और सत्रीय कार्य मानको के अनुकूल सम्पन्न कराने चाहिए ।

परियोजना, दत्त कार्य या मौखिक परीक्षा की प्रकृति के आधार पर मूल्यांकन के मानदण्ड निर्धारित किए जाने चाहिए। इनकी प्रकृति निर्मित मानकों के अनुकूल होनी चाहिए। निर्धारित मानदण्डों के अनुसार अंक या श्रेणी दी जानी चाहिए। अंत में विद्यार्थियों एवं संस्थाओं के रिपोर्ट कार्ड तैयार किया जाना चाहिए। गुणवत्ता उन्नयन हेतु मानकों का निर्धारण तथा उनके अनुकूल कार्य आवश्यक है।

15.9 : गुणवत्ता उन्नयन में विद्यालय संसाधनों का उपयोग

विद्यालयों में गुणवत्ता उन्नयन में विद्यालयीय संसाधनों की भी विशिष्ट भूमिका होती है। विद्यालय के संचालन के लिए अनेक प्रकार के अभिलेख रखना आवश्यक है, जैसे : सामान्य अभिलेख, छात्रों से संबंधित अभिलेख, सामग्री एवं आर्थिक अभिलेख आदि। इन अभिलेखों का रख–रखाव भी उचित ढंग से होना चाहिए। विद्यार्थियों से ही संबंधित अन्य कई अभिलेख भी होते हैं। इनमें से प्रमुख हैः विद्यालय–दैनन्दिनी, विद्यार्थी प्रोफाइल, उपस्थिति पंजिका आदि। इनका रख–रखाव भी उपयुक्त ढंग से होना चाहिए।

विद्यालय में पुस्तकालय एवं विज्ञान–प्रयोगशाला भी शिक्षण–प्रक्रिया के प्रमुख संसाधन होते हैं। अध्यापक को सभी उपकरणों के प्रयोग और रख–रखाव का भी विस्तृत ज्ञान होना चाहिए। अतः इन सभी दायित्वों को निभाने के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षण लेना चाहिए।

विद्यालय की गुणवत्ता में बजट का बहुत योगदान होता है। समय की अवधि के आधार पर विद्यालय दो प्रकार के बजट तैयार करते हैं आगामी वित्तीय वर्ष के लिए तैयार किया गया बजट तथा चालू वर्ष का बजट। इसी प्रकार एक से अधिक वर्षों या लम्बी अवधि के उद्देश्यों को ध्यान में रख कर बनाया गया बजट दीर्घकालीन बजट कहलाता है। कई बार विद्यालय में, किसी विशेष कार्यक्रम के लिए भी बजट तैयार किया जाता है, जिसे कार्यक्रम संबंधी बजट कहा जाता है, परन्तु अधिकांश विद्यालयों में बजट तैयार करते समय गत वर्ष के बजट को ध्यान में रखते हुए ही, आगामी आय–व्यय की योजना बना ली जाती है।

सुनियोजित बजट तथा उसका प्रभावी उपयोग गुणवत्ता संवर्द्धन में महत्वपूर्ण होता है। आधुनिक समय में विद्यालयों में उत्तम पुस्तकालय सेवा की उपलब्धता कोई विवादित विषय नहीं है। सभी आवश्यक व्यक्ति जो शिक्षा के उद्देश्यों, अधिगम व अनुदेशात्मक प्रक्रिया पाठ्यचर्या तथा वर्तमान विद्यालयी क्रियाकलापों से परिचित हैं, वे शैक्षणिक प्रक्रिया में गुणात्मक सुधार लाने के लिए उत्तम पुस्तकालय सेवा के महत्व को अति आवश्यक समझते हैं। प्रभावी पुस्तकालय सेवा से वंचित विद्यालयों की तुलना में अच्छे पुस्तकालय वाले विद्यालयों के शैक्षणिक कार्य भी अधिक अच्छे होते हैं।

आज के शिक्षा के बदले हुए स्वरूप में, जहां स्वयं–शिक्षण पर बल दिया जाता है, जहां अध्यापक को एक मार्गदर्शक एवं संसाधन/प्रदत्त वाला माना जाता है। आधुनिक शिक्षा पद्धति छात्रों को स्वयं विभिन्न स्रोतों से ज्ञान–अर्जन के लिए अभिप्रेरित करती है। इस दृष्टि से सशक्त पुस्तकालयों में स्वयं अध्ययन करना विद्यालयी शिक्षा का एक अभिन्न अंग होना चाहिए।

प्रत्येक विद्यालय में एक सुसज्जित विज्ञान प्रयोगशाला का होना अत्यंत आवश्यक है। इसका उद्देश्य विज्ञान–शिक्षण को प्रभावी बनाना एवं विद्यार्थियों की विज्ञान में रूचि विकसित करना है। प्रयोगशाला में विज्ञान के सैद्धान्तिक ज्ञान को वास्तविक रूप में प्रयोग करके सीखने का अवसर मिलता है। प्रयोगात्मक व रचनात्मक दक्षता विकसित करना और वैज्ञानिक दृष्टिकोण, अनुभूति तथा रूचि आदि का विकास करना विद्यालयों का लक्ष्य होना चाहिए। बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना गुणवत्ता उन्नयन का महत्वपूर्ण आयाम है।

बोध प्रश्न– क.–अपने उत्तर को नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए। ख.

–अपने उत्तर को इकाई में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

3. बच्चों के समाजीकरण की जिम्मेदारी किस पर स्थानान्तरित हो रही है?

____

____

4. प्रबन्धक के रूप में अध्यापक को क्या करना होता है?

____

____

5. विद्यालय संसाधनों से आप क्या समझते हैं?

____

____

15.10 : गुणवत्ता उन्नयन के बाधक तत्व

भारत की बढ़ती जनसंख्या के कारण शिक्षा प्राप्ति की इच्छा रखने वाले लाखों विद्यार्थी शिक्षण संस्थाओं की अनुपलब्धता तथा प्रवेश न मिलने के शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। विकास की प्रक्रिया में शिक्षा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। भारत जैसे लोकतांत्रिक समाज में जहां समानता और सामाजिक न्याय पर बल दिया जाता है, वहां शिक्षा की जिम्मेदारी और बढ़ जाती है। भारत में पिछले पांच दशकों से शिक्षा के विस्तार की गति काफी तेज रही, शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं, जिससे समाज के सभी वर्गों के लोग शिक्षा के समान अवसर पा सकें।

माध्यमिक शिक्षा, शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग है। भारतीय संविधान के द्वारा समस्त भारतीय नागरिकों को शैक्षिक अवसर की समानता प्रदान की गई है। ज्ञान के विस्फोट के फलस्वरूप माध्यमिक शिक्षा सभी को उपलब्ध करानी आवश्यक है। माध्यमिक शिक्षा में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, शिक्षक छात्र के मध्य अन्तर्क्रिया का कक्षा में अवसर प्राप्त होना आवश्यक है, जिससे छात्र अपनी गति एवं आवश्यकता के अनुकूल विषय वस्तु को सीखता है। माध्यमिक स्तर गुणवत्ता उन्नयन के बाधक तत्वों का निम्नांकित रूप से रेखांकित किया जा सकता है।

- जनसंख्या वृद्धि एवं ज्ञान के विस्फोट के कारण समाज के सभी वर्गों में शिक्षा की मांग बढ़ रही है। फलस्वरूप माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जा रहा है।
- वर्तमान समय में सामाजिक परिवर्तन तीव्र गति से हो रहा है, परन्तु माध्यमिक शिक्षा की कठोर संरचना के कारण उसमें अपेक्षित परिवर्तन समय की मांग के अनुकूल नहीं हो पा रहा है अतः माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है।
- माध्यमिक शिक्षा के लिए पर्याप्त संख्या में विद्यालय, शिक्षकों, भौतिक संसाधनों की कमी है।

- माध्यमिक शिक्षा के शिक्षकों के लिए ज्ञान के उन्नयन के लिए अतिरिक्त शैक्षिक प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।
- माध्यमिक शिक्षा में रोजगारपरक व्यावसायिक पाठ्यक्रमों पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है।
- माध्यमिक स्तर पर उपलब्ध पाठ्य सामग्री की उपयोगिता पर प्रश्न उठते हैं।
- इस स्तर पर सूचना तकनीकि का यथोचित मात्रा में प्रयोग नहीं किया जा रहा है, जो इसकी गुणवत्ता को प्रभावित कर रहा है।
- माध्यमिक स्तर पर पाठ्येत्तर क्रियाओं जैसे खेलकूद जैसे विभिन्न क्रियाकलाप, जो व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। इनके आयोजन के संसाधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं और न ही प्रशिक्षित शिक्षक की देख–रेख में इन्हे आयोजित किया जा रहा है। अतः माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता के उन्नयन में यह बाधक सिद्ध हो रहा है।
- माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर मूल्यांकन प्रणाली की विश्वसनीयता पर भी संदेह किया जाता है।
- प्राइवेट विद्यालयों अप्रशिक्षित अध्यापक शिक्षण कार्य कर रहे, जो गुणवत्ता उन्नयन में बाधा पहुंचा रहे हैं।
- स्तरीय प्रशिक्षण के अभाव में शिक्षण कार्य प्रभावित होता है।
- पुस्तकों की भाषा, मुद्रण, बाइंडिंग आदि भी सीखने की क्षमता को प्रभावित करते हैं अतः इस तरफ ध्यान देना आवश्यक है।

15.11 गुणवत्ता संवर्द्धन के प्रमुख उपागम

माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन के प्रमुख उपागम निम्न हैं :–

- माध्यमिक शिक्षा की ग्रामीण क्षेत्रों में तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों तक पहुंच को सुनिश्चित करने के लिए माध्यमिक शिक्षा का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण किया जाये।
- प्रत्येक विद्यालय या विद्यालय संकुल में उत्कृष्ट पुस्तकालय की व्यवस्था की जाये।
- राष्ट्रीय स्तर पर एकीकृत पाठ्य सामग्री का उच्च कोटि का मुद्रण कराकर माध्यमिक शिक्षा को लागत प्रभावी बनाया जाये।
- माध्यमिक स्तर की कक्षाओं में सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ–साथ व्यावसायिक, अनुप्रयोगात्मक तथा व्यावसायिक ज्ञान भी प्रदान किया जाये।

- विद्यालयों में बच्चों की समस्याएं दूर करने के लिए काउन्सलर की व्यवस्था की जाये।
- बच्चों में शिक्षा में रूचि उत्पन्न करने के साथ–साथ ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्हे अभिप्रेरित भी करना चाहिए।
- वास्तव में शिक्षा न केवल एक आधारभूत अधिकार है, परन्तु यह लगातार परिवर्तित होने वाला अभिकरण है। वर्तमान समय में शिक्षा की बढ़ती मांग के कारण पर्याप्त मात्रा में पाठ्य पुस्तकें तथा प्रशिक्षित अध्यापक उपलब्ध नहीं हैं। छात्र संख्या अधिक होने के कारण माध्यमिक शिक्षा की गुणात्मकता प्रभावित हो रही है।

बोध प्रश्न– क.– अपने उत्तर को नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए।

ख.– अपने उत्तर को इकाई में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

6. सामाजिक परिवर्तन के अनुरूप माध्यमिक शिक्षा में परिवर्तन क्यों नहीं हो रहा है?

____

____

7. माध्यमिक शिक्षा का विकेन्द्रीकरण से क्या तात्पर्य है?

____

____

15.12 : सारांश

माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए अत्यन्त आवश्यक है। माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन द्वारा शैक्षणिक विषमता को दूर किया जा सकता है। प्राथमिक शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान देने के पश्चात् अब सरकार माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के साथ गुणवत्ता सुनिश्चयन पर पर्याप्त ध्यान दे रही है। माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में गुणवत्ता उन्नयन के संदर्भ में अनुसंधान कार्यों का नितान्त अभाव है। माध्यमिक शिक्षा में आज अध्यापक को आधुनिक संचार तकनीकि के प्रयोग में भी प्रशिक्षित होना चाहिए। इस क्रम में पाठ्य सहभागी क्रियाओं में भी छात्रों की सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित करना चाहिए। मूल्यांकन प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाना तथा राष्ट्रीय स्तर पर समरूपता लाने का प्रयास भी आवश्यक है।

वास्तव में माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आज अध्यापक से बहुत सी अपेक्षाएं की जा रही हैं। निर्णय लेने में अध्यापकों की भागीदारी का अपना अलग महत्व है। एक अध्यापक होने के नाते यह

समझने की आवश्यकता है। नियोजन के सम्बन्ध में एक सुव्यवस्थित एवं सुस्पष्ट कार्य शैली अनिवार्य है। आज अध्यापक की भूमिका नये कार्यों और चुनौतियों से भरी होती है। विद्यालयों से यह आशा की जाती है कि वे किशोरों को सामाजिक बनाने एवं शिक्षित बनाने में मुख्य भूमिका निभाएं। माध्यमिक शिक्षा के स्तर में कौशलों तथा सूचनाओं को अध्यापक इस तरह प्रस्तुत करें कि उसे याद करने के स्थान पर विश्लेशणात्मक अध्ययन कर समझें। अध्यापक को छात्रों को प्रभावी अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने की सुविधा प्रदान करनी चाहिए।

पाठ्य सहगामी क्रियाओं के महत्व को गुणवत्ता उन्नयन के संदर्भ में जानना, समझना आवश्यक है। विद्यालयों को संगठनात्मक परिवर्तन को समझ कर निर्णय लोकतांत्रिक तरीके से लेना चाहिए। अध्यापकों को नए नियमों एवं विनियमों के निर्माण में छात्रों की भागीदारी का ध्यान रखना चाहिए।

विद्यालय गुणवत्ता के जिन घटकों पर विचार किया जाना चाहिए वे हैं : प्रशासनिक कार्य, नेतत्व व्यवहार, अध्यापक का मनोबल, अभिभावक का सहयोग, समुदाय का समर्थन, अध्यापकों की कार्यकुशलता, निष्ठा, संतुष्टि तथा शैक्षिक उपलब्धि। माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों में स्वास्थ्य, स्वच्छता, सफाई, सुरक्षा पर ध्यान देना आवश्यक है। आज विद्यालयों में पाठ्य सहगामी क्रिया कलापों की आवश्यकता को अधिकाधिक महसूस किया जा रहा है। पुस्तकालय, प्रयोगशाला आदि संसाधनों को अधिक आधुनिक बनाने से बच्चे वैश्विक स्पर्द्धा के युग में 'अवसर न मिलने' के कारण पीछे नहीं रहेंगे। इसके अतिरिक्त गुणवत्ता उन्नयन के अन्य आवश्यक संसाधनों में से 'वित्तीय बजट' प्रमुख है अतः उसका निर्माण और संचालन दक्षता से करने का कौशल अनिवार्य आवश्यकता है। हम सब जानते हैं कि उदीयमान भारत का शैक्षिक भविष्य का आधार माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता उन्नयन है। अतः इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

15.13 अभ्यास कार्य

1. क्या नकलविहीन परीक्षा से माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता लायी जा सकती है। इस संदर्भ में साथी शिक्षकों के विचारों की सूची बनाइए।
2. माध्यमिक शिक्षा में गुणात्मक संवर्द्धन से आप क्या समझते हैं? अपने विचारों को बिन्दुवार लिखिए।

15.14 चर्चा के बिन्दु

माध्यमिक शिक्षा में 'गुणात्मक संवर्द्धन' पर विचार गोष्ठी आयोजित करें।

15.15 : बोध प्रश्नों के उत्तर

1. माध्यमिक शिक्षा में लचीलापन लाकर माध्यमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण किया जा सकता है।
2. माध्यमिक शिक्षा में अनुसंधान कार्य का नितान्त अभाव है।
3. बच्चों के समाजीकरण की जिम्मेदारी धीरे–धीरे विद्यालय में स्थानान्तरित हो रही है।
4. प्रबन्धक के रूप में अध्यापक को अपने में नेतृत्व क्षमता को विकसित करना होता है।
5. विद्यालय संसाधनों से तात्पर्य पुस्तकालय, प्रयोगशाला, भौतिक संसाधन, बजट आदि से होता है।
6. सामाजिक परिवर्तन के अनुरूप की शिक्षा में परिवर्तन, 'कठोर संरचना' के कारण नहीं हो पा रहा है।
7. माध्यमिक शिक्षा का विकेन्द्रीकरण से तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्रों में तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों तक शिक्षा की पहुंच को सुनिश्चित करना है।

15.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. गुप्ता, एस0पी0 – आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा प्रकाशन, इलाहाबाद (2010)
2. माथुर एस0एस0 – उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षक, वर्ष 2009, अग्रवाल पब्लिकेशन्स

3- Report : National knowledge commission (2007) GOI.